योग कोश

(द्वितीय खण्ड)

CYCLOPAEDIA OF YOGA

जैन दशमलव वर्गीकरण संख्या-०४०५

सम्पादक :
स्व० मोहनलाल बाँठिया, बी० कॉम०
श्रीचन्द चोरड़िया, न्यायतीर्थ (द्वय)

प्रकाशक :
जैन दर्शन समिति
१६ सी, डोवर लेन, कलकत्ता-७०००२९
सन् - १९९६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योग कोश (द्वितीय खण्ड)
CYCLOPAEDIA OF YOGA

जैनदशमलव वर्गीकरण संख्या—०४०५

सम्पादक :
स्व० मोहनलाल बांठिया, बी० कॉम०
श्रीचन्द चोरड़िया, न्यायतीर्थ (द्वय)

प्रकाशक :
जैन दर्शन समिति
१६, सी, डोवर लेन, कलकत्ता-७०० ०२९
सन्—१९९६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन आगम विषय कोश ग्रन्थमाला सातवां पुष्प
योग कोश (द्वितीय खण्ड) :
जैन दशमलव वर्गीकरण संख्या—०४०५

अर्थ सहायक :
श्रीमती झमकुदेवी मन्साली मेमोरियल ट्रष्ट,
कलकत्ता मारफत—फतेहचंद चैनरूप मन्साली

प्रथम आवृत्ति—५००

मूल्य :
भारत में रु० १००/-
विदेश में Sh १५०/-

मुद्रक :
महेन्द्र राज मेहता 'मुन्ना'
राज प्रोसेस प्रिन्टर्स
८, ब्रजदुलाल स्ट्रीट
कलकत्ता-७०० ००६
दूरभाष : २३३-१५२२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स
म
र्प
ण

जिनका जैन दर्शन समिति के प्रत्येक विकासशील कार्य में बहुमूल्य योगदान रहा है, उन शासन सेवी, तत्त्वज्ञ श्रावक स्व० जबरमलजी भंडारी को प्रस्तुत योगकोश का द्वितीय खण्ड सादर समर्पित करता हूँ।

—श्रीचन्द चोरड़िया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकलन-सम्पादन में प्रयुक्त ग्रन्थों को संकेत-सूची

अणुत्त०—अणुत्तरोववाइययदसाओ
अणुओ०—अणुओगद्दाराइं
अंगु०—अंगुत्तरनिकाय
अंत०—अंतगडदसाओ
अभिधा०—अभिधान राजेन्द्र कोश
अनुयो०—अनुयोगद्वारचूर्णि
अनु०—अनुयोगद्वार मलधारियटीका
अनुयो०—अनुयोगद्वार हारीभद्रीयटीका
आप्टे०—आप्टे संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी
आव०—आवश्यक निर्युक्ति दीपिका
आया०—आयारो
आव०—आवस्सयं
इसिभासियाइं
उत्त०—उत्तरज्झयाणी
उवा०—उवासगदसाओ
ओव०—ओवाइयं
ओघ०—ओघनिर्युक्ति
कप्पव०—कप्पवडिंसियाओ
कप्पसु०—कप्पसुत्तं
कप्पो०—कप्पो
कर्म०—कर्मग्रन्थ
कालू०—कालू स्मृतिग्रन्थ
गोक०—गोम्मटसार कर्मकाण्ड
गोजी० गोम्मटसार जीवकाण्ड
चंद०—चंदपण्णत्ती
जंबु०—जंबुदीवण्णत्ती
जीतकल्पभाष्य
जीवा०—जीवाजीवाभिगमे
ठाणं०—ठाणं
तत्त्व०—तत्त्वार्थसूत्र
दसवे०—दसवेआलियं
एवा०—ए कन्साइज इटि भोजोजिकल संस्कृतडिक्शनरी
अनं०—अनुज्ञानंदी
दसवेअ०—दशवैकालिक अगस्त्यसिंह चूर्णि
दसवेजि०—दशवैकालिक जिनदास चूर्णि
दसवेहा०—दशवैकालिक—हारिभद्रीय टीका
देसी०—देसीसद्संगहो
दसासु०—दसासुयक्खंधो
धातु०—धातुपारायणम्
निशी०—निशीथपीठिका चूर्णि
धम्म०—धम्मसंगणि
निघंणु०—निघण्टु तथा निरुक्त
नंदी०—नंदी
णाया०—णायाधम्मकहाओ
निर०—निरयावलियाओ
निसी०—निसीहज्झयणं
पचा०—पंचाशक प्रकरण टीका
पंच०—पंचसंग्रह टीका
पाली०—पाली इंगलिशडिक्शनरी
प्राकृ०—प्राकृत व्याकरण
पण्ण०—पण्णवणा
पण्हा०—पण्हावागराणं
पाइअ०—पाइअ सद्द महण्णवो
पूचू०—पुप्फचूलियाओ
पुप्फि०—पुप्फियाओ
बिह०—बिहकप्पसुत्तं
भग०—भगवई
महा०—महाभारत
मनु०—मनुस्मृति
वव०—ववहारो
वण्हि०—वण्हिदसाओ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवा०—विवागसूयं
वाच०—वाचस्पत्यम्
विशु०—विशुद्धिमग्ग
विशेभा०—विशेषावश्यक भाष्य-कोट्याचार्य टीका
शब्द—शब्दकल्पद्रुम ५ भाग
राय०—रायपसेणियं
एकी०—एकीभावस्तोत्र
झीणी०—झीणीचर्चा
मिथ्या०—मिथ्यात्वी का आध्यात्मिक विकास
ध्या०—ध्यान कोश
क्रिया०—क्रियाकोश
वर्ध०—वर्धमान जीवन कोश, भाग १
सूत्रचू०—सूत्रकृतांग चूर्णि
पउम०—पउमचरिय
करप्र०—करण प्रवचन सारोद्धार
योगश०—योगशलक
योगसा०—योगसार
वव०—ववहारो
सम०—समवाओ
सूय०—सूयगडो
सूर०—सूरपण्णत्ती
हेम०—सिद्धहेम शब्दानुशासनम्
सिद्ध०—सिद्धहेम शब्दानुशासनम्
योगस०—योग समुच्चय
षट्०—षट्खंडागम
वीरजि०—वीरजिणिंदचरिउ
धर्मो०—धर्मोपदेशमाला
वृ० ह० (वृह०)—बृहद्हारिभद्रीय टीका

णमोकार महामंत्र

पं० श्वे०—पंचसंग्रह (श्वेताम्बर)
कम्म०—कर्म प्रकृति
जैनसिदी०—जैन सिद्धान्त दीपिका
योग बिन्दु०—योग बिन्दु
वीरवर्धच०—वीर वर्धमान चरितम्
अभिधान चिन्तामणि संस्कृत कोश
त्रिशलाका०—त्रिशष्ठि शलाका पुरुषचरितम्
दर्शनसार
पुद्को० १—पुद्गल कोश भाग १
पुद्को० २—पुद्गल कोश भाग २
विष०—विषपाहार स्तोत्र
वर्धको०—वर्धमान जीवन कोश
भाग २, ३
लेको०—लेश्या कोश
लेश्याको०—संयुक्त लेश्या कोश
(दिगम्बर सोर्स)
वड्ढच०—वड्ढमाण चरिउ
अयोग०—अयोग षट्त्रिंशिका
कसापा०—कसायपाहुडं
—न्यायावतार
अणुओ० हारि०—अनुयोगद्वार हारिभद्रीय टीका
—ज्ञानसार
—समयसार
जि० चू०—जिनदास चूर्णि
भक्तामर स्तोत्र
उपदेश सप्तति
प्रशमरति प्रकरण
मूला०—मूलाचार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल वर्गों के

० जैन दार्शनिक	०० सामान्य विवेचन	०० सामान्य विवेचन	० शब्द-विवेचन
पृष्ठभूमि →		०१ गति	·१ द्रव्य योग (प्रायोगिक)
		०२ इन्द्रिय	
१ जैन दर्शन	०१ लोकालोक	०३ कषाय	
		०४ लेश्या	·२ भाव योग
		०५ योग →	·३
२ धर्म	०२ द्रव्य	०६ उपयोग	·४
		०७ ज्ञान-अज्ञान	
		०८ दर्शन	
३ समाज विज्ञान	०३ जीव	०९ चारित्र	
		१० वेद	·५ योग और जीव
		११ शरीर	
४ भाषा विज्ञान	०४ जीव-परिणाम →	१२ अवगाहना	
		१३ पर्याप्ति	·६ योगी जीव
		१४ प्राण	·७
५ विज्ञान	०५ अजीव-अरूपी	१५ आहार	·८
		१६ योनि	
		१७ गर्भ	
६ प्रयुक्त विज्ञान	०६ अजीव-रूपी पुद्गल	१८ जन्म-उत्पत्ति-उत्पाद	·९ विविध
		१९ स्थिति	
		२० मरण-च्यवन-उद्वर्तन	
७ कला-मनोरंजन	०७ पुद्गल-परिणाम	२१ वीर्य	
क्रीड़ा		२२ लब्धि	
		२३ करण	
८ साहित्य	०८ समय, व्यवहार-समय	२४ भाव	
		२५ अध्यवसाय	
		२६ परिणाम	
९ भूगोल-जीवनी-	०९ विशिष्ट सिद्धान्त	२७ ध्यान	
इतिहास		२८ संज्ञा	
		आदि	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपविभाजन का उदाहरण

·५१ योग की	·९६·१	रत्नप्रभापृथ्वी के	·९६·१०·१	स्वयोनि से	
अपेक्षा जीव		नारकी में उत्पन्न	·९६·१०·२	अप्कायिक योनि से	
के भेद		होने योग्य जीवों में			
·५२ योग की	·९६·२	शर्कराप्रभा०	·९६·१०·३	अग्निकायिक योनि से	
अपेक्षा जीव	·९६·३	बालुकाप्रभा०	·९६·१०·४	वायुकायिक योनि से	
की वर्गणा	·९६·४	पंकप्रभा०	·९६·१०·५	वनस्पतिकायिक	
·५३ विभिन्न	·९६·५	धूमप्रभा०		योनि से	
जीवों में	·९६·६	तमप्रभा०	·९६·१०·६	द्वीन्द्रिय से	
कितने योग	·९६·७	तमतमाप्रभा०	·९६·१०·७	त्रीन्द्रिय से	
·५४ विभिन्न जीव	·९६·८	असुरकुमार०	·९६·१०·८	चतुरिन्द्रिय से	
और योग	·९६·९	नागकुमार यावत्	·९६·१०·९	असंज्ञी पंचेन्द्रिय संज्ञी	
स्थिति		स्तनितकुमार०		तिर्यंच योनि से	
·५५ जीव और	·९६·१०	पृथ्वीकायिक० →	·९६·१०·१०	संख्यात वर्ष की	
योग-समपद	·९६·११	अप्कायिक		आयुवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय	
	·९६·१२	अग्निकायिक०		तिर्यंच योनि से	
·५६ योगी जीव	·९६·१३	वायुकायिक०	·९६·१०·११	असंज्ञी मनुष्य से	
और	·९६·१४	वनस्पतिकायिक०	·९६·१०·१२	संज्ञी मनुष्य से	
अंतरकाल	·९६·१५	द्वीन्द्रिय०	·९६·१०·१३	असुरकुमार देवों से	
·५७ जीव समूहों	·९६·१६	त्रीन्द्रिय०	·९६·१०·१४	नागकुमार यावत्	
में कितने योग	·९६·१७	चतुरिन्द्रिय०		स्तनितकुमार देवों से	
	·९६·१८	पंचेन्द्रिय तिर्यंच	·९६·१०·१५	वानव्यंतर देवों से	
·९६ किसी एक		योनिक०	·९६·१०·१६	ज्योतिषी देवों से	
योनि से स्व/	·९६·१९	मनुष्य योनि०	·९६·१०·१७	सौधर्म देवों से	
पर योनि में	·९६·२०	वानव्यंतर देव०	·९६·१०·१८	ईशान देवों से	
उत्पन्न होने	·९६·२१	ज्योतिषी देव०			
योग्य जीवों	·९६·२२	सौधर्म देव०			
में कितने	·९६·२३	ईशान देव०			
योग →		आदि			

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन वाङ्मय का दशमलव वर्गीकरण

मूल विभागों की रूपरेखा

जै० द० व० सं०	यू० डी० सी० संख्या
०—जैन दार्शनिक पृष्ठभूमि	+
०१—लोकालोक	५२३·१
०२—द्रव्य—उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य	+
०३—जीव	१२८ तुलना ५७७
०४—जीव परिणाम	+
०५—अजीव-अरूपी	११४
०६—अजीव-रूपी—पुद्गल	११७ तुलना ५३९
०७—पुद्गल-परिणाम	+
०८—समय—व्यवहार-समय	११५ तुलना ५२९
०९—विशिष्ट सिद्धान्त	+
१ जैन दर्शन	१
११—आत्मवाद	१२
१२—कर्मवाद—आस्रव-बंध-पाप-पुण्य	+
१३—क्रियावाद—संवर-निर्जरा-मोक्ष	+
१४—जैनेतरवाद	१४
१५—मनोविज्ञान	१५
१६—न्याय-प्रमाण	१६
१७—आचार-संहिता	१७
१८—स्याद्वाद-नयवाद-अनेकान्तादि	+
१९—विविध दार्शनिक सिद्धान्त	+
२—धर्म	२
२१—जैन धर्म की प्रकृति	२१
२२—जैन धर्म के ग्रन्थ	२२
२३—आध्यात्मिक मतवाद	२३
२४—धार्मिक जीवन	२४
२५—साधु-साध्वी-यति-भट्टारक-क्षुल्लकादि	२५
२६—चतुर्विध संघ	२६
२७—जैन का साम्प्रदायिक इतिहास	२७
२८—सम्प्रदाय	२८
२९—जैनेतर धर्म : तुलनात्मक धर्म	२९
३ समाज विज्ञान	३
३१—सामाजिक संस्थान	+

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जै० द० व० सं०	यू० डी० सी० संख्या
३२—राजनीति	३२
३३—अर्थ शास्त्र	३३
३४ —नियम-विधि-कानून-न्याय	३४
३५—शासन	३५
३६—सामाजिक उन्नयन	३६
३७—शिक्षा	३७
३८—व्यापार-व्यवसाय-यातायात	३८
३९—रीति-रिवाज—लोक-कथा	३९
४—भाषा विज्ञान—भाषा	**४**
४१—साधारण तथ्य	४१
४२—प्राकृत भाषा	४९१ ३
४३—संस्कृत भाषा	४९१·२
४४—अपभ्रंश भाषा	४९१·३
४५—दक्षिणी भाषाएँ	४९४·८
४६—हिन्दी	४९१·४३
४७—गुजराती-राजस्थानी	४९१·४
४८—महाराष्ट्री	४९१·४६
४९—अन्यदेशी—विदेशी भाषाएँ	४९१
५—विज्ञान	**५**
५१—गणित	५१
५२—खगोल	५२
५३—भौतिकी-यांत्रिकी	५३
५४—रसायन	५४
५५—भूगर्भ विज्ञान	५५
५६—पुराजीव विज्ञान	५६
५७—जीव विज्ञान	५७
५८—वनस्पति विज्ञान	५८
५९—पशु विज्ञान	५९
६—प्रयुक्त विज्ञान	**६**
६१—चिकित्सा	६१
६२—यांत्रिक शिल्प	६२
६३—कृषि-विज्ञान	६३
६४—गृह विज्ञान	६४
६५— +	+

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जै० द० ब० सं०	यू० डी० सी० संख्या
६६—रसायन शिल्प	६६
६७—हस्त शिल्प वा अन्यथा	६७
६८—विशिष्ट शिल्प	६८
६९—वास्तु शिल्प	६९
७—कला-मनोरंजन क्रीड़ा	७
७१—नगरादि निर्माण कला	७१
७२—स्थापत्य कला	७२
७३—मूर्तिकला	७३
७४—रेखांकन	७४
७५—चित्रकारी	७५
७६—उत्कीर्णन	७६
७७—प्रतिलिपि—लेखन-कला	७७
७८—संगीत	७८
७९—मनोरंजन के साधन	७९
८—साहित्य	८
८१—छंद-अलंकार-रस	८१
८२—प्राकृत साहित्य	+
८३—संस्कृत जैन साहित्य	+
८४—अपभ्रंश जैन साहित्य	+
८५—दक्षिणी भाषा में जैन साहित्य	+
८६—हिन्दी भाषा में जैन साहित्य	+
८७—गुजराती-राजस्थानी भाषा में जैन साहित्य	+
८८—महाराष्ट्री भाषा में जैन साहित्य	+
८९—अन्य भाषाओं में जैन साहित्य	+
९—भूगोल-जीवनी-इतिहास	९
९१—भूगोल	९१
९२—जीवनी	९२
९३—इतिहास	९३
९४—मध्य भारत का जैन इतिहास	+
९५—दक्षिण भारत का जैन इतिहास	+
९६—उत्तर तथा पूर्व भारत का जैन इतिहास	+
९७—गुजरात-राजस्थान का जैन इतिहाग	+
९८—महाराष्ट्र का जैन इतिहास	+
९९—अन्य क्षेत्र व वैदेशिक जैन इतिहास	+

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

०४ जीव परिणाम का वर्गीकरण

०४०० **सामान्य विवेचन**

०४०१ गति
०४०२ इन्द्रिय
०४०३ कषाय
०४०४ लेश्या
०४०५ योग
०४०६ उपयोग
०४०७ ज्ञान
०४०८ दर्शन
०४०९ चारित्र
०४१० वेद

०४११ शरीर
०४१२ अवगाहना
०४१३ पर्याप्ति
०४१४ प्राण
०४१५ आहार
०४१६ योनि
०४१७ गर्भ
०४१८ जन्म-उत्पत्ति-उत्पाद
०४१९ स्थिति
०४२० मरण-च्यवन-उद्वर्तन

०४२१ वीर्य
०४२२ लब्धि
०४२३ करण
०४२४ भाव
०४२५ अध्यवसाय
०४२६ परिणाम
०४२७ ध्यान
०४२८ संज्ञा
०४२९ मिथ्यात्व
०४३० सम्यक्त्व

०४३१ वेदना
०४३२ सुख
०४३३ दुःख
०४३४ अधिकरण
०४३५ प्रमाद
०४३६ ऋद्धि
०४३७ अगुरुलघु
०४३८ प्रतिघातित्व
०४३९ पर्याय
०४४० रूपत्व-अरूपत्व

०४४१ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य
०४४२ अस्ति-नित्य-अवस्थितत्व
०४४३ शाश्वतत्व
०४४४ परिस्पंदन
०४४५ संसार संस्थान काल
०४४६ संसारस्थत्व-असिद्धत्व
०४४७ भव्याभव्यत्व
०४४८ परित्त्वापरित्त्व
०४४९ प्रथमाप्रथम
०४५० चरमाचरम

०४५१ पाक्षिक
०४५२ आराधना-विराधना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आशीर्वचन

विक्रम सम्वत् २०१२ में आगम सम्पादन का कार्य शुरू हुआ। सम्पादन के लिए जो कल्पना की गई, उसका एक अंग था, आगमों का विषयीकरण। प्रारम्भ में आगमों के अनुवाद, टिप्पण आदि का कार्य शुरू किया। विषयीकरण का भविष्य के लिए स्थगित कर रखा था। मोहनलाल जी बांठिया ने विषयीकरण का कार्य अपने हाथ में लिया। पूरी योजना बनाई। कार्य शुरू किया। उनके कार्य को हमने देखा और आगम सम्पादन के पूरक कार्य के रूप में उसे स्वीकार किया।

मोहनलाल जी विद्वान, अध्ययनशील और धर्मनिष्ठ श्रावक थे। उन्हें श्रीचन्द चोरड़िया का योग मिला। इस योग ने उनके कार्य को गतिशील बना दिया। योजना बहुत विशाल है, गति मंथर है। कितने दशक और लगेंगे, कहा नहीं जा सकता फिर भी जैन-दर्शन समिति में इस कार्य के लिए उत्साह है, यह प्रसन्नता की बात है।

प्रस्तुत पुस्तक योग कोश है। उनके अवलोकन से एक धारणा बनती है—इसमें संग्रह अधिक है, उनके तात्पर्य का अर्थ बोध स्वल्प है। कुछ विषयों पर पुनर्विचार करना भी आवश्यक लगता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि एक अनुसंधित्सु के लिए कोश का उपयोग है। यह उपयोगिता ही इस कार्य की समृद्धि के लिए पर्याप्त प्रमाण है।

—आचार्य तुलसी

१ जनवरी १९९४
जैन विश्वभारती
लाडनूं (राजस्थान)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

FOREWORD

It affords me immense pleasure in complying with the request of Pandit Shri Srichand Chorariya that I should write a foreword to his interesting and valuable study of **Yoga-Kosa** (Cyclopaedia of Yoga). It goes without saying that the work represents the doctrines of Yoga-s'astra in Jaina religion. It is unquestionably a welcome idea on which Shri Chorariya is so high an authority.

Shri Chorariya is an acknowledged and well-reputated scholar in Jainism, and has devoted most of his research time in collecting materials for his Cyclopaedias under the guidence of **Late Mohanlal Banthia.** He has compiled so far the Cyclopaedias of Mahavira (Vardhmana-Jivana-Kosa) in three volumes, and of the **Lesya, Kriya** and **Yoga-Kosas.** In all his Cyclopaedias he has collected the materials from the Jaina texts on the topics he is describing.

Mahavira-Jivana-Kosa contains all items on the life and activities of Mahavira as reflected in the Jaina Agamas and other texts. It is a monumental work and every bit of information is authenticated by referring to the sources. This book is a unique contribution to the scholarly world of Jainistic studies. The conception of compiling a dictionary on the life and teachings of Lord Mahavira is itself a new one, and at the same time it is very useful for the handy reference to the source material on Mahavira's life-story. The author has ransacked both the s'vetambara and Digambara sources.

In a similar way, the **Lesya** and the **Kriya-Kosas** are two philosophical treatises which have surpassed all his predecessors on the subject and which have acclaimed lots of laurels for him.

Latest in the series is the **Yoga-Kosa** which contains all the references to the **Yoga-Sastra** found in the Jaina literature. This **Yoga-Kosa** will also tell us how to do research on a particular topic of Jainism. R. L. William's **Jaina-Yoga** (London, 1962) is a book on the study of **sravakacara,** but Chorariya's book is a Cyclopaedia on the Jaina Yoga, and naturally the latter will be more exhaustive than the former.

The **Mithyatvi Ka Adhyatmik Vikasa** of Chorariaji is a philosophical treatise which describes carefully the manifestation of soul

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

according to the Jaina tradition. This treatise shows the masterly scholarship of Chorariyaji over the subject.

The plan of all his Cyclopaedias is a unique one. All the Cyclopaedias are divided into several sections as far as 99 and sub-divided into several other decimal points for the easy reference The system followed in this classification is the International decimal system used in the Library. Each decimal point is arranged in accordance with the topic connected with each subject. In each section and under each topic the original quotations from nearly 100 books followed by Hindi translations are given. All his references are not only valuable, but they represent the authenticity of the subject concerned. To compile such quotations in one place is a tremendous labour.

Besides these Kosas, Shri Chorariya has also compiled the Pudgala and Dhyana Kosas which will be published in course of time.

Shri Srichand Chorariya is a very good Scholar in Jainism. In his own scholastic way, he has been working on Jainism for a long time. In compiling these Cyclopaedias Shri Chorariya consults quite a number of books and gives a sustained effort for the better production of his theses. All his Cyclopaedias deserve cordial welcome from the scholarly world. All his Cyclopaedias have proved the apophthegm of Pythagoras—

'me en pollois oliga lege,
all 'en oligois polla'.

'Do not talk a little on many subjects, but much on a few.'

I trust that all his works must adorn the bookshelf of the library of every learned scholar.

University of Calcutta
15th August, 1996.

—Satya Ranjan Banerjee

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दो शब्द

जैन आगमों में विभिन्न विषयों के क्रमबद्ध विवेचन की कमी के कारण जैन दर्शन के अध्ययन में अत्यन्त असुविधा होती है। यद्यपि भगवान महावीर ने अपने प्रवचन उस समय की जन भाषा में दिये थे जिससे आम जनता, उनके प्रवचनों से लाभान्वित हो सके लेकिन वर्तमान में जो आगम उपलब्ध है उनमें यत्र-तत्र बिखरा हुआ विवेचन मिलता है उस समय की जन भाषा (प्राकृत) थी। इस कारण से उसका अर्थ और भाव दोनों को समझने में बड़ी कठिनाई होती है। कुछ आचार्यों ने क्रमबद्धता लाने का प्रयास किया, जिसके उदाहरण प्रज्ञापना एवं नंदी सूत्र में मिलते हैं लेकिन उनमें भी सूत्र शैली की भिन्नता के कारण विषय के प्रतिपादन में परिपूर्णता नहीं आती है। विशेषकर जैनेतर विद्वानों को आगमों का अध्ययन कर सही अर्थ ग्रहण करना कठिन है। जैसा कि मुझे मालुम हुआ स्व० मोहनलालजी बांठिया के समक्ष इस कठिनाई का प्रश्न तुलनात्मक अध्ययन करने वाले जैन व जैनेत्तर विद्वानों ने कई बार रखा। उन्होंने स्वयं ने भी जैन आगमों के अध्ययन में इस कठिनाई का अनुभव किया। इन कठिनाइयों को दूर करने की भावना से उनके मन में विचार का उद्भव हुआ कि आगमों में आये हुए परिभाषिक विषयों का संकलन करके आधुनिक शैली व आधुनिक पद्धति में सजाकर प्रकाशित किया जाय। इस कार्य को क्रियान्वित करने के उद्देश्य से उन्होंने श्री श्रीचन्द जी चोरड़िया के सहयोग से जैन आगमों के विभिन्न विषयों के पाठों का संकलन करना प्रारम्भ किया।

अस्तु प्रथम लेश्या विषय का संकलन कर लेश्या कोश नाम की पुस्तक का प्रकाशन किया गया जिसका देश व विदेश के विद्वानों द्वारा बहु सराहना की गई। कोश निर्माण एवं प्रकाशन कार्य को स्थायी रूप देने के उद्देश्य से जैन दर्शन समिति (Jain Philosophical Society) 1969 में स्थापना की गई। तब से यह संस्था स्व० मोहनलालजी बांठिया एवं श्री श्रीचन्दजी चोरड़िया द्वारा निर्मित विषयों पर कोश प्रकाशन का कार्य कर रही है। इस प्रकार दसमलव प्रणाली के आधार पर करीब १००० विषयों पर आगम व प्राचीन भारतीय दर्शनों का तलस्पर्शी अध्ययन कर पांडुलिपियाँ तैयार की गई है। इस संस्था के द्वारा निम्नलिखित कोश प्रकाशित हुए है जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

(१) लेश्या कोश—इस ग्रन्थ में छओं लेश्याओं का विस्तृत विवेचन है।

लेश्याओं का आगम ग्रन्थों में अनेक जगह उल्लेख है इस ग्रन्थ में उसका संकलन किया गया है। जो शोध कार्य करने वाले विद्वानों के लिये बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ है। यह पुस्तक अभी "आउट ऑफ प्रिन्ट" है।

(२) क्रिया कोश—इस पुस्तक में आरंभिकी आदि २५ क्रियाओं का उल्लेख है। यह पुस्तक भी अभी "आउट ऑफ प्रिन्ट" है।

(३) मिथ्यात्वी का आध्यात्मिक विकास—श्री श्रीचन्द चोरड़िया के लगभग २०० ग्रन्थों के ग्रहन एवं गम्भीर अध्ययन का निचोड़ है। इस पुस्तक में शास्त्रों के आधार पर लेखक ने अपने विषय को प्रस्तुत किया है जिसको विद्वानों ने बहुत सहराया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४) वर्धमान जीवन कोश, प्रथम खण्ड—प्रस्तुत: ग्रन्थ जैन दर्शन समिति की कोश प्रकाशन की कड़ी में एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है इसमें भगवान महावीर का च्यवन गर्भ-जन्म, दीक्षा, केवल ज्ञान तथा परिनिर्वाण आदि का विस्तृत विवेचन है। अर्थात गर्भ से परिनिर्वाण तक का जीवन संकलित है।

(५) वर्धमान जीव कोश, द्वितीय खण्ड—इस खण्ड में भगवान महावीर के पूर्व भवों के अतिरिक्त ११ गणधर, आर्य चन्दना का पृथक-पृथक विवरण आदि संकलित है।

(६) वर्धमान जीवन कोश, तृतीय खण्ड—इस महत्वपूर्ण पुस्तक में भगवान महावीर के चतुर्विध धर्म की स्थापना एवं समकालीन राजाओं के विवेचन है।

(७) योग कोश प्रथम खण्ड—इस उपयोगी ग्रन्थ में योग के पन्द्रह भेदों का विवेचन हुआ है। जीव में कितने योग होते हैं आदि का क्रमवार विवेचन है।

(८) योग कोश द्वितीय खण्ड—यह ग्रन्थ जो अभी प्रकाशित हुआ है इस में लेखक ने जीव के विविध विषयों को लेकर विवेचन किया है। मुझे पूरा विश्वास है कि यह ग्रन्थ पाठकों के लिये उपयोगी सिद्ध होता।

इस प्रकार जैन दर्शन समिति अपने सिमित दायरे में जैन दर्शन के पारिभाषिक विषयों पर आगमों में आये हुए पाठों का संकलन कर प्रकाशन का कार्य कर रही है।

संस्था के शैशव काल में जोधपुर निवासी स्व० जबरमलजी भण्डारी से जैन दर्शन समिति के प्रत्येक ग्रन्थ के प्रकाशन में उनके बहुमूल्य सुझाव मिलते रहते थे। ग्रन्थों के प्रकाशन में भी उनका सहरानीय आर्थिक सहयोग रहा।

प्रस्तुत ग्रन्थ श्री फतेहचन्द जी चैनरूप जी भन्साली के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित हुआ है। समिति उनके प्रति आभार व्यक्त करती है।

जैन दर्मन समिति का प्रमुख उद्देश्य जैन दर्शन को उजागर करना है स्व० मोहनलालजी बाँठिया एवं श्री श्रीचन्द जी चोरड़िया के जैन दर्शन के तलस्पर्शी अध्ययन द्वारा तैयार किये हुए कोष कार्य को प्रकाशित कर जन मानस तक पहुँचाना है। इस समिति के कार्य को सुचारु चलाने में श्री फतेहचन्दजी भन्साली, श्री मांगीलालजी लूणीया श्री केवलचन्दजी नाहटा, श्री नवरतनमलजी सुराणा, श्री श्रीचन्दजी चोरड़िया एवं श्री पद्मचन्दजी रायजादा का विशेष योगदान रहा है।

मेरी यह मंगलकामना है कि ज्यादा से ज्यादा लोग समिति द्वारा प्रकाशित ग्रन्थों से लाभान्वित हो। पाठकों से मेरा सविनय अनुरोध है कि अगर वे समिति के सदस्य न हो तो सदस्य बनकर हमें प्रोत्साहित करें।

गुलाबमल भण्डारी, अध्यक्ष
जैन दर्शन समिति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

स्व० मोहनलालजी बाँठिया ने, अपने अनुभवों से प्रेरित होकर एक जैन विषय कोश की परिकल्पना प्रस्तुत की तथा श्रीचन्दजी चोरड़िया के सहयोग से प्रमुख आगम ग्रन्थों का मंथन करके, एक विषय सूची प्रणीत की। फिर उस विषय सूची के आधार पर जैन आगमों से विषयानुसार पाठ संकलन करने प्रारम्भ किये। यह संकलन उन्होंने प्रकाशित आगमों की प्रतियों से कतरन विधि से किया। इस प्रकार प्रायः १००० विषयों पर पाठ संकलित हो चुके हैं।

सर्वप्रथम 'लेश्या कोश' नामक पुस्तक स्वयं ही ई० सन् १९६६ में श्रीचन्दजी चोरड़िया के सहयोग से प्रकाशित की। जैन दर्शन और वाङ्मय के अध्ययन के लिए जिस रूप में लेश्या कोश को अपरिहार्य बताया गया है और पत्र-पत्रिकाओं में समीक्षा के रूप में जिस तरह से मुक्त कंठ से प्रशंसा की गई है, यह उसकी उपयोगिता तथा सार्वजनीनता को आलोकित करने में सक्षम है।

सम्पादकों ने जैनागम एवं वाङ्मय के तलस्पर्शी गम्भीर अध्ययन द्वारा प्रसूत कोश परिकल्पना को क्रियान्वित करने तथा उनके सत्कर्म और अध्यवसाय के प्रति समुचित सम्मान प्रकट करने की पुनीत भावनावश जैन दर्शन समिति की संस्थापना महावीर जयन्ती ई० १९६९ के दिन की (३१-३-६९) गई थी। इस संस्था के द्वारा सन् १९६९ में क्रिया कोश प्रकाशित हुआ।

इसके बाद सम्पादकों ने पुद्गल कोश, ध्यान कोश, नरक कोश, संयुक्त लेश्या कोश भी पूर्ण किया जो अभी प्रकाशित नहीं हुए हैं।

जैन दर्शन समिति द्वारा श्री बाँठिया ने अपने जीवन काल में श्रीचन्दजी चोरड़िया के सहयोग से वर्धमान जीवन कोश का काफी संकलन कर लिया था। परन्तु २३-९-१९७६ (आश्विन बदी १५, सं० २०३३) में आकस्मिक स्वर्गवास हो गया। बाँठियाजी के स्वर्गवास पर जैन दर्शन समिति को बहुत बड़ा धक्का लगा। श्रीचन्दजी चोरड़िया अपने धुनके पक्के व्यक्ति है। उनके स्वर्गवास के बाद 'मिथ्यात्वी का आध्यात्मिक विकास' जो कोश की कोटि के ग्रन्थ का सन् १९७७ में प्रकाशित हुआ। वर्धमान जीवन कोश, प्रथम खण्ड सन् १९८० में, वर्धमान जीवन कोश, द्वितीय खण्ड सन् १९८४ में तथा वर्धमान जीवन कोश तृतीय खण्ड सन् १९८८ में प्रकाशित हुआ। योग कोश प्रथम खण्ड १९९३ में प्रकाशित हुआ।

प्रस्तुत कोश, विद्वद् वर्ग द्वारा जितना समादृत हुआ। तथा जैन दर्शन और वाङ्मय के अध्ययन के लिए जिस रूप में इसे अपरिहार्य बताया गया और पत्र-पत्रिकाओं में समीक्षा के रूप में जिस तरह मुक्त-कंठ से प्रशंसा की गई, यही उसकी उपयोगिता तथा सार्वजनिनता को आलोकित करने में सक्षम है।

इसी प्रयास स्वरुप योग कोश (द्वितीय खण्ड) आपके समक्ष प्रस्तुत है। जैन दर्शन समिति ने कोश प्रकाशनों की योजना को किसी तरह की लाभवृत्ति या उपार्जन के लिए हाथ में नहीं लिया है अपितु इसका पावन उद्देश्य एक अभाव की पूर्ति करना, अर्हत् प्रवचन की प्रभावना करना तथा जैन दर्शन और वाङ्मय का प्रचार-प्रसार करना तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके गहन गम्भीर तत्त्वज्ञान के प्रति सर्व साधारण को आकृष्ट करना और इस तरह समाज की सेवा करना ही है।

अस्तु योग कोश (द्वितीय खण्ड) को प्रकाशित करने में भी झमकु देवी मेमोरियल ट्रष्ट, मारफत श्री फतेहचंद चैनरूप भन्साली ने हमें आर्थिक सहयोग दिया है। इसके लिए समिति उन्हें धन्यवाद ज्ञापित करती है।

पुनश्च योग कोश के तीन खण्ड किये गये हैं जिसका पहला व द्वितीय खण्ड आपके सामने आ गया है। प्रस्तुत कोश का प्रतिपादन अत्यन्त प्राञ्जल एवं प्रभावक भाषा रूप में सूक्ष्मता के साथ किया गया है।

जैन दर्शन समिति के भूतपूर्व अध्यक्ष स्व० जबरमलजी भण्डारी, वर्तमान अध्यक्ष श्री गुलाबमल भण्डारी, पद्मचन्दजी नाहटा, इन्द्रमलजी भण्डारी, अभयसिंहजी सुराणा, माँगीलालजी लूणिया, नवरतनमल सुराणा, हीरालाल सुराणा, अजीत बाँठिया आदि समिति के उत्साही सदस्यों, शुभचिन्तकों एवं संरक्षकों का साहस निष्ठा का उल्लेख करना मेरा कर्तव्य है। जिनकी इच्छाएँ और परिकल्पनाएँ मुर्त रूप में मेरे सामने आ रही है।

स्व० मोहनालजी बाँठिया तथा श्री श्रीचन्दजी चोरड़िया अनेक पुस्तकों का अध्ययन कर योग कोश (द्वितीय खण्ड) को तैयार कर हमें प्रकाशित करने का मौका दिया उनके प्रति हम आभारी हैं।

हमारी समिति द्वारा ८ पुस्तकें प्रकाशित हुई है जिसमें लेश्या कोश व क्रिया कोश स्टोक में नहीं है अवशेष ६ पुस्तकें स्टोक में है। हमारी समिति के निर्णयानुसार ३००) देने वाले सज्जनों को ४०५) रु० का पुस्तकें दी जाती है।

१—मिथ्यात्वी का आध्यात्मिक विकास	१५)
२—वर्धमान जीवन कोश, प्रथम खण्ड	५०)
३—वर्धमान जीवन कोश, द्वितीय खण्ड	६५)
४—वर्धमान जीवन कोश, तृतीय खण्ड	७५)
५—योग कोश, प्रथम खण्ड	१००)
६—योग कोश, द्वितीय खण्ड	१००)
	४०५)

जैन दर्शन समिति ने जैन दर्शन के प्रचार करने के उद्देश्य से योग कोश द्वितीय खण्ड का मूल्य केवल १००) रखा है। जैन-जैनेतर सभी समुदायों से हमारा अनुरोध है कि योग कोश क्रय करके अंततः अपने सम्प्रदाय के विद्वानों, भण्डारों में, पुस्तकालयों में इसका यथोचित वितरण करने में सहयोग दें।

राज प्रोसेस प्रिन्टर्स के मालिक महेन्द्र राज मेहता तथा उनके कर्मचारी धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने अनेक बाधाओं के होते हुए भी प्रकाशित करने में सक्षम रहे हैं।

१०-१२-१९९६
कलकत्ता

पद्मकुमार रायजादा, मन्त्री
जैन दर्शन समिति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तावना

जैन दर्शन सूक्ष्म और गहन है तथा मूल सिद्धान्त ग्रन्थों में इसका क्रमबद्ध तथा विषयानुक्रम विवेचन नहीं होने के कारण इसके अध्ययन में तथा इसके समझने में कठिनाई होती है। अनेक विषय के विवेचन अपूर्ण अधूरे हैं, अतः अनेक स्थल इस कारण से भी समझ में नहीं आते हैं। अर्थ बोध की इस दुर्गमता के कारण जैन-अजैन दोनों प्रकार के विद्वान् जैन दर्शन के अध्ययन में सकुचाते हैं। क्रमबद्ध तथा विषयानुक्रम विवेचन का अभाव जैन दर्शन के अध्ययन में सबसे बड़ी बाधा उपस्थित करता है—ऐसा हमारा अनुभव है।

जब हमने 'पुद्गल' का अध्ययन प्रारम्भ किया तो हमारे सामने भी बड़ी समस्या खड़ी हुई। आगम और सिद्धान्त ग्रन्थों से पाठो का संकलन करके इस समस्या का हमने आंशिक समाधान किया। इस प्रकार जब-जब हमने जैन दर्शन के अन्यान्य विषयों का अध्ययन प्रारम्भ किया तब-तब हमें सभी आगम तथा अनेक सिद्धान्त ग्रन्थों को सम्पूर्ण पढ़कर पाठ-संकलन करने पड़े। इसी तरह जिस विषय का भी अध्ययन किया इसे सभी ग्रन्थों का आद्योपांत अवलोकन करना पड़ा। इससे हमें अनुमान हुआ कि विद्वद् वर्ग जैन दर्शन के अध्ययन में क्यों सकुचाते हैं।

सर्वप्रथम हमने पाठ संकलन को ३२ श्वेताम्बर आगमों तथा तत्त्वार्थ सूत्र में सीमाबद्ध रखना उचित समझा। ऐसा हमने किसी साम्प्रदायिक भावना से नहीं बल्कि आगम व सिद्धान्त ग्रन्थों की बहुलता तथा कार्य भी विशालता के कारण ही किया है। श्वेताम्बर आगम ग्रन्थों के संकलन कर लेने के पश्चात् दिगम्बर सिद्धान्त ग्रन्थों—षट्खण्डागम, कषाय पाहुड आदि से भी संकलन किया।

सर्वप्रथम हमने विशिष्ट पारिभाषिक, दार्शनिक तथा आध्यात्मिक विषयों की सूची बनाई। विषय संख्या १००० से भी अधिक हो गई। इन विषयों के सुष्ठु वर्गीकरण के लिए हमने आधुनिक सार्वभौमिक दशमलव वर्गीकरण का अध्ययन किया। तत्पश्चात् बहुत कुछ इस पद्धति का अनुसरण करते हुए हमने सम्पूर्ण जैन वाङ्मय को १०० भागों में विभक्त करके मूल विषयों के वर्गीकरण की एक रूप रेखा (देखें पृ० ८) तैयार की। यह रूपरेखा कोई अन्तिम नहीं है। परिवर्तन, परिवर्द्धन तथा संशोधन की अपेक्षा भी इसमें रह सकती है। मूल विषयों में से भी अनेकों के उपविषय की सूची भी हमने तैयार की है। उनमें जीव-परिणाम (विषयांकन ०५) की उपविषय सूची पृ० ११ पर दी गई है। जीव परिणाम की यह उपसूची भी परिवर्तन, परिवर्द्धन व संशोधन की अपेक्षा रख सकती है। विद्वद् वर्ग से निवेदन है कि वे इन विषय सूचियों का गहरा अध्ययन करें तथा इनमें परिवर्तन, परिवर्द्धन व संशोधन सम्बन्धी अथवा अपने अन्य बहुमूल्य सुझाव भेजकर हमें अनुगृहीत करें।

कतरन व फाइल करने का कार्य पूरा होने के बाद हमने संकलित विषयों में से किसी एक विषय के पाठों का सम्पादन करने का विचार किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादन में निम्नलिखित तीन बातों को हमने आधार माना है।

१—पाठों का मिलान
२—विषय के उपविषयों का वर्गीकरण तथा
३—हिन्दी अनुवाद

अस्तु लेश्या कोश, क्रिया कोश, मिथ्यात्वी का आध्यात्मिक विकास, वर्धमान जीवन कोश (खण्ड १, २, ३) के बाद हमने सम्पादन के लिए 'योग' विषय को ग्रहण किया। पुद्गल कोश, ध्यान कोश, संयुक्त लेश्या कोश भी तैयार किये हैं।

प्रत्येक विषय में संकलित पाठों तथा अनुसंधित पाठों का वर्गीकरण करने के लिए हमने प्रत्येक विषय को १०० वर्गों में विभाजित किया है तथा आवश्यकतानुसार इन १०० वर्गों को दस या दस से अधिक मूल वर्गों में भी विभाजित करने का हमारा विचार है।

सामान्यतः सभी विषयों के कोशों में निम्नलिखित वर्ग प्रायः अवश्य रहेंगे।

'० शब्द विवेचन (मूल वर्ग)
'०१ शब्द की व्युत्पत्ति-प्राकृत-संस्कृत व पाली भाषाओं में
'०२ पर्यायवाची शब्द—विपरीतार्थक शब्द
'०३ शब्द के विभिन्न अर्थ
'०४ सविशेषण-ससमास-सप्रत्यय शब्द
'०५ परिभाषा के उपयोगी पाठ
'०६ प्राचीन आचार्यों द्वारा की गई परिभाषा
'०७ भेद-उपभेद
'०८ शब्द संबंधी साधारण विवेचन
'०९ विविध (मूल वर्ग)
'०९९ विषय संबंधी फूटकर पाठ तथा विवेचन

अन्य सब मूलवर्ग या उपवर्ग संकलित पाठों के आधार पर बनाये जायेंगे।

योग कोश में हमने निम्नलिखित मूलवर्ग रखें हैं—

'० शब्द विवेचन
'१ द्रव्ययोग (प्रायोगिक)
'२ भावयोग (प्रायोगिक)
'३ योग और जीव
'४ सयोगी जीव
'५ विविध

यथा सम्भव वर्गीकरण की सब भूमिकाओं में एकरूपता रखी जायेगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योग कोश विषयांकन हमने ०४०५ किया है। इसका आधार यह है कि सम्पूर्ण जैन वाङ्मव को १०० भागों में विभाजित किया गया है (देखें मूलवर्गीकरण सूची पृ० ८) इसके अनुसार जीव परिणाम का विषयांकन ०४ है। जीव परिणाम को सौ भागों में विभक्त किया गया है (देखें जीव परिणाम वर्गीकरण सूची पृ० ११) इसके अनुसार योग का विषयांकन ०५ होता है। अतः योग का विषयांकन हमने ०४०५ किया है। योग के अन्तर्गत आनेवाले विषयों में आगे दशमलव का चिह्न है।

योग कोश भी लेश्या कोश की तरह हमारी कोश परिकल्पना का परिक्षण (ट्रायल) है। इस परिकल्पना में पुष्ठता तथा हमारे अनुभव में यथेष्ठ समृद्धि हुई है। योग, लेश्या, भाव, अध्यवसाय, क्रिया तथा परिणाम आदि जैन आगमों के परिभाषिक शब्द है।

पर्याय की अपेक्षा जीव अनंत परिणामी है, फिर भी आगमों में जीव के दस ही परिणामों का उल्लेख है। (स्थानांग स्था १०, पण्ण० पद १३) जीव परिणाम के दस परिणामों को प्राथमिकता देकर ग्रहण किया गया है लेकिन साथ ही कर्मों के उदय से वा अन्यथा होनेवाले अन्य अनेक प्रमुख परिणामों को वर्गीकरण में स्थान दिया है। इनमें से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य आदि कई विषय तो अन्यान्य कोशों में भी समाविष्ट होने योग्य है।

योग शाश्वत भी है, अशाश्वत भी है। आहारककाय योग व आहारकमिश्र काययोग अशाश्वत है, बाकी तेरह योग शाश्वत है, दिगम्बर मतानुसार वैक्रियमिश्र काय योग को अशाश्वत माना है बाकी बारह योग शाश्वत माने हैं।

प्राचीन आचार्यों ने योग और लेश्या के विवेचन में निम्नलिखित परिभाषाओं पर विचार किया है।

१—लेश्या योग परिणाम है—योग परिणामो लेश्या।

२—लेश्या कर्म निस्यंद रूप है—कर्म निस्यन्दो लेश्या।

३—लेश्या कषायोदयसे अनुरंजित योग प्रवृत्ति है—कषायोदयरंजिता योगप्रवृत्तिर्लेश्या।

४—योग और लेश्या—नाम कर्म व मोहनीय कर्म का उदय भाव है।

अस्तु—लेश्यत्व व योगीत्व जीवोदयनिष्पन्न भाव है। अतः कर्मों के उदय से भी जीव के मन-वचन काय के योग होते हैं।

द्रव्य योग : पौद्गलिक है अतः अजीवोदय निष्पन्न होना चाहिए—**पओगपरिणामए वण्णे, गंधे, रसे, फासे × × ×**। जहाँ परिणाम शुभ होते हैं (योग परिणाम), अध्यवसाय प्रशस्त होते हैं वहाँ लेश्या विशुद्धमान होती है। सयोगी के कर्मों की निर्जरा के समय परिणामों का शुभ होना, अध्यवसायों का प्रशस्त होना तथा लेश्या का विशुद्धमान होना आवश्यक है। जब वैराग्य भाव प्रकट होता है तब इन तीनों में क्रमशः शुभता, प्रशस्तता तथा विशुद्धता होती है। यहाँ परिणाम शब्द से जीव के मूल दश परिणामों में से किस परिणाम की ओर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इंगित किया है—यह विवेचनीय है। यहाँ प्राचीन आचार्यों ने योग को भी परिणाम में ग्रहण किया है। लेश्या और योग ; लेश्या और अध्यवसाय का कैसा सम्बन्ध है यह भी विचारणीय विषय है। क्योंकि अच्छी-बुरी दोनों प्रकार की लेश्याओं में अध्यवसाय प्रशस्त-अप्रशस्त दोनों होते हैं। इसके विपरीत जब परिणाम अशुभ होते हैं, अध्यवसाय अप्रशस्त होते हैं तब लेश्या अविशुद्ध-संक्लिष्ट होनी चाहिए। जब गर्भस्थ जीव नरकगति के योग्य कर्मों का बंधन करता है तब उसका चित्त, उसका मन, उसकी लेश्या तथा उसका अध्यवसाय तदुपयुक्त होता है। उसी प्रकार जब गर्भस्थ जीव देव गति के योग्य कर्मों का बंधन करता है तब उसका चित्त, उसका मन, उसकी लेश्या तथा उसका अध्यवसाय तदुपयुक्त होता है। इससे भी प्रतीत होता है कि इन तीनों का - मन व चित्त के परिणामों का, लेश्या और अध्यवसाय का सम्मिलित रूप से कर्म बंधन में पूरा योगदान है। इसी प्रकार कर्मों की निर्जरा में भी इन तीनों का पूरा योगदान होना चाहिए। यद्यपि अयोगी के भी महानिर्जरा होती है।

जीव योग द्रव्यों को ग्रहण करता है तथा पूर्व में गृहीत योग द्रव्यों को नवगृहीत योग द्रव्यों के द्वारा परिणत करता है। जीव द्वारा योग द्रव्यों का ग्रहण नाम कर्म व मोहनीय कर्म के उदय से होता है। यद्यपि इस विषय पर किसी भी टीकाकार का कोई विशेष विवेचन नहीं है।

आचार्य मलयगिरि का कथन है कि शास्त्रों में आठ कर्मों के विपाकों का वर्णन मिलता है लेकिन किसी भी कर्म के विपाक में लेश्या तथा योग रूप विपाक उपदर्शित नहीं है। सामान्यतः सोचा जाय तो योग द्रव्यों का ग्रहण किसी नाम कर्म के उदय से होना चाहिए। नाम कर्मों में ही शरीर नाम कर्म के उदय से ही ग्रहण होना चाहिए। यदि योग का लेश्या के साथ अविनाभाव सम्बन्ध माना जाय तो द्रव्य योग व द्रव्य लेश्या के पुद्गलों का ग्रहण शरीर नाम कर्म के उदय से होना चाहिए। क्योंकि योग शरीर नाम कर्म की परिणति विशेष है। (देखें पृ० १/९६) शुभ नाम कर्म के उदय से शुभ योगों का ग्रहण होना चाहिए तथा अशुभ नाम कर्म के उदय से अशुभ योगों का ग्रहण होना चाहिए। तेरापंथ के चतुर्थ आचार्य जयाचार्य ने झीणी चर्चा में कहा है कि अशुभ लेश्याओं से पाप कर्म का बंधन होता है तथा पाप कर्म का बंधन केवल मोहनीय कर्म से होता है। अतः अशुभ द्रव्य योगों का ग्रहण मोहनीय कर्म के उदय के समय होना चाहिए।

अन्यत्र ठाणांग के टीकाकार कहते हैं कि योग—वीर्य अन्तराय के क्षय-क्षयोपशम से होता है।

जब जीव एक योनि से मरण, च्यवन, उद्वर्तन करके अन्य योनि में जाता है तब जाने के पथ में जितने समय लगते हैं उतने समय में वह काययोगी होता है (सिद्धगति को छोड़कर)। आधुनिक विज्ञान में भी जीव के शरीर से किस वर्ण की आभा निकलती है इसका अनुसंधान हो रहा है तथा उसके तत्कालीन विचारों के साथ वर्णों का तुलनात्मक अध्ययन भी किया जा रहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवों में—उदय भाव से तीनों योग होते हैं। शुभ योग कषायों के उपशम, क्षय-क्षयोपशम से होते हैं। अतः योग औपशामिक, क्षायिक व क्षायोपशमिक भाव भी है।

सविशेषण-ससमास-सप्रत्यय योग शब्दों में कितने ही शब्द प्रायोगिक द्रव्य और भाव योग से सम्बन्धित है।

मरण तीन प्रकार का कहा है - बालमरण, पंडितमरण व बालपंडितमरण। बालमरण के समय शुभ व अशुभ दोनों योग होते हैं। अवशेष दोनों मरण में शुभयोग व प्रशस्त लेश्या होती है। पंडितमरण छट्ठे गुणस्थान से ग्यारहवें गुणस्थान तक व चौदहवें गुणस्थान में अयोगी, अलेशी होता है तथा बालपंडितमरण केवल पांचवें गुणस्थान में होता है।

योग आत्मप्रदेशों में ही परिणमन करता है, अन्यत्र नहीं करता है। इससे पता चलता है कि संसारी आत्मा के साथ योग के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है और वह अनादिकाल से चला आ रहा है। जीव जब तक अंतक्रिया नहीं करता है तब तक सम्बन्ध चलता रहता है और आत्मा में योगों का परिणमन होता रहता है। यद्यपि चौदहवे गुणस्थान में अयोगी हो जाता है।

मनोयोग, वचनयोग व काययोग में 'वट्टमाण' वर्तता हुआ जीव और जीवात्मा एक है, अभिन्न है, दो नहीं है। जब जीवात्मा (पर्यायात्मा) योग परिणामों में वर्तता है तब वह जीव यानि द्रव्यात्मा से भिन्न नहीं है, एक है। अर्थात् वही जीव है, वही जीवात्मा है। चूंकि द्रव्यात्मा द्रव्य जीव है, अवशेष सात (कषाय आदि) आत्मा भाव जीव है। आत्मा आठ है—(१) द्रव्य आत्मा, (२) कषाय आत्मा, (३) योग आत्मा, (४) उपयोग आत्मा, (५) ज्ञान आत्मा, (६) दर्शन आत्मा, (७) चारित्र आत्मा और (८) वीर्य आत्मा हैं।

लेश्या और योग का अविनाभावी सम्बन्ध है। जहाँ लेश्या है वहाँ योग है। जहाँ योग है वहाँ लेश्या है। फिर भी दोनों भिन्न-भिन्न तत्त्व है। भावतः लेश्या परिणाम तथा योग परिणाम जीव परिणामों में अलग-अलग बतलाये गये हैं। अतः भिन्न है। द्रव्यतः मनोयोग तथा वाक्योग के पुद्गल चतुः स्पर्शी है तथा काय योग के पुद्गल अष्ट-स्पर्शी स्थूल है। लेकिन लेश्या के पुद्गल अष्टस्पर्शी तो है लेकिन सूक्ष्म है अर्थात् द्रव्य काय योग के पुद्गलों से सूक्ष्म है क्योंकि लेश्या के पुद्गलों को भावितात्मा अणगार न जान सकता है, न देख सकता है। अतः द्रव्यतः भी योग और लेश्या भिन्न-भिन्न है।

लेश्या परिणाम तथा योग परिणाम जीवोदय निष्पन्न भाव है—कहा है—

"से किं तं जीवोदय निप्फन्ने? अणगविहे पन्नत्ते, तंजहा-नेरइए तिरिक्ख-जोणिए मणुस्से देवे, पुढविकाइए जाव तसकाइए, कोहकसाइ जाव लोभकसाइ, इत्थीवेयए पुरिसवेयए, नपुंसगवेयए, कण्हलेस्से जाव सुक्कलेस्से, मिच्छादिट्ठी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्मदिट्ठी सम्ममिच्छादिट्ठी, अविरए, असण्णी, अण्णाणी, आहारए, छउमत्थे, सजोगी, संसारत्थे, असिद्धे सेतं अजीवोदयनिप्फन्ने ।

—अणुओ० सू १२६ । पृ० १११

अर्थात् जीवोदय निष्पन्न भाव अनेक प्रकार का है— यथा, नरक गति आदि चार गति, पृथ्वीकायादि छह काय, क्रोध आदि चार कषाय, **कृष्ण लेश्या यावत् शुक्ल लेश्या,** मिथ्या दृष्टि आदि तीन दृष्टि, अविरति, असंज्ञी, अज्ञानी, आहारक, छद्मस्थ, **सयोगी,** संसारता, असिद्धता । योग वीर्य से प्रवाहित होता है—

से णं भंते ! जोए किंपवहे, गोयमा ! वीरियप्पवहे ।

—भग० श० १ । उ ४ । सू १४३

अर्थात् योग—वीर्य से प्रवाहित होता है ।

किस और कितने योग में कौन से जीव

एक योग वाले—

औदारिक काय वाले जीव—दिखाई देने वाले अन्नकण में,

कामण काय वाले जीव—वक्रगति में, केवली समुद्घात के तीसरे, चौथे, पांचवे समय में

दो योग वाले—

चलती हुई चीटी में—औदारिक काय योग व व्यवहार वचन योग

चलती हुई लट में ,,

चलती हुई मक्षिका में ,,

तीन योग वाले—

(१) पृथ्वीकाय, (२) अप्काय, (३) अग्निकाय और (४) वनस्पतिकाय

चार योग वाले जीव—

(१) द्वीन्द्रिय, (२) त्रीन्द्रिय और (३) चतुरिन्द्रिय

पांच योग वाले जीव—

(१) वायुकाय में

छः योग असंज्ञी में, सात योग केवली में, आठ योग तीसरे गुणस्थान की नियमा में, नौ योग परिहार विशुद्धि चारित्र में, दस योग तीसरे गुण स्थान में, ग्यारह योग देवो में, बारह योग श्रावक में, तेरह योग संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में, चौदह योग मनोयोगी में व पंद्रह योग मनुष्य में होते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धान्त ग्रन्थों में कहा गया है कि मात्र काययोग से मोहनीय जैसे कर्म का बंध उत्कृष्ट रूप से एक सागर की स्थिति का हो सकता है। वचनयोग मिलते ही पच्चीस सागर की स्थिति का उत्कृष्ट बंध हो सकता है। घ्राणेन्द्रिय यानी नासिका के मिलने पर पचास सागर, चक्षु के मिलते ही सौ सागर की स्थिति का बंध हो सकता है और जब अमनस्क पंचेन्द्रिय की दशा में कान मिलते हैं तो हजार सागर तक बंध संभव है लेकिन मनोयोग मिल गया और उत्कृष्ट मोहनीय कर्म का बंध होने लगा तो वह लाख और करोड़ सागर को पार कर सकता है। सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम का सर्वोत्कृष्ट मोहनीय कर्म का बंध मनोयोग मिलने पर होता है।

लेश्या का परिणाम व्यक्तित्व रूपान्तरण का संकेत है। निर्वाण के पूर्व सयोगी केवली के जब मन और वचनयोगों का सम्पूर्ण निरोध हो जाता है। बादर काययोग का भी निरोध हो जाता है—अस्तु उनके सूक्ष्म काययोग—सूक्ष्म कायिकी क्रिया—उच्छ्वासादि के रूप में होती है। उस स्थिति में शुक्ल लेश्या के साथ शुक्ल ध्यान का तीसरा भेद 'सुहुमकिरिए अनियट्टी' ध्यान होता है। ध्यान से योगों की चंचलता में कमी आती है। योगजनित चंचलता के नष्ट होने पर मिथ्यादृष्टि, आकांक्षा, प्रमाद और आवेश समाप्त हो जाते हैं। भगवती सूत्र में कहा गया है कि कांक्षा मोहनीय कर्म का बंध प्रमाद और योग से होता है। प्रमाद योग से उत्पन्न होता है तथा योग वीर्य, पराक्रम व प्रवृत्ति से उत्पन्न होता है। वीर्य शरीर से व शरीर जीव से उत्पन्न होता है।[1]

सामान्यतः समान गुण व जाति वाले समुदाय को वर्गणा कहते हैं। औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण, मन, वचन एवं श्वासोच्छ्वास वर्गणा—ये आठ मुख्य वर्गणा के भेद हैं। इन वर्गणाओं का योग के साथ घनिष्ट सम्बन्ध है।

मूलतः आगमों में योग व लेश्या की परिभाषा औधिक रूप से उपलब्ध नहीं होती है। कर्म के उदय और क्षयोपशम से जैसे हमारे योगों में परिवर्तन आता है वैसे ही लेश्या भी सतत परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजरती रहती है।

कर्मबंध के दो हेतु हैं—कषाय और योग। प्रकृति बंध तथा प्रदेश बंध का संबंध योग से है और स्थिति बंध और अनुभाग बंध का संबंध कषाय से है। आत्मा के साथ कर्म पुद्गलों को श्लिष्ट करने वाली प्रवृत्ति लेश्या है। ये योग के परिणाम विशेष है। योग का निरोध होने पर लेश्या का भी निरोध हो जाता है। आगम साहित्य में लेश्या के बाद योग परिणाम कहा है। दिगम्बर साहित्य में मार्गणाओं की क्रमिकता में योग के बाद लेश्या मार्गणा कही है। जैन दर्शन आठ आत्माएं मानता है। द्रव्यात्मा, कषायात्मा, योगात्मादि। लेकिन लेश्या रूप आत्मा का उल्लेख इनमें नहीं है। आत्मा के आठ भेदों में से किसी एक में उसका अस्तित्व अन्तर्निहित अवश्य होना चाहिए।

---

१. भग० १। १४०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाव चेतना का परिणाम है।[1] 'भावः चित्परिणामः' जीव का स्वरूप पंच भावात्मक है। योग परिणाम भी योगत्रय जनक कर्म के उदय का फल है। योग और लेश्या जीवोदय निष्पन्न भाव भी है।

वीर्यान्तराय कर्म के क्षय एवं क्षयोपशम और नाम कर्म के उदय से योगों की निष्पत्ति होती है। उनमें शुभ या अशुभ की विवक्षा करने पर मोह कर्म के क्षय, क्षयोपशम आदि और उदय का साहचर्य अवश्यंभावी है। मन, वचन और काय—ये तीन योग एक साथ शुभ या अशुभ होते हैं, उसी प्रकार एक शुभ और दो अशुभ, दो शुभ और एक अशुभ भी हो सकते हैं। अर्थात् व्यवहार या स्थूल दृष्टि से तीनों योग एक साथ अशुभ भी हो सकते हैं और शुभ भी। तथा एक योग शुभ और एक अशुभ—ऐसे भी हो सकते हैं। निश्चय दृष्टि से एक समय में दो योगों की प्रवृत्ति होती ही नहीं है, इसलिए एक साथ एक योग शुभ और एक योग अशुभ होने का प्रसग नहीं आता। योग अशुभ होने में मोह कर्म का उदय और शुभ होने में क्षयोपशमादि का साहचर्य अवश्यंभावी है।

आचार्य भिक्षु ने विरत अविरत की चौपाई में कहा है—

साधां नै वांदण जाता मारग में, करै जिसा फल पावै रे।
सावद्य निरवद तीनूंजोगां सूं, पुन पाप न्यारा न्यारा थायो रे॥१२॥

वांदण जातां मन जोग सुध हुवे तो, एकंत निरजरा न्यारो रे।
वचन ने काया असुध हुवें तो, तिण सूं पाप लागें छे आयो रे॥१३॥

कदे काया ने वचन दोनूं जोग सुध हुवे, त्यां सूं पिण हुवे निरजराधर्मो रे।
एक मनरो जोग असुध रहयों बाकी, तिणसूं लागें पाप कर्मो रे॥१४॥

कदे तीनूंइ जोग सुधहुवें तो, पाप न लागें लिगारो रे।
इणविध वांदण जातां मारगमें, तीनों जोगां रो व्यापार न्यारो॥१५॥

असुभ जोगां सूं पाप सुभ जोगां सूं पुन, तिण मांहें म जांणो फेरो रे।
सावध निरवद रा फल जूवा जूवाछे, दूध पांणी ज्यूंजाँणों निवेडो रे॥१६॥

कोइ साधां ने असणांदिक आहार वेंहरावें, ते बोलें छे मुख उघाडे रे।
काया रो जोग तो निरवद तिणरो, वचन सूं वाउकाय ने मारें रे॥२१॥

उघाड़ें मुख बोलें वाउकाय मारयां, तिणरो लागें पाप कर्मो रे।
काया रा जोग सूं जेंणा करनें वेंहरायों, तिणरो छे एकंत धर्मो रे॥२२॥

मन वचन तणा जोग दोनूं असुध, एक काया तणों जोग चोखो रे।
तिणरा हाथां सूं साध वेंहरें तो, मूल नहीं छे दोसो रे॥२५॥

---

१. गोम्मटसार, जीवकांड १६५, जीव तत्त्व प्रदीपिका पृ० २९४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधु वेंहरें काया रो सुध जोग हुवें तो, जब वेहरयां वेहरायां धर्म निसंकधर्मी रे।
मन वचन रा जोग असुध हुवे तो, तिणरो तिणनें इज लागें कर्मों रे ॥२६॥

—विरत अविरत री चौपइ : ढाल ९

अर्थात् मन, वचन और काया—इन तीनों योग सावद्य-निरवद्य दोनों है। यदि मनोयोग शुद्ध है तो एकांत निर्जरा होती है। यदि वचन और काय के योग अशुद्ध है तो उनसे पाप लगता है। साधु को वंदन करने के लिए जाता है तो तीनों योगों की प्रवृत्ति अलग-अलग है। कदाचित् काय और वचन के योग शुद्ध हो तो उनसे निर्जरा होती है। एक मनोयोग अशुद्ध हो तो उससे पापकर्म का बंध होता है। यदि तीनों योग शुद्ध हो तो पापकर्म का बंध नहीं होता है। निष्कर्ष यह है कि अशुभ योग से पापकर्म व शुभ योग से पुण्यकर्म लगता है। सावद्य व निरवद्य का फल दूध-चीनी की तरह अलग-अलग है। खुले मुंह बोलने से वचन का योग सावद्य है। काययोग का अयतना पूर्वक व्यवहार करना निरवद्य है। कभी-कभी ऐसा भी संभव है मन, वचन का योग अशुभ है व एक काय योग शुभ होता है। कदाचित् ऐसा भी संभव है तीनों योग शुद्ध होते हैं। जैसे सलेशी जीव आरंभी और अनारंभी दोनों होते हैं, वैसे सयोगी जीव आरंभी और अनारंभी दोनों होते हैं। जीव के प्रयोग अर्थात् मन आदि के व्यापार से जो बंध होता है वह जीव प्रयोग बंध है। अनंतरबंध एवं परस्पर बंध का भी विवेचन आगम में मिलता है।

जीव और पुद्गल का प्रथम समय का बंध अनंतरबंध एवं उनके आगे के समयों का बंध परस्पर बंध कहलाता है। प्रतिसंलीनता तप में योग और इन्द्रियों का निग्रह होता है। साधक के लिए इन्द्रियजय व मनोविजय से बढ़कर और कोई गौरव नहीं होता है। अध्यवसाय की प्रशस्तता-अध्यवसाय का एक परिणाम है।

व्यक्तित्व के तीन पहलू है—भाव, विचार और व्यवहार। व्यवहार कायिक प्रवृत्ति (काययोग) है। विचार मानसिक प्रवृत्ति (मनोयोग) है। दोनों स्नायुओं से संबंधित है। अतः इनका नियंत्रण संभव है। लेकिन भाव लेश्या से जुड़ा है, अतः वह नियंत्रण नहीं, शोधन जरूरी है। योगजन्य प्रवृत्ति अर्थात् क्रियात्मक आचरण का त्याग किया जा सकता है, पर आन्तरिक—प्रमाद व कषाय का कभी प्रत्याख्यान नहीं होता है। धर्म, गुरु, इष्टदेव के प्रति उत्पन्न राग को प्रशस्त कहा गया है। 'धम्माणुराग' शब्द इसी का निर्वाहिक है। भाव लेश्या आत्मा का परिणाम विशेष है, जो संक्लेश और योग से अनुगत है। द्रव्य लेश्या पुद्गलात्मक होती है। योग यानी मन, वाणी और शरीर की प्रवृत्ति। कतिपय आचार्यों की यह मान्यता है कि योग लेश्या की भूमिका बनाता है और कषाय उस पर रग चढ़ाता है। द्रव्य योग के परिस्पन्दन के सहकार से आत्मप्रदेशों का परिस्पन्दन भाव योग है और द्रव्य लेश्या के सहकार से आत्मभाव का परिणमन भाव लेश्या है। अतः योग को परिस्पन्दन एवं लेश्या को परिणमन कहा जा सकता है।

जितने समय में अयोगी केवली जितने कर्म क्षीण करता है उतने कर्म सयोगी केवली संख्येयगुण काल अधिक में क्षीण करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योग शब्द के दो अर्थ है—प्रवृत्ति और समाधि। इनकी निष्पत्ति दो भिन्न-भिन्न धातुओं से होती है। सम्बन्धार्थक 'युज्' धातु से निष्पन्न होने वाले योग का अर्थ है—प्रवृत्ति। समाध्यर्थक युज् धातु से निष्पन्न होने वाले योग का अर्थ है समाधि। उमास्वाति के अनुसार काय, वाङ् और मन के कर्म का नाम योग है।[1] प्रस्तुत कोश में हमने योग का अर्थ प्रवृत्ति किया है। जीव के तीन मुख्य प्रवृत्तियों—कायिक प्रवृत्ति, वाचिक प्रवृत्ति और मानसिक प्रवृत्ति का हमने योग शब्द के द्वारा निर्देश किया है।

कर्म-शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार वीर्यान्तराय कर्म के क्षय या क्षयोपशम तथा शरीर नाम कर्म के उदय से होने वाला वीर्य योग कहलाता है। भगवती सूत्र में एक प्रसंग आता है—

सेणं भंते! जोए किं पवहे?
गोयमा! वीरियप्पवहे।
सेणं भंते! वीरिए किं पवहे?
गोयमा! सरीरप्पवहे।
सेणं भंते! सरीरे किं पवहे?
गोयमा! जीवप्पवहे।

—भग० १/१४३-१४५

अर्थात्—योग वीर्य से उत्पन्न होता है। वीर्य शरीर से उत्पन्न होता है। शरीर जीव से उत्पन्न होता है।

इस कर्म-शास्त्रीय परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि योग जीव और शरीर के साहचर्य से उत्पन्न होनेवाली शक्ति है।

वृत्ति में उद्धृत एक गाथा में योग के पर्यायवाची नाम इस प्रकार है—

जोगो वीरयं थामो, उच्छाह परक्कमे तहा चेट्ठा।
सत्ती सामत्थयन्ति य, जोगस्स हवंति पज्जाया॥

—स्थानांग वृत्ति पत्र १०१

अर्थात् १—योग, २—वीर्य, ३—स्थाम, ४—उत्साह, ५—पराक्रम, ६—चेष्टा, ७—शक्ति और सामर्थ्य।—ये योग के पर्यायवाची नाम है।

योग के अनन्तर प्रयोग का निर्देश है। प्रज्ञापना (पद १६) के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि योग और प्रयोग-दोनों एकार्थक है। स्थानांग सूत्र में कहा है—

---

१. कायवाङ्मनः कर्मयोगः

—तत्त्वार्थ सूत्र अ ६। सू १

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रियते येन तत्करणं—मननादि क्रियासु प्रवर्तमानस्यात्मन उपकरणभूतस्तथा तथापरिणामवत्पुद्गलसंघात इति भावः ।

—स्थानांग वृत्ति पत्र १०१

अर्थात् करण का अर्थ है—मन, वचन और स्पदंन की क्रियाओं में प्रवर्तमान आत्मा का सहायक पुद्गल-समूह है ।

वृत्तिकारने योग, प्रयोग और करण की व्याख्या करने के पश्चात् यह बतलाया है कि तीनों एकार्थक हैं । भगवई में योग के पन्द्रह प्रकार बतलाये गये हैं । वे ही पन्द्रह प्रकार प्रज्ञापनामें प्रयोग के नाम से तथा आवश्यक में करण के नाम से निर्दिष्ट है ।

अथवा योगप्रयोगकरणशब्दानां मनःप्रभृतिकमभिधेयतया योगप्रयोगकरण-सूत्रेष्वभिहितमिति नार्थभेदोऽन्वेषणीयः, त्रयाणामप्येषामेकार्थतया आगमे बहुशः प्रवृत्ति-दर्शनात्, तथाहि योगः पंचदशविधः शतकादिषु व्याख्यातः प्रज्ञापनायां त्ववमेवायं प्रयोगशब्देनोक्तः ।

एक पूर्वकोटि वर्ष की आयु को भोगनेवाला कोई कर्मभूमिज मनुष्य परभव सम्बन्धी एक पूर्व कोटि वर्ष की जलचर सम्बन्धी आयु उसके योग्य सक्लेश और उसके योग्य उत्कृष्ट योग से बांधता है । फिर क्रम से एक पूर्व कोटि काल व्यतीत कर एक पूर्व कोटि आयु के साथ जलचरों में उत्पन्न हुआ । अन्तर्मुहूर्त में सब पर्याप्तियों को पूर्ण करके पर्याप्त हुआ फिर अन्तर्मुहूर्त तक विश्राम किया । अन्तर्मुहूर्त में पुनः परभव संबंधी पूर्व कोटि की जलचर सम्बन्धी आयु बांधता है । वह भी उसके योग्य सक्केश और उसके योग्य उत्कृष्ट योग से बांधता है ।

अस्तु गोम्मटसार की मान्यता के अनुसार चक्रवर्ती में वैक्रिय शरीर भी होता है अतः वैक्रिय काय योग व वैक्रियमिश्र काय योग भी होते हैं ।

दिगम्बर मान्यतानुसार बादर पर्याप्त अग्निकाय में वैक्रियकाय योग होता है । गोम्मटसार में योग मार्गणा में जीवों की संख्या के विषय में कहा हैं—

बादर पर्याप्तक तैजस्कायिक जीवों में विक्रिया शक्ति से युक्त जीव अपनी राशि अर्थात् आवली के घन के असख्यातवें भाग में असंख्यात का भाग देने से जितना प्रमाण आता है उतने हैं । तथा बादर पर्याप्त वायुकायिक जीवों में जो कि लोक के असंख्यातवें भाग मात्र कहे हैं, विक्रिया शक्ति से युक्त जीव पल्य के असख्यातवें भाग मात्र होते हैं ।

अशुभ लेश्याओं में मनुष्य का व्यक्तित्व विघटित, असन्तुलित, असमायोजित होता है । चिन्तन, भाषा और कर्म की दिशायें बदलती है । आचरण में बदलाव आता है । कषायों की तीव्रता के कारण सम्बन्धों पर नियन्त्रण नहीं कर पाता । जब भाव चेतना मलिन हो जाती है, तब मन, वचन और शरीर की क्रिया से भी स्थिर नहीं होती । योग प्रवृत्ति चंचल होने से लक्ष्य सिद्धि दुर्भभ हो जाती है । व्यक्ति की भाव चेतना ही उसके व्यक्तित्व के विघटन या संगठन की मुख्य घटक बनती है । गीता का स्थित प्रज्ञ,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बौद्ध दर्शन का अर्हत् और जैन धर्म के वीतराग का जीवनादर्श परिपक्व व्यक्तित्व की सर्वाङ्गीण व्याख्या देता है। कर्म की दश अवस्था में उदीरणा, संक्रमण, उद्वर्तना, अपवर्तना की प्रक्रिया द्वारा विपाक को बदला जा सकता है। आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा है—

लेस्सासोधी अज्झवसाण विसोधीए होई जीवस्स।
अज्झवसाणविसोधी मन्दकसायस्स णादव्वा॥

—पंचास्तिकाय २। १३१

अर्थात् जिसके मोह, राग-द्वेष होते हैं उनके अशुभ परिणाम होते हैं और जिसके चित्तप्रसाद निर्मल चित्त होता है, उसके शुभ परिणाम होता है। लेश्या की शुद्धि अध्यावसाय से होती है और अध्यवसाय की शुद्धि मंद कषाय से है। अध्यवसाय लेश्या से सूक्ष्म होता है। परिणाम शब्द से योग और लेश्या दोनों का ग्रहण होता है। अध्यवसाय और परिणाम अलग-अलग है। तेरहवें गुणस्थान में भाव लेश्या है परन्तु भाव मनोयोग नहीं है। क्योंकि लेश्या का सम्बन्ध एकांततः भाव मनोयोग के साथ नहीं है। ध्यान से कषाय उपशमित होती है। योगों की चंचलता में कमी आती है। ध्यान से समय भाव धारा पवित्र होने से लेश्याओं का परिणमन शुभ होता है। ध्यान द्वारा लेश्या में बदलाव आसकता है। निर्वाण के अन्तर्मुहूर्त पूर्व जब सयोगी केवली के मन और वचन के योगों का सम्पूर्ण निरोध हो जाता है। बादर काय योग का भी निरोध हो जाता है सिर्फ सूक्ष्म काययोग उच्छ्वासादि के रूप में होता है उस समय उनके सूक्ष्म-क्रिया-नियट्टी शुक्ल ध्यान होता है। इससे ऐसा मालुम होता है कि योग-लेश्या-ध्यान का गहरा सम्बन्ध है। यद्यपि योग और लेश्या के बिना चतुर्दशवें गुणस्थान में शुक्ल ध्यान का चतुर्थ भेद पाया जाता है।

पढमं जोगे जोगेसु वा मयं बिइअमेगजोगम्मि।
तइयं च कायजोगे सुक्कमजोगम्मि य चउत्थं॥

ध्याश० गा० ८३

शुक्ल ध्यान के प्रथम प्रकार में एक ही योग या तीनों योग विद्यमान रह सकते हैं। दूसरे प्रकार में तीनों में से कोई एक योग विद्यमान रहता है। तीसरे प्रकार में केवल एक काययोग ही विद्यमान रहता है तथा चौथे प्रकार में कोई योग नहीं रहता है। वह अयोगी को ही प्राप्त होता है।

जोग मार्गणा का एक भेद है—

गइइंदिएसु काये जोगे वेदे कसायणाणे य।
संजमदंसणलेस्सा भविया सम्मत्तसण्णि आहारे॥

गोजी० ग० १४२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् चौदह मार्गणाएं हैं—गति, इन्द्रिय, काय, जोग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्य, सम्यक्त्व, सन्नी और आहार।

योग के भेद—

तिविहे जोगे पण्णत्ते, तंजहा—मणजोगे, वइजोगे, कायजोगे। एवं णेरइयाणं विगलिंदियवज्जाणं जाव वेमाणियाणं।

तिविहे पओगे पण्णत्ते, तंजहा—मणपओगे, वइपओगे, कायपओगे। जहा जोगो विगलियवज्जाणं जाव तहा पओगोवि।

तिविहे करणे पण्णत्ते, तंजहा—मणकरणे, वइकरणे, कायकरणे। एवं विगलिंदियवज्जं जाव वेमाणियाणं।

—ठाण० स्था ३। उ १। सू १३, १४, १५

योग तीन प्रकार का है—

१—मनोयोग, २—वचनयोग और ३—काययोग। विकलेन्द्रियों (एक, दो, तीन, चार इन्द्रियों वाले जीवों) को छोड़कर शेष सभी दंडकों में तीनों ही योग होते हैं।

प्रयोग तीन प्रकार का है—

१—मनःप्रयोग, २—वचनप्रयोग और ३—कायप्रयोग। विकलेन्द्रियों (एक, दो, तीन, चार इन्द्रिय वाले जीवों) को छोड़कर शेष सभी दंडकों में तीनों ही प्रयोग होते हैं।

करण तीन प्रकार का है—

१—मनःकरण, २—वचनकरण, ३—कायकरण। विकलेन्द्रियों (एक, दो, तीन, चार इन्द्रिय वाले जीवों) को छोड़कर शेष सभी दंडकों में तीनों ही करण होते हैं।

योग और वर्गणा

भासमणवगाणादो कमेण भासामणंतु कम्मादो।
अट्ठविहकम्मदव्वं होदि त्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं॥

—गोजी० गा० ६०८

टीका—भाषावर्गणास्कन्धैश्चतुर्विधभाषा भवन्ति। मनोवर्गणास्कन्धैः द्रव्यमनः, कार्मणवर्गणास्कन्धैरष्टविधं कर्मेति जिनैर्निर्दिष्टम्।

भाषा वर्गणा के स्कन्धों से चार प्रकार की भाषा होती है। मनोवर्गणा के स्कंधों से द्रव्य मन होता है और कार्मणवर्गणा के स्कंधों से आठ प्रकार के कर्म होते हैं। कहा है—

निव्वाणगमणकाले केवलिणोद्धनिरुद्धजोगस्स।
सुहुमकिरियाऽनियट्टि तइयं तणुकायकिरियस्स॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्सेव य सेलेसीगयस्स सेलोव्व निप्पकंपस्स।
वोच्छिन्नकिरियमप्पडिवाई, झाणं परमसुक्कं ॥

—ठाण० स्था ४। उ १। सू २४७। टीका में उद्धृत

निर्वाण के समय केवली के मन और वचन योगों का सम्पूर्ण निरोध हो जाता है तथा काययोग का अर्ध निरोध होता है। उस समय उसके शुक्लध्यान का तीसरा भेद "सुहुमकिरिए अनियट्टी" होता है और सूक्ष्म कायिकी क्रिया—उच्छ्वासादि के रूप में होती है।

उस निर्वाणगामी जीव के शैलेशीत्व के—अयोगीत्व प्राप्त होने पर—सम्पूर्ण योग निरोध होने पर भी शुक्लध्यान का चौथा भेद 'समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपाती' होता है। यद्यपि शैलेशीव की स्थिति मात्र पांच ह्रस्व स्वराक्षर उच्चारण करने समय जितनी होती है।

ध्यान का योग के परिणमन पर क्या प्रभाव पड़ता है यह भी विचारणीय विषय है। क्या ध्यान के द्वारा योग द्रव्यों का ग्रहण नियंत्रित या बंद किया जा सकता है, ध्यान का योग-परिणमन के साथ क्या सीधा संयोग है या योग के द्वारा या लेश्या के द्वारा। इत्यादि अनेक प्रश्न विज्ञजनों के विचारने योग्य हैं।

योग और मरण

निर्वाणगमनकाल को छोड़कर यदि चारों गति वाले जीव जब मरते हैं तो उनके योग के साथ लेश्या होती है। यदि अशुभ योग में जीव मरता है तो लेश्या भी अशुभ (कृष्ण-नील-कायोत में से कोई एक) होती है। यदि शुभ योग में जीव मरता है तो लेश्या भी शुभ (तेजो-पद्म-शुक्ल) होती है। स्थूल शरीर के छूटते ही अंतराल गति होती है उस समय तैजस-कार्मण दो शरीर होते हैं, सिर्फ एक काययोग होता है लेश्या छओं हो सकती है।

द्रव्य लेश्या की वर्गणा का सम्बन्ध तैजस शरीर की वर्गणा से है अतः द्रव्य लेश्या और तैजस शरीर की वर्गणा का सम्बन्ध अन्वय-व्यतिरेकी माना जा सकता है। द्रव्य काययोग की वर्गणा का सम्बन्ध भी द्रव्य लेश्या की तरह तैजस शरीर की वर्गणा से है। इस अर्थ में द्रव्य काययोग व द्रव्य लेश्या में समानता प्रतीत होती है किन्तु दोनों एक नहीं कहे जा सकते हैं। भाव लेश्या और भाव काययोग में भी अन्वय-व्यतिरेकी सम्बन्ध घटित नहीं होता है। यह नियम अवश्य घटित होता है। जो सयोगी हैं वह सलेशी है। जहाँ कषाय है वहाँ योग और लेश्या दोनों है परन्तु कषाय के बिना भी योग और लेश्या होती हैं। अर्थात् अकषायी-सकषायी दोनों प्रकार के जीव सयोगी-सलेशी हो सकते हैं। वीतराग अकषायी होते हैं पर उनके योगात्मा होती है।

कतिपय विद्वानों की यह धारणा है कि केवली के द्रव्य रूप से शुक्ल लेश्या है परन्तु भाव रूप से शुक्ल लेश्या नहीं है। सिद्धान्त ग्रन्थों में—श्वेताम्बर-दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ने अपनी कृति में कहा है कि केवली के मनोयोग द्रव्य रूप से हैं, भाव रूप से नहीं है। प्रमाद की उत्पत्ति योग से मानी है। तत्त्वार्थ सूत्र में कहा है—

कायवाङ्मनकर्मयोगः

—तत्त्वार्थ सूत्र ६ । १

काययोग, वचनयोग और मनोयोग—इन तीनों साधनों के द्वारा पुद्गलों को खींचने की प्रक्रिया को दीपक के उदाहरण से समझाया गया है। दीपक जल रहा है, बाती निरन्तर तेल को खींच रही है, इसी प्रकार इन तीनों से जुड़ी हुई हमारी प्राणधारा निरन्तर कर्म-पुद्गलों को आकृष्ट कर रही हैं। योगजनित चंचलता के न होने पर मिथ्यादृष्टि आदि चार आस्रव का कार्य नहीं होता है।

कार्मण वर्गणा को द्रव्यकर्म भी कहते हैं। द्रव्य कर्म के कारणआत्मा जिस अवस्था में परिणत होता है वह भाव कर्म है। भाव कर्म से द्रव्य कर्म का संग्रह होता है और द्रव्य कर्म के उदय से भाव कर्म में तीव्रता आती है। अष्टसहस्री के टीकाकार आचार्य विद्यानंदी ने द्रव्य कर्म को आवरण और भावकर्म को दोष माना है।

मरुदेवी माता हाथी पर बैठी हुई जब क्षपकश्रेणी प्राप्त कर केवलज्ञान प्राप्त किया। उस समय किसी भी गुणस्थान को दो बार प्राप्त नहीं किया। अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान प्राप्त कर, फिर अयोग का निरोधकर परिनिर्वाण को प्राप्त हुई। केवली समुद्घात भी नहीं किया। भरत चक्रवर्ती को ६० हजार वर्ष विभिन्न देशों को साधने में लगे। जब दो समान बानवाले आपस में युद्ध करते हैं तो एक की हार कालान्तर में होती तो समझ लेना चाहिये—उसके पुण्य के कर्म क्षीण होने लग गये। विवेह का अर्थ है शरीर का ममत्व छोड़ना। मरुदेवी माता के परिनिर्वाण के समय कोई भी पाखण्ड न था। बाद में कितने वर्षों बाद पाखण्ड का प्रादुर्भाव हो गया था। तेइस तीर्थङ्करों के असाता वेदनीय कर्म एक तरफ, दूसरी तरफ चौबीसवें तीर्थङ्कर वर्धमान के असाता वेदनीय कर्म फिर भी चौबीसवें तीर्थङ्कर के असाता वेदनीय कर्म तुलना में अधिक होंगे। क्षपकश्रेणी के समय अपूर्वकरण व अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में मोहनीय की भी सात प्रकृतियों के विना इक्कीस प्रकृतियों की सत्ता मिल सकती है। गोम्मटसार की मान्यता के अनुसार नववें गुणस्थान में क्षपकश्रेणी में सर्वप्रथम अप्रत्याख्यानी-प्रत्याख्यानी क्रोध-मान-माया-लोभ इन आठ प्रकृतियों का क्षयकर फिर नपुंसक वेद का, फिर स्त्री वेद का, फिर हास्यादिषट्क का, फिर फिर संज्वलन क्रोध, फिर संज्वलन मान, फिर संज्वलन माया का क्षय करता है।[1]

केवल ज्ञानी सयोगी के भी होता है व अयोगी के भी। ऋषभदेव तीर्थङ्कर के दो रानियां थी। सुमंगला के ९९ पुत्र व एक ब्राह्मी लड़की थी तथा सुनंदा के बाहुबल व सुन्दरी थी। सब युगल थे। सबसे बड़े भरत थे। मनुष्य का पसीना धूप में नहीं सुकता है

१. गोक० गा० ३६० । टीका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेकिन गीला वस्त्र धूप में सूक जाता है। राग के कारण चार प्रकार की माया, चार प्रकार का लोभ, तीन वेद, हास्य-रति का तथा द्वेष के कारण चार प्रकार का क्रोध, चार प्रकार का मान, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा का पूर्ण रूप से क्षय होने से सयोगी के राग और द्वेष नष्ट हो चुके हैं। आहारक समुद्घात से केवलिसमुद्घात संख्यातगुण अधिक है। सबसे कम आहारक समुद्घातवाले है व सबसे अधिक वेदना समुद्घातवाले है। वे अनंत होते हैं।

स्वरनाम कर्म के उदय से भाषावर्गणा के रूप में आये हुए पुद्गल स्कन्धों को सत्य, असत्य, उभय और अनुभय भाषा के रूप में परिणमाने की शक्ति की पूर्णता को भाषापर्याप्ति कहते हैं। जिसके भाषापर्याप्ति नहीं है उसके न वचन बल प्राण होता है, न वचन योग होता है। पर्याप्ति अजीव है तथा प्राण जीव है।

एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और संज्ञीपंचेन्द्रिय जीव जब तक शरीर पर्याप्ति से निष्पन्न नहीं होते हैं अर्थात् जब तक उनकी शरीर पर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक निर्वृत्यपर्याप्त कहे जाते हैं अर्थात् एक समय कम शरीर पर्याप्ति के काल अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त निर्वृत्य-पर्याप्त का काल है। निर्वृत्ति अर्थात् शरीर पर्याप्ति की निष्पत्ति से अपर्याप्त अर्थात् अपूर्ण को निवृत्यपर्याप्त कहते हैं—यह उसकी व्युत्पत्ति है।[1]

अपर्याप्त नामकर्म के उदय होने पर एकेन्द्रिय, चारों विकलेन्द्रिय और संज्ञी जीव अपनी-अपनी चार, पाँच और छह पर्याप्तियों को पूर्ण नहीं करते हैं। उच्छ्वास के अठारहवें भाग प्रमाण अन्तर्मुहूर्त में ही मर जाते हैं—वे जीव लब्ध्यपर्याप्तक कहे जाते हैं। लब्धि अर्थात् अपनी पर्याप्ति को पूर्ण करने की योग्यता को अपर्याप्त अर्थात् अनिष्पन्न जीव लब्ध्यपर्याप्त है—ऐसी निरुक्ति है।

कहा है—

"तर्हि ऋजुगत्योत्पन्नस्यैव कथमुक्तं विग्रहगतौ योगवृद्धियुक्तत्वेन तदवगाहवृद्धि-युक्तत्वेन तदवगाहवृद्धिप्रसंगात्।"

—गोजी० गा० ९४ टीका

प्रज्ञापना की टीका में मलयगिरि ने कहा है—

योग के सद्भाव में लेश्या का भी सद्भाव रहता है तथा योग के अभाव में लेश्या का अभाव रहता है। इस प्रकार अन्वय-व्यतिरेक के द्वारा लेश्या योगनिमित्त से होती है—ऐसा निश्चय होता है, क्योंकि सर्वत्र योगनिमित्त से ही लेश्या होती हैं—ऐसा अन्वय-व्यतिरेक से देखा जाता है। लेश्या को योगनिमित्त स्वीकार करने पर दो विकल्प सामने आते हैं—लेश्या योगान्तर्गत द्रव्यरूप है या योगनिमित्त कर्म द्रव्य रूप है? योग निमित्त कर्म द्रव्य रूप इसलिए नहीं है कि उसका दोनों विकल्पों से अतिक्रमण नहीं होता है और

---

१. गोजी गा० १२१ टीका।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदि योगनिमित्त कर्म द्रव्य रूप स्वीकार करते हैं तो वह घातिक कर्म द्रव्य रूप है या अघातिक कर्म द्रव्य रूप है। घाति-कर्म-द्रव्यरूप इसलिए नहीं है कि उसके अभाव में सयोगी केवली में लेश्या का सद्भाव रहता है। अघातिकर्मद्रव्य रूप इसलिए नहीं है कि उसके सद्भाव में अयोगिकेवलिगुणस्थान में लेश्या व योग का अभाव रहता है। अतः अन्ततः योगान्तर्गत द्रव्यरूप लेश्या स्वीकार करनी चाहिए। योगान्तर्गत द्रव्य सभी कषायों को उदय में लाने वाले होते हैं—ऐसा देखा भी जाता है, जैसा कि पित्त प्रकृति की वस्तुओं में देखा जाता है, यथा—

पित्तप्रकोप से महान प्रवर्धमान कोप होता है तथा और भी बाह्य द्रव्य कर्मों के उदय, क्षय और उपशम के कारण होते हैं। यथा—ब्राह्मी औषधि ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशय का कारण होती है और सुरापान ज्ञानावरणीय कर्म का कारण होता है। तब फिर किस प्रकार युक्तायुक्त विकल्पता उत्पन्न होती है। दधि भोजन निद्रा रूप दर्शनावरण कर्म का कारण होता है—क्या ये सब योगद्रव्य नहीं है। इसलिए लेश्या के कारण शास्त्रान्तर में स्थिति पाक-विशेष कहा जाता है उसी को स्थिति पाकनाम का अनुभाग कहते हैं। कषायोदयान्तर्गत कृष्णादि लेश्याओं के परिणाम उसके कारण होते हैं। वे परमार्थतः कषायों के अन्तर्गत रहने के कारण कषाय स्वरूप ही है, केवल योगान्तर्गत द्रव्य सहकारी कारणों के भेद और वैभिन्य से कृष्णादि भेद होते हैं और तरतम भाव से विभिन्न अनुभव होते हैं। इसलिए कर्म प्रकृतिकार शिवशर्माचार्य ने 'शतक' नाम के ग्रन्थ में जो कहा है—"स्थिति-अनुभाग कषाय से बनता है—वह समीचीन ही है। क्योंकि कषायोदय के अन्तर्गत कृष्णादि लेश्या परिणाम भी कषाय रूप है। इसलिए जो कहा जाता है—योग से प्रकृति प्रदेश बंध और कषाय से स्थिति-अनुभाग बध होते हैं। इस वचन से लेश्या को प्रकृति-प्रदेश बंध का हेतु ही माना जाय, न कि कर्म स्थिति का हेतु—यह भी समीचीन नहीं है। क्योंकि इससे यथोक्त भाव का ज्ञान नहीं होता है और लेश्या स्थिति का हेतु नहीं है, बल्कि कषाय है, लेश्या तो कषायोदय के अन्तर्गत अनुभाग का हेतु है अतएव "स्थितिपाक विशेषस्तस्य भवति लेश्या विशेषेण" यहाँ पाक शब्द का ग्रहण अनुभाग को बतलाने के लिए किया गया है—ऐसा कर्मप्रकृति की टीका में स्पष्ट किया है और उनके सिद्धान्त का परिज्ञान भी ठीक नहीं है।

जो कहा गया है—कर्मों का निष्यन्द झड़ना लेश्या है—ऐसा स्वीकार करने पर जब तक कषायोदय रहेगा तब तक कर्म बद्धता भी रहेगी और कर्म स्थिति का कारण भी रहेगा—यह भी ठीक नहीं है क्योंकि लेश्या के अनुभाग बंध का हेतु होने से स्थिति बंध के हेतु होने योग्य नहीं रह जाती।

यदि कर्म निष्यन्द लेश्या है तो वह कर्मकल्क (सार रहित कर्म) है या कर्म सार। कर्मकल्क इसलिए नहीं है कि उसके सार रहित होने के कारण उत्कृष्ट अनुभाग बंध के हेतु होने की उसमें योग्यता नहीं रहती है। और लेश्यायें उत्कृष्ट अनुभाग बंध के हेतु भी होती है। तब तो कर्मसार ही ग्रहण करना होगा—इस पक्ष के स्वीकार करने पर यथा-योग्य आठों ही कर्मों के विपाक का वर्णन प्राप्त होता है, लेकिन किसी कर्म का लेश्या रूप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विपाक नहीं देखा जाता है, इसलिए कर्मसार पक्ष किस प्रकार स्वीकार किया जा सकता है। अतः पूर्वोक्त पक्ष ही अच्छा है—ऐसा हरिभद्रसूरि आदि आचार्यों ने स्वीकार किया है।

उपदेश सप्तति में कहा है—

"सेविज्ज सव्वन्नुमयं विसाल" अर्थात् सर्वज्ञ के विशाल मत का आश्रय लेना चाहिए। उपनिषद में एक वाक्य आता है—"यो वे भूमा सत्सुखं नात्पे सुखमस्ति" जो विशाल है, विराट् है, उसीमें सुख है। अल्प या क्षुद्र में सुख नहीं है।

संस्कृत में एक नीति वचन है—"सेवितव्यो महावृक्षः फल छाया समन्वितः" फल और छाया से युक्त विशाल वृक्ष का आश्रय लेना चाहिए।

आचार्य ने सर्वज्ञ शासन को 'विशाल' बतलाया है—इसी विशालता के चार हेतु भी बताये हैं। १—यह उदार है। २—निष्पक्ष है। ३—सापेक्षवादी है। ४—समन्वय प्रधान है।

शुक्लध्यान के चतुर्थ भेद में अयोगी अवस्था होती है तथा तीसरे भेद में एक काय-योग होता है। प्रथम तथा द्वितीय शुक्लध्यान के भेदों में तीनों में से कोई एक योग होता है, अथवा कोई एक योग होता है।

गोम्मटसार में कहा है—

भावः चित्परिणामः—गोजी० गा० १६५। टीका। आत्मा के परिणाम को भाव कहते हैं।

कदाचित् छह महिना आठ समय के भीतर चतुर्गति राशि से निकलकर छः सौ आठ जीवों के मुक्ति जाने पर उतने ही जीव नित्यनिगोद-अव्यवहार राशि से निकलकर चतुर्गति भव—व्यवहार राशि में आते हैं।[1]

उमास्वाती ने कहा है—

असदभिधानमनृतम्।

—तत्त्वार्थ सूत्र ७। १४

अर्थात् असत् के प्रतिपादन को अनृत कहा है। अनृत के दो अंग है—विपरीत अर्थ का प्रतिपादन और प्राणी-पीड़ाकर अर्थ का प्रतिपादन।[2] मृषा योग के दस प्रकारों में प्रारम्भ के नौ प्रकार विपरीत अर्थ के प्रतिपादक है और दसवां प्रकार प्राणी पीड़ाकर अर्थ का प्रतिपादक है। तत्त्वार्थ राजवार्तिक में अकलंकदेव ने कहा है—

---

१. गोजी० गा० १९७ टीका।
२. दसवे० ७। १२, १३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असदिति पुनरुच्यमाने अप्रशस्तार्थं यत् तत्सर्वमनृतमुक्तं भवति। तेन विपरीतार्थस्य प्राणीपीडाकस्य चानृतत्वमुपपन्नं भवति।

—तत्त्वरा० ७। १४

स्थानांग के टीकाकार श्री अभयदेवसूरि ने कहा है—

उवघायनिस्सिए त्ति उपघाते—प्राणिवधे निश्रितं—आश्रितं दसमं मृषा, अचौरे चौरोऽयमित्यभ्याख्यानवचनम्।

—ठाण० स्था १०। सू ८० टीका

अर्थात् अभ्याख्यान के संदर्भ में उपघातनिश्रित की व्याख्या की है। इसलिए उन्होंने अचोर को चोर कहना—इस अभ्याख्यान वचन को उपघातनिश्रित मृषा माना है। वस्तुतः अचोर को चोर कहना उपघात निश्रित मृषा नहीं है, किन्तु चोर को चोर कहना उपघात-निश्रित मृषा है।[1] प्रियधर्मी का अर्थ सुलभबोधि से किया जा सकता है।

महात्मा बुद्ध ने चार अंगों से युक्त वचन को निरवद्य वचन कहा है।

१—अच्छे वचन को ही उत्तम बताया है, न कि बुरा।

२—धार्मिक वचन ही बोलता है न कि अधार्मिक।

३—प्रिय वचन ही बोलता है, न कि अप्रिय।

४—सत्य वचन ही बोलता है, न कि असत्य वचन।

(क) अस्तु वह बात बोले जिससे न स्वयं कष्ट पायें और न दूसरे को ही कष्ट हो, ऐसी बात ही सुन्दर है।

(ख) आनंददायी प्रिय वचन ही बोले। पापी बातों को छोड़ कर दूसरों को प्रिय वचन ही बोले।

(ग) सत्य ही अमृत वचन है, यह सदा का धर्म है। सत्य, अर्थ और धर्म में प्रतिष्ठित संतों ने कहा है।

(घ) बुद्ध जो कल्याण वचन निर्वाण प्राप्ति के लिए, दुःख का अंत करने के लिए बोलते हैं, वही वचनों में उत्तम है।

जिनदास चूर्णि में कहा है—

जं भासमाणो धम्मं णातिक्कमइ, एसो विणयो भण्णइ।

—जि० चू० पृ० २४४

---

१. दसवे० ७/१२, १३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् भाषा का वह प्रयोग, जिसमें धर्म का अतिक्रमण न हो, विनय कहलाता है। टीकाकार ने कहा है—

विनयं शुद्धप्रयोगं विनीयतेऽनेन कर्मेति कृत्वा।

—हा० टी० प २१३

अर्थात् भाषा के शुद्ध प्रयोग को विनय कहा है। असत्य और सत्यमृषा भाषा सर्वथा वर्जनीय है, तथा सत्य और असत्यमृषा भाषा, जो बुद्धों के द्वारा अनाचीर्ण है वह वर्जनीय है। असत्यामृषा (व्यवहार भाषा) के बारह प्रकार है उनमें दसवां प्रकार है—संशय करणी।[1] जो शाश्वत मोक्ष को भग्नकरे उस असत्यामृषा भाषा और सत्य भाषा का भी धीर पुरुष प्रयोग न करे। शीलांकाचार्य ने कहा है।

तत्र मृषा सत्यामृषा च साधुनां तावन्न वाच्या, सत्यापि या कर्कशादिगुणोपेता सा न वाच्या।

—आया० ४। १० टीका

अर्थात् मृषा और सत्यमृषा भाषामुनि के लिए सर्वथा अवाच्य है। कर्कश आदि विशेषणयुक्त सत्य भाषा भी उसे नहीं बोलनी चाहिए।

सत्य भाषा का चौथा प्रकार रूप सत्य है—(पण्ण० प० ११) जैसे प्रव्रजित रूप-धारी को प्रव्रजित कहना 'रूप-सत्य-सत्यभाषा है। साधु नाम या गोत्र से आमंत्रित करे। दूसरे के लिए किये गये अथवा किये जा रहे सावद्य व्यापार को जानकर मुनि सावद्य वचन न बोले। छोटे या बड़े किसी भी जीव की घात करने वाली भाषा मुनि के लिए अवाच्य है। जिस भाषा के प्रयोग से महान् भूतोपघात हो उसे गुरुभूतोपघातिकी भाषा कहा जा सकता है।

प्राचीनकाल में व्यक्ति के दो नाम होते थे—गोत्र नाम और व्यक्तिगत नाम। व्यक्ति को इन दोनों नामों से सम्बोधित किया जाता था। जैसे भगवान महावीर के ज्येष्ठ शिष्य का नाम इन्द्रभूति था और आगमों में गौतम—इस गोत्रज नाम से प्रसिद्ध है। वायु को पुरुष लिङ्ग की अपेक्षा वात और स्त्रीलिङ्ग की अपेक्षा वातुली कहना—जनपद सत्य और व्यवहार सत्य भाषा की दृष्टि से यह सही है। वास्तव में साधु वह होता है जो निर्वाण-साधक-योग की साधना करे। अगस्त्यसिंह चूर्णि व जिनदास चूर्णि में अवधारिणी का अर्थ शंकित भाषा अर्थात् संदिग्ध वस्तु के बारे में असंदिग्ध वचन बोलना किया है।

प्रज्ञापना पद १३ के टीकाकार ने कहा है—"लेश्या परिणाम योग का परिणाम रूप है। क्योंकि 'योग परिणामो लेश्या" ऐसा शास्त्र का वचन है। अतः लेश्या परिणाम के बाद योग परिणाम कहा है। संसारी जीवों को योग का परिणाम होने के बाद उपयोग का परिणाम होता है अतः योग परिणाम के बाद उपयोग परिणाम कहा है।

---

१. पण्ण० पद ११। १६५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनेक प्रकार के परिणाम वाले जीव जिसमें हो उसे 'समवसरण' कहते हैं, अर्थात् भिन्न-भिन्न मतों एवं दर्शनों को 'समवसरण' कहते हैं। समवसरण के चार भेद है। यथा—

क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी।

यहाँ क्रियावादी आस्तिक दर्शन है। कर्त्ता के बिना क्रिया संभव नहीं है। इसलिए क्रिया का कर्त्ता जो है, वह आत्मा है। इस प्रकार आत्मा के अस्तित्व को मानने वाले क्रियावादी है, क्रियावादी सम्यग्दृष्टि होते हैं बाकी तीन मतवाद—अक्रियावादी, विनयवादी व अज्ञानवादी मिथ्यादृष्टि होते हैं।

केवली सब द्रव्यों और पर्यायों को साक्षात् जानता है। और श्रुत केवली उन्हें श्रुत के आधार पर जानता है। कतिपय आचार्यों ने केवली के भाव मनोयोग नहीं माना है। परन्तु श्रुत केवली के भाव मनोयोग माना है। श्रुत केवली में कार्मण काययोग को बाद देकर चौदह योग होते हैं। भगवान् महावीर ने सर्वाक्षरसन्निपाती वाणी के द्वारा धर्म का उपदेश दिया। भगवान् ने कहा है—"सूइ समा चियट्ट भावो" "धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ" अर्थात् पवित्र वह है जो स्पष्ट है, खुला है। अल्प बोलिए, सदा मधुर बोलिए। कटु या अश्लील शब्द मत बोलिए। वाणी का बार-बार नियन्त्रण कीजिए। सयोगी तेजोलेशी जीव भी नोसंज्ञोपयुक्त भी होते हैं। इसी प्रकार सयोगी पद्मलेशी-शुक्ललेशी भी नोसंज्ञोपयुक्त भी होते हैं। "यश का हेतु संयम है" यहाँ कारण में कार्य का उपचार करके 'संयम' को यश शब्द से अभिहित किया है। इसी तरह कारण को कार्य मान कर तपस्या को निर्जरा कहा है तथा सयोगी केवली में उपचार से "भावमन" कतिपय आचार्यों ने स्वीकृत किया है। सयोगी कृष्णलेशी, नीललेशी व कापोतलेशी जीव नोसंज्ञोपयुक्त नहीं है। तीसरे गुणस्थान की स्थिति उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की है वह जघन्य स्थिति से ज्यादा है ऐसा गोम्मटसार में कहा है। षट् स्थान इस प्रकार है—

१ – संख्यातभागहीन। २—असंख्यातभागहीन। ३—अनंतभागहीन। ४—संख्यात-गुण अधिक। ५—असंख्यातगुण अधिक तथा ६—अन्ततगुण अधिक।

औदारिक – उदार शब्द के कई अर्थ होते हैं। एक अर्थ भीम-भयंकर भी होता है। कई आचार्यों ने इसका अर्थ प्रधान किया है। चौथे द्रव्य संग्रह के कर्त्ता ने भावास्रव के भेदों में प्रमाद को गिनाया है परन्तु गोम्मटसार के कर्त्ता ने प्रमाद को भावास्रव के भेदों में नहीं माना और वहाँ अविरत ने दूसरे ही प्रकार से बारह भेद किये हैं।

पुद्गल विपाकी अंगोपांग नामकर्म और शरीर नामकर्म के उदय से मन-वचन और काय पर्याप्ति रूप से परिणत तथा कायवर्गणा, वचनवर्गणा और मनोवर्गणा का अवलम्बन करनेवाले संसारी जीव के लोकमात्र प्रदेशों में रहने वाली शक्ति कर्मों को ग्रहण करने में कारण है वह भाव योग है। और उस शक्ति से विशिष्ट आत्मप्रदेशों में जो कुछ हलन-चलन रूप परिस्पन्द होता है वह द्रव्य योग है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्तु कर्मवर्गणा रूप पुदगलस्कंधों को ज्ञानावरण आदि कर्म रूप से और नोकर्म-वर्गणा रूप पुद्गलस्कंधों को औदारिक आदि नोकर्म रूप से परिणमन में हेतु जो सामर्थ्य है तथा आत्मप्रदेशों के परिस्पन्द को योग कहते हैं। लोक में देखा जाता है कि—जैसे अग्नि के संयोग से लोहे में दहन शक्ति होती है उसी तरह अंगोपांग शरीर नाम कर्म के उदय से मनोवर्गणा तथा भाषा वर्गणा के आये पुद्गलस्कंधों के और आहारवर्गणा के आये नोकर्म पुद्गलस्कंधों के सम्बन्ध से जीव के प्रदेशों में कर्म और नोकर्म को ग्रहण करने की शक्ति उत्पन्न होती है।

घट में घट का विकल्प सत्य है। घट में पट का विकल्प असत्य है। सत्य और असत्य ज्ञान का विषय अर्थ उभय अर्थात् सत्यासत्य है। कुण्डिका में जल धारण करने से घट का विकल्प उभय है। किसी को बुलाने पर 'हे देवदत्त' यह विकल्प अनुभय है अर्थात् उसे न सत्य और न असत्य कहा जाता है।

सद्भाव अर्थात् सत्य अर्थ। उसको विषय करने वाला मन-सत्य मन है। अर्थात् सत्य अर्थ का ज्ञान उत्पन्न करने की शक्ति रूप भावमन-सत्यमन है। उस सत्य मन से उत्पन्न हुआ योग अर्थात् प्रयत्न विशेष सत्य मनोयोग है। उससे विपरीत अर्थात् असत्य अर्थ को विषय करने वाले ज्ञान को उत्पन्न करने की शक्ति रूप भाव मन से उत्पन्न प्रयत्न विशेष मृषा अर्थात् असत्य मनोयोग है। उभय अर्थात् सत्य और असत्य अर्थ के ज्ञान से उत्पन्न करने की शक्ति रूप भाव मन से उत्पन्न प्रयत्न विशेष उभय मनोयोग है। जो मन सत्य और असत्य से युक्त नहीं होता है अर्थात् अनुभय रूप अर्थ के ज्ञान को उत्पन्न करने की शक्ति रूप भावमन असत्यमृषा मन है। उस भाव मनसे उत्पन्न जो योग अर्थात् प्रयत्न विशेष है वह असत्यमृषा मनोयोग अर्थात् अनुभय मनोयोग है। भावमन के बिना मनो-योग नहीं होता है। अतः केवली के कथंचिद् भाव मनोयोग है। तीर्थंकरके पांच योग व सामान्य केवली के सात योग का विधान है।

सत्य अर्थ का वाचक वचन सत्य वचन है। वह जनपद आदि दस प्रकार के सत्य अर्थ को विषय करने वाले वचन व्यापार को उत्पन्न करने में समर्थ है। स्वर नाम कर्म के उदय से प्राप्त भाषा पर्याप्ति से उत्पन्न भाषा वर्गणा के आलम्बन से आत्मप्रदेशों में शक्ति रूप जो भाव वचन से उत्पन्न योग अर्थात् प्रयत्न विशेष है वह सत्यवचन योग है। उससे विपरीत असत्य है अर्थात् असत्य अर्थ को विषय करने वाला वचन व्यापार रूप प्रयत्न असत्य वचन योग है। कमण्डलु में घट व्यवहार की तरह सत्य और असत्य अर्थविषयक वचन व्यापार रूप प्रयत्न उभय वचन योग है। जो सत्य और असत्य अर्थ को विषय नहीं करता वह असत्यमृषा अर्थ को विषय करने वाला वचन व्यापार रूप प्रयत्न विशेग अनुभय वचन योग है।

उदाहरणतः अमनस् अर्थात् द्वीन्द्रिय से असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यन्त जीवों की जो अनक्षरात्मक भाषा है तथा संज्ञी पंचेन्द्रियों की जो आमन्त्रण आदि रूप अनक्षरात्मक भाषा है वह सब अनुभय वचन योग कही जाती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जनपद, सम्मति, स्थापना, नाम, रूप, प्रतीत्य, व्यवहार, संभावना, भाव, उपमा—इन दस स्थानों में दस प्रकार का सत्य जानना।

अमितगति के सामने जीवकाण्ड वर्तमान था। अमितगति ने अपना पंचसंग्रह वि० सं० १०७० में पूर्ण किया था। इससे लगभग तीन दशक पहले गोम्मटसार की रचना हो चुकी थी और अमितगति ने अपने पंचसंग्रह की रचना में इसका उपयोग किया है।

१—जनपद सत्य—भिन्न-भिन्न जनपदों में उस-उस जनपद के व्यवहारी पुरुषों के रूढ़ वचन को जनपद सत्य कहते हैं। जैसे भात को महाराष्ट्र देश में भातु-भेटु कहते है, आन्ध्रप्रदेश में वटक-मुकुडु कहते हैं, कर्णाट देश में कुलु और द्रविड़ देश में चोरु कहते हैं।

२—सम्मति सत्य—संवृत्ति अर्थात् कल्पना से या सम्मति अर्थात् बहुतजनों के स्वीकार करने से सर्वदेश साधारण जो नाम रूढ़ हैं वह संवृत्ति सत्य या सम्मति सत्य हैं। जैसे—पट्टरानीपना नहीं होने पर भी किसी को देवी कहना।

३—स्थापना सत्य—अन्य में अन्य वस्तु का समारोप स्थापना है। उसका आश्रय करके मुख्य वस्तु की स्थापना सत्य है। जैसे—चंद्रप्रभ की प्रतिमा को चंद्रप्रभ कहना।

४—नाम सत्य—जैसे भातु इत्यादि नाम देश आदि की अपेक्षा सत्य है उसी तरह अन्य की अपेक्षा न करते हुए ही संव्यवहार के लिए किसी का नाम रखना नाम सत्य है। जैसे—किसी पुरुष का जिनदत्त नाम। जिन ने जिसे दिया वह जिनदत्त होता है। किन्तु इस दान क्रिया की अपेक्षा न करते हुए यह नाम प्रयुक्त होता है।

५—रूप सत्य—चक्षु के व्यापार की अधिकता से रूपादि के युक्त पुद्गल के गुणों में रूप की प्रधानता से तदाश्रितवचन रूप सत्य है। जैसे अमुक पुरुष श्वेत है। यहाँ मनुष्यों के केशों के नील आदि वर्ण के होने पर तथा रस आदि अन्य गुणों का सद्भाव होने पर भी उनकी विवक्षा नहीं है।

६—प्रतीत्य सत्य—प्रतीत्य अर्थात् आपेक्षिक सत्य है। जैसे किसी को दीर्घ कहना। यहाँ दूसरे के छोटेपन की अपेक्षा करके ही प्रकृत को दीर्घ कहा गया है। इसी तरह यह स्थूल है या सूक्ष्म है इत्यादि वचन भी प्रतीत्य सत्य है।

७—व्यवहार सत्य—नैगमादि नय की प्रधानता लेकर कहा गया वचन व्यवहार सत्य है। जैसे—नैगमनय की प्रधानता से 'भात पकता है' ऐसा कहना क्योंकि पक तो चावल रहे हैं, पकने पर भात होगा। नय व्यवहार के आश्रय से होने वाला वचन व्यवहार जैसे—स्यात् सब वस्तु सत् है स्यात् सब वस्तु असत् है, इत्यादि वाक्य व्यवहार सत्य है। 'भात पकता है' यहाँ भातपर्याय-भातपर्याय की पाक समाप्ति के अनन्तरकाल में होती है अतः पाक काल में यद्यपि नहीं है तथापि चावलों की भातरूप पर्याय की निकटता के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्ररूपक नैगमनय की विवक्षा से भात पर्याय रूप परिणमन करने वाले द्रव्य की अपेक्षा 'भात पकता है' इस वचन की सत्यता सिद्ध है।

८—सम्भावना सत्य—असंभव के परिहारपूर्वक वस्तु के धर्म का विधान करने वाली संभावना के द्वारा जो वचन व्यवहार होता है वह संभावना सत्य है। जैसे इन्द्र जम्बूद्वीप को पलटने में समर्थ है। यहाँ जम्बूद्वीप को पलटने की शक्ति की असंभवता का परिहार करते हुए उस शक्ति के विधान का वचन पलटने की क्रिया से निरपेक्ष होते हुए सत्य है। जैसे यह कहना कि बीज में अंकुर को उत्पन्न करने की शक्ति है। इन्द्र में जम्बूद्वीप को पलटने की शक्ति असंभव है। इस असंभवता का परिहार करके इन्द्र में पलटन रूप धर्म के अस्तित्व की संभावना नियम से उस क्रिया की अपेक्षा नहीं रखती। अर्थात् इन्द्र जम्बूद्वीप को पलटदे तभी इन्द्र जम्बूद्वीप को पलट सकता है यह कहा जा सकता है ऐसी बात नहीं है। क्रिया तो वाह्य कारण समूह के व्यापार से उत्पन्न होती है।

९—भाव सत्य—अतीन्द्रिय पदार्थों के प्रवचन में कहे गये विधि-निषेध के संकल्प रूप परिणाम को भाव कहते हैं। उसके आश्रित वचन भाव सत्य है। जैसे सूखा हुआ, पकाया हुआ, छिन्न-भिन्न किया हुआ, खटाई या नमक मिलाया हुआ तथा जला हुआ द्रव्य प्रासुक है। अतः उसके सेवन में पापबंध नहीं है। इस प्रकार के पाप के त्याग रूप वचन भाव सत्य है। समस्त अतीन्द्रिय पदार्थों के ज्ञाता के द्वारा उपदिष्ट आगम सत्य ही होता है अतः उसके आधार से जो संकल्पपूर्वक वचन है वह सत्य है।

१०—उपमा सत्य—प्रसिद्ध अर्थ के साथ सादृश्य बतलाने वाला वचन उपमा सत्य है। यथा-पल्योपम। पल्य अर्थात् अनाज भरने का खत्ता, उनके साथ उपमा अर्थात् सदृश्यता जिसकी है, क्योंकि पल्य में रोमखंड भरे जाते हैं, उसकी संख्या को पल्योपम कहते हैं।

प्रज्ञापना पद १३ के टीकाकार ने कहा है—"लेश्या परिणाम योग का परिणाम रूप है। क्योंकि "योग परिणामो लेश्या" ऐसा शास्त्र का वचन है। अतः लेश्या परिणाम के बाद योग परिणाम कहा है। संसारी जीवों को योग का परिणाम होने के बाद उपयोग का परिणाम होता है अतः योग परिणाम के बाद उपयोग परिणाम कहा है।

अनेक प्रकार के परिणाम वाले जीव जिसमें हो उसे 'समवसरण' कहते हैं, अर्थात् भिन्न-भिन्न मतों एवं दर्शनों को 'समवसरण' कहते हैं। समवसरण के चार भेद हैं। यथा—क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी।

यहाँ क्रियावादी आस्तिक दर्शन है। कर्त्ता के बिना क्रिया संभव नहीं है। इसलिए 'क्रिया का कर्त्ता जो है, वह आत्मा है। इस प्रकार आत्मा के अस्तित्व को मानने वाले क्रियावादी हैं व क्रियावादी सम्यग्दृष्टि होते हैं बाकी तीन मतवाद—अक्रियावादी, विनयवादी व अज्ञानवादी मिथ्यादृष्टि होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

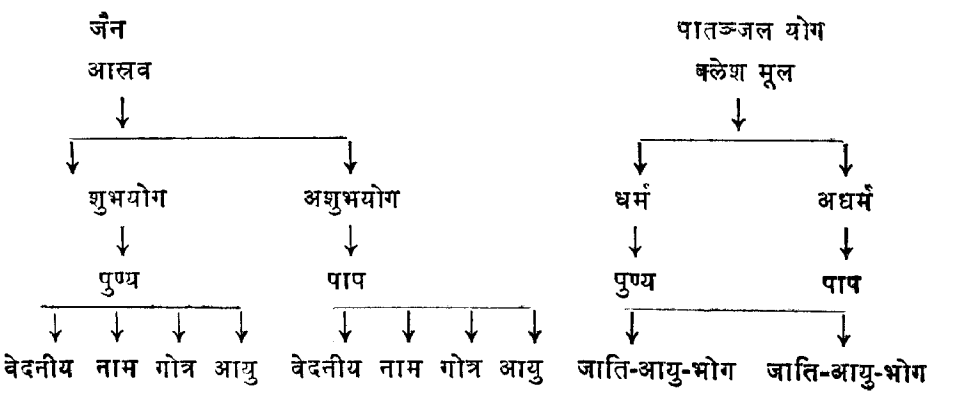
इसप्रकार असंख्यातासंख्यात रोमखंडों का आधारभूत अथवा उतने प्रमाण समयों का आधारभूत जो संख्यानविशेष है उसकी जिस किसी प्रकार से पल्य से समानता का आश्रय लेकर प्रवृत्त हुआ पल्योपम का वचन उपमा सत्य है—यह सिद्ध होता है। सागरोपम भी उपमा सत्य है।

नारकी के अपर्याप्त अवस्था में सास्वादान नामक दूसरा गुणस्थान नहीं होता है। यह गोम्मटसार की व षट्खंडागम की मान्यता है। अतः इस गुणस्थान में वैक्रियमिश्र-काययोग व कार्मण काययोग को बाद दिया है।

वायुकाय में दिगम्बर मान्यतानुसार तीन योग होते हैं, यथा—औदारिक, औदारिक-मिश्र व कार्मणकाययोग। इनके अपर्याप्त में दो योग व पर्याप्त में एक औदारिक काययोग होता है। मनुष्य और तिर्यंच में मूल वैक्रिय शरीर न होने के कारण वैक्रिय काययोग व वैक्रियमिश्र काययोग को नहीं माना है। उपचार से वैक्रिय काययोग माना है। मनुष्यणी में दिगम्बर मान्यता में प्रयत्न संयत में अपर्याप्त अवस्थान को नकार किया है। दिगम्बर मान्यतानुसार मनुष्यणी में मनःपर्यव ज्ञान नहीं होता है। नारकी को बाद देकर बाकी तीन गतियों में दिगम्बर मान्यता में भी अपर्याप्त अवस्था में दूसरा गुणस्थान भी माना है।

योगसूत्र के अनुसार भी पुण्य की उत्पत्ति धर्म के साथ हो सकती है, यही फलित होता है। जैसे धर्म और अधर्म ये क्लेश मूल है। इन मूल सहित क्लेशाक्षय का परिपाक होने पर उनके तीन फल होते हैं—जाति, आयु और भोग। ये दो प्रकार के होते हैं—सुखद और दुःखद। जिनका हेतु पुण्य होता है, वे सुखद और जिनका हेतु पाप होता है, वे दुःखद होते हैं। इससे फलित यही होता है कि महर्षि पतञ्जली ने भी पुण्य-पाप की स्वतन्त्र उत्पत्ति नहीं मानी है। जैन विचारों के साथ उन्हें तोले तो कोई अन्तर नहीं आता।

तुलना के लिए देखे—



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असत्य वचन योग के दस भेद हैं—

१. क्रोधनिश्रित
२. माननिश्रित
३. मायानिश्रित
४. लोभनिश्रित
५. प्रेयस्निश्रित
६. द्वेषनिश्रित
७. हास्यनिश्रित
८. भयनिश्रित
९. आख्यायिकीनिश्रित
१०. उपघातनिश्रित

उदय वचव योग के दस भेद हैं—

१. उत्पन्नमिश्रित ४. जीवमिश्रित ७. अनंतमिश्रित १०. अद्धाअद्धमिश्रित
२. विगतमिश्रित ५. अजीवमिश्रित ८. परीतमिश्रित
३. उत्पन्नविगतमिश्रित ६. जीव-अजीवमिश्रित ९. अद्धामिश्रित

सत्य वचन योग के भी जनपद सत्यादि दस भेद है। व्यवहार वचन योग के भी दस भेद है।

शुक्लध्यान में एक योग से दूसरे योग पर परिवर्तन भी किया जाता है। शुक्लध्यान का एक भेद पृथक्त्व-वितर्क-सविचार है। इस ध्यान में परिवर्तन होता है। शुक्लध्यान के प्रथम दो भेदों में तीनों योग होते हैं।

अनाहारक अवस्था में केवल कार्मण काययोग होता है। आहारक अवस्था में कार्मण काययोग को बाद देकर चवदह योग होते हैं।

दण्ड-द्रव्य और भाव के भेद से दो प्रकार का होता है। द्रव्यतः लाठी आदि को दण्ड कहा जाता है तथा भावतः दुष्ट कर्मों में फंसा हुआ मन-दण्ड है। यह मन-दण्ड अशुभ योग के कारण होता है।

कुछ देशों में जो शब्द जिस अर्थ में रूढ़ होता है, देशान्तरों में भी यदि वह शब्द उसी अर्थ में प्रयुक्त होता है तो वह जनपद सत्य कहलाता है।

लेप आदि कर्म के द्वारा अर्हदादि के विकल्प स्वरूप स्थापित किया जाता है उसे स्थापना सत्य कहते हैं—यथा अजिन को जिन के रूप में तथा अनाचार्य को आचार्य के रूप में ख्यात करना।

जो लोकसम्मत भी हो तथा अभिधानार्थ द्वारा सत्य भी हो उसे सम्मत सत्य कहते हैं। पंकज शब्द अरविन्द अर्थात् कमल के ही अर्थ में रूढ़ माना जाता है अतः वह सम्मत सत्य है।

सयोगी तामली तापस ने ६० हजार वर्ष तक बेले-बेले की तपस्या की। यदि सम्यग्दृष्टि जीव ऐसी तपस्या करे तो सात जीव मोक्ष जा सकते हैं। लेकिन वह मिथ्यादृष्टि था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रज्ञापना पद ११ के भाषा पद में सत्य भाषा के जनपद भाषा आदि १० भेदों का उल्लेख मिलता है।

सबसे कम तीन योग युक्त जीव हैं, उससे दो योग (वचन-काययोगी) युक्त जीव संख्यातगुणे हैं, उससे अयोगी अनंतगुणे अधिक हैं और उससे एक योगी (काययोगी) वाले जीव अनन्तगुणे हैं।

चारों मनोयोग का काल अन्तर्मुहूर्त मात्र ही है अर्थात् चारों मनोयोग के काल के जोड़ से संख्यातगुणा अन्तर्मुहूर्त सत्य-वचन योग का काल है। उससे संख्यातगुणा अन्तर्मुहूर्त असत्य वचन योग का काल है। उससे संख्यातगुणा अन्तर्मुहूर्त उभय वचन योग का काल है। उससे संख्यातगुणा अन्तर्मुहूर्त अनुभय वचन योग का काल है। इन सबका योग भी अन्तर्मुहूर्त मात्र है।

नोट—संदृष्टि के रूप में मनोयोग से काल से (८५) संख्यातगुणा ८५ × ४ सत्य वचन योग का काल है। उससे संख्यातगुणा ८५ × १६ असत्य वचन योग का काल है। उससे संख्यातगुणा ८५ × ६४ उभय वचन तथा उससे संख्यातगुणा ८५ × २५६ अनुभय वचन योग का काल है। इनका जोड़ ८५ × ३४० होता है। इन चारों वचन योगों के काल का जोड़ ८५ × ३४० सामान्य वचन योग का काल है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि में दस योग होते हैं। परन्तु मारणांतिक समुद्घात नहीं होता है और न आयुष्य को बांधता है, न मरता है। प्रमाद के पन्द्रह भेद होते हैं—चार विकथा, चार कषाय, पांच इन्द्रिय, निद्रा व स्नेह। कहा जाता है कि अप्रमत्त संयत गुणस्थान में शुभ योग होते हैं परन्तु दिगम्बर परम्परा में अशुभ योग भी माना है। उस गुणस्थान में संज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ चार कषायों का और हास्य आदि नौ नोकषायों का यथासंभव उदय है।

चक्रवर्ती तथा वासुदेव में बारह योग होते हैं—४ मनोयोग, ४ वचनयोग, औदारिक काययोग, औदारिकमिश्र काययोग, वैक्रिय काययोग तथा वैक्रियमिश्र काययोग।

दर्शन मोहनीय का बंध की विवक्षा से एक भेद है। किन्तु उदय और सत्त्व की अपेक्षा मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व प्रकृति तीन भेद हैं। जो मूल में उष्ण है। वह अग्नि है और जिसकी प्रभा उष्ण हो वह आतप है। आतप नामकर्म का उदय सूर्य के बिम्ब में उत्पन्न बादर पर्याप्त पृथ्वीकायिक तिर्यंच जीव में होता है। जिसकी प्रभा भी उष्ण न हो वह उद्योत है। हास्यादि षट् नोकषाय का अनिवृत्ति बादर गुणस्थान में क्षय या उपशम होता है।

औदारिकमिश्र काययोगी, वैक्रियमिश्र काययोगी, आहारकमिश्र काययोगी व कार्मण काययोगी जीव आयुष्य का बंधन नहीं करता है। जैसे—विशेष पात्र में डाले गये विविध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रस, बीज, पुष्प, फलों का मदिरा रूप परिणाम होता है उसी तरह योग और कषाय के निमित्त से कार्मणपुद्गलों का कर्म रूप परिणाम जानना चाहिए। अपूर्वगुणस्थान के प्रथम भाग में श्रेणी चढते समय मरण नहीं होता है।

उपशान्त कषाय, क्षीण मोह और सयोग केवली में दो समय की स्थिति लेकर सातावेदनीय का ही बंध होता है। यह बंध योग के कारण होता है। इन गुणस्थानों में कषाय का अभाव है। अयोग केवली में योग भी नहीं है अतः बंध भी नहीं है। मिश्र काययोगी (औदारिकमिश्र काययोगी वैक्रियमिश्र काययोगी, आहारकमिश्र काययोगी व कार्मण काययोगी) में नरकादि चार आयु, नरकद्विक, आहारकद्विक का बंध नहीं होता है। वैक्रियमिश्र काययोगी नारकी मनुष्य व तिर्यंच का आयु नहीं बांधता है। औदारिकमिश्र काययोगी तिर्यंच के नरक व देव आयु का व नरकद्विक का बंध नहीं होता है।

असंयत आदि चार गुणस्थानों में से किसी एक गुणस्थान में अनंतानुबंधी चार और दर्शन मोहनीय तीन—इन सातों की सता का नाश करके क्षायिक सम्यग्दृष्टि होता है। सबसे पहले अनंतानुबंधीय कषाय चतुष्क का क्षय करता है। उसके बाद मिथ्यात्व प्रकृति का क्षय करता है, उसके पश्चात् मिश्र का और उसके पश्चात् सम्यक्त्व मोहनीय कर्म का क्षय करता है। क्षपक श्रेणी में अपूर्वकरण गुणस्थान में मोहनीय कर्म की इक्कीस प्रकृति की सत्ता का उल्लेख गोम्मटसार में मिलता है। अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में अप्रत्याख्यान कषाय चार और प्रत्याख्यान कषाय चार इन प्रकृति को क्षपक श्रेणीवाला क्षय करता है। इसके बाद नपुंसकवेद, स्त्रीवेद को क्रमशः क्षय करता है। इसके बाद हास्यादि छह नो कषाय और पुरुषवेद को क्रमशः क्षय करता है। इसके बाद संज्वलन क्रोध, संज्वलन मान, संज्वलन माया को क्रमशः क्षय करता है। सूक्ष्यसंपराय गुणस्थान में सूक्ष्म लोभ का उदय रहता है।[1]

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, हास्यादि छह और पुरुषवेद का क्रमशः उपशम होता है।[2] गोम्मटसार के अनुसार-क्षपणा की तरह ही उपशम के विधान का भी क्रम है। किन्तु विशेष इतना है कि संज्वलन कषाय और पुरुषवेद के मध्य में मध्य के अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान दो-दो क्रोधादि का क्रम से उपशम होता है। पीछे पुरुषवेद का उपशम करने के अनन्तर जो नवीन बंधा हुआ उस सहित अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान क्रोध के युगल का उपशम करता है।

यद्यपि बन्ध और करण में कोई अन्तर नहीं है तथापि यहाँ जो पृथक्-पृथक् कथन किया है, इसका कारण यह बताया है कि जीव की जो 'कर्म-बंध-क्रिया' है वह जीवकृत ही है अर्थात् जीव के द्वारा ही की हुई है, 'ईश्वरादिकृत' नहीं है।

---

१. गोम्मटसार कर्मकाण्ड गा० ३३५ से ३३८। टीका

२. गोम्मटसार कर्मकाण्ड गा० ३४३। टीका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथवा—'बंध का अर्थ है—सामान्य रूप से कर्म को बांधना और करण का अर्थ है—कर्मों को निधत्तादि रूप से बांधना, जिससे विपाकादि रूप से उनका फल अवश्य भोगना पड़े। पंकप्रभा नरक से अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी नहीं उद्वर्त्तते हैं। इसी प्रकार धूमप्रभा, तमप्रभा तथा तमतमाप्रभा नारकी के विषय में जानना चाहिए। क्योंकि तीर्थंकर तीसरी नरक तक के निकल कर हो सकते हैं शेष नारकियों से नहीं।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकी कदाचित् होते हैं, कदाचित् नहीं होते हैं अतः इनका विरह हो सकता है।

अस्तु—योग—आत्मप्रदेशों के परिस्पन्दन (कंपन) को योग कहते हैं। वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशमादि की विभिन्नता से योग के पन्द्रह भेद होते हैं। किसी जीव का योग दूसरे जीव की अपेक्षा जघन्य होता है और किसी जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट होता है।

सभी नरकों के नरकावास में पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक जीव है। वे महा-क्रिया, महास्रव, और महावेदना वाले हैं। (जीवाभिगम-तीसरी प्रतिपत्ति) तिर्यग्लोक के ठीक मध्य में—जंबूद्वीप में रत्नप्रभा पृथ्वी के समतल भूमि भाग पर मेरु पर्वत के बिल्कूल मध्य में आठ रुचक-प्रदेश हैं। वे गोस्तन के आकार वाले हैं। चार ऊपर की ओर उठे हुए हैं और चार नीचे की ओर। इन्हीं रुचक प्रदेशों की अपेक्षा से सभी दिशा-विदिशाओं का ज्ञान होता है।

परिहारविशुद्धि संयम को त्यागे बिना उपशम श्रेणी अथवा क्षपक श्रेणी पर आरोहण नहीं होता है। अनाहारक में पांच गुणस्थान होते हैं। (१, २, ४, १३. १४) श्वेताम्बर आगमानुसार क्षायिक सम्यक्त्वी जीव—जघन्य एक भव, उत्कृष्ट तीसरे भव में मुक्त हो जाता है।[1] दिगम्बर परम्परानुसार वैक्रियमिश्र काययोग निर्वृत्यपर्याप्त जीव समास में होता है।[2] गोम्मटसार में अग्निकाय में चार शरीर की मान्यता मिलती है। गर्भज मनुष्य अथवा सामान्य मनुष्य में योग १३ (वैक्रिय-वैक्रियकायमिश्र बाद देकर) गोम्मटसार के कर्त्ता ने माना है। अप्रमत्त संयत गुणस्थान में साता-असाता वेदनीय कर्म की उदीरणा नहीं है। गोम्मटसार में मानुषणी में मनःपर्यवज्ञान नहीं माना है।[3] कहा है—

मनःपर्य्ययज्ञानोपयोगं × × × मनःपर्ययः स्त्रीवेदिषु नहि संक्लिष्टपरिणामित्वात्।

—गोजी० गा० ७१८। टीका

अर्थात् संक्लिष्ट परिणाम होने से स्त्री वेदी में मनःपर्यवज्ञान नहीं होता है। आगे कहा है—

---

१. उत्त० गा० २९। गा० १
२. गोजी० गा० ६८२। टीका
३. गोजी० गा० ७१८। टीका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"(मानुषिप्रमत्तसंयत) स्त्रीनपुंसकोदये आहारकद्धिमनःपर्ययपरिहारविशुद्धयो नहि ।"

—गोजी० गा० ७१८ । टीका

सामग्री विशेष के द्वारा रत्नत्रय और अनन्तचतुष्टयस्वरूप से परिणमन करने के जो योग्य हो वह भव्य है। उससे विपरीत अभव्य है। अभव्य राशि युक्तानन्तप्रमाण है। भव्य के तीन भेद हैं—आसन्न भव्य, दूर भव्य और अभव्य के समान भव्य। गोम्मटसार में सयोगी और अयोगी केवली को न भव्य माना है और न अभव्य माना है।

शरीर और अंगोपांग नाम कर्म से उत्पन्न शरीर, वचन और मन के योग्य नोकर्म वर्गणाओं के ग्रहण को आहार कहते हैं। कहा है—

विग्रहगतौ प्रतरलोकपूरण सयोगे अयोगे सिद्धे च अनाहारः।

—गोजी० गा० ७०३ । टीका

विग्रह गति में प्रतर और लोकपूरण समुद्घात सहित सयोगी, अयोगी, और सिद्ध अनाहारक है। अनाहारक अवस्था में सिर्फ कार्मणकाययोग होता है या योगरहित होता है।

पुद्गल द्रव्य में परमाणु और द्वचणुक आदि संख्यात, असंख्यात और अनंत परमाणुओं के स्कंधचलित होते हैं। अन्तिम महास्कंध में प्रदेशचल-अचल है।

तेइस प्रकार की पुद्गलवर्गणाएँ होती है—

१. अणुवर्गणा २. संख्याताणुवर्गणा ३. असंख्याताणुवर्गणा ४. अनंताणुवर्गणा ५. आहारवर्गणा ६. अग्राह्यवर्गणा ७. तैजसशरीरवर्गणा ८. अग्राह्यवर्गणा ९. भाषा-वर्गणा १०. अग्राह्यवर्गणा ११. मनोवर्गणा १२. अग्राह्यवर्गणा १३. कार्मणवर्गणा १४. ध्रुववर्गणा १५. सान्तर निरन्तरवर्गणा १६. शून्यवर्गणा १७. प्रत्येक शरीर वर्गणा १८. ध्रुव शून्य वर्गणा १९ बादर निगोद वर्गणा २०. शून्यवर्गणा २१. सूक्ष्मनिगोद वर्गणा २२. नभोवर्गणा और २३. महास्कंधवर्गणा।

योग और ध्यान

निव्वाणगमणकाले केवलिणो दरनिरुद्धजोगस्स।
सुहुमकिरियाऽनियट्टि तइयं तणुकायकिरियस्स ॥

—ध्याश० गा० ८१

मोक्षगमन के प्रत्यासन्नकाल में केवली के मन और वचन योग का निरुद्ध हो जाता है किन्तु उच्छ्वास-निःश्वास रूप काय की सूक्ष्म प्रवृत्ति (योग) वर्तमान रहती है। वह शुक्लध्यान का सूक्ष्मक्रिया-अनिवृत्ति नामक तीसरा प्रकार है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहा जाता है कि भरत क्षेत्र के कुणाला नगरी में गुणभद्र श्रावक ने ८४००००० पूर्व से कुछ नौ वर्ष न्यून पूर्व तक लगातार सामायिक की—ऐसा सर्वज्ञ देव कह रहे थे। उसने बहुत बड़ी निर्जरा की। यदि वह सामायिक न करता तो नरक तिर्यंच में भी पैदा हो सकता था। सामायिक द्वारा उसने दलिक कर्मों का बहुतायत से क्षय किया था।

संयती के गुप्ति निरंतर रहती है। समिति के निरंतर का नियम नहीं है। गुप्ति यम है, समिति नियम है। गुप्ति निरोध रूप संवर है, समिति प्रवृत्ति रूप निर्जरा है। ध्यान से मनोयोग की साधना होती है व जप से वचनयोग को साधा जाता है। कायोत्सर्ग में काययोग को साधा जाता है।

देवर्द्धिगणि भगवान् महावीर के सताइसवें पट्टधर थे। एक पूर्व के ज्ञाता थे। भगवान् के परिनिर्वाण के ९८० वर्ष बाद हुए। हरिणगमेषी देव का जीव देवर्द्धिगणि था। जिस देव ने भगवान् महावीर के जीव का संक्रमण किया वह हरिणगमेषी देव। इस पाट तक शुद्ध प्ररूपणा मानी गयी है।

नववें गुणस्थान में मोहनीय कर्म की २८ प्रकृतियों में से १, अथवा २, अथवा ३, अथवा ४, अथवा ५ प्रकृति का बंध होता है। आठवें में ९ प्रकृति, सातवें तथा छट्ठे में ९ प्रकृति का बंध होता है। पांचवें में १३, चौथे में १७, तीसरे में १७, दूसरे में २१ व पहले में २२ प्रकृति का बंध होता है।[1]

जैन साहित्य में 'योग' शब्द का प्रयोग अध्यात्म योग, भावना योग, संवर योग, ध्यान योग, आदि अनेक रूपों में मिलता है। इन सभी योगों को जैन तत्त्व विद्या में समाविष्ट किया जा सकता है। इस दृष्टि से 'जैन योग' योग विद्या का बहुआयामी लक्ष्य लेकर चलता है।

"योग" शब्द भी निष्पत्ति संस्कृत की 'युज्' धातु से होती है। इस धातु का प्रयोग भी कई अर्थों में होता है। प्रस्तुत संदर्भ में इसके दो अर्थ अधिक उपयुक्त हैं—समाधि और जोड़ना। जिस प्रवृत्ति में मन, बुद्धि और आत्मा को समाधान मिले वह योग है। इसका दुसरा अर्थ 'जोड़ना' बहुत व्यापक होने पर भी एक विशेष योजना का प्रतीक है। जिसे अभिव्यक्त करते हुए आचार्य हरिभद्र ने लिखा है—"मोक्खेण जोयणाओ जोगो सव्वो वि धम्मवावारो" धर्म की सारी प्रवृत्तियाँ व्यक्ति को मोक्ष के साथ जोड़ती है, इसलिए वे 'याग' हैं।

जैन, बौद्ध और वैदिक—सभी परम्पराओं में योग विद्या का प्रचलन है और उनके साहित्य में योग की विशद चर्चा है।

पिछले कुछ दशकों में भारत तथा इतर राष्ट्रों में इस सम्बन्ध में जितनी शोध और प्रयोग हुए हैं, उससे इस क्षेत्र मे नई-नई सम्भावनाएं बढ़ रही है और लोक-मानस में आकर्षण उत्पन्न हो रहा है।

---

१. गोक० गा० २१७। टीका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन साधना पद्धति में योग के तीन अंग माने गये हैं—सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यग्चारित्र। बौद्ध साधना पद्धति प्रज्ञा (ज्ञान), शील (यम-नियम) और समाधि (ध्यान-धारणा) को तथा पातंजल योगदर्शन में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान और समाधि को योग के अंग बताये हैं।

जैन आगमों में साधु और श्रावक के तीन-तीन मनोरथों का उल्लेख है। प्रथम दो मनोरथ भिन्न-भिन्न है। तीसरा मनोरथ दोनों का एक है। उसका सम्बन्ध आजीवन अनशन से है। इसके लिए आगमों में 'अपश्चिम मारणान्तिक संलेखना' शब्द का प्रयोग है। बोलचाल की भाषा में इसे संथारा कहा जाता है। प्रत्येक जागरूक साधु और श्रावक की यह भावना रहती है कि वह अपनी यात्रा की संपन्नता अनशन के साथ करें।

भवस्थ केवली—सयोगी या अयोगी केवली के भाव मन (चित्त) का अभाव होने पर भी जीव का उपयोग रहता ही है। शुक्लध्यान—शुक्ललेश्या व लेश्यारहित होता है लेकिन योग-मनोयोग, वचनयोग, काययोग या योगरहित होता है। तप का प्रधान अंग है—ध्यान, अतः ध्यान मोक्ष का हेतु है।

धर्मध्यान करने वालों से कुछ व्यक्ति मन का निरोध कर फिर वचन, शरीर और श्वासोच्छ्वास का निरोध करते हैं और कुछ व्यक्ति शरीर, वचन और श्वासोच्छ्वास का निरोध कर फिर मन का निरोध कर पाते हैं। आवश्यक सूत्र में 'ठाणेणं मोणेणं झाणेणं' इन शब्दों द्वारा तीसरा क्रम प्रतिपादित है। इसका अर्थ है—पहले शरीर की चेष्टा का विसर्जन, फिर वाणी का और फिर मन का। इस क्रम में श्वासोच्छ्वास का निरोध काय-निरोध के अंतर्गभित है। किन्तु भवकाल में शुक्लध्यान का प्रतिपत्ति क्रम इस प्रकार रहता है—पहले मनोयोग का, तदन्तर वाक्योग का और अन्त में काययोग का निरोध होता है।

पढमं जोगे जोगेसु वा मयं बिइअमेगजोगम्मि।
तइयं च कायजोगे सुक्कमजोगम्मि य चउत्थं॥

—ध्याश० गा० ८३

शुक्लध्यान के प्रथम प्रकार में एक ही योग या तीनों योग विद्यमान रह सकते हैं, दूसरे प्रकार में तीनों में से कोई एक योग विद्यमान रहता है। तीसरे प्रकार में केवल एक काययोग ही विद्यमान रहता है। तथा चौथे प्रकार में कोई योग नहीं रहता। वह अयोगी को ही प्राप्त होता है। कहा है—

देइविवित्तं पेच्छइ अप्पाणं तह य सव्वसंजोगे।

—ध्याश० गा० ९२

शरीर और आत्मा को तथा सभी संयोगों को आत्मा से भिन्न मानना—यह विवेक है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुक्लध्यान में शुभयोग व योग न भी हो। शुक्लध्यान के पहले दो प्रकारों में शुक्ललेश्या और तीसरे प्रकार में परम शुक्ललेश्या होती है। चतुर्थ प्रकार लेश्यातीत होता है। भवस्थ सयोगी और अयोगी केवली के चित्त का अभाव होने पर भी उपयोग रहता ही है।

अनाहारक अयोगी जीवों के शरीर से जो औदारिक परमाणु निर्जीर्ण होते हैं उनका यह जघन्य व उत्कृष्टकाल कहना चाहिए। दिगम्बर मतानुसार सकषायी के शुक्लध्यान नहीं होता है अर्थात् अकषायी में शुक्लध्यान होता है। अभिनिष्क्रमण के समय भगवान महावीर जब श्रेष्ठ पालकी में आरोहण किया, उस समय उनके दो दिन का उपवास था, उनके अध्यवसाय शुभ थे, लेश्या विशुद्धमान थी। कहा है—

छट्ठेण उ भत्तेण अज्झवसाणेणं सोहणेण जिणो।
लेस्साहि विसुज्झंतो आरुहई उत्तमं सीयं॥

—आया० श्रु० २। अ १५। गा० १२१

अस्तु जब भगवान के अध्यवसाय शुभ थे तथा लेश्या विशुद्धमान थी—तब जोग भी शुभ थे। जैन सिद्धान्तदीपिका में कहा है—

"परिणामविशेषः करणम्।"

—प्र० ५। ७

अर्थात् आत्मा के परिणाम विशेष को करण कहते हैं। यह करण की अन्य परिभाषा है। संयमी साधुओं के ध्यान आदि के द्वारा जो शुभ योग का निरोध होता है यह अयोग संवर का ही एक अंश है।[1] अयोग संवर शैलेशी अवस्था (शैल-ईश) मेरु—उसकी तरह अडोल अवस्था चौदहवें गुणस्थान में होती है।

योगनिरोध—मनोवाक्-काय के निरोध को भी ध्यान कहा जाता है। यह ध्यान केवली के होता है। शुक्लध्यान के चार भेद हैं जिसमें सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति ध्यान में एक काययोग होता है तथा समुच्छिन्नक्रियाऽनिवृत्ति ध्यान में योग नहीं होता है।

देहविवित्तं पेच्छइ अप्पाणं तह य सव्वसंजोगे।

—ध्याश० गा० ९२

शरीर और आत्मा को तथा सभी संयोगों को आत्मा से भिन्न मानना यह विवेक है।

---

१. जैन सिद्धांतदीपिका ५। १२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योगरहित होने के कारण प्रथम समय सिद्ध की गति तिरछी नहीं होती है।

तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तक मिथ्यादृष्टि में तिर्यंचायु व मनुष्यायु का बंध संभव है, शेष देवायु-नरकायु और वैक्रियषटक् का बंध नहीं होता है। गोम्मटसार में कहा है कि द्वीन्द्रियादि असंज्ञी में सास्वादान समकित शरीर पर्याप्ति की पूर्णता के पूर्व होती है बाद में नहीं। मिश्रकाययोग के काल में लब्ध्यपर्याप्तक के सिवाय अन्य के आयुबंध नहीं होता है।[1] यह सास्वादान सम्यग्दृष्टि गुणस्थान की अपेक्षा कहा है।

गोम्मटसार की मान्यता के अनुसार असंज्ञी जीव जब तक सास्वादान गुणस्थान में होते हैं तब उनके केवल औदारिकमिश्रकाययोग व कार्मणकाययोग होता है उस समय आयुध्य का बंधन नहीं करते हैं। कार्मणकाययोग में किसी भी प्रकार का आयु बध नहीं होता है। परन्तु औदारिकमिश्रकाययोग में देवायु व नरकायु का बंध नहीं होता है, मनुष्य व तिर्यंच का आयु बंध सकता है। आयु एक पर्याय में एक बार से आठ बार तक बंधती है।

उदय के अन्त को उदय व्युच्छित्ति कहते हैं। गोम्मटसार में कहा है —

(अपुव्वम्मि) छच्चेव णोकषाया अणियट्टी भागभागेसु ।।२६९।।
टीका-अपूर्वकरणे हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्साः षट्

—गोक० गा० २६९। टीका

अपूर्वकरण में हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा ये छह नोकषाय उदय से व्युच्छिन्न होती है। उदय और उदीरणा के स्वामीपने में कोई अन्तर नहीं है। प्रमत्त, सयोगी और अयोगी—इन तीन गुणस्थानों को छोड़कर अन्य गुणस्थानों में उदय के समान ही उदीरणा जानना। संक्लेश परिणामों के बिना इनकी उदीरणा नहीं होती है।

बादर पर्याप्त पृथ्वीकायिक जीव के ही आतय नामकर्म का उदय होता है। उच्च गोत्र का उदय मनुष्य और सब प्रकार के देवों में होता है। विवक्षित भव के प्रथम समय में ही उस भव संबंधी गति, आनुपूर्वी और आयु का उदय एक साथ ही एक जीव के होता है। गोम्मटसार में कहा—मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में मिश्रमोहनीय व सम्यक्त्व मोहनीय का उदय नहीं होता है। मिश्रगुणस्थान में मिश्रमोहनीय का उदय होता है व चतुर्थ गुणस्थान में मिश्रमोहनीय व मिथ्यात्वमोहनीय का उदय नहीं होता है। दूसरे गुणस्थान में भी अनंतानुबंधीय कषाय चतुष्क का उदय होता है।

---

१. मिश्रकाययोगकाले लब्ध्यपर्याप्तकान्यस्य आयुर्बंधाभावात् नरकतिर्यगायुषोरपनयात्।

—गोक० गा० ११७। टीका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपवाद और एकांतानुवृद्धि योगों को छोड़कर पृथ्वीकायिकों में कुछ कम बाईस हजार वर्ष तक परिणाम योगों के साथ प्रायः अवस्थान पाया जाता है। अप्कायिक, वायुकायिक वनस्पतिकायिकों के पर्याप्त व अपर्याप्त योग से पृथ्वीकायिकों का पर्याप्त व अपर्याप्तयोग असंख्यातगुणा होता है। एकेन्द्रियों से त्रसों का योग असंख्यातगुणा होता है। बादर पृथ्वीकायिकों में पर्याप्तभव बहुत और अपर्याप्त भव थोड़े होते हैं।[1]

जो वह गणनकृति है वह अनेक प्रकार की है—

यथा— १—एक संख्या नोकृति है।

२—दो संख्या कृति और नोकृति रूप से अवक्तव्य है।

३—तीन को आदि लेकर संख्यात, असंख्यात व अनंत कृति है।

१—नोकृति संकलना—जैसे १, २, ३, ४, ५, ६, ७ आदि।

२—अवक्तव्य संकलना—२, ४, ६, ८, १०, १२, १४ आदि।

३—कृति-संकलना—३, ६, ९, १२ आदि ; ४, ८, १२, १६ आदि ; ५, १०, १५, २० आदि।

लेश्या मार्गणा औदयिक है, क्योंकि कषायानुविद्ध योग को छोड़कर लेश्या का अभाव है अर्थात् कषायानुरंजित योग प्रवृत्ति को लेश्या कस्ते हैं।[2]

सम्यक्त्व मार्गणा कथंचित् औदयिक है क्योंकि दर्शन मोहनीय के उदय से मिथ्यात्व की उत्पत्ति होती है।

जो किया जाता है वह कृति है अथवा मूलकरण ही कृति है। विवक्षित शरीर के परमाणुओं की निर्जरा के बिना जो संचय होता है उसे संघातनकृति कहते हैं। उन्हीं विवक्षित शरीर के पुद्गल स्कंधों को संचय के बिना जो निर्जरा होती है वह परिशातनकृति है। तथा विवक्षित शरीर के पुद्गल स्कंधों का आगमन और निर्जरा का एक साथ होना संघातन-परिशातनकृति है। अयोगी केवली के योगाभाव होने से बंध नहीं होता है अतः इनके दो शरीरों की परिशातनकृति होती है।

सम्यक्त्ववेदनीय को मोहनीयकर्म क्यों कहा जाता है। क्योंकि वह प्रशमादि परिणाम का कारण होने से दर्शन में मोह उत्पन्न नहीं करता है। वस्तुतः सम्यक्त्ववेदनीय मिथ्यात्वमोहनीय की प्रकृति है परन्तु उनके पुद्गल विशुद्ध होने से क्षयोपशम सम्यक्त्व को प्रतिबंध नहीं करते हैं। वस्तुतः उससे देश भंगरूप अतिचार का संभव है। तथा वह औपशमिक तथा क्षायिक सम्यग्दर्शन में मोह उत्पन्न करता है—उनको रोकता है अतः दर्शनमोहनीय कहा जाता है। इस कर्म के उदय में योग पन्द्रह मिल सकते हैं।

---

१. षट्खंडागम ४। २, ४। ७ पुस्तक १०, पृ० ३३

२. षट्खंडागम ४। १। ६६ पुस्तक ९ पृ० ३१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नामकर्म की एक प्रकृति आनुपूर्वी नाम है। इस प्रकृति में केवल कार्मणकाययोग मिलता है। हल और गोमूत्रिका के आकार अनुक्रमतः दो, तीन और चार समय प्रमाण विग्रहगति से दूसरे भव में उत्पत्ति स्थान में जाते हुए जीव की आकाश प्रदेश की श्रेणि के अनुसार नियत गमन की परिपाटी क्रम को आनुपूर्वी कहा जाता है। वह विपाक से वेदन करने योग्य नामकर्म की कारण में कार्य के उपचार से आनुपूर्वी नाम चार प्रकार का कहा है १—नरयिकानुपूर्वीनाम, २—तिर्यंचानुपूर्वीनाम, ३—मनुष्यानुपूर्वीनाम और देवानुपूर्वीनाम।

आगम साहित्य में अकषायसमुद्घात का भी उल्लेख मिलता है। आहारकसमुद्घात करने वाले जीव उत्कृष्ट चार हो सकते हैं लेकिन केवलीसमुद्घात वाले उत्कृष्ट शतपृथक्त्व हो सकते हैं (दो सौ से नव सौ तक की संख्या को शतपृथक्त्व कहते हैं।) केवलिसमुद्घात के करने के एक समय पूर्व वेदनीयकर्म के प्रदेश से बहुप्रदेशी वाले व आयुष्यकर्म के प्रदेश सबसे थोड़े प्रदेश वाले होते हैं। नित्यनिगोद व इतरनिगोद की योनि सात-सात लाख है। आहारकमिश्रकाययोग के समय आहारकमिश्रकाययोग नहीं होता है। सयोगीकेवली के नाम और गोत्र कर्म की उदीरणा होती है। सूक्ष्म संपरायचारित्र में एक भी समुद्घात नहीं है।

दिगम्बरमतानुसार पांच लोक है—ऊर्ध्वलोक, तिर्यग्लोक, नीचालोक, मनुष्यलोक व सामान्यलोक।

आठ कर्मों के क्षीण हो जाने पर जो ऊर्ध्वगमनोपलम्बी क्रिया होती है वह जीव का स्वाभाविक गुण है क्योंकि वह कर्मोदय के बिना प्रवृत्त होती है। स्वस्थित प्रदेश को न छोड़ते हुए अथवा छोड़कर जो जीवद्रव्य का अपने अवयवों द्वारा परिस्पन्द होता है वह अयोग है। क्योंकि वह कर्मक्षय से उत्पन्न होता है। अतः सक्रिय होते हुए भी सशरीरी जीव अयोगी सिद्ध होते हैं। क्योंकि उनके जीवप्रदेशों के तप्तायमान जल प्रदेशों के सदृश उद्वर्तन और परिवर्तन रूप क्रिया का अभाव है अतः अयोगियों को अबंधक कहा है।

क्षायिकलब्धि से जीव अयोगी होता है। दिगम्बर ग्रन्थों में चार प्रकार के (औषधिदान, शास्त्रदान, अभयदान और आहारदान) दानों में शास्त्रदान की बड़ी महिमा है। कहा है—

अत्ता दोसविमुक्को पुव्वापरदोसवज्जियं वयणं।

अर्थात् जिसमें कोई दोष नहीं है वह आप्त है और जिसमें पूर्वा पर विरोधरूपी दोष न हो—वह वचन आगम है।

आगम, सिद्धान्त-प्रवचन—ये एकार्थवाची है। आगम में निर्ग्रन्थों के प्रवचन को सिद्धांत कहा है।

षट्खण्डागमानुसार एकेन्द्रिय में चार समय की अन्तराल गति हो सकती है। उसमें प्रथम तीन समयों में कार्मणकाययोग उपलब्ध होता है। उनके मतानुसार छद्मस्थ का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनाहारककाल तीन समय बन सकता है। चतुर्थ समय में औदारिकमिश्रकाययोग बनता है।

कष् + आय-अर्थात् जिससे संसार की आय हो उसे कषाय कहते हैं। अपर्याप्त-अवस्था (मनुष्य वा तिर्यंच) में विभंग ज्ञान नहीं होता है।

मिश्रमोहनीय का उदय सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में ही होता है। सम्यक्त्व मोहनीय कर्म का उदय असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान आदि चार गुणस्थानों में क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि के ही होता है। सास्वादान सम्यग्दृष्टि जीव मरकर नरकगति को नहीं जाता है—ऐसा गोम्मटसार में कहा है। अपूर्वकरण में हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा ये छह नोकषाय का उदय से व्युच्छिन्न होती है।[1] योगरहित जीव अयोगी केवली में उदय प्रकृतियों की उदीरणा नहीं होती है। अतः अयोगी केवली के उदीरणा नहीं है। गोम्मट-सार की मान्यतानुसार मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृति का उदय नहीं है, मिथ्यात्वमोहनीय का उदय है। गोम्मटसार में कहा है कि असंयत आदि चार गुण-स्थानों में से किसी एक में तीन करणों के द्वारा अनंतानुबंधी कषाय चतुष्क का विसंयोजन हुआ। उसके पश्चात् दर्शन मोहनीय कर्म की क्षपणा तो कर सका और संक्लेश परिणाम के द्वारा मिश्रमोहनीय कर्म के उदय से मिश्रगुणस्थानवर्ती हुआ। उसके अनतानुबंधी का उदय नहीं होता है। अपूर्वकरणगुणस्थान के प्रथम भाग में श्रेणी चढ़ते समय मरण नहीं होता है। उपशातकषाय, क्षीणमोह और सयोगकेवली के एक समय की स्थिति लेकर साता वेदनीय कर्म का ही बंध होता है। यह बंध योग के कारण होता है। इन गुणस्थानों में कषाय का अभाव है। अयोगकेवली के योग भी नहीं है अतः बंध भी नहीं है। देवायु की उत्कृष्ट स्थिति अप्रमत्तगुणस्थान के अभिमुख प्रमत्तसंयत मुनि ही बांधता है। फल देने रूप परिणमन को तो उदय कहते हैं और असमय में ही अपक्व कर्म का पकना उदीरणा है।

पूजा का अर्थ है—समर्पण। भक्ति व श्रद्धा के बिना भाव पूजा नहीं हो सकती है। आगमों में द्रव्य तीर्थङ्कर की पूजा का कोई उल्लेख नहीं मिलता है परन्तु नागदेव-यक्षदेव आदि देवों की द्रव्य पूजा की ऐसा उल्लेख है। प्रशस्त योगों के बिना भाव पूजा नहीं हो सकती है। लोकांत में पर्याप्त बादर वायुकाय है परन्तु अपर्याप्त बादर वायुकाय नहीं है।

जैसे उदर की पाचक शक्ति के अनुरूप आहार का ग्रहण होता है, उसी प्रकार तीव्र-मंद या मध्यम जैसा कषाय भाव होता है उसके अनुरूप कर्मों में स्थितिबंध और अनुभाग-बंध होता है। यह आत्मा लोकाकाश के समान असंख्यातप्रदेशी होने से सप्रदेशी है।

स्व और पर का भेद ज्ञान न होने पर जो जीव संकल्प-विकल्प करता है उसे अध्यवसान कहते हैं। यही बंध का कारण है। यह कषाय के उदयरूप होता है। कषाय के उदय से ही कर्मों में स्थितिबंध और अनुभागबंध होता है। कषाय के उदय के अभाव

१. गोक० गा० २६८। टीका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में केवल योग से प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध होते हैं। अतः बंध का प्रमुख कारण कषायोदय-रूप अध्यवसान ही होता है।

प्रथम और तीसरे गुणस्थान में बंध के मिथ्यात्व आदि पांच कारण होते हैं। दूसरे, चौथे, पांचवें में बंध के कारण चार होते हैं। छट्ठे में प्रमाद-कषाय-योग रहते हैं। सातवें से दसवें तक कषाय और योग दो ही कारण होते हैं। आगे तेरहवें तक केवल एक योग रहता है। अतः दसवें तक चारों बंध होते हैं। आगे केवल प्रकृतिबंध-प्रदेशबंध ही होते हैं। दूसरे गुणस्थान में मिथ्यात्व का उदय न होने पर भी अनंतानुबंधी कषाय का उदय रहता। कहा है—

"कर्मणा बध्यते जन्तुः।"

—महाभारत

अर्थात् प्राणी कर्म से बंधता है और कर्म की परम्परा अनादि है। "बुद्धिः कर्मानुसारिणी" अर्थात् प्राणियों की बुद्धि कर्म के अनुसार होती है। कर्म के दो भेद हैं—द्रव्यकर्म और भावकर्म। द्रव्यकर्म के आठ मूल भेद हैं। भावकर्म चैतन्य के परिणामरूप क्रोधादि भाव है। कहा है—

पुग्गलपिंडो दव्वं तस्सत्तो भावकम्मं तु ॥६॥

टीका—पिण्डगतशक्तिः कार्ये कारणोपचारात् शक्तिजनिता-ज्ञानादिर्वा भावकर्म भवति। —गोक०

अर्थात् पुद्गल के पिण्ड को द्रव्यकर्म कहते हैं और उसमें जो शक्ति है उसे भावकर्म कहते हैं। उस पुद्गल पिण्ड में रहने वाली फल देने की शक्ति भावकर्म है अथवा कर्म में कारण के उपचार से उस शक्ति से उत्पन्न अज्ञानादि भी भावकर्म है। समयसार में शुद्ध जीव के स्वरूप के वर्णन में लिखा है—गुणस्थान, मार्गणास्थान, योगस्थान आदि जीव के नहीं है। पूज्य होने से ज्ञान को पहले कहा है क्योंकि व्याकरण के सूत्र में कहा है कि अल्प अक्षर वाले से जो पूज्य होता है उसका पूर्व निपात होता है। उसके पश्चात् दर्शन कहा है।

कार्मणकाययोगी जीव में तीन समुद्घात होते हैं—वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात तथा केवलीसमुद्घात। कर्मप्रकृति तथा गोम्मटसार के अनुसार दूसरे गुणस्थान में अनंतानुबंधीय चतुष्क कषाय का उदय माना है। दूसरे गुणस्थान से पतित होकर प्रथम गुणस्थान में आता है, ऊपर के गुणस्थान में ऊर्ध्वारोहण नहीं करता है। मारणान्तिक-समुद्घात, वैक्रियसमुद्घात, तैजससमुद्घात, आहारकसमुद्घात में कार्मणकाययोग नहीं होता है क्योंकि वे समुद्घात आहारक अवस्था में होते हैं। अंगारमर्दनाचार्य जो अभवि थे। इन्होंने अनेकों व्यक्तियों को सम्यक्त्वी बनाया व संयती बनाया। पर स्वयं सम्यक्त्व को प्राप्त नहीं कर सके। यद्यपि अभवि में योग १३ होते हैं। आहारककाययोग व आहारकमिश्रकाययोग अभवि में नहीं होता है। गोम्मटसार के टीकाकार ने कहा है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"स्त्रीनपुंसकोदये आहारकर्द्धिमनःपर्ययपरिहारविशुद्धयो नहि।"

—गोजी० गा० ७२८। टीका

अर्थात् स्त्रीवेद तथा नपुंसकवेद का उदय रहने से आहारकऋद्धि, मनःपर्ययज्ञान तथा परिहारविशुद्धसंयत नहीं होता है। कर्मप्रकृति तथा गोम्मटसार आदि ग्रन्थों में प्रथम दो गुणस्थान में अन्तानुबंधीय चतुष्क का उदय माना है।

कार्मणवर्गणा राशि का प्रमाण सिद्धराशि के अनन्तवें भाग है। द्रव्यार्थिकनय से परमाणु निरंश है। एक समय हीन मुहूर्त को भिन्न मुहूर्त कहते हैं। यह उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है। परमाणु एक प्रदेशी ही होता है।

तत्काल पुरुष वेद का जो नवीन बंधा हुआ है उसके निषेक पुरुष वेद का उपशमन करने के काल में उपशम करने योग्य नहीं हुए थे। क्योंकि अचलावली में कर्मप्रकृति को अन्य रूप परिणमाना अशक्य होता है। इससे पुरुष वेद के निषेक मध्यम क्रोध युगल का उपशम करने के काल में उपशम किये जाते हैं। इसी प्रकार संज्वलन क्रोधादि के भी नवबंधक का स्वरूप जानना। अनन्तर संज्वलन क्रोध का उपशम करता है। उसके अनन्तर उस सज्वलन क्रोध के नवीन बंध सहित अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान मान युगल का उपशम करता है। उसके अनंतर संज्वलन मान का उपशम करता है। उसके अनन्तर संज्वलन मान के नवीन बंध सहित मध्यम अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान माया युगल का उपशम-करता है। उसके अनन्तर संज्वलन माया का उपशम करता है। उसके अनन्तर संज्वलन माया के नवीन बंध सहित मध्यम अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान लोभ को उपशमाता है। उसके अनन्तर बादर संज्वलन लोभ को उपशमाता है। यह विशेष केवल मोहनीय कर्म का ही जानना, क्योंकि मोहनीय के सिवाय अन्य कर्मों का उपशम नहीं होता है।

किसी व्यक्ति ने गौतम स्वामी से संथारा ग्रहण किया। गौतम स्वामी ने धर्मोपदेश दिया। वे जहाँ तक रहे—शुभ योग की प्रवृत्ति थी। उनके जाने के बाद परिणाम अशुभयोग में परिणत हो गये। स्त्री में आसक्त हुआ—मरकर द्वीन्द्रिय जीव में उत्पन्न हुआ। क्योंकि अशुभ योग के साथ अशुभ लेश्या भी थी।

टीकाकार के अनुसार बारह वर्ष तक की कुमारी अप्राप्त यौवना होती है। वाचिक क्रोध तो बुरा है ही, पर इससे भी अधिक बुरे हैं आत्म-प्रदेशों में व्याप्त क्रोध के अणु। वे कभी-कभी अशुभ योग की तीव्रता को निमन्त्रण देते हैं।

पांच आस्रव द्वार में पांचवाँ आस्रव योग है। इसका सम्बध-मन, वचन और काया की प्रवृत्ति से है। चूंकि प्रवृत्ति तेरहवें गुणस्थान तक चलती है अतः योग आस्रव भी तेरहवें गुणस्थान तक रहता है। जिस दिन सम्पूर्ण योग आस्रब समाप्त हो जाता है यानि व्यक्ति अयोग-अवस्थामें पहुँच जाता है, तभी कर्म का अन्तिम रूप से बंधन रुकता है। किसी कवि ने कहा है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"विकार हेतौ सति विक्रियन्ते, येषां न चेतांसि त एव धीराः ।"

अर्थात् विकार । कषाय का निमित्त पाकर भी जिनका मन विकृत नहीं होता, कषाय उत्तेजित नहीं होती, वे ही धीर पुरुष है । उत्तेजनात्मक मन-अशुभ योग आस्रव है । दुष्प्रवृत्ति-अशुभ योग से पापकर्म का बंधन होता है । संतोषी व्यक्ति सहज रूप से दुष्प्रवृत्तियों से बचता रहता है । एक दृष्टि से देखा जाए तो सब पापों का मूल असंतोष यानी लोभ है । अतः लोभ को पाप का बाप कहा जाता है । असंतोषी व्यक्ति की आकांक्षाएँ कभी पूरी नहीं हो सकती ।

अशुभ मन, वचन और काययोग की प्रवंचना से जो क्रिया लगती है—वह माया क्रिया है । वीतराग असत्प्रवृत्ति नहीं करते । क्योंकि असत् प्रवृत्ति के कारण—प्रमाद, कषाय और अशुभ योग का वहाँ सर्वथा अभाव है लेकिन योगों की शुभ प्रवृत्ति से पुण्य का बंधन होता रहता है । पुण्य भी बंधन है अतः त्याज्य है । पूर्व संचित कर्मों की स्थिति पूरी हो जाए, योगों का प्रकम्पन रुक जाए, वीतराग कर्म से सर्वथा अकर्म की स्थिति में चले जाएं, उसके बाद बंधन का रास्ता बन्द हो जाता है ।

अशुभ योग जन्य क्रिया आरंभिया क्रिया कहलाती है । जब तक मन, वचन और काय की असत् प्रवृत्ति (अशुभ योग) रहती है, तब तक यह क्रिया होती रहती है । छट्ठे गुणस्थान के साधु भी अशुभ योग की प्रवृत्ति के कारण आरंभी है । छट्ठे गुणस्थान से आगे के सभी गुणस्थान अनारंभी है क्योंकि वहाँ अशुभ योग का सर्वथा अभाव है ।

अयोगी जीव के प्रदेश अचलित होते हैं । मुक्त जीव अपने स्थान में अचलित होते हैं । विग्रह गति में कार्मण काययोग है फिर भी जीव-प्रदेश चलित है ।

जो उपशम सम्यक्त्व से गिरकर जब तक मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं होता है तब तक उसे सासादन सम्यक्त्व जानना चाहिए । चारित्र मोहनीय की अपेक्षा अनंतानुबंधी का उदय होने से औदयिक भाव वाला है । अनिवृत्ति करण में भय नोकषाय का विच्छेद हो जाता है ।

वर्तमान काल की परिमाण एक समय है । सयोगी केवली—जिनमें नियम से योग की अपेक्षा ही अपर्याप्त आलाप होता है । केवली समुद्घात के समय जब औदारिकमिश्र काययोग व कार्मण काययोग होता है तब अपर्याप्त आलाप होता है, ऐसा गोम्मटसार में कहा है । आठवें गुणस्थान में दो समकित मिलती है—औपशमिक और क्षायिक सम्यक्त्व ।

नववें गुणस्थान के पंचम भाग में भी एक लोभ होता है वह बादर रूप में लोभ है । उससे मोह कर्म का बंध होता है । दसवें गुणस्थान में सूक्ष्म लोभ होता है परन्तु मोह कर्म का बंध नहीं होता है । सिन्दुर प्रकरण में सोमचंद्रसूरि ने कहा है कि जो समय को नियोजित करना जानता है वह धर्म की आराधना सम्यग् प्रकार कर सकता है । क्षयोपशम सम्यक्त्व में सम्यक्त्व मोहनीय का मंद विपाकोदय-प्रदेशोदय रहता है । चूंकि दर्शन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोहनीय कर्म का क्षयोपशम सातवें गुणस्थान तक है। वेदकसम्यक्त्व में एक समय की स्थिति रूप सम्यक्त्व मोहनीय कर्म का प्रदेशोदय रहता है उसके बाद जीव क्षायिक सम्यक्त्वी बन जाता है। अयोगी केवली में उदीरणा नहीं है।

अनुयोगद्वार में अजीवोदय निष्पन्न के ३० बोल कहे हैं—उनमें पांच शरीर, ५ शरीर के प्रयोग में परिणत पुद्गल द्रव्य, ५ वर्ण, २ गंध, ५ रस और ८ स्पर्श है। प्रयोग परिणत पुद्गल का परिणमन मन, वचन और काययोग के द्वारा होता है। अनुयोगद्वार के टीकाकार ने कहा है—"शरीर पर्याप्ति का निर्माण होने के बाद प्रत्येक जीव क्षण-क्षण शरीर वर्गणा के नए पुद्गलों का ग्रहण, परिणमन और उत्सर्जन करता रहता है। पांच शरीरों द्वारा गृहीत और प्रयोग में लिए गये पुद्गल प्रयोग-परिणत पुद्गल है। कतिपय विद्वानों की यह परंपरागत धारणा रही है कि नख, केश, रोम आदि शरीर के प्रयोग में परिणत पुद्गल द्रव्य है—यह अर्थ शास्त्र सम्मत नहीं है।

पदस्थ ध्यान यानी शब्दों का ध्यान। केवली, अतिशयधारी के शब्द पर ध्यान करना, मंत्र पर ध्यान यानी शब्दों का ध्यान—पदस्थ ध्यान में आता है। हमारा सारा श्रुत ज्ञान शब्द पर आधृत है। अपने स्वभाव में रमण करना, स्वभाव की स्मृति, चिन्तन करना—ये सब अमूर्त आत्मा के ध्यान की प्रक्रियाएं है। दो प्रकार के तत्त्व है—हेतुगम्य और अहेतुगम्य। हेतुगम्य तत्त्व वह होता है, जो युक्ति के द्वारा बोधगम्य हो सके। अहेतुगम्य तत्त्व के संदर्भ में न कोई तर्क चलता है और न कोइ युक्ति काम में आती है।

गणाधिपति पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी ने कहा है—"तीनों योगों के व्यापार अलग-अलग है। जहाँ वचनयोग अशुभ होता है, वहां मनोयोग और काययोग शुभ हो सकते हैं। काययोग शुभ है, वहां मनोयोग और वचनयोग अशुभ हो सकते हैं। तीनों योग एक साथ शुभ या अशुभ ही हों, यह आवश्यक नहीं है। कोई श्रावक साधु को वंदन करने के लिए जाता है। उस समय उसका मनोयोग शुभ हो सकता है और वचनयोग और काययोग अशुभ हो सकते हैं। कभी काया और वचनयोग शुभ हो सकते हैं, मनोयोग अशुभ हो सकता है। कभी-कभी तीनों योग शुभ हो सकते हैं। शुभयोग की प्रवृत्ति एकांत निर्जरा-धर्म है और अशुभयोग की प्रवृत्ति पाप है। इस प्रकार एक क्रिया करते समय तीनों योगों की प्रवृत्ति अलग-अलग हो सकती है। अस्तु तीनों योगों के व्यापार को अलग-अलग मानने में कोई आपत्ति नहीं है। सिद्धांतत: तीनों योगों का व्यापार अलग-अलग हो सकता है।"[1]

आचार्य कुन्दकुन्द ने मोक्ष प्राभृत में कहा है—

"सुहेण भाविदं णाणं दुहे जादे विणस्सदि।
तम्हा जहा बलं जोई अप्पा दुक्खेहि भावए ॥"

---

१. बिज्ञप्ति—वर्ष १, अंक १४, २७ जुलाई १९९५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् सुख से भावित ज्ञान दुःख उत्पन्न होने पर नष्ट हो जाता है, अतः योगी को यथाशक्ति अपने आपको दुःख से भावित करना चाहिए। सूक्ष्म सम्पराय चारित्र में मोहनीय कर्म की भी उदीरणा हो सकती है। यद्यपि इस गुणस्थान में बादर कषायों का उदय नहीं है। आचारांग में कहा है—"पत्तेयं पुण्णपावं" अर्थात् पुण्य और पाप हर व्यक्ति के अपने-अपने होते हैं। पुण्य और पाप के भोग में निमित्तों का योग भी रहता है, पर उपादान व्यक्ति स्वयं होता है।

योग शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में होता है। इन अर्थों में दो अर्थ योग अर्थात् मिलन और समाधि अधिक प्रसिद्ध है। वर्तमान युग में योग एक प्रकार की साधना पद्धति अर्थात् आसन प्रयोग के अर्थ में काफी प्रचलित है। जैन शास्त्रों में योग शब्द इन सबसे भिन्न अर्थ में आता है। शास्त्र प्रचलित अर्थ के अनुसार योग को परिभाषित करते हुए तत्त्वार्थ सूत्र में लिखा गया है—"कायवाङ्मनोव्यापारो योगः।" शरीर, वाणी और मन की प्रवृत्ति का नाम योग है। जैन सिद्धांत दीपिका व कालूशतक में इसी अर्थ में योग शब्द का प्रयोग हुआ है।

योग शुभ और अशुभ दोनों प्रकार का होता है। उसके सावद्य और निरवद्य—ये दो भेद भी उपलब्ध है। पर मूलतः उसके तीन भेद हैं—मनोयोग, वचनयोग और काययोग। योग एक प्रकार का स्पन्दन है, जो आत्मा और पुद्गलवर्गणा के संयोग से होता है। अध्यवसाय, परिणाम और लेश्या भी एक प्रकार से स्पन्दन ही है। पर वे अतिसूक्ष्म स्पन्दन है। इसलिए सामान्यतः पकड़ में नहीं आते। योग स्थूल स्पन्दन है। शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार वीर्यान्तराय कर्म का क्षय या क्षयोपशम तथा नामकर्म के उदय से मन, वचन और कायवर्गणा के संयोग से आत्मा की जो प्रवृत्ति होती है वह योग कहलाता है।

पुद्गलवर्गणा के संयोग से आत्मा में जो स्पन्दन होता है। वह मूलतः एक ही प्रकार का है पर विवक्षा या निमित्त भेद के आधार पर उसे तीन रूपों में विभक्त कर दिया गया है। मन, वचन और शरीर की प्रवृत्ति में जो पौद्गलिक शक्ति काम में आती है, वह योग नहीं किन्तु पर्याप्ति है। उस पौद्गलिक शक्ति में प्रयोग का नाम योग है।

मन, वचन और काययोग—इन तीनों योग में काययोग प्रत्येक प्राणी में होता है। संसार भर के प्राणी दो वर्गों में बंटे हुए हैं। स्थावर प्राणियों में केवल काययोग होता है। दो इन्द्रिय वाले जीवों से लेकर चार इन्द्रिय वाले जीवों तथा असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में काययोग और वचनयोग होते हैं। संज्ञी मनुष्य और तिर्यंच जीवों में काययोग, वचनयोग और मनोयोग तीनों योग होते हैं।

लेश्या का अर्थ है—तैजस शरीर के साथ काम करने वाली चेतना अथवा भाव-धारा। भाव और विचार ये दो अलग-अलग तत्त्व है। भाव अंतरंग तत्त्व है। उसके निर्माण में ग्रन्थितंत्र का सहयोग रहता है। विचार का सम्बन्ध कर्म से है। इसका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्माण नाड़ी तंत्र से होता है। कृष्ण आदि रंगों से प्रभावित भावधारा शुभ-अशुभ रूप में परिणत होती है। अस्तु भावधारा के निर्माण में रंगों का बहुत बड़ा हाथ रहता है।

आहारक शरीर योगजन्यलब्धि है। यह चतुर्दश पूर्वधर मुनियों के ही हो सकती है। आहारकशरीर पूरा बनकर जो प्रवृत्ति करता है वह आहारककाययोग कहलाता है।

आहारकशरीर अपना काम सम्पन्न कर पुनः औदारिकशरीर में प्रवेश करता है। जबतक उसका काम पूरा नहीं होता, तब तक औदारिककाययोग के साथ आहारककायमिश्र होता है। वह आहारकमिश्रकाययोग कहलाता है।

तैजस शरीर का स्वतन्त्र रूप से कोई प्रयोग नहीं होता, अतः तैजस काययोग नहीं होता। उसका समावेश कार्मणकाययोग में हो जाता है।

एक भव से दूसरे भव में जाते समय जब जीव अनाहारक रहता है उस समय होने वाले योग का नाम कार्मणकाययोग है।

केवली समुद्घात के तीसरे, चौथे और पांचवें समय में होने वाला योग भी कार्मण-काययोग कहलाता है।

इस प्रकार मन, वचन और काययोग के सब भेदों को मिलाने से योग के पन्द्रह भेद हो जाते हैं।

(क) विशिष्ट शक्ति सम्पन्न योगी आहारकलब्धि का प्रयोग करता है। जबतक आहारक शरीर पूरा नहीं बन जाता, तबतक आहारककाययोग के साथ औदारिक का मिश्र होता है।

(ख) केवली समुद्घात के समय दूसरे, छट्ठे और सातवें समय में कार्मणकाययोग के साथ औदारिकमिश्र होता है।

(ग) वैक्रियलब्धि वाले मनुष्य और तिर्यंच वैक्रिय रूप बनाते हैं, जबतक रूप-निर्माण का कार्य पूरा नहीं होता, तबतक वैक्रियकाययोग के साथ औदारिक का मिश्र होता है।

देव, नारक, वैक्रियलब्धि सम्पन्न मनुष्य, तिर्यंच एवं वायुकाय के वैक्रियशरीर होता है। वैक्रियशरीर की प्रवृत्ति काययोग है।

वैक्रियमिश्रकाययोग दो प्रकार से हो सकता है—

(क) देवता और नारकी में उत्पन्न होने वाला जीव आहार ग्रहण कर लेता है, पर शरीर पर्याप्ति को पूरा नहीं करता है, तबतक कार्मणकाययोग के साथ वैक्रिय का मिश्र होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ख) औदारिकशरीर वाले मनुष्य और तिर्यंच वैक्रियलब्धि का प्रयोग कर वैक्रिय रूप बनाते हैं। उस लब्धि को समेटते समय जबतक औदारिकशरीर पूरा नहीं बनता है तबतक औदारिककाययोग के साथ वैक्रिय का मिश्र होता है।

मन हमारी प्रवृत्ति का सूक्ष्म किन्तु प्रमुख कारण है। मन के द्वारा होने वाला आत्मा का प्रयत्न मनोयोग है। उसके चार भेद है।

१—सत्य के विषय में होने वाली मन की प्रवृत्ति सत्य मनोयोग है।

२—असत्य के विषय में होने वाली मन की प्रवृत्ति असत्य मनोयोग है।

३—सत्य-असत्य के मिश्रण से होने वाली मन की प्रवृत्ति मिश्र मनोयोग है।

४—मन की जो प्रवृत्ति सत्य भी नहीं है, असत्य भी नहीं है। उस प्रवृत्ति का नाम व्यवहार मनोयोग है। इसका सम्बन्ध मुख्यतः आदेशात्मक, उपदेशात्मक चिन्तन से है।

भाषा के द्वारा होने वाला आत्मा का प्रयत्न वचनयोग है। मनोयोग की तरह वचनयोग के चार प्रकार है।

शरीर के द्वारा होने वाला आत्मा का प्रयत्न काययोग है।

काययोग का सम्बन्ध शरीर के साथ है। शरीर पांच है—औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण।

मनुष्य और तिर्यंच गति के जीव औदारिक शरीर वाले होते हैं। औदारिक शरीर वाले स्थूल होते हैं। औदारिक शरीर वाले जीवों की हलन-चलन रूप प्रवृत्ति औदारिक काययोग कहलाती है।

काययोग का दूसरा भेद—औदारिक मिश्र काययोग है। औदारिक का मिश्र कार्मण, वैक्रिय और आहारक इन तीनों शरीरों के साथ होता है। वह चार प्रकार से हो सकता है।

मृत्यु के समय पीछला शरीर छूट जाता है। उसके बाद मनुष्य और तिर्यंच गति में उत्पन्न होने वाला जीव अपने नये उत्पत्ति स्थान में पहुँचकर आहार ग्रहण कर लेता है, पर जब तक शरीर पर्याप्ति का बंध पूरा नहीं होता है तब तक कार्मण काययोग के साथ औदारिकमिश्र होता है।

कर्म बंधन से बचने हेतु मन, वचन और काया के योगों को व उपायों पर नियंत्रण करना होगा। इस प्रकार के पुरुषार्थ से हम अशुभ कर्म को शुभ कर्म बना सकते हैं। कर्म के उदय में आने के पूर्व हम पुरुषार्थ द्वारा उसके परिणामों में परिवर्तन कर सकते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अकषायी या वीतराग के जो बंध होता है, उसे ईर्यापथिक बंध कहा जाता है। ईर्यापथ का अर्थ है योग। योग अर्थात् मन, वचन और काया की प्रवृत्ति। कषाय रहित योग से जो बंध होता है, वह ईर्यायथिक बंध कहलाता है। यह ग्यारवें से तेरहवें गुणस्थान तक होता है। इन गुणस्थानों में आसक्ति या कषाय का अत्यन्त अभाव होने पर भी योगों की चंचलता के कारण बंधन होता है। यह बंध दो समय की स्थितिवाला होता है।

सात समुद्घात में दूसरा समुद्घात कषाय समुद्घात है। इसमें कषाय की तीव्रता से आत्मप्रदेशों का अपने शरीर से तिगुने प्रमाण में बाहर निकालना कषाय समुद्घात है। इस समुद्घात में काययोग की नियमा है परन्तु मन-वचन योग की भजना है।

ज्ञान त्रैकालिक है और दर्शन केवल वर्तमान है। आत्मा की जितनी प्रवृत्ति है, वह योग आत्मा से पहचानी जाती है। द्रव्य आत्मा में गुण और पर्याय है, पर वे विवक्षित नहीं है केवल शुद्ध आत्म-द्रव्य की विवक्षा अन्य पर्यायों की सत्ता होने पर भी उन्हें गौण कर देती है। आत्मा एक त्रैकालिक तत्त्व है।

सयोगी केवली-तेरहवीं श्रेणी में मन, वाणी और शरीर की प्रवृत्ति चालू रहती है। चौदहवीं श्रेणी में पहुँचते ही प्रवृत्ति मात्र का निरोध हो जाता है। इस श्रेणी का नाम है—'अयोगी केवली।'

नोकषाय रूप हास्य दो प्रकार का होता है—स्थित और अट्टहास। स्थित से कषाय का सहारा नहीं मिलता है, अतः वह हेय नहीं है। अट्टहास आगे चल कर कषाय में परिणत हो जाता है।

स्त्रीवेद आदि वेद के साथ जब तक अशुभ योग जुड़े रहते हैं, वेद व्यक्त विकार के रूप में परिणत हो जाते हैं। सातवें गुणस्थान में अशुभ योग नहीं है, इस दृष्टि से वहां व्यक्त विकार भी नहीं है।

अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान कषाय का उपशम या क्षय नववें गुणस्थान में होता है, आठवें में नहीं होता है।

लेश्या का अर्थ है—तैजस शरीर के साथ काम करने वाली चेतना अथवा भाव-धारा।

नववें गुणस्थान के प्रथम समय में मोहनीय कर्म की इक्कीस प्रकृतियों का उदय रहता है। पुण्य का बंध सत्प्रवृत्ति से होता है। सत्प्रवृत्ति—शुभ योग है। पुण्य प्राप्ति के लिए धार्मिक प्रवृत्ति करना वर्जित है। पर पुण्य होगा तो धर्म के साथ ही होगा।

जिस परिणाम से आत्मा में कर्मों का आश्रवण प्रवेश होता है, उसे आश्रव कहते हैं। शुभ योग से कर्मों की निर्जरा होती है, इस दृष्टि से वह मोक्ष का साधक है। आस्रव के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बीस भेदों का उल्लेख यत्र-तत्र उपलब्ध होता है। ये भेद विवक्षाकृत है। इन वर्गीकरण में पांच मूल भेद हैं। शेष पन्द्रह योग आस्रव के अवान्तर भेद है। उन सबका योग आस्रव में समाहार हो जाता है।

योग का अर्थ है—प्रवृत्ति। शरीर, भाषा और मन की शुभ-अशुभ प्रवृत्ति रूप परिणति का नाम योग आस्रव है। जब तक प्रवृत्ति है तब तक बंधन है। अशुभ योग से अशुभ कर्म का बध होता है और शुभ योग से शुभ कर्म का। योग का सर्वथा निरोध होने से अयोग संवर अथवा शैलेशी अवस्था प्राप्त होती है।

चूंकि अशुभ प्रवृत्ति का सम्पूर्ण निरोध व्रत संवर है, और शुभ प्रवृत्ति का सम्पूर्ण निरोध नहीं होता है, उसे अयोग संवर का अंश कहा जाता है। अयोग संवर की स्थिति में पहुँचने के तत्काल वाद जीव मुक्त हो जाता है।

किसी एक आलम्बन पर मन को स्थापित करने अथवा मन, वचन और काय के निरोध को ध्यान कहा जाता है।

समिति का अर्थ है—संयत प्रवृत्ति, संयममय प्रवृत्ति। मन का सर्वथा निग्रह अथवा मन की असंयत प्रवृत्ति का निग्रह।

मन (योग) बल

बारहंगुलदिट्ठतिकालगोयराणंतट्ठ-वंजण-पज्जायाइण्णछदव्वाणि णिरंतरं चिंतिदे वि खेयाभावो मणबलो एसो मणबलो जेसिमत्थि ते मणबलिणो। एसो वि मणबलो लद्धी, विसिट्ठतवोबलेणुप्पज्जमाणत्तादो। कधमण्णहा बारहंगट्ठो मुहुत्तेणेक्केण बहूहि वासेहि बुद्धिगोयरभावण्णो चित्तखेय ण कुणेज्ज।

—षट्० खण्ड० ४। १ सू ३५। पु० ९। टीका

बारह अंगों में निर्दिष्ट त्रिकाल विषयक अनंत अर्थ और व्यंजन पर्यायों से व्याप्त छह द्रव्यों का निरन्तर चिन्तन करने पर भी खेद को प्राप्त न होना मन बल है। यह मनबल जिनके हैं वे मनबली कहलाते हैं। यह मनबल भी लब्धि है, क्योंकि, वह विशिष्ट तप के प्रभाव से उत्पन्न होता है। अथवा बहुत वर्षों से बुद्धिगोचर होने वाला बारह अंगों का अर्थ एक मुहूर्त में खेदखिन्न किससे न करेगा। अर्थात् करेगा ही।

पंचविहा परिण्णा पण्णत्ता, तंजहा—उवहि परिण्णा, उवसग्गपरिण्णा, कषाय-परिण्णा जोगपरिण्णा भत्तपाणपरिण्णा।

—ठाण० स्था ५। उ २। सू १२३

पांच परिज्ञा होती है—यथा—उपधिपरिज्ञा, उपसर्गपरिज्ञा, कषायपरिज्ञा, योग-परिज्ञा और भक्तपान परिज्ञा।

नोट—परिज्ञा अर्थात् परित्याग।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चारित्र और योग

सामायिक चारित्र, छेदोपस्थानीय चारित्र तथा परिहारविशुद्धिक चारित्र कल्प का स्वीकरण शुभ योग में—अप्रमत्त अवस्था में होता है। उस समय तेजो लेश्या प्रभृति पीछे की तीन विशुद्ध लेश्या होती है। पूर्व प्रतिपन्न सामायिकादि तीनों चारित्र को किसी ने पूर्व में प्राप्त किया है तो उसका दोनों योगों (शुभ योग-अशुभ योग) में रहना कथंचित् रहना हो सकता है। पर वह अत्यन्त संक्लिष्ट अशुभयोग में नहीं रहता है न अति संक्लिष्ट लेश्या होती है।

—लेश्या कोश

तथा मिथुनस्य—स्त्रीपुंलक्षणस्य कर्म मैथुनम्-अब्रह्म, तत् मनोवाक्कायानां कृत-कारितानुमतिभिरौदारिकवैक्रियशरीरविषयाभिष्टधा विविधोपाधितो बहुविधतरं वेति।

—ठाण० स्था० १। सू ४८। टीका

स्त्री-पुरुष के संसर्ग से मैथुन क्रिया होती है। वह मन, वचन और काय (योग) की अपेक्षा से तीन प्रकार की तथा इन तीनों के कृत-कारित-अनुमोदित (करता हूँ, कराता हूँ, किये हुए का अनुमोदन करना) की अपेक्षा से नौ भेद हुए।

फिर इन नौ भेदों के औदारिक तथा वैक्रिय शरीर के भेद की अपेक्षा मैथुन क्रिया के कुल अठारह भेद हुए। अथवा अन्य नामों से (उपाधि से) इसके अनेक भेद हैं या हो सकते हैं।

नोट—'मैथुन पाप' अठारह पापस्थानों में एक पापस्थान है। मैथुन आश्रव के बीस भेदों के एक आस्रव भी है। यह अशुभ योग आस्रव का एक भेद है।

योग और सयोगी-जिन में अपर्याप्त आलाप

जोग पडि जोगिजिणे होदि हु णियमा अपुण्णगत्तंतुः।

—गोजी० गा० ७११

सयोगी-जिन में नियम से योग की अपेक्षा ही अपर्याप्त आलाप होता है परन्तु शेष नौ गुणस्थानों में एक पर्याप्त आलाप ही होता है (१, २, ४, ६, १३ बाद)।

मनुष्य में कृष्णापाक्षिक को छोड़ कर अनन्तरोपपन्नक मनुष्य में पाये जाने वाले पैंतीस बोलों में तीसरा और चौथा भंग बताया है। "बंधी, न बंधइ, न बंधिस्सइ" यह चौथा भंग है। यह चौथा भंग चरम शरीरी जीव में ही घटित होता है।

अस्तु गुणस्थानों में से—'मिथ्यादृष्टि, असंयत, सासादन, प्रमत्तसंयत और सयोगी केवली गुणस्थान में प्रत्येक के सामान्य, पर्याप्त, अपर्याप्त—ये तीन आलाप होते हैं। शेष नौ गुणस्थानों में एक पर्याप्त आलाप ही नियम से होता है—ऐसा गोम्मटसार, जीवकाण्ड में कहा है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओघेमिच्छदुगेवि य अयदपमत्ते सजोगठाणम्मि ।
तिण्णेव य आलावा ससेसिक्को हवे णियमा ॥७०९॥

अपर्याप्त आलाप के दो भेद है—लब्ध्यपर्याप्त और निर्वृत्यपर्याप्त । दोनों ही प्रकार का अपर्याप्त आलाप सामान्य मिथ्यादृष्टि में ही होता है । सासादन, असंयत व प्रमत्त संयत में नियम से निर्वृत्यपर्याप्त ही होता है । सयोगी जिनमें नियम से योग की अपेक्षा ही अपर्याप्त आलाप होता है । शेष नौ गुणस्थानों में एक पर्याप्त आलाप ही होता है ।[1] तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तक में एक अपर्याप्त आलाप ही होता है ।

मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तक में एक लब्धपर्याप्त आलाप ही होता है । द्रव्य से पुरुष और भाव से स्त्री रूप प्रमत्त विरत में आहारक शरीर व आहारक अंगोपांग का उदय नियम से नहीं होता है । अपर्याप्त अवस्था में मरण प्रथम गुणस्थान में हो सकता है अन्य गुणस्थानों में नहीं । योग की प्रवृत्ति निरन्तर होती रहती है । प्रवृत्ति के साथ कर्म-बंधन का अविनाभावी संबंध है ।

योग और क्रिया

जीवे णं भंते ! ओरालियसरीरं णिव्वत्तेमाणे कइ किरिए ? गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए, एवं पुढविकाइए वि, एवं जाव मणुस्से ।

जीवा णं भंते ! ओरालियसरीरं णिव्वत्तेमाणा कइ किरिया[1] गोयमा ! तिकिरिया वि, चउकिरिया वि, पंचकिरिया वि, एवं पुढविकाइया वि, एवं जाव मणुस्सा × × × ।

एवं मणजोगं, वयजोगं, कायजोगं, जस्स जं अत्थि तं भाणियव्वं, एए एगत्त-पहुत्तेणं छव्वीसं दंडगा ।

—भग० १७ । उ १ । सू १४, १५

मनोयोग, वचनयोग, काययोग के विषय में जिसके जो हो उसके उस विषय में कहना—

तीन योग का एक वचन-बहुवचन सम्बन्धी पाठ कहना ।

नोट—मनोयोग-वचन-काययोग बनाता हुआ जीव जबतक दूसरे जीवों को परिताप उत्पन्न नहीं करता, तब तक उसे कायिकी, आधिकरणिकी प्राद्वेषिकी—ये तीन क्रियाएं लगती है । जब दूसरे जीवों को परिताप आदि उत्पन्न करता है तब पारितापनिकी सहित चार क्रियाएं लगती है और जब जीव का हिंसा करता है तब प्राणातिपातिकी सहित पाँच क्रिया लगती है ।

---

१. गोम्मटसार, जीवकाण्ड गा० ७०९ से ७११ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनोयोग में १६ दण्डक की पृच्छा करनी चाहिए। (पाँचस्थावर तीन विकलेन्द्रिय। छोड़कर।)

वचनयोग में १९ दण्डक की पृच्छा करनी चाहिए—(पांच स्थावर को छोड़कर)।

काययोग में २४ दण्डक की पृच्छा करनी चाहिए।

प्रशस्तकायविनय के सात प्रकार में एक प्रकार "आउत्तं सव्विंदियजोगजुंजणया—आयुक्त सर्वेन्द्रिय योग युंजनता (सभी इन्द्रिय और योगों की सावधानी पूर्वक प्रवृत्ति करना) विनय है। इसके विपरीत अप्रशस्त काय विनय का एक भेद—अनायुक्त सर्वेन्द्रिय-योग-युंजनता (असावधानी से सभी इन्द्रियों और योगों की प्रवृत्ति करना) है।

भावयोग की विशुद्धि-आभ्यन्तर आत्मभूत हेतु है।

तन्निमित्तो भावयोगो वीर्यान्तरायज्ञानदर्शनावरणक्षयक्षयोपशम आत्मनः प्रसादश्चात्मभूत इत्याख्यामर्हति।

—तत्त्व० अ २। सू ८। वा १। व्याख्या

द्रव्ययोगनिमित्तिक ज्ञानादिरूप भावयोग तथा आत्मा की विशुद्धि आभ्यन्तर आत्मभूत हेतु है।

तत्र मनोवाक्कायवर्गणा लक्षणो द्रव्ययोगः चिन्तावालम्बनभूतः अन्तरभिनिविष्टत्वादाभ्यन्तर इति।

—तत्त्व० अ २। सू ८। वा १। व्याख्या

मन, वचन और काय की वर्गणाओं के निमित्त से होनेवाला आत्मप्रदेश परिस्पन्दन रूप द्रव्ययोग अन्तः प्रविष्ट होने से आभ्यन्तर आत्मभूत हेतु है।

केवली में शुक्ललेश्या होती है। जिनके अपर्याप्त नामकर्म का उदय है उनके एक लब्ध्यपर्याप्त आलाप ही होता है। संज्ञी लब्ध्यपर्याप्त में एक लब्ध्यपर्याप्त आलाप है। पृथ्वी आदि त्रसपर्यन्त लब्ध्यपर्याप्तकों में एक लब्ध्यपर्याप्त आलाप ही होता है।

पर्याप्त अवस्था में होनेवाले चार मनोयोग, चार वचनयोग, औदारिक, वैक्रियिक व आहारककाययोग में अपना-अपना पर्याप्त आलाप होता है। जैसे सत्यमनोयोग के सत्यमनपर्याप्त आलाप होता है।

अवशेष चार मिश्र योगों में अपना-अपना एक अपर्याप्त आलाप होता है। जैसे औदारिकमिश्र के औदारिकमिश्र अपर्याप्त आलाप होता है। अस्तु पर्याप्त योग ग्यारह व अपर्याप्तयोग चार होते हैं—ऐसी गोम्मटसार की मान्यता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सयोगी में अभव्य, भव्य विशेष, उपशमक व क्षपक की अपेक्षा क्रमशः चारों भंग पाये जाते हैं। अयोगी के पाप कर्म का बंध नहीं होता और भविष्य में भी नहीं होगा—एक चौथा भंग ही पाया जाता है।

—भग० श २६

अस्तु सिद्ध पाहुड में आचार्य भिक्षु के प्रति कुछ भी नहीं है। आचार्य भिक्षु के समय काल में किसी व्यक्ति ने प्राकृत में चार गाथाएँ उद्धृत कर उसमें संकलित किया है व उसमें आचार्य भिक्षु को आठवां निह्नव कहकर नरकगामी बतलाया है। यह निराधार कहा है। पारंगत व्यक्ति इसका गहरा मंथन करे।

सभी केवली के केवली समुद्घात नहीं होता है। केवली समुद्घात के पश्चात् अन्तर्मुहूर्त में योग निरोध होता है केवली समुद्घात करने के विषय में आचार्यों का मतभेद रहा है—यथा—

यो षाण्मासाधिकायुष्यको, लभते केवलोद्गमम्।
करोत्यसौ समुद्घात मन्ये कुर्वन्ति वा न वा॥

—गुणस्थान क्रमारोह

अर्थात् छहमास और छहमास से अधिक आयुष्यवाले को केवलज्ञान होने पर, वे अवश्य समुद्घात करते हैं और छह मास से न्यून आयुष्यवाले को केवलज्ञान होने पर, वे समुद्घात करते भी हैं और नहीं भी करते हैं।

आवश्यक निर्युक्ति से भी इसी कथन की पुष्टि होती है। यथा—

छम्मासाउ सेसे, उप्पण्णं जेसिं केवलणाणं।
ते णियमा समुग्घाया, सेसा समुग्घाय भइयव्वा॥

किन्तु आवश्यक चूर्णिकार का मंतव्य, इससे बिल्कूल विरुद्ध है—यथा—जो मनुष्य अन्तर्मुहूर्त से लगाकर, छह महिने जितना आयुष्य शेष रहने पर केवल ज्ञान प्राप्त करे तो समुद्घात से बाह्य है। अर्थात् वे समुद्घात नहीं करते हैं अथवा शेष (=छह महिने से अधिक आयुष्यवाले) समुद्घात करते भी हैं और नहीं भी करते हैं।

बाह्य—आभ्यन्तर द्रव्य-पर्यायों का ध्यान करता हुआ वितर्क की सामर्थ्य से युक्त हो अर्थ और व्यंजन तथा मन, वचन, काय की पृथक्-पृथक् संक्रांति करता है। फिर शक्ति की कमी से योग से योगान्तर और व्यंजन ये व्यंजनान्तर में संक्रमण करता है।

भाव अवमोदरिका (अनोदरी) तप में अल्प शब्द (वचनयोग) भी उसका एक भेद है। अल्प शब्द बोलना, कषायवश होकर भाषण न करना तथा हृदय में स्थित कषाय को शान्त करना—भाव अनोदरी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तराध्ययन सूत्र के टीकाकार शान्तिसूरि ने कहा है—

कर्म द्रव्यलेश्या इति सामान्याऽभिधानेऽपि शरीरनामकर्म द्रव्यष्वेव कर्मद्रव्य लेश्या। कार्मणशरीरवत् पृथगेव कर्माष्टकात् कर्म वर्गणा निष्पन्नानि कर्म लेश्या द्रव्यानीति तत्त्वं पुनः।

—उत्तरा० अ ३४। टीका। पृ० ६५०

अर्थात् द्रव्यलेश्या का निर्माण कर्मवर्गणा से होता है। यह द्रव्यलेश्या कर्मरूप है तथापि वह आठ कर्मों से पृथक् है, जैसे कार्मण शरीर। यदि द्रव्यलेश्या को कर्मवर्गणा निष्पन्न न माना जाय तो वह कर्म स्थिति विधायक नहीं बन सकती।

आभ्यन्तर परिग्रह के चौदह भेद है—मिथ्यात्व, नौ नोकषाय व चार कषाय।

अस्तु मनोयोग में जितने अधिक संकल्प-विकल्प के द्वारा आवर्त होंगे वे उतने ही अधिक आत्मा के लिए अहितकर होंगे। एतदर्थ ध्यान और उपयोग व साधना के द्वारा विचारों को स्थिर करने का प्रयास किया जाता है। शुक्ललेश्यावाले व्यक्ति का चित्त प्रशान्त होता है। मन, वचन और काया पर पूर्ण नियन्त्रण करता है।

कितनेक आचार्यों का मंतव्य है कि औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रिय, वैक्रियमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र, कार्मण काय का योग—ये सात शरीर है तो उनकी छाया भी सप्तवर्णात्मिका होगी अतः लेश्या के सात भेद मानने चाहिए।[1]

कहा है—

एवं काऊण जिणो, पवत्तणं दाणवन्त चरियाए।
सयडामुहउज्जाणे, पसत्थझाणं समारूढो॥

झायन्तस्स भगवओ, एवं घाइक्खएणं कम्माणं।
लोगाऽलोगपगासं, केवलनाणं समुप्पन्नं॥

—पउच० अधि ४। गा १६, १७

इस प्रकार दान धर्म का प्रवर्तन करके भगवान् शकटामुख उद्यान में गए और प्रशस्त ध्यान में लीन हुए। इस तरह ध्यान करते हुए भगवान् के चारों घाति कर्म का नाश होने पर लोक और अलोक को प्रकाशित करनेवाला केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ। इस अवस्था में उनके तीव्र शुभ योग का परिणमन हुआ।

कहा है—

अह अट्ठकम्मरहियस्स तस्स झाणोवओगजुत्तस्स।
सयलजगुज्जोयगरं, केवलनाणं समुप्पन्नं॥

—पउच० अधि २। गा ३०

---

१. उत्तरा० अ ३४। टीका-जयसिंह सूरि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीक्षा लेने के बाद में भगवान् महावीर को ध्यानोपयोग में लीन आठ कर्मों का क्षय होने पर समग्र जगत् को प्रकाशित करनेवाला केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ।

१—शक्तिवान्, श्रद्धा में मजबूत, सत्यवादी, मर्यादावान्, विपुलज्ञान, कलहकारी न हो, धैर्यवंत हो। दूसरों के गुणों को देख कर साधु को प्रफुल्लित होना चाहिए।

२—कलके भरोसे पर कार्य न छोड़े। निरंतर जागरुक रहे।

उत्तराध्ययन अ० ११ में कहा है—मान, क्रोध, प्रमाद, राग और आलस्य—इन पाँच कारणों से शिक्षा प्राप्त नहीं होती है। आठ स्थानों से यह आत्मा—शिक्षा के योग्य कहा जाता है—१—अधिक नहीं हंसने वाला, २—इन्द्रियों का दमन करने वाला, ३—मर्म वचन न कहने वाला, ४—चारित्र धर्म का पालन करने वाला सदाचारी—सर्वतः चारित्र की विराधना न करने वाला, ५—देशतः चारित्र की विराधना न करने वाला अर्थात् व्रतों का निरतिचार पालन करने वाला, ६—जो अतिशय लोलुप नहीं है, ७—तथा जो क्रोध रहित—८—सत्यानुरागी (सत्यनिष्ठ) है—वह शिक्षाशील है।

चतुर्दश स्थानों में वर्तमान अविनीत कहा जाता है तथा वह निर्वाण प्राप्त नहीं करता है।

१—निरंतर क्रोध करने वाला अर्थात् निमित्तवश या बिना किसी निमित्त के भी क्रोध करता है।

२—और प्रबन्ध करता है। क्रोध को दीर्घकाल तक बनाये रखता है अथवा विकथा आदि में निरन्तर प्रवृत्त करता है।

३—मित्रता आदि होते हुए भी मित्रों को छोड़ देता है। मित्रता निभाता नहीं तथा मित्रों का उपकार नहीं मानता है।

४—जो शास्त्र ज्ञान पाकर अभिमान करता है।

५—जो आचार्यादि द्वारा समिति आदि में स्खलना रूप पाप हो जाने पर, उनका भी तिरस्कार करने वाला होता है अथवा अपने दोषों को दूसरों पर डालता है।

६—मित्रों पर भी कोप करता है।

७—अतिशय प्रिय मित्र की भी एकान्त में बुराई कहता है।

८—जो असंबद्ध वचन कहने वाला, पात्र-अपात्र का विचार न करते हुए शास्त्रों के गूढ रहस्यों को बतलानेवाला अथवा सर्वथा एकान्त पक्ष को लेकर बोलने वाला।

९—मित्र द्रोही, १०—अभिमानी, ११—रसादि में गृद्ध।

१२—इन्द्रियों को वश में नहीं करने वाला।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३—आहारादि का संविभाग न करने वाला।

१४—सभी को अप्रीति उत्पन्न करने वाला, अविनीत कहलाता है।

अनुवृत्ति से अयोगी वह हुआ केवलिजिन, इस तरह अयोगि केवलिजिन है।

नोट—सयोगि केवलिजिन तथा अयोगि केवलिजिन क्रमशः तेरहवां तथा चौदहवां जीव-समास अर्थात् गुणस्थान जानना चाहिए।

अर्हन्त आदि द्वारा कथित 'प्रवचन' अर्थात् आप्त, आगम और पदार्थ—ये तीनों कहे जाते हैं। प्रवचन—जिसका वचन प्रकृष्ट है—ऐसा आप्त, प्रकृष्ट का वचन-प्रवचन अर्थात् परामागम, अर्थात् प्रमाण के द्वारा कहा जाता है वह प्रवचन अर्थात् पदार्थ। गोम्मटसार की मंदप्रबोधिनी टीका के अनुसार सास्वादान सम्यक्त्व में अत्त्वश्रद्धान अव्यक्त होता है और मिथ्यात्व में व्यक्त होता है।

कहा है—

रागो य दोसो वि य कम्मबीयं,
कम्मं च मोहप्पभवं वयंती।
कम्मं च जाईमरणस्स मूलं,
दुक्खं च जाईमरणं वयंति॥

राग और द्वेष कर्म के बीज है। कर्म मोह से उत्पन्न होता है और वह जन्म मरण का मूल है। जन्म-मरण को दुःख का मूल कहा गया है।

जरामरणवेगेणं,
बुज्झमाणाण पाणिणं।
धम्मो दीवो पइट्ठा य,
गई सरणमुत्तमं॥

जन्म और मृत्यु के वेग से बहते हुए प्राणियों के लिए धर्म-द्वीप, प्रतिष्ठा, गति और उत्तम शरण है।

दुखं हयं जस्स न होइ मोहो,
मोहो हओ जस्स न होइ तण्हा।
तण्हा हया जस्स न होइ लोहो,
लोहो हओ जस्स न किंचणाइ॥

जिसके मोह नहीं है, उसने दुःख का नाश कर दिया। जिसके तृष्णा नहीं है, उसने मोह का नाश कर दिया। जिसके लोभ नहीं है उसने तृष्णा का नाश कर दिया। जिसके जिसके पास कुछ नहीं है, उसने लोभ का नाश कर दिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योगों का सर्वथा निरोध होने पर ही शैलेशी अवस्था प्राप्त होती है और योग-निरोध चवदहवें गुणस्थान में ही होता है। अतः छद्मस्थ के लिए यह विधान कैसा हो सकता है ? अयोगी होने पर शैलेशी होता है, इसका क्रमिक वर्णन करते हुए दशवैकालिक सूत्र में कहा है—"जया जोगे निरंभित्ता सेलेसी पडिवज्जई"। इससे यही सिद्ध है कि यह अवस्था अयोगी होने पर ही आती है।

पादोपगमन सन्थारे में भी मनोयोग का तो निरोध होता ही नहीं। और फिर उसमें तो लघुनीत, बड़ी नीत के लिए अपवाद भी है। अतः काय योग का सर्वथा निरुद्ध नहीं होता इसलिए पादोपगमन सन्थारे में एजना आदि क्रियाएँ नहीं ही होती हों, यह नहीं है।

योग की विद्यमानता ही ईर्यापथिक क्रिया का कारण होती है। और योग का आत्मा से सम्बन्ध है। अयोगी तो अपने आप किसी भी प्रकार का कम्पन करता नहीं है। अतः उसे दूसरे के द्वारा होने वाले कम्पन से ईर्यापथिक नहीं लग सकती।

वीर्यान्तराय के क्षय एवं क्षयोपशय और नामकर्म के उदय से योगों की निष्पत्ति होती है। उनमें शुभ और अशुभ की विवक्षा करने पर मोह कर्म के क्षय एवं क्षयोपशम आदि और उदय का साहचर्य अवश्यंभावी है। मन, वचन और काय—ये तीनों योग एक साथ शुभ या अशुभ होते हैं, उसी प्रकार एक शुभ और दो अशुभ, दो शुभ और एक अशुभ आदि भी हो सकते हैं। इसमें विरत-अविरत की चौपइ की नौवीं ढाल का स्पष्ट साक्ष्य है।

मन, वचन, काययोग से अखण्ड ब्रह्मचर्य पालने से इन्द्र, नरेन्द्र आदि देवों में मनुष्य पूजनीय बनता है।

कार्य-कारण रूप एक कालों में तीनों योगों की समुत्पत्ति का विरोध है।

इस पुस्तक में संसार-समापन्नक जीवों के योगों के अल्पबहुत्व का भी विवेचन है। यद्यपि सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों में तीन योग होते हैं—औदारिक काययोग, औदारिकमिश्र काययोग तथा कार्मण काययोग। सूक्ष्म नामकर्म के उदय से जिन जीवों का शरीर अत्यन्त सूक्ष्म अर्थात् असंख्य शरीर इकट्ठे होने पर भी जो चक्षु आदि इन्द्रियों का विषय न हो उसे 'सूक्ष्म' कहते हैं। अपर्याप्त अवस्था में मरने वाले जीव तीन पर्याप्तियाँ पूर्ण करके चौथी (श्वासोच्छ्वास) पर्याप्ति अधुरी रहने पर ही मरते हैं, पहले नहीं। चूंकि प्रथम तीन पर्याप्तियों के पूर्ण किये बिना आयुष्य का भी बंधन नहीं होता है। क्योंकि आगामी भव की आयु बांध कर ही जीव मृत्यु प्राप्त करते हैं।

योग—आत्मप्रदेशों के परिस्पन्दन (कंपन) को योग कहते हैं। वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशमादि की विचित्रता से योग के पन्द्रह भेद होते हैं। किसी जीव का योग दूसरे जीव की अपेक्षा जघन्य (अल्प) होता है। और किसी जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट होता है। जीवों के चौदह भेदों सम्बन्धी प्रत्येक के जघन्य और उत्कृष्ट भेद होने से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठाईस भेद होते हैं। इनमें सूक्ष्म अपर्याप्त एकेन्द्रिय का जघन्य योग सबसे अल्प है क्योंकि उनका शरीर सूक्ष्म और अपर्याप्त होने से (अपूर्ण होने के कारण) दूसरे सभी जीवों के योगों की अपेक्षा उसका योग सबसे अल्प होता है। और यह कार्मण शरीर द्वारा औदारिक शरीर ग्रहण करने के प्रथम समय में होता है। तत्पश्चात् समय-समय योगों की वृद्धि होती है और उत्कृष्ट योग तक बढता है। अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय जीव का जघन्य योग, पूर्वोक्त योग की अपेक्षा असंख्यात गुण होता है। इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिए।

यद्यपि पर्याप्त तेइन्द्रिय की उत्कृष्ट काया की अपेक्षा पर्याप्त बेइन्द्रियों की काया तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय की उत्कृष्ट काया, संख्यात योजन होने से संख्यात गुण ही होती है। तथापि यहाँ परिस्पन्दन (कम्पन, इलन, चलन) रूप योग की विवक्षा होने से तथा क्षयोपशम विशेष के सामर्थ्य से असंख्यात गुण होने का कथन विरुद्ध नहीं है। क्योंकि यह कोई नियम नहीं है कि अल्पकायवाले का परिस्पन्दन अल्प होता है और महा-काय वाले का परिस्पन्दन बहुत ही होता है, क्योंकि इससे विपरीतता भी देखी जाती है। जैसे—अल्पकायवाले का परिस्पन्दन महान् भी होता है और महाकायवाले का परिस्पन्दन अल्प भी होता है।

आहारक नारकी की अपेक्षा अनाहारक नारकी हीन योग वाला होता है। क्योंकि जो नारकी ऋजुगति से आकर आहारकपने उत्पन्न होता है वह निरन्तर आहारक होने के कारण पुद्गलों से उपचित (बढा हुआ) होता है। अतः वह अधिक योगवाला होता है। जो नारकी विग्रहगति से आकर अनाहारकपने उत्पन्न होता है वह अनाहारक होने से पुद्गलों से अनुपचित होता है—अतः हीन योगवाला होता है। जो समान समय की विग्रह गति से आहारकपने उत्पन्न होते हैं अथवा ऋजु गति से आकर आहारकपने उत्पन्न होते हैं वे दोनों एक दूसरे की अपेक्षा समान योग वाले होते हैं। जो ऋजुगति से आकर आहारक उत्पन्न हुआ है और दूसरा विग्रहगति से आकर अनाहारक उत्पन्न हुआ है—वह उसकी अपेक्षा उपचित होने से अत्यधिक विषम योगी होता है। आगम में हीनता और अधिकता का कथन कर दिया गया है। समान धर्मता रूप तुल्यता प्रसिद्ध होने के कारण उसका पृथक् उल्लेख नहीं किया गया है।

प्रकारान्तर से पन्द्रह प्रकार के योगों का कथन करके उसकी अल्पबहुत्व बताया गया है। यहाँ परिस्पन्दन योग की ही विवक्षा की गई है।

जितने आकाश क्षेत्र में जीव रहा हुआ है उस क्षेत्र के अन्दर रहे हुए, जो पुद्गल द्रव्य है 'वे स्थित द्रव्य' कहाते हैं और उससे बाहर के क्षेत्र में रहे हुए पुद्गल द्रव्य 'अस्थित द्रव्य' कहाते हैं। वहाँ से खींचकर जीव उनको ग्रहण करता है। इस विषय में किन्हीं आचार्यों का ऐसा कहना है कि गति रहित द्रव्य है वे स्थित द्रव्य कहाते हैं और जो गति सहित द्रव्य है वे 'अस्थित द्रव्य' कहाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीव जिन द्रव्यों को मनोयोगपने ग्रहण करता है वह स्थित द्रव्यों को ग्रहण करता है, अस्थित द्रव्यों को नहीं। वह उन द्रव्यों को द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से भी ग्रहण करता है। वह द्रव्य से अनंतप्रदेशी द्रव्यों को ग्रहण करता है। क्षेत्र से असंख्य प्रदेशावगाढ़ द्रव्यों को ग्रहण करता है। इसी प्रकार प्रज्ञापनासूत्र के अट्ठाइसवें पद के प्रथम आहारोद्देशक के अनुसार यावत् यह नियम से छओं दिशाओं से आये हुए द्रव्यों को ग्रहण करता है।

नोट—मनोयोगवाला, मनोयोग के योग्य छओं दिशाओं से आये हुए पुद्गल द्रव्य को ग्रहण करता है। इस कथन का अभिप्रायः यह है कि उपयोगपूर्वक मनोयोगवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय होते हैं वे त्रसनाडी के मध्य में होते है अतः उनके छओं दिशाओं का आहार संभव है।

इसी प्रकार वचनयोगपने स्थित द्रव्यों को ग्रहण करता है, अस्थित द्रव्यों को नहीं। यावत् छः दिशाओं से आये हुए द्रव्यों को ग्रहण करता है।

जीव जिन द्रव्यों को काययोगपने ग्रहण करता है वह स्थित द्रव्यों को भी ग्रहण करता है और अस्थित द्रव्यों को भी। द्रव्य से अनतप्रदेशी द्रव्यों को ग्रहण करता है, क्षेत्र से असंख्य प्रदेशावगढ़ द्रव्यों को ग्रहण करता है। इसी प्रकार प्रज्ञापना सूत्र के अट्ठाइसवें पद के प्रथम आहारोद्देशक के अनुसार यावत् निर्व्याघात से छओं दिशाओं से और व्याघात हो तो कदाचित् तीन, कदाचित् चार और कदाचित् पांच दिशाओं से आये हुए पुद्गलों को ग्रहण करता है।

जीव द्रव्य, अजीव द्रव्यों को ग्रहण करते हैं। ग्रहण करके औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण—इन पांच शरीर, श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शेन्द्रिय-इन पांच इन्द्रिय, मनोयोग, वचनयोग, काययोग और श्वासोच्छ्वास रूप में परिणमाते हैं। इस कारण अजीव द्रव्य, जीव द्रव्यों के परिभोग में आते हैं, किन्तु जीव द्रव्य, अजीव द्रव्यों के परिभोग में नहीं आते हैं।

चूंकि जीव द्रव्य, अजीव द्रव्यों को ग्रहण करके उनको अपने शरीरादि, मनोयोग, वचनयोग, कायोगादि रूप में परिणमन करते हैं। यह उनका परिभोग है। जीव द्रव्य परिभोक्ता है और अजीव द्रव्य अचेतन होने से ग्रहण करने योग्य है। अतः वे भोग्य है। इस प्रकार जीव और अजीव द्रव्यों में भोक्तृ—भोग्य भाव है।

द्रव्ययोग पुद्गल है। कहा है—

पोग्गलत्थिकाएणं पुच्छा।

गोयमा! पोग्गलत्थिकाएणं जीवाणं ओरालिय-वेउव्विय-आहारग-तेया-कम्मए सोइंदिय चक्खिंदिय-घाणिंदिय-जिब्भिदिय-फासिंदिय-मणजोग-वयजोग-कायजोग-आणपाणूणं च गहणं पवत्तइ गहणलक्खणे णं पोग्गत्थिकाए।

—भग० श० १३। उ ४। सू १८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुद्गलास्थिकाय से जीवों के औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय, मनोयोग, वचनयोग, काययोग और श्वासोच्छ्वास का ग्रहण होता है। पुद्गलास्तिकाय का लक्षण-ग्रहण रूप है।

अठारह पापों का बंध ग्रामघातक की तरह करते हैं।

तेउकायिक और वायुकायिक जीवों में आयुष्यबंध सर्वत्र प्रथम और तृतीय भंग से ही होता है क्योंकि वहाँ से निकलकर उनकी उत्पत्ति मनुष्य में नहीं होने से सिद्धि-गमन का अभाव है अतः द्वितीय व चतुर्थ भंग नहीं होता है।

चतुर्दशवें गुणस्थान में योग नहीं होने के कारण उदीरणा नहीं है। तेरहवें गुणस्थान में केवल नाम और गोत्र कर्म की उदीरणा है।

अनंतरोपपन्नक नारकी यावत् वैमानिक देव आयुष्यकर्म को नहीं बांधते हैं। अभव-सिद्धिक जीव अचरम ही होते हैं, चरम नहीं। अंतरालगति में परमशुक्ललेश्या हो सकती है परन्तु मनोयोग व वचनयोग नहीं होते हैं। यह निश्चित है कि लव सप्तमदेव सर्वार्थ-सिद्धिक अन्तत्तरौपपातिक देव होते हैं उनमें परमशुक्ललेश्या में स्थित मनुष्य (साधु) मर कर उत्पन्न होते हैं, चूंकि उनके अंतरालगति में मनोयोग, वचनयोग नहीं होते हैं परन्तु परमशुक्ल-लेश्या है।

मन, वचन और काय की प्रवृत्ति को योग कहते हैं। योग तीन हैं—मनोयोग, वचनयोग और काययोग। जीव और पुद्गल के संयोग से होने वाली क्रिया को योग कहते हैं। मनुष्य अयोगी भी होते हैं।

जैन दर्शन को छोड़कर और किसी भी दर्शन ने मनुष्य देह में सर्वज्ञता स्वीकार नहीं की है। वे कहते हैं कि मनुष्य देह छुटने के बाद ईश्वर में सर्वज्ञता है जैन दर्शन कहता है कि मनुष्य देह में तेरहवें व चौदहवें गुणस्थान में भी सर्वज्ञता है।

नौ ग्रैवेयक और पांच अनुत्तरवासी देवों में पर्याप्त-अवस्था में नव योग की मान्यता उपलब्ध होती है—चार मन के, चार वचन के व एक वैक्रिय काययोग। अवशेष देवों में पर्याप्त अवस्था में दस योग की मान्यता उपलब्ध होती है—चार मन के, चार वचन के, वैक्रिय काययोग व वैक्रियमिश्र काययोग।

योग के साथ होने वाली पौद्गलिक तथा आत्मिक हलचल एवं उसके साथ बदलने वाले वर्ण विशेष को लेश्या कहते हैं।

आहारक, आहारकमिश्र काययोगवाले न्यून, औदारिक, औदारिकमिश्र काययोगवाले अधिक हैं। योग शरीर नाम कर्म का उदय है।

मिथ्यात्वी अवस्था में तामली तापस ने साठ हजार वर्ष तक बेले-बेले तप किया। कहा जाता है उतना तप यदि सम्यक्त्व अवस्था में किया जाए तो सात जीव मोक्षगामी हो जाए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सावद्य योग अर्थात् पापकारी प्रवृत्तियां, अठारह पाप सावद्य योग है। निरवद्य योग अर्थात् पाप रहित आध्यात्मिक प्रवृत्तिया। द्रव्य लेश्या नाम कर्म का उदय है। भाव लेश्या मोहकर्म और नामकर्म का भी उदय है। सिद्ध अकर्त्ता है। वहाँ योग-जन्य क्रिया है ही नहीं। उपयोग जन्य क्रिया वहाँ सहज ही होती रहती है। सिद्ध सकंप भी होते हैं, निष्कंप भी अनंतर सिद्ध सकंप है क्योंकि उनके एक समय की ऋजुगति है इसके विपरीत परंपर सिद्ध निष्कंप है। चौदहवें गुणस्थान के जीव निष्कंप है—सकंप नहीं है। क्योंकि उनके योग का अभाव एवं एजनादि क्रिया नहीं है।

१—एक योग किसमें—दिखाई देते हुए अनाज के दाने में।

२—दो योग किसमें—उड़ती हुई मक्षिका में—औदारिक व व्यवहार भाषा।

३—तीन योग किसमें—तेजस्काय में—औदारिक, औदारिकमिश्र व कार्मण।

४—चार योग किसमें? द्वीन्द्रिय में—औदारिक, औदारिकमिश्र, व्यवहार भाषा व कार्मण।

५—पांच योग किसमें? वायुकाय में—औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रिय, वैक्रियमिश्र व कार्मण।

६—छह योग किसमें? असंज्ञी में—औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रिय, वैक्रियमिश्र, व्यवहार भाषा व कार्मण।

७—सात योग किसमें? केवल ज्ञानी में—सत्यमन, व्यवहारमन, सत्यभाषा, व्यवहार भाषा, औदारिक, औदारिकमिश्र व कार्मण।

८—आठ योग किसमें? तीसरे गुणस्थान की नियमा में—चार मन और चार वचन के योग।

९—नौ योग किसमें? परिहार विशुद्धि चारित्र में—चार मन के, चार वचन के, एक औदारिक।

१०—दस योग किसमें? तीसरे गुणस्थान में—चार मन के, चार वचन के, औदारिक व वैक्रिय।

११—ग्यारह योग किसमें? नारकी में—चार मन के, चार वचन के, वैक्रिय, वैक्रियमिश्र व कार्मण।

१२—बारह योग किसमें? श्रावक में—आहारक, आहारकमिश्र व कार्मण को छोड़कर।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३ —चौदह योग किसमें ? तिर्यंच में—आहारक, आहारकमिश्र को छोड़कर ।

१४—चौदह योग किसमें ? मनयोगी में—कार्मण को छोड़कर ।

१५—पन्द्रह योग किसमें ? समुच्चय जीव में ।

कहा है—

जोगमग्गणावि ओदइया, णामकम्मस्स उदीरणोदयजणिदत्तादो ।

—षट्० खण्ड० सू ४ । १ । ६६ । पृ० ३१६

योग मार्गणा भी औदयिक है, क्योंकि वह नाम कर्म की उदीरणा व उदय से उत्पन्न होती है ।

भगवान महावीर का निर्वाण हस्तिपाल राजा की रथशाला में नहीं परन्तु पुरानी शुल्कशाला में हुआ था । तपोबल से कुलबालक मुनि इसलिए कहलाया कि वह नदी के किनारे के बदलने व मोड़ने में समर्थ हुआ । कोणिक की वेश्या ने उसे भ्रष्ट कर वैशाली के अभंग रहने का कारण तत्र स्थित मुनिसुव्रत स्वामी का स्तूप था जिसे तोड़ने पर वैशाली का पतन हुआ । यह कथा बौद्ध साहित्य से भी समर्थित है ।

वैशाली पति चेटक-हल्ल-विहल्ल का नाना था ।

प्रयोगपरिणत पुद्गल (पओगपरिणद पोग्गल)

प्रयोगपरिणताः—जीवव्यापारेण तथाविधपरिणतिमुपनीताः ।

जीव की क्रियाओं द्वारा पुद्गल के अपने स्वरूप से अन्य स्वरूप में परिणत हो जाने को प्रयोगपरिणत पुद्गल कहते हैं ।

—स्था० स्था ३ । उ ३ । सू १८६ । टीका

इरियावहकम्म (ईयोपथकर्म)—

जं तमीरियावहकम्मं णाम । २३

ईर्या योगः, सः पन्था मार्गः हेतुः यस्य कर्म्मणः

तदीर्यापथकर्म्म । जोगणिमित्तेणेव णं वज्झइ तमीरियावहकम्मं ति भणिदं होदि ।

तं छदुमत्थवीयरायाणं सजोगिकेवलीणं वा तं सव्वमीरियावह कम्मं णाम । २४

—षट्० खण्ड० ५ । ४ । सू २४ । पु १३ । पृ० ४७, ४८

ईया का अर्थ योग है । वह जिस कार्मण शरीर का पथ, मार्ग हेतु है वह ईर्यापथ-कर्म कहलाता है । योग मात्र के कारण जो कर्म बंधता है वह ईर्यापथ कर्म है । वह छद्मस्थ वीतरागों के और सयोगि केवलियों के होता है वह सब ईर्या पथ कर्म है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्तु केवल योग के निमित्त से आये हुए पुद्गल स्कन्धों में काल निमित्तक अल्पत्व देखा जाता है अतः ईर्या-पथ कर्म अल्प है।

भगवती सूत्र में यथाख्यात चारित्र में शुक्ल लेश्या मिलती है तथा स्नातक निर्ग्रन्थ में परम शुक्ल लेश्या का उल्लेख मिलता है।

अस्तु स्नातक में जो एक परम शुक्ल लेश्या का कथन किया है। इसका आशय यह है कि शुक्ल लेश्या के तीसरे भेद के समय ही एक परम शुक्ल लेश्या होती है, दूसरे समय में तो उनमें शुक्ल लेश्या ही होती है किन्तु वह शुक्ल लेश्या भी दूसरे जीवों की शुक्ल लेश्या की अपेक्षा परम शुक्ल लेश्या होती है।

पुलाक निर्ग्रन्थ के विषय में व्याख्याकारों का यह मत है कि पुलाक निर्ग्रन्थ उस समय पुलाक लब्धि को सक्रिय करते हैं, जबकि कोई प्रचण्ड धर्मद्वेषी जिन धर्म और संघ पर क्रूर बनकर भयंकर क्षति पहुँचाने को तत्पर हो और किसी प्रकार समझना एवं शान्त नहीं होना चाहता हो, तब उस उपद्रव से संघ की रक्षा के लिए वे इस शक्ति का उपयोग करके उस क्रूर की शान्ति नष्ट करते हैं। पुलाक लब्धि में इतनी शक्ति होती है कि वह शक्तिशाली महात्मा अपनी क्रुद्ध दृष्टि से लाखों मनुष्यों की सेना का भी निरोध कर सकते हैं। उनकी शक्ति के आगे शस्त्रबल व्यर्थ हो जाता है।

कहा है—

उवसम सुहुमाहारे वेगुव्वियमिस्सणर अपज्जत्ते।
सासणसम्मे मिस्से सांतरगा मग्गणाअट्ठ॥
सत्तदिणा च्छम्मासा वासपुधत्तं च वारसमुहुत्ता।
पल्लासंखं तिण्हं वरमवरं एगसमओ दु॥

—गोजी० गा० १४३, १४४

टीका—काल अन्तरंनामं × × × आहारकतन्मिश्रकाययोगिनांवर्षपृथक्त्वं × × × वैक्रियिकमिश्रकाययोगिनां द्वादशमुहूर्ताः × × ×। तासां जघन्येनान्तरं एक समय एवं ज्ञातव्य।

आहारक और आहारकमिश्र काययोगवालों का उत्कृष्ट अन्तर वर्ष पृथक्त्व है। वैक्रियमिश्र काययोगियों का अन्तर बारह मुहूर्त है। जघन्य अन्तर एक समय का होता है।

अजीव द्रव्य, नैरयिकों के परिभोग में आते हैं परन्तु, नैरयिक, अजीव द्रव्यों के परिभोग में नहीं आते हैं।

चूंकि नैरयिक, अजीव द्रव्यों को ग्रहण करते हैं, ग्रहण करके उन्हें वैक्रिय, तैजस् और कार्मण शरीर, श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शेन्द्रिय, तीन योग और श्वासोच्छ्वास रूप में परिणमन करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त जानना, किन्तु जिसके जितने-जितने शरीर इन्द्रिय और योग हो, उनके उतने जानने चाहिए।[1]

कहा है—

नामकर्मण औदारिकादिदेहः योगोत्पादकत्वेन औदारिकादिदेहनिर्वर्तकत्वात्।

—गोक० गा ७०। टीका

नाम कर्म का नो कर्म-औदारिक आदि शरीर है क्योंकि वह योग का उत्पादक होने से औदारिक आदि शरीर को उत्पन्न करता है।

जैन साहित्य में 'योग' शब्द का प्रयोग अध्यात्म योग, संवर योग, ध्यान योग आदि अनेक रूपों में मिलता है। इन सभी योगों को जैन तत्त्व विद्या में समाविष्ट किया जा सकता है। इस दृष्टि से 'जैनयोग' योग विद्या का बहुआयामी लक्ष्य लेकर चलता है।

'योग' शब्द की निष्पत्ति यज् धातु से होती है। इस धातु का प्रयोग कई अर्थों में होता है। प्रस्तुत संदर्भ में इसके दो अर्थ अधिक उपयुक्त होते हैं—समाधि और जोड़ना। जिस प्रवृत्ति से मन शुद्धि और आत्मा को समाधान मिले—वह योग है। इसका दूसरा अर्थ 'जोड़ना' बहुत व्यापक होने पर भी एक विशेष योजना का प्रतीक है। जिसे अभिव्यक्त करते हुए आचार्य हरिभद्र ने लिखा है—'मोक्खेण जोयणाओ जोगो सव्वोवि धम्मवावारो' धर्म की सारी प्रवृत्तियाँ व्यक्ति को मोक्ष के साथ जोड़ती है, इसलिए वे योग है।

जैन, बौद्ध और वैदिक सभी परम्पराओं में योग विद्या का प्रचलन है और उनके साहित्य में योग की विशद चर्चा है।

जैन साधना पद्धति में योग के तीन अंग माने गये हैं सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग् चारित्र। बौद्ध साधना पद्धति प्रज्ञा (ज्ञान) शील (यम-नियम) और समाधि ध्यान-धारणा) को और पातञ्जल योग दर्शन में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान और समाधि योग के अंग बताये हैं।

कार्मण काययोगी जीव व आहारकमिश्र आदि योगी आयुष्य का बंध नहीं करते हैं और सब योगों में आयुष्य का बंधन हो सकता है।

मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योगों के निमित्त से कर्म उत्पन्न होते हैं और कर्मों के निमित्त से जाति, जरा, मरण, वेदना उत्पन्न होती हैं।

जो संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय में स्थित जीवों को किसी एक निर्णय पर पहुँचाता है उसे निक्षेप कहते हैं या अप्रकृत अर्थ के निराकरण हुआ प्रकृत अर्थ का कथन

---

१. भग० श० २५। उ २।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करने के लिए मुख्य वाचक के वाच्यार्थ की प्रमाणता का प्रतिपादन करता है उसे निक्षेप कहते हैं।

मनुष्य के पास प्रवृत्ति के तीन साधन है—शरीर, वचन और मन। ये तीनों योग कहलाते हैं। योग का अर्थ है—प्रवृत्ति, चंचलता और सक्रियता।

श्रमणोपासक होने पर भी अभीचिकुमार, उदायन राजर्षि के प्रति वैर के अनुबंध से युक्त था। रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावासों के निकट असुरकुमारों के चौसठ लाख आवास कहे गये हैं। वह अभीचिकुमार बहुत वर्षों तक श्रमणोवासक पर्याय का पालन कर और अर्द्धमासिक संलेखना से तीस भक्त अनशनकर, छेदन करके, उस पापस्थान की आलोचना एवं प्रतिक्रमण किये बिना, मरण के समय काल धर्म को प्राप्तकर, रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावासों के निकट, असुरकुमार देवों के चौसठ लाख आवासों में से किसी आवास में 'आयाव' रूप असुरकुमार देवपने उत्पन्न हुआ।

विवेचन—यद्यपि अभीचिकुमार, जीवाजीवादि तत्त्वों का ज्ञाता, श्रमणोपासक बन गया था, तथापि उदायन राजर्षि के प्रति उसका वैर-भाव शान्त नहीं हुआ। उसकी आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना ही वह कालधर्म को प्राप्त हो गया। इससे वह असुरकुमार देवों में उत्पन्न हुआ।

भाषा—आत्मा नहीं है, अन्य (आत्मा से भिन्न अर्थात् पुद्गल स्वरूप) है। भाषा-रूपी है, अजीव है, अचित्त है। फिर भी भाषा जीवों के होती है, अजीवों के नहीं होती। बोलते समय भाषा कहलाती है। परन्तु बोलने के पूर्व तथा पश्चात् भाषा नहीं कहलाती। बोलने के समय भाषा का भेदन होता है परन्तु बोलने से पूर्व और पश्चात् भाषा का भेदन नहीं होता है।

भाषा का समय व्यतित हो जाने पर (जिस समय शब्द भाषा-परिणाम को छोड़ देता है, उस समय) भाषा का भेदन नहीं होता है, क्योंकि उस समय उत्कृष्ट प्रयत्न का अभाव है।

भाषा की तरह मन भी आत्मा नहीं है, अन्य (आत्मा से भिन्न अर्थात् पुद्गल स्वरूप) है। मन अजीव है, रूपी है, अचित्त है। फिर भी मन जीवों के होता है, अजीवों के नहीं। मनन से पूर्व व पश्चात् मन नहीं होता है परन्तु मनन करने के समय मन कहलाता है।

मनन के समय मन का भेदन होता है परन्तु मनन से पूर्व और पश्चात् मन का भेदन नहीं होता है।

ग्रन्थों में कहा है—

समणीमवगयवेयं परिहार-पुलाय-अप्पमत्तं च।
चोद्दसपुव्विं आहारयं च, ण य होइ संहरइ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् श्रमणी (साध्वी), अपगतवेद (वेदरहित), परिहार विशुद्धि चारित्रवान्, पुलाक, अप्रमत्तसंयत (सातवें गुणस्थानवर्ती) चौदह पूर्वधर और आहारक लब्धिवान् इनका संहरण नहीं होता है। स्नातक का एक भेद अपरिस्रावी है जो सम्पूर्ण काययोग का निरोध कर लेने पर, स्नातक निष्क्रिय हो जाता है और कर्मप्रवाह सर्वथा रूक जाता है।

गोम्मटसार में कहा है—असंयत सम्यग्दृष्टि सौधर्म-ईशान देवी पर्याप्त अवस्था में होती है। अपर्याप्त में असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान नहीं होता है। गोम्मटसार के अनुसार जीव की अपर्याप्त अवस्था में मनःपर्यवज्ञान व विभंगज्ञान नहीं होता है। केवली समुद्घात के समय दो प्राण-काय-आयुष होते हैं तथा योग ३ होते हैं—मन के वचन के योग नहीं होते हैं। गोम्मटसार में कृष्णलेशी सम्यग्मिथ्यादृष्टि—देवगति के पर्याप्त अवस्था में नहीं है। तथा दिगम्बर परम्परा के अनुसार स्त्री वेदी जीव में मनः पर्यवज्ञान नहीं होता है क्योंकि संक्लिष्ट परिणाम का तदात्म्य स्त्री वेदी में होता है। परिहार विशुद्धि चारित्र में आहारक योग नहीं होता है। आहारक योग चतुर्दश पूर्वधर को होता है परन्तु यह एकान्त नियम नहीं है कि चतुर्दश पूर्वधर आहारक ऋद्धिवाला ही होता है।

जीव-परिणति या अध्यवसाय विशेष से आत्मप्रदेश संकुचित-विस्तृत होकर कर्म प्रदेशों को झाड़ देते हैं उसे समुद्घात कहते हैं। जैसे कि—पक्षी अपने पंखों पर लगी हुई धूली या जलकी बूंदे, उन्हें फैलाकर सिकोड़कर झाड़ देते हैं। केवली समुद्घात में मनोयोग व वचन योग की प्रवृत्ति नहीं चलती है। उससे निवृत्त होने के बाद मनोयोग-वचन योग की प्रवृत्ति अन्तर्मुहूर्त तक चलती है। उसके बाद जीव काययोग का निरोध कर अयोगी बन जाता है। बाहुबलजी का पौत्र व सोमप्रभ का पुत्र श्रेयांसकुमार था—जिसने भगवान् ऋषभ को प्रथम दान दिया था। ब्राह्मी की दीक्षा सुन्दरी के पूर्व हो गयी थी। आतप नाम कर्म का उदय केवल सूर्य के मंडल में मिलता है। चार वर्णों में तीन वर्णों की उत्पत्ति ऋषभ नरेश के समय हो गई थी—ब्राह्मण वर्ग की स्थापना भरत के शासन काल में हुई। करोड़ पूर्व से अधिक आयुवाले मनुष्य सम्यग्मिथ्यादृष्टि नहीं होते है। युगलिये मरकर अपनी आयु से अधिक आयु वाले देव नहीं होते हैं।

अ, इ, उ, ऋ और ऌ—ये पाँच ह्रस्व अक्षर है। इनका न द्रुत, न विलंबित, किन्तु मध्यम उच्चारण ग्रहण किया गया है।

कहा है—

हस्सक्खराइं मज्झेणं जेण कालेणं पंच भण्णंति।
अच्छइ सेलेसिगओ, तत्तियं मेत्तं तओ कालं॥

—उव० टीकोद्धृत गाथा

शैलेश=मेरु, मेरुसी, स्थिर अडोल अवस्था-शैलेशी। अथवा शीलेश—सर्व संवर रूप चारित्र के प्रभु। शीलेश की योग निरोध रूप अवस्था शैलेशी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जहाँ गुण की वृद्धि से, असंख्यातगुणी निर्जरा, समय-समय पर अधिक होती है—वह गुणश्रेणी है। राजा ऋषभ ने भरत का विवाह बाहुबलि की बहिन सुन्दरी के साथ व भरत की बहिन ब्राह्मी का विवाह बाहुबलि के साथ किया। बाहुबलि के दीक्षित होने के बाद चक्रवर्ती भरत ने उनके पुत्र सोमप्रभ को तक्षशिला का शासन भार सौंपा। पैशून्य बड़ा पाप है। इसे पृष्ठ-मांस भोजी कहा है। इसे बचना जरुरी है। इससे अभ्याख्यान से भी बड़ा पाप माना है। तेरहवें गुणस्थान के अन्तिम समय में भी योग और लेश्या दोनों है। पर वे काययोगी होते हैं—मनोयोगी, वचनयोगी नहीं। लेश्या शुक्ल है। साम्परायिक क्रिया दसवें गुणस्थान तक है। उस क्रिया में अशुभ योग भी हो सकता है। दिगम्बर ग्रन्थों में दसवें, ग्यारहवें, बारहवें गुणस्थान में अशुभ योग भी माना है। पीछे-पीछे मांस खाने वाले को पृष्ठ मांस भोजी कहा है। यह बहुत बड़ा तथ्य है।

गतिमार्गणा में आयुप्राण अन्तर्भूत है क्योंकि गति और आयु में परस्पर अजहद्वृत्ति-रूप प्रत्यासत्ति है क्योंकि गति के बिना आयु नहीं और आयु के बिना गति नहीं।

वेदमार्गणा में मैथून संज्ञा अन्तर्भूत है। क्योंकि काम की तीव्रता के वश होकर स्त्री-पुरुष युगल अभिलाषा पूर्वक संभोग रूप जो कृत्य करते हैं वह वेदकर्म के उदय से उत्पन्न हुई पुरुष आदि की अभिलाषा का कार्य है। अतः मैथून संज्ञा और वेदकर्म में कार्य-कारण भाव प्रत्यासत्ति है।

गोम्मटसार में सास्वादान गुणस्थान में अनंतानुबंधी क्रोध, माया, मान, लोभ में से किसी एक कषाय का उदय होते हुए भी उसकी विवक्षा न होने से आगम में पारिणामिक भाव कहा है।

जब भाषा में सत् प्रवृत्ति को पुण्य और असत् प्रवृत्ति को पाप कहते हैं। सैद्धान्तिक भाषा में शुभ कर्म पुद्गलों को पुण्य और अशुभ कर्म पुद्गलों को पाप कहते हैं। प्राचीन आचार्यों ने पुण्य को सोने की बेड़ी और पाप को लोहे की बेड़ी से उपमित किया है। जहां शुभ योग की प्रवृत्ति है वहाँ दो काम साथ-साथ में होते हैं—कर्मों का निर्जरण होता है और पुण्य का बंध भी होता है। इस सत्प्रवृत्ति से कर्म की निर्जरा होती है, किन्तु प्रासंगिक रूप में होने वाले कर्म बंधन को रोका नहीं जा सकता। बन्धन मुक्ति और बन्धन साथ-साथ चलते हैं।

अस्तु जब तक प्राणी में अहिंसा, सत्य आदि की प्रवृत्ति भी है और कषाय भी है, तब तक वह कुछ तोड़ता है और कुछ बांधता है। किन्तु साधना को आगे बढाते-बढाते वह प्राणी एक दिन कषायों से सर्वथा मुक्त हो जाता है। तब आत्म-प्रवृत्ति प्रधान रहती है अर्थात् केवल शुभ योग की प्रवृत्ति प्रधान रहती है। पुण्य का बंध नगण्य हो जाता है और आत्मा निरन्तर मुक्ति की ओर बढती जाती है। अन्तिम भूमिका में वह बंध भी अवरुद्ध हो जाता है—अयोगी हो जाता है और आत्मा सदा के लिए मुक्त हो जाती है।

अशुभ योग—असत् प्रवृत्ति जो पर-पीड़ा का निमित्त बनती है, वह पाप है। जैसे सत्प्रवृत्ति रूप धर्म के साहचर्य से पुण्य की उत्पत्ति होती है वैसे ही असत्प्रवृत्ति के साहचर्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से पाप की उत्पत्ति होती है। पुण्य-पाप फल है। ये दोनों धर्म और अधर्म के प्रासंगिक है। जैन दर्शन आत्मा को परिणामी नित्य मानता है।

वाग् दो प्रकार की है—द्रव्यवाग् और भाव-वाग् अर्थात् वचन-वोलने के लिए जिन पुद्गलों की सहायता ली जाती है—वह है द्रव्य वचन। उसके बाद पुद्गलों की सहायता से आत्मा की जो प्रवृत्ति होती है वह भाव वचन। अतः भाव वचन को हम वचोयोग भी कह सकते हैं। यद्यपि वचोयोग की प्रवृत्ति का निमित्त द्रव्य वचन है जो कि पौद्गलिक है। जैसा कि राजवार्त्तिककार ने भी नहीं किया है। पर आगे चलकर उन्होंने भाव वाग् को पुद्गलों का कार्य मात्र माना है। यह ठीक नहीं है। क्योंकि वचोयोग आत्मप्रवृत्ति है और वह पौद्गलिक नहीं हो सकती। कर्मक्षयोपशम जन्य आत्म-सामर्थ्य को पौद्गलिक नहीं मानना चाहिए। अपने प्रकटित सामर्थ्य के द्वारा आत्मा जिसको ग्रहण करता है वह द्रव्य वचन है। इससे उनका कहना ठीक है। वह सामर्थ्य पौद्गलिक कैसे हो सकता है।

इसीप्रकार भावमन और द्रव्यमन के विषय में जानना चाहिए। भगवती शतक २५। उद्देशक १ में भाषा और मन को योग कहा है। योग को आस्रव कहा गया है। आस्रव जीव है क्योंकि वह आत्मा की प्रवृत्ति है। योग भी जीव है और जीव पौदगलिक नहीं हो सकता। अतः भावमन भी पौद्गलिक नहीं है।

अस्तु पारिणामिक भाव का मतलब है—वस्तु का अपने स्वभाव में परिणत होना। अतः भावमन जो अपने रूप में परिणत होता है वह पारिणामिक भाव है। पर एक भावमन ही पारिणामिक नहीं है क्योंकि परिभाषा के अनुसार पर्याय मात्र पारिणामिकभाव है। द्रव्यमन भी पारिणामिक है। जैसा कि अनुयोगद्वार में जीव को जीवपरिणामी कहा है और अजीव को अजीवपरिणामी कहा है। तथा पण्णवणा पद १३ में भी इसका विवेचन है।

अस्तु भावमन तो पौद्गलिक है ही नहीं और पर्याप्ति पौद्गलिक है। अतः उसका भावमन से कोई सम्बन्ध नहीं है। पर्याप्ति के द्वारा मन के योग्य पुद्गलों का आदान-परिणमन और उत्सर्ग होता है पर एक नहीं है। अतः मन और भाषा पर्याप्ति भिन्न है।

२—औदारिकमिश्रकाययोग—जब औदारिकशरीर अन्तर्मुहूर्तकाल तक अपूर्ण अर्थात् अपर्याप्त होता है तब उसको औदारिकमिश्र कहते हैं। कार्मणकाययोग से आकृष्ट कार्मण-वर्गणा से संयुक्त होने से औदारिकमिश्र कहते हैं। जब जीव पूर्व शरीर को छोड़कर नया शरीर धारण करने के लिए विग्रहगति से गमन करता है तब उसके अधिक से अधिक दो समय (दिगम्बर परम्परानुसार तीन समय) तक उसके कार्मणकाययोग होता है। उससे कार्मणवर्गणाओं का ग्रहण होता है। इस तरह कार्मण और औदारिकवर्गणा का मेल होने से अपर्याप्त अवस्था में औदारिक को ही औदारिकमिश्र कहा जाता है। अथवा परमागम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में ऐसा रूढ है कि अपर्याप्त शरीर मिश्र होता है। इस कारण से औदारिककायमिश्र के साथ उसके लिए वर्तमान जो संप्रयोग अर्थात् आत्मा का कर्म और नोकर्म को ग्रहण करने की शक्ति के लिए प्रदेश परिस्पन्दनरूप योग है वह शरीर पर्याप्ति की पूर्णता न होने से औदारिकवर्गणा के स्कंधों को परिपूर्ण रूप से शरीर रूप परिणमाने से असमर्थ होने से औदारिकमिश्रकाययोग होता है।

वैक्रिय काययोग-वैक्रिय शरीर के लिए जो उस रूप परिणमन के योग्य शरीरवर्गणा के स्कन्धों को आकृष्ट करने की शक्ति से विशिष्ट आत्मप्रदेशों का कंपन है वह वैक्रिय काययोग है। अथवा कारण में कार्य के उपचार करने से वैक्रियकाय ही वैक्रियकाययोग है। यह उपचार भी पूर्व की तरह निमित्त से लिए हुए हैं। वैक्रियकाय से हुआ योग वैक्रियकाययोग यह निमित्त का योग है। कर्म-नोकर्म रूप से परिणमन होना प्रयोजन है, मनुष्य और तिर्यंच में जिन जीवों का औदारिक शरीर ही वैक्रिय रूप होता है वे जीव अपृथक् विक्रिया करते हैं। चक्रवर्ती के भी वैक्रिय काययोग होता है।

वैक्रियमिश्र काययोग—वह वैक्रिय शरीर ही अन्तर्मुहूर्त मात्र अपर्याप्त काल तक शरीर पर्याप्ति की पूर्णता न होने से वैक्रिय काययोग को उत्पन्न करने में असमर्थ होता है तब तक औदारिकमिश्र काय की तरह उसे वैक्रियमिश्र जानना चाहिए। उस वैक्रियमिश्र काय के साथ जो संप्रयोग अर्थात् कर्म-नोकर्म को ग्रहण करने की शक्ति को प्राप्त अपर्याप्त काल मात्र आत्मा के प्रदेशों का चलन रूप योग वैक्रियमिश्र काययोग है। अर्थात् अपर्याप्त योग का नाम मिश्र काययोग है।

आहारक काययोग—प्रमत्त संयत के आहारक शरीर नाम कर्म के उदय से आहार वर्गणा के आये हुए पुद्गल स्कन्धों को आहारक शरीर रूप परिणमन करने को आहारक शरीर कहते हैं। अथवा श्रुतज्ञानावरण और वीर्यान्तराय के क्षयोपशम की मन्दता होने पर जब धर्म ध्यान के विरोधी शास्त्र के अर्थ में सन्देह होता है तब उस संशय को दूर करने के लिए ऋद्धि प्राप्त प्रमत्त संयत के आहारक शरीर प्रकट होता है। आहारक शरीर पर्याप्ति परिपूर्ण होने पर कदाचित् आहारक शरीर ऋद्धि से युक्त प्रमत्त संयत के आहारक काययोग के काल में अपनी आयु का क्षय होने पर मरण भी हो जाता है। अस्तु शरीर पर्याप्ति की पूर्णता होने पर आहार वर्गणाओं के द्वारा आहारक शरीर के योग्य पुद्गल स्कन्धों को ग्रहण करने की शक्ति से विशिष्ट आत्मा के प्रदेशों का चलन आहारक काययोग जानना चाहिए।

आहारकमिश्र काययोग—वह आहारक शरीर ही जब अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त अपर्याप्त काल में अपरिपूर्ण होता है अर्थात् आहार वर्गणा के पुद्गल स्कन्धों को आहारक शरीर के आकार रूप से परिणमाने में असमर्थ होता है तब तक उसे आहारकमिश्र कहते हैं। उससे पहले होनेवाली औदारिक शरीर वर्गणा से मिला होने से उनके साथ जो संप्रयोग अर्थात् अपरिपूर्ण शक्ति से युक्त आत्म प्रदेशों का चलन है उसे आहारकमिश्र योग कहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कार्मण काययोग—कर्म ही अर्थात् आठ कर्म के कर्मों का स्कन्ध ही, कार्मण अर्थात् कार्मण शरीर है। अथवा कर्मभव अर्थात् कार्मण शरीर नाम कर्म के उदय से जो उत्पन्न हुआ—वह कार्मण है। उस कार्मण स्कन्ध के साथ जो वर्तमान जो सम्प्रयोग अर्थात् आत्मा के कार्मण को आकर्षण करने की शक्ति से संयुक्त प्रदेशों का परिस्पन्द रूप योग है वह कार्मण काययोग है। यह अन्तकाल गति—विग्रह गति में और केवली समुद्घात के तीसरे, चौथे, पांचवें समय में होता है।

जीव प्ररूपणा के बीस भेद हैं उसमें एक पन्द्रह योगमार्गणा भी है। योगमार्गणा में कायबलप्राण अन्तर्भूत है, क्योंकि जीव के प्रदेशों के परिस्पन्द लक्षण वाले काययोग रूप कार्य में उसको बलाधान करने वाले कायबलप्राण स्वरूप कारण की सामान्य विशेषकृत प्रत्यासत्ति होने से कार्यकारणकृत प्रत्यासत्ति होती है। कायबल विशेष है, योग सामान्य है। इसप्रकार सामान्य विशेषभाव प्रत्यासत्ति में योग में कायबल का अंतर्भाव युक्त है।

जब-जब आयुबन्ध करता है तब-तब उसके योग्य जघन्ययोग में करता है। उत्कृष्ट योग से आहारित और उत्कृष्ट वृद्धि से वर्धित होता हुआ बहुत बार उत्कृष्ट योग स्थानों को प्राप्त हुआ, जघन्य योग स्थानों को प्राप्त नहीं हुआ। बहुत बार बहुत संक्लेश रूप परिणामों से परिणत हुआ, विशुद्ध हुआ तो अपने योग्य विशुद्धि से विशुद्ध होता है। नीचे की स्थिति के निषेकों का जघन्य पद करता है और ऊपर की स्थिति के निषेकों का उत्कृष्ट पद करता है। इसप्रकार भ्रमण करके बादर त्रस पर्याप्तकों में उत्पन्न हुआ। वहाँ भ्रमण करते हुए पर्याप्त के भव बहुत धारण किये, अपर्याप्त के भव थोड़े धारण किये। पर्याप्त का काल बहुत हुआ, अपर्याप्त का काल थोड़ा हुआ। इसप्रकार भ्रमण करके अन्तिम भवग्रहण करते समय सातवीं पृथ्वी के नारकियों में उत्पन्न हुआ। उस भव को ग्रहण करने के प्रथम समय में उसके योग्य उत्कृष्ट योग से आहार ग्रहण किया। उत्कृष्ट योग की वृद्धि से बढ़ा। सबसे लघु अन्तर्मुहूर्त में सब पर्याप्तियों को पूर्ण किया। उस नारकी में तैंतीस सागरकाल तक आवश्यक योग और आवश्यक संक्लेश को प्राप्त हुआ।

इस प्रकार भ्रमण करके थोड़ी आयु शेष रहने पर योग यव मध्य के ऊपर के भाग में अन्तर्मुहूर्त शेष तक स्थित रहकर जीवन व मध्य रचना की, अन्तिम गुण-हानि रूप योग स्थान में अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहकर आयु के अन्त से पहले तीसरे और दूसरे समय में उत्कृष्ट संक्लेश को प्राप्त होकर अन्तिम समय में तथा अन्तिम से पहले समय में उत्कृष्ट योगस्थान को प्राप्त करके जब वह उस भव के अन्तिम समय में स्थित होता है तब उसके कार्मणशरीर का उत्कृष्ट संचय होता है।

यद्यपि अनंत रहस्यों का खजाना है—योग विद्या। इस खजाने की चाबी जिसे उपलब्ध हो जाती है, उसे सबकुछ उपलब्ध हो सकता है। यही कारण है कि आज इस विषय पर विशेष अन्वेषण और विशेष प्रयोग हो रहे हैं तथा उनके विशेष परिणाम भी आ रहे हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन साहित्य में 'योग' शब्द का प्रयोग अध्यात्म योग, भावना योग, संवर योग, ध्यान योग आदि अनेक रूपों में मिलता है। इन सभी योगों को जैन तत्त्व विद्या में समाविष्ट किया जा सकता है। इस दृष्टि से 'जैन योग' योग विद्या का बहुआयामी लक्ष्य लेकर चलता है।

'योग' शब्द भी निष्पत्ति संस्कृति की 'युज्' धातु से होती है। इस धातु का प्रयोग भी कई अर्थों में होता है। प्रस्तुत संदर्भ में इसके दो अर्थ अधिक उपयुक्त है—समाधि और जोड़ना। जिस प्रवृत्ति से मन, बुद्धि और आत्मा को समाधान मिले, वह योग है। इसका दूसरा अर्थ 'जोड़ना' बहुत व्यापाक होने पर भी एक विशेष योजना का प्रतीक है। जिसे अभिव्यक्त करते हुए आचार्य हरिभद्र ने लिखा है—'मोक्खेण जोयणाओ जोगो सव्वो वि धम्मवावादो' धर्म की सारी प्रवृत्तियाँ व्यक्ति को मोक्ष के साथ जोड़ती है, इसलिए वे योग है।

जैन, बौद्ध और बौद्धिक—सभी परम्पराओं में योग विद्या का प्रचलन है और उनके साहित्य में योग की विशद चर्चा है।

जैन साधना—पद्धति में योग के तीन अंश माने गये हैं—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र। बौद्ध साधना पद्धति प्रज्ञा (ज्ञान), शील (यम-नियम) और समाधि (ध्यान-धारणा) को तथा पातंजल योगदर्शन में यम, नियम, आसन, प्रणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि को योग के अंग बताये हैं।

सयोगी जीव एजन (कंपन), विशेष एजन (विशेष कंपन) चलन (एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना), स्पंदन (थोड़ा चलना), घट्टन (सब दिशाओं में चलना), क्षुभित होता, उदीरण आदि क्रियाऐं करता है और उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण आदि पर्यायों को प्राप्त होता है। पूर्वोक्त क्रियाओं को करने वाला जीव सकलकर्म क्षयरूप अंत क्रिया नहीं कर सकता है।

शैलेशी अवस्था में योग का निरोध हो जाता है इसीलिग एजनादि क्रिया नहीं होती। एजनादि क्रिया न होने से उसकी आरंभादि में प्रवृत्ति नहीं होती और इसीलिए हर प्राणियों के दुःखादि का कारण नहीं बनता है। इसीलिए योगनिरोध रूप शुक्लध्यान द्वारा अक्रिय आत्मा की सकल क्षयरूप अंत क्रिया होती है।

उपशांत मोह, क्षीणमोह और सयोगी केवली इन तीन गुणस्थानों में रहे हुए जीव के एक साता वेदनीय कर्म का बंध होता है क्योंकि वह सक्रिय है।

साधारण अर्थात् निगोद के दो भेद है—नित्यनिगोद जो अव्यवहार राशि के जीवों का पिण्ड है तथा इतर निगोद जो व्यवहार राशि के जीवों का पिण्ड है। दोनो निगोद की सात-सात लाख योनियां है। उनमें तीन योग होते हैं—औदारिक काययोग, औदारिकमिश्र काययोग तथा कार्मण काययोग।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वर नाम कर्म के उदय के वश से भाषा वर्गणा के रूप में आये हुए पुद्गल स्कन्धों को सत्य, असत्य, उभय-अनुभय भाषा के रूप में परिणमाने की शक्ति की पूर्णता को भाषा पर्याप्ति कहते हैं। भाषा वर्गणा के पुद्गल वचन योग में सहायक बनते हैं। मनो वर्गणा के रूप में आये हुए पुद्गल स्कन्धों को अंगोपांग नाम कर्म के उदय की सहायता से द्रव्य मनोरूप से परिणमाने के लिए तथा उस द्रव्य मन की सहायता से नो इन्द्रियावरण और वीर्यान्तराय के क्षयोपशम विशेष से गुण-दोष का विचार, स्मरण, प्रणिधान लक्षण वाले भाव मन रूप से परिणमन करने की शक्ति की पूर्णता को मनः पर्याप्ति कहते हैं। मनो वर्गणा के पुद्गल भाव मनोयोग में सहायक बनते हैं। सयोगी केवली गुणस्थान में मनः पर्याप्ति भी है अतः उपचार से भाव मनोयोग मानना ही पड़ेगा।

जन्म, जरा, मरण, भय, अनिष्ट संयोग, इष्ट वियोग, दुःख, संज्ञा, रोग आदि नाना प्रकार की वेदना जिसमें नहीं है वह समस्त कर्मों के सर्वथा विनाश से प्रकट हुई सिद्धगति है। उस गति में योग नहीं होता है, लेश्या नहीं होती है।

उत्सर्पिणी काल के तृतीय काल के अन्त में तथा विदेह आदि क्षेत्र में तथा अवसर्पिणी काल के चतुर्थ काल के आदि में आत्मांगुल भी प्रमाणांगुल रूप होता है।[1]

औपशमिक सम्यक्त्वी को आहारक व आहारकमिश्र काययोग नहीं होता है।[2] कार्मण काययोगी जीव परभव का आयुष्य नहीं बांधता है। सयोगी जीव तीसरे, बारहवें व तेरहवें गुणस्थान में मरण को प्राप्त नहीं होता है। अप्रमत्त गुणस्थान में वेदनीय कर्म की उदीरणा नहीं है।

योग-जीव द्रव्य की पर्याय है। द्रव्यों की पर्याय की जघन्य स्थिति क्षण मात्र होती है। उसको समय कहते हैं। गमन करते हुए दो परमाणुओं के परस्पर में अतिक्रम करने में जितना काल लगता है उतना ही समय का प्रमाण है। आकाश के जितने क्षेत्र को एक परमाणु रोकता है उसे प्रदेश कहते हैं। सिद्ध द्रव्य कर्म और भाव कर्म से रहित होने से सदा शुभ होते हैं।

एक जोगा (एक योगी) गोजी० गा० २६१

बियजोगिणो तदूणा संसारी एक जोगा दु॥

टीका—ताभ्यां द्वित्रियोगराशिभ्यां हीन संसारी। एक योगि राशिर्भवति—काय-योगिजीवराशिरित्यर्थः।

संसारी जीव राशि में से दो योग और तीन योग वाले जीवों का परिमाण हीन कर देने पर जो शेष रहे उतना एक योगी अर्थात् काययोगी जीवों की राशि होती है।

---

१. गोजी० गा० ८९, १५९। टीका।

२. गोजी० गा० ७२८। टीका।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बियजोगिणो (द्वि योगी) गोजी० २६१

बियजोगिणो तदूणा संसारी एक जोगा दु ॥२६१॥

टीका—तैर्हीनत्रसपर्याप्तराशिः द्वियोगिराशिप्रमाणं भवति—कायवाग्योगयुक्त जीवराशिदित्यर्थः ।

पर्याप्त त्रस राशि प्रमाण में से त्रियोगी जीवों के परिमाण को कम कर देने से जो शेष रहे उतने द्वियोगी अर्थात् काययोग और वचन योग से युक्त जीवों का परिमाण होता है ।

तिजोगिणो (त्रियोगी) गोजी० गा २६१

त्रियोगी अर्थात् मन-वचन-काय तीनों योगों से युक्त जीव की राशि ।

देवेहि सादिरेया तिजोगिणो तेहिहीण तसपुण्णा ।
बियजोगिणो तदूणा संसारी एक जोगा दु ॥

टीका—त्रियोगिराशिर्भवति—कायवाङ् मनोयोगत्रययुक्तजीवराशिदित्यर्थः ।

देवराशि का प्रमाण साधिक ज्योतिष्क देवराशि प्रमाण है । उस देवराशि में धनांगुल के दूसरे वर्गमूल से गुणित जगत्श्रेणी प्रमाण नारकी और असंख्यात पण्णट्ठी तथा प्रतरांगुल से भाजित जगत प्रतर प्रमाण संज्ञी पर्याप्त तिर्यंच और बादर के घन प्रमाण पर्याप्त मनुष्य—इन सबको मिलाने से जो परिमाण होता है उतने त्रियोगी जीव होते हैं ।

कहा है—

कतिविहाणं भंते ! जोगनिव्वत्ती पण्णत्ता ? गोयमा ! तिविहा जोगनिव्वत्ती पण्णत्ता, तंजहा-मणजोग-निव्वत्ती, वइजोगनिव्वत्ती, कायजोगनिव्वत्ती । एवं जाव वेमाणियाणं, जस्स जति विहो जोगो ।

—भग० श० १८ । उ ८ । सू ८९

तीन योगनिर्वृत्ति होती हैं—यथा मनोयोगनिर्वृत्ति, वचनयोगनिर्वृत्ति तथा काययोगनिर्वृत्ति । इसी प्रकार दण्डक के सभी जीवों के योगनिर्वृत्ति होती है । जिस दण्डक में जितने योग होते हैं उसमें उतने योगनिर्वृत्ति कहना । टीकाकारने निर्वृत्ति की व्याख्या इस प्रकार की है ।

तत्र क्रियतेऽनेनेति करणं—क्रियायाः साधकतमं कृतिर्वा करण—क्रिया मात्रं, नन्वस्मिन् व्याख्याने करणस्य निर्वृत्तेश्च न भेदः स्यात्, निर्वृत्तेरपि क्रियारूपत्वात्, नैवं, करणमारम्भक्रिया निर्वृत्तिस्तु कार्यस्य निष्पत्तिरिति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्वर्तनं—निर्वृत्तिर्निष्पत्तिर्जीवस्यैकेन्द्रियादितया निर्वृत्तिर्जीवनिर्वृत्तिः।

अर्थात् जिसके द्वारा किया जाय वह करण। क्रिया का साधन अथवा करना—वह करण। इस दूसरी व्युत्पत्ति के प्रमाण से करण और निर्वृत्ति एक हो गई ऐसा नहीं समझना चाहिए। क्योंकि करण आरम्भिक क्रिया रूप है तथा निर्वृत्ति क्रिया की समाप्ति रूप है।

निर्वृत्ति-निर्वर्तन अर्थात् निष्पन्नता। यथा—जीव का एकेन्द्रियादि रूप से निर्वृत्ति होना जीव-निर्वृत्ति। योग-निर्वृत्ति का अर्थ इस प्रकार किया जा सकता है—द्रव्य योग के द्रव्यों के ग्रहण की निष्पन्नता अथवा भावयोग के एक योग से दूसरे योग में परिणमन की निष्पन्नता योग-निर्वृत्ति।

योग करण—आगम के मूल पाठ में योग करण की चर्चा नहीं है।

भगवई श १९। उ ९। सू १०२-११० में २२ करणों की चर्चा है—यथा—

१—द्रव्य करण, २—क्षेत्र करण, ३—काल करण, ४—भव करण, ५—भाव करण, ६—शरीर करण, ७—इन्द्रिय करण, ८—भाषा करण, ९—मन करण, १०—कषाय करण, ११—समुद्घात करण, १२—संज्ञा करण, १३—लेश्या करण १४—दृष्टि करण, १५—वेद करण, १६—प्राणातिपात करण, १७—पुद्गल करण १८—वर्ण करण, १९—गंध करण, २०—रस करण, २१—स्पर्श करण, २२—संस्थान करण

द्रव्य तथा भाव के भेद से कर्म के दो प्रकार है। उसमें ज्ञानावरणादिरूप पुद्गल-द्रव्य का पिंड द्रव्यकर्म है और उस द्रव्यपिंड में फल देने की जो शक्ति—वह भावकर्म है। अथवा कार्य में कारण का व्यवहार होने से उस शक्ति से उत्पन्न हुए जो अज्ञानादि वा क्रोधादि रूप परिणाम वे ही भावकर्म है।

जिस कर्म के उदय से सम्यक्त्वगुण का मूल से घात न हो परन्तु परिणामों में कुछ चलायमानपना तथा मलिनपना हो जाय उसे सम्यक्त्व प्रकृति कहते हैं। जो नो अर्थात् ईषत्—थोड़ा कषाय हो—प्रबल नहीं हो उसे नोकषाय कहते हैं। उसका जो अनुभाव करावे वह नोकषाय वेदनीयकर्म कहा जाता है। जिसके उदय से ग्लानि अर्थात् अपने दोष को ढकना और दूसरे के दोष को प्रगट करना हो वह जुगुप्साकर्म है। जिस कर्म के उदय से मरण के बाद और जन्म के पूर्व अर्थात् विग्रहगति में मरण से पहले के शरीर के आकार आत्मा के प्रदेश रहे अर्थात् पूर्व शरीर के आकार का नाश न हो उसे आनुपूर्वी नामकर्म कहते हैं—ऐसा गोम्मटसार में कहा है—यथा—जिस कर्म के उदय से नरकगति को प्राप्त होने के सम्मुख जीव के शरीर का आकार विग्रहगति में पूर्व शरीराकार रहे उसे नरकगति-आनुपूर्वी कहते हैं। जिसके उदय से पर को आतप करने वाला शरीर हो वह आतप नामकर्म है अर्थात् उसका उदय सूर्य के विम्ब में उत्पन्न हुए पृथ्वीकायिक जीवों के हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करण-जोग रूप क्रिया का भी एक भेद है। भाषा करण, मन करण-योग रूप क्रिया है। शरीर करण-काय करण का भी एक भेद बन सकता है। अतः काय योग रूप क्रिया का भी ग्रहण हो जाता है।

साधकतमं करणं (अभिधा० पृ० २८६)

केवलिनोद्धनिरुद्धजोगस्स— केवलिनोऽर्धनिरोधयोगस्य।

—ठाण० स्था० ४। उ १। सू २४७। टीका में उद्धृत

निर्वाण के समय तेरहवें गुणस्थान में काययोग का अर्ध-निरोध होता है।

निव्वाणगमणकाले केवलिनोद्धनिरुद्धजोगस्स।
सुहुमकिरियाऽनियट्टिं तइयं तणुकायकिरियस्स॥
तस्सेव य सेलेसीगयस्स सेलोव्व निप्पकंपस्स।
वोच्छिन्नकिरियमप्पडिवाई झाणं परमसुक्कं॥

—ठाण० स्था० ४। उ १। सू २४७। टीका में उद्धृत

निर्वाण के समय केवली के मन और वचनयोगों का सम्पूर्ण निरोध हो जाता है तथा काययोग का अर्धनिरोध होता है। उस समय उनके शुक्लध्यान का तीसरा भेद 'सुहुमकिरिएअनियट्टी' होता है और सूक्ष्मकायिकी क्रिया उच्छ्वासादि रूप में होती है।

उस निर्वाणगामी जीव के शैलेत्व प्राप्त होने पर सम्पूर्ण योग निरोध होने पर भी शुक्लध्यान का चौथा भेद 'समुच्छिन्न-क्रियाऽप्रतिपाती' होता है, यद्यपि शैलेत्व की स्थिति मात्र पाँच ह्रस्व स्वराक्षर उच्चारण करने समय जितनी होती है।

योग प्रवृत्ति का नियम—

वेगुव्विय आहारयकिरिया ण समं पमत्तविरदम्मि।
जोगो वि एक्काले एक्केव य होदि णियमेण॥

—गोजी० गा० २४२

प्रमत्तविरत में वैक्रियकाययोगक्रिया और आहारकयोगक्रिया—ये दोनों एक साथ नहीं होती तथा योग भी एक काल में अर्थात् अपने योग्य अन्तर्मुहूर्त में नियम से एक ही होता है। दो या तीन योग एक जीव में एक साथ नहीं होते हैं।

वीरसेनाचार्य ने षट्खण्डागम में कहा है—

त्रयाणां योगानां प्रवृत्तिरक्रमेण उतनेति ? नाक्रमेण, त्रिष्वक्रमेणैकस्यात्मनो योग-निरोधात्। मनोवाक्कायप्रवृत्तयोऽक्रमेण क्वचिद् दृश्यन्त इति चेद् भवतु तासां तथा प्रवृत्तिर्दृष्टत्वात्, न तत्प्रयत्नानामक्रमेण वृत्तिस्तथोपदेशाभावादिति। अथ स्यात्प्रयत्नो हि नाम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बुद्धिपूर्वकः, बुद्धिश्चमनोयोगपूर्विका, तथा सिद्धो मनोयोगः शेषयोगाविनाभावीति न, कार्य-कारणयोरेककाले समुत्पत्तिविरोधात् ।

—षट्० खं० १ । १ । सू ४७ । टीका । पु १ । पृ० २७९-८०

अर्थात् मन, वचन और काय की प्रवृत्ति क्वचिद् अक्रम से देखी जाती है । प्रयत्न-पूर्वक योगी की प्रवृत्ति एक साथ नहीं होती है । प्रयत्न बुद्धि पूर्वक होता है । बुद्धि मनोयोग पूर्वक होती है । कार्यकारण रूप में एक काल में योगों की समुत्पत्ति का विरोध है ।

काया के योग से भाषा के पुद्गल ग्रहण किये जाते हैं तथा वचन के योग से भाषा के पुद्गल छोड़े जाते हैं ।

ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम भाव तथा मोहनीय कर्म के उदय वचनयोग से असत्य भाषा व मिश्र भाषा बोलता है । ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम भाव में वचन के योग से सत्य भाषा व व्यवहार भाषा बोलता है ।

सयोगी में भंग २—अनादि अपर्यवसित, तथा अनादि सपर्यवसित । मनयोगी, वचन-योगी की कायस्थिति जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त की होती है । काययोगी की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट अनन्तकाल यावत् वनस्पतिकाल जितना होता है । अयोगी में भंग १—सादि अपर्यवसित । सयोगी व अयोगी का अंतरकाल नहीं है । मनोयोगी, वचनयोगी का अन्तरकाल जघन्य अन्तर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट अनन्तकाल यावत् वनस्पतिकाल जितना होता है । काययोगो का अन्तरकाल जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त जितना है ।

अस्तु भाषक की कायस्थिति जघन्य एक समय की व उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की होती है । अभाषक के दो भेद है, यथा —सिद्ध अभाषक और संसारी अभाषक । सिद्ध अभाषक की कायस्थिति आदि अपर्यवसित, संसारी अभाषक की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त की उत्कृष्ट अनंतकाल यावत् वनस्पतिकाल । भाषक का अंतरकाल जघन्य अन्तर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट अनंतकाल यावत् वनस्पतिकाल जितना है । संसारी अभाषक का अन्तरकाल जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त का होता है । सिद्ध अभाषक का अन्तरकाल नहीं है ।

कार्यकारण रूप से एक समय में एक काल में योगों की समुत्पत्तिकादिरोध है । योगों के निरोध के समय क्रमशः मन, वचन व काययोग का निरोध होता है । मन वचन व काययोग की प्रवृत्ति को क्वचित् अक्रम से देखी जाती है (लोकव्यवहार में) । वस्तुतः उन योगों की प्रयत्नरूप प्रवृत्ति अक्रम से नहीं होती है । अतः बुद्धिपूर्वक प्रयत्न होता है तथा बुद्धि मनोपूर्वक होती है तथा मनोयोग सिद्ध हो जाता है । शेष योगों का अविनाभाव सम्बन्ध नहीं है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रयोगगति, ततगति, बंधनछेदनगति, उपपातगति और विहायोगति के भेद से गति के पांच भेद हैं। प्रयोगगति के मूल भेद औदारिककायप्रयोग आदि पन्द्रह भेद हैं, उतर भेद १४३ है।

विहायगति के फुसमाणगति आदि सतरह भेदों में लेश्यागति और लेश्यानुपात-गति भी है।

कृष्णादि लेश्या के द्रव्य परस्पर विरोधी लेश्या में परिणमन होते हैं उसे लेश्यानुपात-गति कहते हैं। उस समय लेश्या के साथ योग भी होता है।

जिस लेश्या के पुद्गल अंतकाल में ग्रहण करे उसी लेश्या में आकर उत्पन्न होने को लेश्यानुपातगति कहते हैं उस समय भी योग होता है।

समुच्चय जीव में योग १५ होते हैं। जिसमें तेरह योग शाश्वत तथा दो योग (आहारक काययोग व आहारकमिश्र काययोग) अशाश्वत है।

नारकी का एक दण्डक तथा देवों के तेरह दण्डकों में योग ११ होते हैं जिसमें दस शाश्वत होते हैं तथा एक कार्मण काययोग अशाश्वत है। पृथ्वीकायादि चार स्थावर में (वायुकाय बाद) ३ योग शाश्वत है। वायुकाय में पांच योग शाश्वत होते हैं। तीन विकलेन्द्रिय में ४ योग होते हैं जिसमें तीन योग शाश्वत और कार्मण काययोग अशाश्वत होता है। तिर्यंच पंचेन्द्रिय में तेरह योग होते हैं जिसमें बारह योग शाश्वत और एक कार्मण काययोग अशाश्वत होता है। मनुष्य में योग १५ होते हैं जिसमें चार योग अशाश्वत (औदारिकमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र व कार्मण काययोग) बाकी ग्यारह योग शाश्वत होते हैं।

जिनमें भांगे ८०—असंजोगी ८, दो संजोगी २४, तीन संजोगी ३२, चार संजोगी १६—सर्व मिलकर भांगे १४३ होते हैं।

वचनयोग में भाषा का भी व्यवहार होता है। भाषा की अपेक्षा अल्पबहुत्व इस प्रकार है।

१—सबसे न्यून सत्य भाषा बोलने वाले। २—उससे मिश्र भाषा बोलने वाले असंख्यात गुणें। ३—उससे असत्य भाषा बोलने वाले असंख्यात गुणें। ४—उससे व्यवहार भाषा बोलने वाले असंख्यात गुणे तथा ५—उससे अभाषक अनंतगुणे है। अभाषक में एकेन्द्रिय जीव, सिद्ध जीव आदि का समावेश है।

भाषा की उत्पत्ति औदारिक, वैक्रिय तथा आहारक शरीर से होती है।

वही अनशन श्रेष्ठ हैं जिससे मन अमंगल चिन्तन न करे, योगों के आवश्यक कार्य में क्षति न हो। पांच संवर में अप्रमाद, अकषाय और अयोग संवर प्रत्याख्यान जन्य नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं, वे कर्मविलय से सहज निष्पन्न होने वाले है। प्राणातिपात आदि पन्द्रह आस्रव योग आस्रव है। इनके अशुभ योग आस्रवों के प्रत्याख्यान से विरति संवर निष्पन्न होता है। पन्द्रह आस्रव प्रवृत्ति रूप है अतः वे योग आस्रव के भेद है। अशुभ योग को रोकने से योग निरोध नहीं होता है। जब अशुभ योग की निवृत्ति के बाद शुभ योग की भी निवृत्ति हो—तब अयोग संवर होता है।

सम्यक्त्व, देश विरति, सर्व विरति की प्राप्ति के समय शुभयोग, विशुद्धमान लेश्या व अध्यवसाय प्रशस्त होते हैं।

मिश्र काययोगों में आयु का बंध नहीं होता है।

आयुर्बन्धो मिश्रगुणस्थानमिश्रकाययोगवर्जितेष्वप्रमत्तास्तेष्वेव।

—गोक० गा० ९२। टीका

अर्थात् आयु का बंध मिश्रगुणस्थान और मिश्रकाययोगों को छोड़कर अप्रमत्त गुणस्थान पर्यन्त ही होता है।

नोट—मिश्रकाययोग—आहारकमिश्र काययोग, औदारिकमिश्र काययोग, वैक्रियमिश्र काययोग और कार्मण काययोग है।

गोम्मटसार में कहा है कि सातवीं नारकी में अपर्याप्त अवस्था में मिश्रकाययोग होने से मनुष्यायु और तिर्यंचायु का बंध नहीं होता है।[1]

अपर्याप्त के दो भेद है—लब्धि अपर्याप्तक और निर्वृत्ति अपर्याप्तक। आहारिक-मिश्र काययोग नियम से निवृत्ति अपर्याप्तक अवस्था में है। जब-जब जीव आयु को बाँधता है, तत्प्रायोग्य जघन्य योग के द्वारा ही बांधता है।

सूक्ष्म एकेन्द्रियों के योग से बादर एकेन्द्रियों का योग असंख्यातगुणा है।

अभयदेवसूरि ने कहा है—

"शरीरेन्द्रिययोगेषु क्रिया।

—भग० श० १७। उ १। सू ११। टीका

अर्थात् शरीर, इन्द्रिय और योग में क्रिया होती है। एजनादि यावत् चक्षुपद्म-निपात क्रियाओं को द्रव्य क्रिया कहते हैं। प्रयोग, उपाय, करणीय, समुदान, ऐर्यापथिकी, सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व को भाव क्रिया कहते हैं। प्रयोग क्रिया को अक्रिया का एक भेद भी माना है—

---

१. गोक० गा० १०५। टीका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अकिरिया तिविहा पन्नत्ता, तं जहा—पओगकिरिया, समुदाणकिरिया, अन्नाण-किरिया।

—ठाण० स्था ३। उ ३। सू १८७

अक्रिया के तीन भेद है—प्रयोग क्रिया, समुदान क्रिया और अज्ञान क्रिया।

द्रव्य की अपेक्षा जीव तथा अजीव की परिस्पन्दन रूप क्रिया-द्रव्य क्रिया है। द्रव्य क्रिया दो प्रकार की होती है—प्रायोगिक व वैस्रसिकी। वह चाहे उपयोगपूर्वक हो या अनुपयोगपूर्वक हो अथवा आंख की पलक झपकने मात्र जितनी हो वे सर्व द्रव्य क्रिया है। जिस क्रिया से कर्म बंध होता हो वह भाव क्रिया है।

हिंसा में मन, वचन व काययोग की प्रवृत्ति के बिना भी अप्रतिहन-अप्रत्याख्यात आत्मा के पाप कर्म का बंध होता है—यह कथन समुचित है। अप्रत्याख्यान भी एक क्रिया है।

इसी प्रकार प्रत्याख्यान के अभाव में मृषावाद यावत् मिथ्यादर्शनशल्य का भी बंध होता है।

प्रयोग और गति—

गति का एक भेद—

कतिविहे णं भंते ! गतिप्पवाए पण्णत्ते ? गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा—पओगगती १ ततगती २ बंधणच्छेयगती ३ उववायगती ४ विहायगती ५। १०८५।

—पण्ण० प० १६

गति प्रपात के पांच भेद है, यथा, १ प्रयोगगति, २ ततगति, ३ बंधनछेदनगति, ४ उपपातगति और ५ विहायोगति।

प्रयोगगति के भेद—

से किं तं पओगगती ? पओगगती पण्णरसविहा पण्णत्ता, तंजहा—सच्चमणप्प-ओगगती एवं जहा पओगो भणिओ तहा एसा वि भाणियव्वा जाव कम्मगसरीरकायप्पओग-गति। १०८६

—पण्ण० प १६

प्रयोगगति के पन्द्रह भेद है, यथा—१ सत्यमनप्रयोगगति, २ मृषामनप्रयोगगति, ३ सत्यमृषामनप्रयोगगति, ४ असत्यमृषामनप्रयोगगति, ५-८—इसी प्रकार वचन प्रयोग के चार भेद है। ९ औदारिकशरीरकाय प्रयोगगति, १० औदारिक-शरीर-मिश्रकाय प्रयोग-गति, ११ वैक्रिय-शरीरकाय-प्रयोगगति, १२ वैक्रियशरीरमिश्रकाय प्रयोगगति, १३ आहारक शरीरकाय प्रयोगगति, १४ आहारक-शरीर-मिश्रकाय प्रयोगगति और १५ कार्मणशरीरकाय प्रयोगगति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीव में कितनी प्रयोगगति—

जीवाणं भंते ! कतिविहा पओगगति पण्णत्ता ? गोयमा ! पण्णरसविहा पण्णत्ता, तंजहा-सच्चमणप्पओगगति जाव कम्मासरीरकायप्पओगगति ।

—पण्ण० पद १६ । सू १०८७

जीव में पंद्रह प्रकार की प्रयोगगति—यथा—सत्यमनप्रयोगगति यावत् कार्मणशरीर-कायप्रयोगगति ।

नारकी यावत् वैमानिकदेव में कितनी प्रयोगगति—

णेरइयाणं भंते ! कतिविहा पओगगति पण्णत्ता ? गोयमा ! एक्कारसविहा पण्णत्ता । तंजहा-सच्चमणप्पओगगति, एवं उवउज्जिऊण जस्स जइविहा तस्स ततिविहा भाणितव्वा जाव वेमाणियाणं । १०८८

—पण्ण० पद १६

प्रयोगगति—प्रयोग-जीव व्यापार । प्रयोगरूपगति-प्रयोगगति । यहाँ देशान्तर प्राप्ति रूप गति समझनी चाहिए । क्योंकि जीव के द्वारा व्यावृत हुए सत्यमन आदि के पुद्गल अल्प अथवा अधिक देशान्तर तक गमन करते हैं ।

अस्तु नारकी के प्रयोगगति ग्यारह प्रकार की होती है—यथा—सत्यमनप्रयोगगति यावत् कार्मणकायप्रयोगगति ।

इसी प्रकार उपयोग-ध्यान देकर जिसके जितनी प्रकार की प्रयोगगति होती है उसके उतनी प्रयोगगति वैमानिकदेव तक कहनी चाहिए ।

नोट—असुरकुमार से स्तनितकुमार तक नारकी की तरह प्रयोगगति ग्यारह प्रकार की होती है । पृथ्वीकाय से वनस्पतिकाय तक (वायुकाय बाद) तीन प्रयोगगति, वायुकाय में पांच प्रयोगगति, द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय में चार प्रयोगगति, मनुष्य में पन्द्रह प्रयोगगति, तिर्यंच पंचेन्द्रिय में तेरह प्रयोगगति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी वैमानिक देवों में ग्यारह प्रयोग-गति होती है ।

जीव दंडकों में प्रयोगगति—

नारकी यावत् वैमानिक देवों में प्रयोगगति—

जीवाणं भंते ! किं सच्चमणप्पओगगति जाव कम्मगसरीरकायप्पओगगति ? गोयमा ! जीवा सव्वे वि ताव होज्जा सच्चमणप्पओगगति वि, एवं तं चेव पुव्ववण्णियं भाणियव्वं, भंगा तहेव जाव वेमाणियाणं । १०८९

—पण्ण० पद १६

सर्व जीव सत्यमनप्रयोगवाले यावत् कार्मणशरीरकायप्रयोगवाले हैं । इसके सम्बन्ध में जैसा पूर्व में कहा है वैसा ही जानना चाहिए ।

यावत् वैमानिक तक जानना चाहिए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चार भाषाओं में असत्य और सत्यमृषा भाषा सर्वथा वर्जनीय है तथा सत्य और असत्यामृषा, जो बुद्धों के द्वारा अनाचीर्ण है वह वर्जनीय है। सावद्य सक्रिय, कर्कश, कटुक, निष्ठुर, परुष, आस्रवकरी, छेदनकरी, भेदनकरी, परितापनकरी और भूतोपघातिनी सत्य भाषा भी सावद्य है। कर्कश आदि विशेषणयुक्त सत्य भाषा भी सावद्य है। अस्तु निरवद्य सत्य भाषा व व्यवहार भाषा का प्रयोग करे।

कहा है—

तत्र ये असंसारसमापन्नसिद्धा, सिद्धाश्च देहमनोवृत्त्यभावतोऽक्रिया। × × ×। तत्र ये शैलेशीप्रतिपन्नकास्ते सूक्ष्मबादरकायवाङ्मनोयोगनिरोधादक्रिया।

—पण्ण० पद २२। सू १५७३। टीका

योग के निरोध होने पर जीव अक्रिय होता है। असंसार समापन्नक सिद्ध जीव देह, मन आदि वृत्ति के अभाव में अक्रिय होते हैं। शैलेशीत्व को प्राप्त संसारसमापन्नक जीव सूक्ष्म-बादर काय-वचन-मन योग का निरोध होने से अक्रिय होते हैं।

नोट—अयोगी गुणस्थान—चौदहवें गुणस्थान को प्राप्त जीव शैलेशी हो जाते हैं। अभयदेव सूरि ने अंतक्रिया को 'योगनिरोधाभिधानशुक्लध्यानेन' 'सकलकर्मक्षयरूपा' कहा है।

—भग० श ३। उ ३। सू ११। टीका

अस्तु श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा के पुस्तकाध्यक्षों तथा जैन भवन के पुस्तकाध्यक्षों के हम बड़े आभारी हैं जिन्होंने हमारे सम्पादन के कार्य में प्रयुक्त अधिकांश पुस्तकें हमें देकर पूर्ण सहयोग दिया।

गणाधिपति गुरुदेव आचार्य श्री तुलसी तथा आचार्य श्री महाप्रज्ञ की महान् दृष्टि हमारे पर रही है जिसे हम भूल नहीं सकते। गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी ने प्रस्तुत कोश पर आशीर्वाद लिखा—हम उनके प्रति कृतज्ञ है।

कलकत्ता युनिवर्सिटी के भाषा विज्ञान के प्राध्यापक डा० सत्यरंजन बनर्जी को हम सदैव याद रखेंगे जिन्होंने हमारे अनुरोध पर योग कोश पर भूमिका लिखी।

हम जैन दर्शन समिति के सभापति श्री गुलाबमल भण्डारी, मंत्री श्री पद्मकुमार रायजादा, स्व० जबरमलजी भण्डारी, स्व० मोहनलालजी बांठिया, श्री अभयसिंह सुराना, श्री हीरालाल सुराना, श्री नवरतनमल सुराना, श्री मांगीलाल लूणिया, श्री इन्द्रमल भण्डारी, श्री मोहनलालजी बैद, श्री केवलचंद नाहटा आदि सभी बन्धुओं को धन्यवाद देते हैं जिन्होंने हमारे विषय कोश निर्माण की कल्पना में हमें किसी न किसी रूप में सहयोग दिया।

मेहता प्रेस तथा उनके कर्मचारी भी धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने इस पुस्तक का सुन्दर मुद्रण किया है।

श्रीचन्द चोरड़िया, न्यायतीर्थ (द्वय)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय सूची

विषय	पृष्ठ
संकलन-सम्पादन में प्रयुक्त ग्रन्थों की संकेत-सूची	4
मूल वर्गों के उपविभाजन का उदाहरण	7
जैन वाङ्मय का दशमलव वर्गीकरण	8
जीव परिणाम का वर्गीकरण	11
आशीर्वचन	12
भूमिका	13
दो शब्द	15
प्रकाशकीय	17
प्रस्तावना	19
१ से ४ सयोगी जीव	१
·१ सयोगी जीव और ज्ञान	१
·१·२ मनोयोगी और ज्ञान	१
·३ वचनयोगी और ज्ञान	१
·४ काययोगी और ज्ञान	१
·४ अयोगी और ज्ञान	१
·५ अयोगी और ज्ञान	२
·५ योग और उपयोग	२
·६ योग और केवल ज्ञान	२
·७ योग और दर्शन	२
·८ योग और जीव समास	२
·९ आहारक-आहारक-मिश्रकाययोग और मनःपर्यवज्ञान	३
·१० योग और मनःपर्यवज्ञान	३
·११ शुभ योग भी विविध ज्ञान की समुत्पत्ति में कारण	३
·१२ शुभ योग से अवधि ज्ञान	४
·१३ शुभ योग से अवधि ज्ञान	४
·१४ शुभ-अशुभ योगी देव का शुभ-अशुभ योगी देव-देवी को जानना-देखना	४
·२·१ अनुत्तरौपातिक देव और मनोद्रव्य पुद्गलों का ग्रहण	५
·३ सयोगी जीव और बोधि	५
·४·१ सयोगी जीव और काल की अपेक्षा सप्रदेश-अप्रदेश	६
·२ अजोगी जहा अलेस्सा	६
·५ सयोगी जीव और ज्ञानावरणीयादि कर्म का बंध	७
·६ सयोगी जीव और त्रिविध बंध	७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
·७ सयोगी जीव और जन्म-मरण	८
·८ योगस्थान की प्ररूपणा	८
·८·१ प्ररूपणा अनुयोग	८
·२ योगस्थान का प्रमाण	९
·३ योग के अल्पबहुत्व के भेद	९
·४ जीव समास के आश्रय से योग विभाग प्रतिच्छेद का स्वस्थान अल्पबहुत्व	१०
·५ जीव समास के आश्रय से सर्व परस्थान योगों का अल्पबहुत्व	११
जघन्य योग स्थान की अपेक्षा उपपाद, एकांतानुवृद्धि तथा परिणाम योग स्थान का अल्पबहुत्व	११
·६ अल्पबहुत्व—उत्कृष्ट	१४
·७ जीव समास के आश्रय से योग का परस्थान अल्पबहुत्व	१७
·९ योग और लेश्या	२५
·१० योग और गुणस्थान	२६
·४ कार्मणकाययोग और गुणस्थान	२७
·६ आहारककाययोग और गुणस्थान	२८
·७ आहारकमिश्रकाययोग और गुणस्थान	२८
·८ सयोगी गुणस्थान में दो जीव समास	२८
·९ आहारककाययोग और जीव समास	२८
·१० आहारकमिश्रकाययोग और जीव समास	२८
·११ मनोयोग-वचनयोग और गुणस्थान	२९
·१२ काययोग और गुणस्थान	२९
·१५ वैक्रियकाययोग और गुणस्थान	३०
·१७ योग और गुणस्थान की अपेक्षा पर्याप्त-अपर्याप्त	३१
·१८ सयोगी केवली के प्रथम समय में चार कर्मों का अवसान	३२
·१९ सयोगी और जीव समास	३२
·२ योग और पर्याप्त-अपर्याप्त	३२
·४ कार्मणकाययोग और जीव समास	३३
·५ वैक्रियकाययोग और जीव समास	३३
·६ वैक्रियमिश्रकाययोग और जीव समास	३३
·७ योग और जीव भेद	३३
·१२ सयोगी और पर्याप्त-अपर्याप्त अवस्था	३३
·१ योग और पर्याप्त-अपर्याप्त अवस्था	३३
·२ सयोगी केवली के अपर्याप्त अवस्था भी होती है	३४
·१३ सयोगी जीव और द्रव्य	३४
·१४ सयोगी जीव और योग द्रव्य का ग्रहण	३५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
·१५ जीव और अधिकरण योग	३५
·२ सयोगी जीव और अधिकरणी या अधिकरण	३६
·१६ सयोगी जीव और योग प्राप्त करने की विधि	३७
जघन्य योग से उत्कृष्ट योग प्राप्त करने की विधि	
·१७ सयोगी जीव और उत्पत्ति	३८
·१८ योग और कर्मबंध	३८
·२ सयोगीनारकी तथा अध्यवसाय-योग-करण से आयुष्य बंध	३९
·१९ सयोगी जीव और कर्म का प्रारम्भ और अंत	३९
·२० सयोगी नारकी और कर्म वेदन का प्रारम्भ और समाप्ति	४०
·३ सयोगी जीव और ज्ञानावरणीयकर्म के वेदन का प्रारम्भ और समाप्त	४१
सयोगी जीव और दर्शनावरणीय वेदन का प्रारम्भ और समाप्त	४१
सयोगी जीव और वेदनीयकर्म का प्रारम्भ और समाप्त	४१
सयोगी जीव और मोहनीयकर्म का प्रारम्भ और समाप्त	४१
सयोगी जीव और आयुष्यकर्म का प्रारम्भ और समाप्त	४१
सयोगी जीव और नामकर्म का प्रारम्भ और समाप्त	४१
सयोगी जीव और गोत्रकर्म का प्रारम्भ और समाप्त	४१
सयोगी जीव और अंतरायकर्म का प्रारम्भ और समाप्त	४१
·४ सयोगी अनंतरोपपन्नक नारकी और पाप कर्म का योग	४१
·५ सयोगी परंपरोपपन्नक नारकी और पाप कर्म का वेदन	४२
·२० सयोगी जीव और अणाहारिक	४२
·२ कार्मण काययोगी और अनाहारक	४२
·५ कार्मण काययोगी अनाहारक होते हैं	४३
·५ सयोगी जीव और आहारादि	४३
·६ अयोगी जीव अनाहारक होते हैं	४४
·२१ सयोगी जीव और आत्मा की अभिन्नता	४५
·२२ सयोगी जीव की संख्या	४५
·१ औदारिक काययोग की संख्या	४५
·२ औदारिकमिश्र काययोग की संख्या	४५
·३ कार्मण काययोग की संख्या	४५
·२२ योग की संख्या	४५
आहारककाययोग की संख्या	४५
आहारकमिश्रकाययोग की संख्या	४५
·२३ अयोगी जीव कौन होते हैं	४६
·२४ एक काल में एक योग	४६
·२ वैक्रिय योग क्रिया तथा आहारक योग क्रिया युगपत् नहीं होती है	४६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
·२४ औदारिक व औदारिकमिश्र काययोग किसके होता है	४७
·२५ जीव सयोगी भी होते हैं व अयोगी भी	४७
·२ सयोगी जीव के भेद	४८
·२६ सयोगी जीव का योग की अपेक्षा उत्पत्ति मरण	४८
·१ योग की अपेक्षा दंडक में उत्पत्ति-मरण के नियम	४८
·२८ सयोगी जीव और आरम्भ, परारंभ, उभयारम्भ व अनारम्भ	४९
·२९ सयोगी जीव और कषाय	५०
·२९ सयोगी नारकी में कषायोपयोग के विकल्प	५०
·२ सयोगी (काय योगी) पृथ्वीकायिक में कषायोपयोग के विकल्प	५१
·३ सयोगी (काययोगी) अप्कायिक में कषायोपयोग के विकल्प	५१
·४ सयोगी (काययोगी) अग्निकायिक में कषायोपयोग के विकल्प	५१
·५ सयोगी (काययोगी) वायुकायिक में कषायोपयोग के विकल्प	५२
·६ सयोगी (काययोगी) वनस्पतिकायिक में कषायोपयोग के विकल्प	५२
·७ सयोगी द्वीन्द्रिय (काय योगी-वचन योगी) के कषायोपयोग के विकल्प	५२
·८ सयोगी त्रीन्द्रिय में कषायोपयोग के विकल्प	५२
·९ सयोगी चतुरिन्द्रिय में कषायोपयोग के विकल्प	५२
·१० सयोगी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में कषायोपयोग के विकल्प	५२
·११ सयोगी मनुष्य में कषायोपयोग के विकल्प	५३
·१२ सयोगी भवनपति देव में कषायोपयोग के विकल्प	५३
·१३ सयोगी वाणव्यन्तर देव में कषायोपयोग के विकल्प	५३
·१४ सयोगी ज्योतिषी देव में कषायोपयोग के विकल्प	५४
·१५ सयोगी वैमानिक देव में कषायोपयोग के विकल्प	५४
·३० सयोगी और समुद्घात	५५
·१ सयोगी केवली और समुद्घात	५५
·२ केवली समुद्घात के बाद योग की प्रवृत्ति	५७
·३ योग निरोध और सिद्धि	५८
·०६ मनोयोगी और वचनयोगी का समुद्घात क्षेत्र	७०
·७ काययोगी का समुद्घात क्षेत्र	७१
·०६ औदारिककाययोगी का समुद्घात क्षेत्र	७२
·०७ वैक्रियकाययोगी का समुद्घात क्षेत्र	७३
·०८ वैक्रियमिश्रकाययोगी का समुद्घात क्षेत्र	७४
·०९ आहारककाययोगी का समुद्घात क्षेत्र	७५
·१० आहारकमिश्रकाययोगी का समुद्घात क्षेत्र	७६
·११ कार्मणकाययोगी का समुद्घात क्षेत्र	७६
·३१ सयोगी जीवों का विभाग	७७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
·१ सयोगी औधिक जीवों का विभाग	७७
·२ सयोगी नारकी जीवों का विभाग	७९
·३ सयोगी भवनवासियों का विभाग	८०
·४ सयोगी एकेन्द्रिय का विभाग	८१
सयोगी पृथ्वीकायिक का विभाग	८१
सयोगी अप्कायिक का विभाग	८१
सयोगी तेउकायिक का विभाग	८१
सयोगी वायुकायिक का विभाग	८१
सयोगी वनस्पतिकायिक का विभाग	८१
·५ सयोगी द्वीन्द्रिय का विभाग	८२
·६ सयोगी त्रीन्द्रिय का विभाग	८२
·७ सयोगी चतुरिन्द्रिय का विभाग	८२
·८ सयोगी पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का विभाग	८३
·९ सयोगी मनुष्य का विभाग (एकक भंग)	८४
·२ सयोगी मनुष्य के विभाग (युग्म भंग)	८५
·३ सयोगी मनुष्य के विभाग (त्रिक भंग)	८७
·४ सयोगी मनुष्य के विभाग (चतुः संयोगी)	९१
·१० वाणव्यंतर देवों में विभाग से प्रयोग	९४
·११ ज्योतिषी देवों में विभाग से प्रयोग	९४
·१२ वैमानिक देवों में विभाग से प्रयोग	९४
·३२ सयोगी जीव और नियमा भजना	९४
·१ मनोयोगी और वचनयोगी जीव की नियमा भजना	९४
·२ काययोगी जीव की नियमा भजना	९४
·३ औदारिक काययोगी जीव की नियमा भजना	९४
·४ औदारिकमिश्र काययोगी जीव की नियमा भजना	९४
·५ वैक्रिय काययोगी जीव की नियमा भजना	९४
·९ कार्मण काययोगी जीव की नियमा भजना	९४
·६ वैक्रियमिश्र काययोगी जीव की नियमा भजना	९५
·७ आहारक काययोगी जीव की नियमा भजना	९५
·८ आहारकमिश्र काययोगी जीव की नियमा भजना	९५
·३३ सयोगी जीव और समवसरण	९५
·३ सयोगी नारकी और समवसरण	९५
·४ सयोगी असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार देव और समवसरण	९६
·५ सयोगी पृथ्वीकायिक जीव और समवसरण	९६
·६ से ·१२ सयोगी अप्कायिक यावत् चतुरिन्द्रिय जीव और समवसरण	९६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
·१३ सयोगी पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीव और समवसरण	९६
·१४ सयोगी मनुष्य और समवसरण	९७
·१५ अयोगी मनुष्य और समवसरण	९७
·१६ सयोगी वाणव्यंतर देव और समवसरण	९७
·१७ सयोगी ज्योतिषी देव और समवसरण	९७
·१८ सयोगी वैमानिक देव और समवसरण	९७
·१९ क्रियावादी सयोगी जीव का आयुष्यबंध-समवसरण की अपेक्षा से	९७
·२० अक्रियावादी, विनयवादी और अज्ञानवादी सयोगी जीव और आयुष्यबंध समवसरण की अपेक्षा से	९७
·२१ अयोगी क्रियावादी जीव का समवसरण की अपेक्षा से आयुष्यबंध	९८
·२२ सयोगी नारकी और अक्रियावादी की अपेक्षा आयुष्यबंध	९८
·२३ सयोगी नारकी और अज्ञानवादी की अपेक्षा आयुष्यबंध	९८
·२४ सयोगी नारकी और विनयवादी की अपेक्षा आयुष्यबंध	९८
·२५ सयोगी नारकी और क्रियावादी की अपेक्षा आयुष्यबंध	९८
·२६ सयोगी असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार और क्रियावादी की अपेक्षा आयुष्यबंध	९८
·२७ सयोगी असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार और अक्रियावादी की अपेक्षा आयुष्यबंध	९९
·२८ सयोगी पृथ्वीकायिक और समवसरण की अपेक्षा आयुष्यबंध	९९
·२९ सयोगी अप्कायिक जीव और समवसरण की अपेक्षा आयुष्यबंध	९९
·३० सयोगी वनस्पतिकायिक जीव और समवसरण की अपेक्षा आयुष्यबंध	९९
·३१ सयोगी अग्निकायिक जीव और समवसरण में आयुष्यबंध	९९
·३२ सयोगी वायुकायिक जीव और समवसरण में आयुष्यबंध	९९
·३३ सयोगी द्वीन्द्रिय यावत् चतुरिन्द्रिय और समवसरण में आयुष्यबंध	१००
·३४ सयोगी क्रियावादी पंचेन्द्रियतिर्यंच और आयुष्यबंध	१००
·३५ सयोगी अक्रियावादी पंचेन्द्रियतिर्यंच और आयुष्यबंध	१००
·३६ सयोगी अज्ञानवादी पंचेन्द्रियतिर्यंच और आयुष्यबंध	१००
·३७ सयोगी विनयवादी पंचेन्द्रियतिर्यंच और आयुष्यबंध	१००
·३८ सयोगी मनुष्य क्रियावादी और आयुष्यबंध	१००
·३९ सयोगी मनुष्य अक्रियावादी और आयुष्यबंध	१०१
·४० सयोगी मनुष्य विनयवादी और आयुष्यबंध	१०१
·४१ सयोगी मनुष्य अज्ञानवादी और आयुष्यबंध	१०१
·४२ अयोगी क्रियावादी मनुष्य और आयुष्यबंध	१०१
·४३ सयोगी क्रियावादी वाणव्यंतर यावत् वैमानिकदेव और आयुष्यबंध	१०१
·४४ सयोगी अक्रियावादी वाणव्यंतर यावत् वैमानिकदेव और आयुष्यबंध	१०१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
·४५ सयोगी जीव का समवसरण और भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक	१०१
·४६ अयोगी क्रियावादी और भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक	१०२
·४७ सयोगी नारकी और समवसरण की अपेक्षा भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक	१०२
·४८ सयोगी असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार और समवसरण की अपेक्षा भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक	१०२
·४९ सयोगी अक्रियावादी पृथ्वीकायिक और भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक	१०२
सयोगी अज्ञानवादी पृथ्वीकायिक और भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक	१०२
·५० सयोगी अक्रियावादी अप्कायिक यावत् वनस्पतिकायिक व भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक	१०३
सयोगी अज्ञानवादी अप्कायिक यावत् वनस्पतिकायिक व भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक	१०३
·५१ सयोगी द्वीन्द्रिय यावत् चतुरिन्द्रिय अक्रियावादी और भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक	१०३
सयोगी द्वीन्द्रिय यावत् चतुरिन्द्रिय अज्ञानवादी और भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक	१०३
·५२ सयोगी तिर्यंचपंचेन्द्रिय और समवसरण की अपेक्षा भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक	१०३
·५३ सयोगी मनुष्य और समवसरण की अपेक्षा भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक	१०३
·५४ सयोगी वाणव्यंतरदेव यावत् वैमानिकदेव और समवसरण की अपेक्षा भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक	१०४
·५५ सयोगी अनन्तरोपपन्नक नारकी यावत् वैमानिकदेव और समवसरण	१०४
·५६ सयोगी अनन्तरोपपन्नक नारकी और समवसरण की अपेक्षा आयुष्यबंध	१०४
·५७ सयोगी अनंतरोपपन्नक नारकी और समवसरण की अपेक्षा भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक	१०५
सयोगी अनंतरोपपन्नक असुरकुमार यावत् वैमानिकदेव और समवसरण की अपेक्षा भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक	१०५
·५८ सयोगी परंपरोपन्नक नारकी यावत् वैमानिक क्रियावादी आदि	१०५
सयोगी परंपरोपपन्नक यावत् वैमानिक क्रियावादी आदि और आयुष्यबंध	१०५
सयोगी परंपरोपपन्नक यावत् वैमानिक क्रियावादी और भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक	१०५
·५९ अनंतरावगाढ़ सयोगी नारकी आदि दंडक और समवसरण	१०६
·६० परंपरावगाढ़ सयोगी नारकी आदि दंडक और समवसरण	१०६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
·६१ अनंतराहारक सयोगी नारकी आदि दंडक और समवसरण	१०६
·६२ परंपराहारक सयोगी नारकी आदि दंडक और समवसरण	१०६
·६३ अनंतरपर्याप्तक सयोगी नारकी आदि दंडक और समवसरण	१०६
·६४ परम्परपर्याप्तक सयोगी नारकी आदि दंडक और समवसरण	१०६
·६५ चरम सयोगी नारकी आदि दंडक और समवसरण	१०६
·६६ अचरम सयोगी नारकी आदि दंडक और समवसरण	१०६
·३४ सयोगी जीव और अल्पबहुत्व	१०७
·२ जीव समास के आश्रय से योग का अल्पबहुत्व	१०७
·१ सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक के अल्पतम योग	१०७
·०२ बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक के जघन्य योग असंख्यातगुण	१०७
·०३ द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक के जघन्य योग असंख्यातगुण	१०८
·०४ त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक के जघन्य योग असंख्यातगुण	१०८
·०५ चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक के जघन्य योग असंख्याततुण	१०८
·०६ असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक के जघन्य योग असंख्यातगुण	१०९
·०७ संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक के जघन्य योग असंख्यातगुण	१०९
·०८ सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक के उत्कृष्ट योग असंख्यातगुण	१०९
·०९ बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक के उत्कृष्ट योग असंख्यातगुण	११०
·१० सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक के जघन्य योग असंख्यातगुण	११०
·११ बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक के जघन्य योग असंख्यातगुण	११०
·१२ सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक के उत्कृष्ट योग असंख्यातगुण	१११
·१३ बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक के उत्कृष्ट योग असंख्यातगुण	१११
·१४ द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक के उत्कृष्ट योग असंख्यातगुण	१११
·१५ त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक के उत्कृष्ट योग असंख्यातगुण	११२
·१६ चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक के उत्कृष्ट योग असंख्यातगुण	११२
·१७ असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक के उत्कृष्ट योग असंख्यातगुण	११२
·१८ संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक के उत्कृष्ट योग असंख्यातगुण	११२
·१९ द्वीन्द्रिय पर्याप्तक के जघन्य योग असंख्यातगुण	११३
२० त्रीन्द्रिय पर्याप्तक के जघन्य योग असंख्यातगुण	११३
-२१ चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक के जघन्य योग असंख्यातगुण	११३
·२२ असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक के जघन्य योग असंख्यातगुण	११३
·२३ संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक के जघन्य योग असंख्यातगुण	११४
·२४ द्वीन्द्रिय पर्याप्तक के उत्कृष्ट योग असंख्यातगुण	११४
·२५ त्रीन्द्रिय पर्याप्तक के उत्कृष्ट योग असंख्यातगुण	११४
·२६ चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक के उत्कृष्ट योग असंख्यातगुण	११४
·२७ असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक के उत्कृष्ट योग असंख्यातगुण	११४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
·२८ संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक के उत्कृष्ट योग असंख्यातगुण	११५
·२९ उपर्युक्त असंख्यातगुण प्रमाण	११५
·३० सयोगी जीवों का अल्पबहुत्व	११५
·३१ सयोगी जीव और अल्पबहुत्व	११८
·३२ सयोगी जीवों का अल्पबहुत्व	११८
·३४ सयोगी और अल्पबहुत्व	१२०
·३६ काययोग का अल्पबहुत्व	१२३
·३७ पन्द्रह योगों का अल्पबहुत्व	१२३
·०१ पंचमनोयोगी तथा पंचवचन योगी का अल्पबहुत्व	१२३
·०२ काययोगी का अल्पबहुत्व	१२३
·०३ औदारिक काययोगी का अल्पबहुत्व	१२३
·०४ औदारिकमिश्र काययोगी का अल्पबहुत्व	१२६
·०५ वैक्रियकाययोगी का अल्पबहुत्व	१२७
·०६ वैक्रियमिश्र-काययोगी का अल्पबहुत्व	१२७
·०७ आहारक-काययोगी का अल्पबहुत्व	१२८
·०८ आहारकमिश्र-काययोगी का अल्पबहुत्व	१२८
·०९ कार्मण काययोगी का अल्पबहुत्व	१२९
·१० सयोगी जीवों का अल्पबहुत्व	१३०
·११ योग स्थान का अल्पबहुत्व	१३५
·११ करण-कृति की अपेक्षा यौगिक जीवों का परस्थान अल्पबहुत्व	१३७
·३५ सयोगी जीवों का लोक-क्षेत्र में अवस्थान	१३९
·०१ पंच मनोयोगी तथा पंच वचनयोगी का अवस्थान	१३९
·०२ काययोगी का अवस्थान	१४०
·०३ औदारिक काययोगी का अवस्थान	१४१
·०४ औदारिकमिश्र काययोगी का अवस्थान	१४२
·०५ वैक्रियकाययोगी का अवस्थान	१४४
·०६ वैक्रियमिश्र-काययोगी का अवस्थान	१४५
·०७ आहारककाययोगी तथा आहारकमिश्र-काययोगी का अवस्थान	१४६
·०८ कार्मण काययोगी का अवस्थान	१४६
·३६ सयोगी जीवों की क्षेत्र-स्पर्शना	१४७
·०१ पंचमनोयोगी तथा पंचवचनयोगी की क्षेत्र स्पर्शना	१४७
·०२ काययोगी की क्षेत्र स्पर्शना	१५०
·०३ औदारिक-काययोगी की क्षेत्र स्पर्शना	१५१
·०४ औदारिकमिश्र काययोगी की क्षेत्र स्पर्शना	१५५
·०५ वैक्रियकाययोगी की क्षेत्र स्पर्शना	१५८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
०६ वैक्रियमिश्र काययोगी की क्षेत्र स्पर्शना	१६०
०७ आहारक काययोगी तथा आहारकमिश्र काययोगी की क्षेत्र-स्पर्शना	१६१
०८ कार्मण काययोगी की क्षेत्र-स्पर्शना	१६२
३७ सयोगी जीव का क्षेत्र-स्पर्श	१६४
०१ मनोयोगी और वचनयोगी का क्षेत्र-स्पर्श	१६४
०२ काययोगी का क्षेत्र स्पर्श	१६६
०४ औदारिकमिश्र काययोगी का क्षेत्र स्पर्श	१६६
०३ औदारिक काययोगी का क्षेत्र स्पर्श	१६७
०५ वैक्रिय काययोगी का क्षेत्र स्पर्श	१६८
०६ वैक्रियमिश्र काययोगी का क्षेत्र स्पर्श	१७०
०७ आहारक काययोगी का क्षेत्र स्पर्श	१७१
०८ आहारकमिश्र काययोगी का क्षेत्र स्पर्श	१७२
०९ कार्मण काययोगी का क्षेत्र स्पर्श	१७३
३८ सयोगी जीव कितने क्षेत्र में	१७३
०१ मनोयोगी और वचनयोगी कितने क्षेत्र में	१७३
०२ काययोगी कितने क्षेत्र में	१७४
०४ औदारिकमिश्र काययोगी कितने क्षेत्र में	१७४
०३ औदारिककाय योगी कितने क्षेत्र में	१७५
०५ वैक्रिय काययोगी कितने क्षेत्र में	१७६
०६ वैक्रियमिश्रकाययोगी कितने क्षेत्र में	१७७
०७ आहारक-काययोगी कितने क्षेत्र में	१७८
०८ आहारकमिश्रकाययोगी कितने क्षेत्र में	१७९
०९ कार्मणकाययोगी कितने क्षेत्र में	१७९
३९ सयोगी जीवों की कालस्थिति	१८०
०१ पंच मनोयोगी-पंच वचनयोगी की कालस्थिति	१८०
०२ काययोगीजीवों की कालस्थति	१८७
०३ औदारिककाययोगी जीवो की कालस्थिति	१८९
०४ औदारिकमिश्रकाययोगी जीवों की कालस्थिति	१९०
०५ वैक्रियकाययोगी जीवों की कालस्थिति	१९७
०६ वैक्रियमिश्रकाययोगी जीवों की कालस्थिति	१९९
०७ आहारककाययोगी जीवों की कालस्थिति	२०३
०८ आहारकमिश्रकाययोगी जीवों की कालस्थिति	२०५
०९ कार्मणकाययोगी जीवों की कालस्थिति	२०७
योग की स्थिति	२१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय		पृष्ठ
	योग की कालस्थिति	२११
	औदारिककाययोग की कालस्थिति	२११
	औदारिकमिश्रकाययोग की कालस्थिति	२११
	कार्मणकाययोग की कालस्थिति	२११
·४०	सयोगिजीव की सयोगीत्व की अपेक्षा स्थिति	२११
·०१	मनोयोगी और वचनयोगी की कालस्थिति	२११
·०२	काययोगी की कालस्थिति	२११
·०३	औदारिककाययोगी की कालस्थिति	२११
·०४	औदारिकमिश्रकाययोगी की कालस्थिति	२११
·०५	वैक्रियकाययोगी की कालस्थिति	२११
·०६	कार्मणकाययोगी की कालस्थिति	२११
·०६	वैक्रियमिश्रकाययोगी की कालस्थिति	२१२
·०७	आहारककाययोगी की कालस्थिति	२१३
·०८	आहारकमिश्रकाययोगी की कालस्थिति	२१४
·४१	योगी और कालप्ररूपणा	२१५
·०१	मनोयोगी और वचनयोगी की कालस्थिति	२१५
·०२	काययोगी की कालस्थिति	२१६
·०३	औदारिककाययोगी और कालस्थिति	२१७
·०४	औदारिकमिश्रकाययोगी और कालस्थिति	२१८
·०५	वैक्रियकाययोगी और कालस्थिति	२१८
·०७	आहारककाययोगी और कालस्थिति	२१८
·०६	वैक्रियमिश्रकाययोगी और कालस्थिति	२१९
·०८	आहारकमिश्रकाययोगी और कालस्थिति	२१९
·०६	वैक्रियमिश्रकाययोगी और कालस्थिति	२१९
·०८	आहारकमिश्रकाययोगी और कालस्थिति	२१९
·९	कार्मणकाययोगी और कालस्थिति	२२०
	काययोग की स्थिति	२२१
·३	औदारिककाययोग की स्थिति	२२१
·४	औदारिकमिश्रकाययोग की स्थिति	२२१
·९	कार्मणकाययोग की स्थिति	२२१
	काययोग की स्थिति	२२१
·१०	अयोगी जीव में	२२१
·११	कालानुगमतो से संचित योगो जीवों की कालस्थिति	२२२
·१२	करणकृति अनुगम में कालानुगम से संचित जीव की कृतिरूपस्थिति	२२३
	योग की स्थिति	२२६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
·४२ सयोगी जीव का सयोगी की अपेक्षा अन्तरकाल	२२६
·०१ पंचमनोयोगी तथा पंच वचन योगी में काल का अंतर	२२६
·०२ काययोगी में काल का अंतर	२२६
·०३ औदारिककाय योगी में काल का अंतर	२२६
·०४ औदारिकमिश्र काययोगी का काल का अंतर	२२८
·०५ वैक्रियकाययोगी का काल का अन्तर	२२९
·०९ कार्मणकाययोगी का काल का अन्तर	२२९
·०१ मनोयोगी और वचनयोगी का अन्तरकाल	२३०
·०२ काययोगी का अन्तरकाल	२३०
·०३ औदारिककाययोगी का अन्तरकाल	२३०
·०४ औदारिकमिश्रकाययोगी का अन्तरकाल	२३०
·०५ वैक्रियकाययोगी का अन्तरकाल	२३०
·०९ कार्मणकाययोगी का अन्तरकाल	२३०
·०६ वैक्रियमिश्रकाययोगी का काल का अन्तर	२३०
·०६ वैक्रियमिश्रकाययोगी का अन्तरकाल	२३१
·०७ आहारककाययोगी का काल का अन्तर	२३१
·०८ आहारकमिश्रकाययोगी का काल का अन्तर	२३२
·०७ आहारककाययोगी का अन्तरकाल	२३२
·०८ आहारकमिश्रकाययोगी का अन्तरकाल	२३२
योग का अन्तरकाल	२३३
·१० अंतरानुगम से संचित योगी जीवों का अन्तरकाल	२३४
·४३ सयोगीजीव और भाव	२३५
·०१ पंच मनोयोगी तथा पंच वचनयोगी का भाव	२३५
·०२ काययोगी का भाव	२३५
·०३ औदारिक काययोगी का भाव	२३५
·०४ औदारिकमिश्र काययोगी का भाव	२३५
·०५ वैक्रिय काययोगी का भाव	२३६
·०६ वैक्रियमिश्र काययोगी का भाव	२३६
·०७ आहारक काययोगी का भाव	२३६
·०८ आहारकमिश्र काययोगी का भाव	२३६
·०९ कार्मण काययोगी का भाव	२३६
·१० सयोगी और भाव	२३७
·११ भावानुगम से संचित योगी जीवों के भाव	२३८
·४४ सयोगी जीव का भागाभाग	२३८
·०१ मनोयोगी और वचनयोगी का भागाभाग	२३८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
·०५ वैक्रिय काययोगी का भागाभाग	२३८
·०६ वैक्रियमिश्र काययोगी का भागाभाग	२३८
·०७ आहारक काययोगी का भागाभाग	२३८
·०८ आहारकमिश्र काययोगी का भागाभाग	२३८
·०२ काययोगी का भागाभाग	२३९
·०३ औदारिक काययोगी का भागाभाग	२३९
·०४ औदारिकमिश्र काययोगी का भागाभाग	२४०
·०९ कार्मण काययोगी का भागाभाग	२४०
·४५ सयोगी जीवों के भागाभाग रूप द्रव्य प्रमाण	२४०
·४६ सयोगी जीवों का द्रव्य (संख्या) प्रमाण—	२४५
·०१ पाँच मनोयोगी तथा तीन वचनयोगियों का द्रव्य प्रमाण—	२४५
·०२ वचनयोगी तथा असत्यमृषा (अनुभय) वचनयोगियों का द्रव्य प्रमाण	२४८
·०१ मनोयोगी और वचनयोगी का द्रव्य प्रमाण	२५२
·०२ वचनयोगी और असत्यमृषा वचनयोगी का द्रव्य प्रमाण	२५२
·०३ काययोगी तथा औदारिक काययोगी का द्रव्य प्रमाण	२५४
·०४ औदारिकमिश्रकाययोगी का द्रव्य प्रमाण	२५५
·०८ कार्मणकाययोगी का द्रव्य प्रमाण	२५७
·०२ काययोगी का द्रव्य प्रमाण	२५८
·०३ औदारिक काययोगी तथा औदारिकमिश्र काययोगी का द्रव्य प्रमाण	२५८
·०९ कार्मण काययोगी का द्रव्य प्रमाण	२५८
काययोगी जीव की संख्या	२६०
कार्मण काययोगी की संख्या	२६०
औदारिकमिश्र काययोग की संख्या	२६०
औदारिक काययोग की संख्या	२६०
·०५ वैक्रियकाययोगी का द्रव्य प्रमाण	२६०
·०६ वैक्रियमिश्रकाययोगी का द्रव्य प्रमाण	२६२
·०५ वैक्रिय काययोगी का द्रव्य प्रमाण	२६३
·०६ वैक्रियमिश्र काययोगी का द्रव्य प्रमाण	२६३
·०७ आहारक तथा आहारकमिश्र काययोगी का द्रव्य प्रमाण	२६४
·०७ आहारक काययोगी का द्रव्य प्रमाण	२६५
·०८ आहारकमिश्र काययोगी का द्रव्य प्रमाण	२६५
·४७ योग और कर्म बंधन	२६६
·४८ योगी और बंधकत्व	२७०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
·४८·१ आयुषकर्म के बंधन के समय जघन्य योग होता है	२७१
·४९ योग और कृत—नोकृति, अवक्तव्यकृति	२७२
·२ प्रथम-अप्रथम अपेक्षा योगीजीव और कृति	२७२
औदारिक काययोगी	२७२
औदारिकमिश्र काययोगी	२७२
कार्मण काययोगी	२७२
·३ चरम-अचरमानुगम की अपेक्षा योगी जीव और कृति	२७३
·४ संचयानुगम में द्रव्यानुगम की अपेक्षा योगी-जीव और कृति	२७३
·५ संचयानुगम-सत्परुपणा की अपेक्षा योगी जीव और कृति	२७४
·६ करणानुगम से संचित योगी जीवों में करणकृति	२७४
·७ करणकृति अनुगम में स्पर्शानुगम में क्षेत्रानुगम से कृतियुक्त संचित जीव	२७६
·८ अंतरानुगम से करण कृति की अपेक्षा योग	२७७
·०९ भावानुगम से करण कृति की अपेक्षा योग	२७९
·१० करणानुगम में संचित योगी जीवों की संघातनादि कृति युक्त कितने क्षेत्र में अवस्थिति	२८०
·११ करणानुगम में संचित योगी जीवों की संघातनकृति आदि कृति करते हुए कितनी संख्या	२८१
·४९ उपपातयोग-परिणामयोग-एकान्तानुवृद्धियोग	२८२
·५० समय व संख्या की अपेक्षा सयोगी जीव की उत्पत्ति-मरण-अवस्थिति—	२८६
·१ नरक पृथ्वियों में	२८६
·३ देवावासों में	२९३
·५१ सयोगी जीव और अल्पकर्मतर-बहुकर्मतर	२९९
·५२ सयोगी जीव और अल्पऋद्धि-महाऋद्धि	२९९
·५३ सयोगी क्षुद्रयुग्म जीव	२९९
·५३·१ सयोगी क्षुद्रयुग्म नारकी का उपपात—	३००
·५३·५ कृष्णलेशी क्षुद्रकृत युग्म प्रमाण राशि का योग रूप व्यापार से उपपात तथा परभव के आयुष्य का बंधन	३०१
·५३·६ क्षुद्रत्र्योज राशि प्रमाण कृष्ण लेशीवाले नारकी का उपपात व परभव का आयुष्य बंध	३०२
·५३·७ कृष्णलेशी क्षुद्रद्वापर राशि प्रमाण नारकी व उपपात व परभव के आयुष्य का बंध	३०२
·५३·८ कृष्णलेशी क्षुद्रकल्योज राशि प्रमाण नारकी का उपपात तथा परभव के आयुष्य का बंधन	३०२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
·५३·९ नीललेशी नारकी का उपपात तथा परभव के आयुष्य का बंध आत्मप्रयोग (जोग रुप व्यापार) से होता है	३०२
·५३·१० कापोतलेशी क्षुद्र कृत युग्म नारकी का उपपात-आत्म प्रयोग से तथा अध्यवसाय-योग-करण से आयुष्य बंध	३०३
·५३·११ क्षुद्रकृत युग्म राशि नारकी के योग से परभव का आयुष्य बंध	३०३
त्र्योज युग्म राशि नारकी के योग से परभव का आयुष्य बंध	३०३
द्वापर युग्म राशि नारकी के योग से परभव का आयुष्य बंध	३०३
काल्योज युग्म राशि नारकी के योग से परभव का आयुष्य बंध	३०३
·५३·१२ कृष्णलेशी भवसिद्धिक क्षुद्रकृत युग्म नारकी के योग से परभव का आयुष्य बंध	३०४
कृष्णलेशी भवसिद्धिक त्र्योज नारकी के योग से परभव का आयुष्य बंध	३०४
कृष्णलेशी भवसिद्धिक द्वापर युग्म नारकी के योग से परभव का आयुष्य बंध	३०४
कृष्णलेशी भवसिद्धिक कल्योज नारकी के योग से परभव का आयुष्य बंध	३०४
·५३·१३ क्षुद्रयुग्मराशिप्रमाणनीललेशी भवसिद्धिक नारकी का योग आदि से परभव का आयुष्य बंध	३०४
त्र्योजयुग्मराशिप्रमाणनीललेशी भवसिद्धिक नारकी का योग आदि से परभव का आयुष्य बंध	३०४
द्वापरयुग्मराशिप्रमाणनीललेशी भवसिद्धिक नारकी का योग आदि से परभव का आयुष्य बंध	३०४
कल्योजयुग्मराशिप्रमाणनीललेशी भवसिद्धिक नारकी का योग आदि से परभव का आयुष्य बंध	३०४
·५३·१३ क्षुद्रयुग्म आदि कापोत लेशी भवसिद्धिक नारकी के योग आदि से परभव का आयुष्य बंध	३०५
·५३·१४ अभवसिद्धिक कृतयुग्म आदि चार युग्म के आयुष्य-बंधन योग आदि से	३०५
·५३·१५ सम्यग्दृष्टि कृतयुग्म आरि चार युग्म और सयोगी-आयुष्य बंध	३०५
मिथ्यादृष्टि कृतयुग्म आदि चार युग्म और सयोगी-आयुष्य बंध	३०५
·५३·१६ कृष्णपाक्षिक कृतयुग्म आदि के आयुष्य बंध योग आदि से	३०५
शुक्लपाक्षिक कृतयुग्म आदि के आयुष्य बंध योग आदि से	३०५
·५३·१७ सयोगी क्षुद्रयुग्म नारकी का उद्वर्तन	३०६
·५४ सयोगी महायुग्म जीव	३०७
·५४·१ सयोगी महायुग्म एकेन्द्रिय जीव	३०७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय		पृष्ठ
	सयोगी महायुग्म एकेन्द्रिय जीव	३०७
·५४·२	सयोगी महायुग्म द्वीन्द्रिय जीव	३०९
·५४·३	सयोगी महायुग्म त्रीन्द्रिय जीव	३१०
·५४·४	सयोगी महायुग्म चतुरिन्द्रिय जीव	३११
·५४·५	सयोगी महायुग्म असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव	३११
·५४ ६	सयोगी महायुग्म संज्ञी पंचेन्द्रिय	३११
·५५	सयोगी राशियुग्म जीव	३१५
·५५·१	योग और कृतयुग्म-राशि	३१५
·५५ २	सयोगी राशि युग्म जीव	३१५
·५६	सयोगी जीव और पापकर्म आदि का करना	३२०
·५६ १	सयोगी जीव और पापकर्म आदि का करना	३२१
·५७	सयोगी जीव और पाप कर्मों का समर्जन-समाचरण	३२१
·५७·१	सयोगी नारकी आदि के दंडक के जीव और पाप कर्मों का समर्जन-समाचरण	३२२
·५७·२	सयोगी जीव और ज्ञानावरणीय कर्म आदि अष्ट कर्म का समर्जन-समाचरण	३२३
·५७·३	सयोगी अनंतरोपन्नक नारकी और पापकर्म का समर्जन-समाचरण	३२३
·३	सयोगी अनंतरोपन्नक नारकी और ज्ञानावरणीय कर्म का बंध	३२३
	सयोगी अनंतरोपन्नक नारकी और दर्शनावरणीय से अंतराय कर्म का बंध	३२३
·५७·४	सयोगी परंपरोपपन्नक नारकी और पापकर्म का समर्जन-समाचरण	३२४
	सयोगी परंपरोपपन्नक नारकी और ज्ञानावरणीय से अंतरायकर्म का समर्जन-समाचरण	३२४
·५८	सयोगी जीव और कर्म प्रकृति का सत्ता-बंधन-उदय	३२४
·५९	जीव दंडक और समपद	३२५
·६०	प्रयोग कर्म	३२६
·१	योग और समवदानकर्म	३२८
·२	योग और ईर्यापथकर्म	३२८
·३	अनाहारक जीवों के प्रयोगकर्म काल	३२८
·६१	सयोगी जीव और कर्म-बंधन	३२९
·१	सयोगी जीव और कर्म बंधन	३३०
·२	सयोगी नारकी और कर्म-बंधन	३३०
·३	सयोगी असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार देव और कर्म-बंधन	३३०
·४	सयोगी पृथ्वीकायिक, सयोगी अप्कायिक, सयोगी अग्नि-कायिक और कर्म-बंधन	३३१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
·५ सयोगी वायुकायिक, सयोगी वनस्पतिकायिक और कर्म-बंधन	३३१
·६ सयोगी द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय व सयोगी चतुरिन्द्रिय और कर्म-बंधन	३३१
·७ सयोगी तिर्यंच पंचेन्द्रिय योनिक जीव और कर्म बंधन	३३१
·८ सयोगी मनुष्य और कर्म-बंधन	३३१
·९ सयोगी वाणव्यंतरदेव और कर्म-बंधन	३३१
·१० सयोगी ज्योतिषीदेव और कर्म-बंधन	३३१
·११ सयोगी वैमानिक देव और कर्म-बंधन	३३१
·१२ सयोगी जीव और ज्ञानावरणीय कर्म का बंध	३३२
·१३ सयोगी जीव और दर्शनावरणीय कर्म का बंध	३३२
·१४ सयोगी जीव और वेदनीयकर्म का बंध	३३२
सयोगी नारकी जीव यावत् वैमानिकदेव के वेदनीय कर्म-बंधन	३३३
·१५ सयोगी जीव और मोहनीय कर्म का बंध	३३३
·१६ सयोगी जीव और आयुष्य कर्म का बंध	३३३
·१७ सयोगी नारकी और आयुष्य कर्म का बंध	३३४
सयोगी असुरकुमार यावत् स्तनितकुमारदेव और आयुष्य कर्म का बंध	३३४
सयोगी पृथ्वीकायिक जीव और आयुष्य बंध	३३४
·१८ सयोगी जीव और अप्कायिक जीवों के आयुष्य बंध	३३४
सयोगी जीव और वनस्पतिकायिक जीवों के आयुष्य बंध	३३४
सयोगी जीव और अग्निकायिक व वायुकायिक जीवों के आयुष्य बंध	३३५
·१९ सयोगी द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय व चतुरिन्द्रिय जीव, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य और आयुष्य बंध	३३५
·२० सयोगी औधिक जीव दंडक और नाम कार्म का बंधन	३३५
·२१ सयोगी औधिक जीव दंडक और गोत्रकर्म-अंतरायकर्म का बंधन	३३५
·२२ सयोगी अनन्तरोपपन्नक नारकी और कर्म-बंध	३३६
·२३ सयोगी अनंतरोपपन्नक पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रिय जीव और पापकर्म का बंध	३३६
·२४ सयोगी अनंतरोपपन्नक द्वीन्द्रिय जीव आदि तथा पाप कर्म का बंध	३३६
·२५ सयोगी अनंतरोपपन्नक पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीव तथा पापकर्म बंध	३३६
·२६ सयोगी अनंतरोपपन्नक मनुष्य तथा पापकर्म का बंध	३३७
·२७ सयोगी अनंतरोपपन्नक वाणव्यंतर-ज्योतिषी-वैमानिक देव तथा पापकर्म का बंध	३३७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
*२८ सयोगी अनन्तरोपपन्नक जीव दंडक और ज्ञानावरणीय आदि सात कर्म-बंधक (आयुष्य छोड़कर)	३३७
*२९ सयोगी अनंतरोपपन्नक जीव दंडक और आयुष्य कर्म का बंधन	३३८
*३० सयोगी परंपरोपपन्नक नारकी आदि दंडक और पापकर्म का बंध	३३८
सयोगी परंपरोपपन्नक नारकी आदि दंडक और ज्ञानावरणीय यावत् अंतराय कर्मबंध	३३८
*३१ सयोगी अनंतरावगाढ़ नारकी आदि दंडक और पापकर्म का बंध	३३९
सयोगी अनंतरावगाढ़ नारकी आदि दंडक और ज्ञानावरणीय यावत् अंतराय कर्म का बंध	३३९
*३२ सयोगी परंपरावगाढ़ नारकी आदि और पापकर्म का बंध	३३९
सयोगी परंपरावगाढ़ नारकी आदि और ज्ञानावरणीय यावत् अंतराय कर्म का बंध	३३९
*३३ सयोगी अनन्तराहारक नारकी आदि दंडक और पापकर्म का बंध	३४०
सयोगी अनन्तराहारक नारकी आदि दंडक और ज्ञानावरणीय कर्म यावत् अंतराय कर्म का बंध	३४०
*३४ सयोगी परंपराहारक नारकी आदि और पापकर्म का बंध	३४०
सयोगी परंपराहारक नारकी आदि ज्ञानावरणीय यावत् अंतराय कर्म का बंध	३४०
*३५ सयोगी अनन्तर पर्याप्तक नारकी आदि दंडक और पापकर्म का बंध	३४०
सयोगी अनन्तर पर्याप्तक नारकी आदि दंडक ज्ञानावरणीय यावत् अंतराय कर्म का बंध	३४०
*३६ सयोगी परम्परपर्याप्तक नारकी आदि और पापकर्म का बंध	३४१
सयोगी परम्परपर्याप्तक नारकी आदि और ज्ञानावरणीय यावत् अंतराय कर्म-बंध	३४१
*३७ सयोगी चरम नारकी आदि तथा पापकर्म का बंध	३४१
सयोगी चरम नारकी आदि तथा ज्ञानावरणीय यावत् अंतराय कर्म का बंध	३४१
*३८ सयोगी अचरम नारकी आदि और पापकर्म का बंध	३४२
सयोगी अचरम मनुष्य और पापकर्म-बंध	३४२
सयोगी अचरम वाणव्यंतरदेव तथा पापकर्म का बंध	३४२
सयोगी अचरम ज्योतिषी देव तथा पापकर्म-बंध	३४२
सयोगी अचरम वैमानिक देव तथा पापकर्म-बंध	३४२
*३९ सयोगी अचरम नारकी यावत् वैमानिकदेव (मनुष्य बाद देकर) तथा ज्ञानावरणीय कर्म का बंध	३४३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय		पृष्ठ
	सयोगी अचरम नारकी यावत् वैमानिकदेव तथा दर्शनावरणीय कर्म का बंध	३४३
	सयोगी अचरम नारकी यावत् वैमानिकदेव तथा वेदनीय कर्म का बंध	३४३
	सयोगी अचरम मनुष्य तथा ज्ञानावरणीय कर्म-बंध	३४३
	सयोगी अचरम मनुष्य तथा दर्शनावरणीय कर्म-बंध	३४३
	सयोगी अचरम मनुष्य तथा वेदनीय कर्म-बंध	३४३
*४०	सयोगी अचरम नारकी आदि और मोहनीय कर्म का बंध	३४४
*४१	सयोगी अचरम नारकी व आयुष्य कर्म-बंधन	३४४
	सयोगी भवनपतिदेव व आयुष्य बंध	३४४
	सयोगी असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार भवनपतिदेव व आयुष्य बंध	३४४
	सयोगी-काययोगी अचरम पृथ्वीकायिक और आयुष्य बंध	३४४
	सयोगी-काययोगी अचरम अप्कायिक और आयुष्य बंध	३४५
	सयोगी-काययोगी अचरम वनस्पतिकायिक और आयुष्य बंध	३४५
	सयोगी अचरम अग्निकायिक और आयुष्य बंध	३४५
	सयोगी अचरम वायुकायिक और आयुष्य बंध	३४५
	सयोगी अचरम द्वीन्द्रिय यावत् चतुरिन्द्रिय और आयुष्य बंध	३४५
	सयोगी अचरम तिर्यंच पंचेन्द्रिय और आयुष्य बंध	३४५
	सयोगी अचरम मनुष्य और आयुष्य बंध	३४५
	सयोगी अचरम वाणव्यंतरदेव व आयुष्य बंध	३४६
	सयोगी अचरम ज्योतिषी व वैमानिकदेव और आयुष्य बंध	३४६
*४२	सयोगी अचरम नारकी तथा नामकर्म बंध	३४६
*४३	सयोगी अचरम नारकी तथा गोत्रकर्म बंध	३४६
*४४	सयोगी अचरम नारकी तथा अंतरायकर्म बंध	३४६
	सयोगी अचरम असुरकुमार यावत् वैमानिकदेव और नामकर्म-गोत्र-अंतराय कर्म का बंध	३४६
*४५	कार्मणकाययोगी जीव आयुष्य नहीं बांधता है	३४६
*४६	आहारकमिश्रकाययोगी जीव आयुष्य नहीं बांधता	३४६
	योग और कर्म बंध	३४७
	औदारिकमिश्रकाययोगी जीव और कर्म-बंध	३४७
	वैक्रियमिश्रकाययोगी जीव आयुष्य नहीं बांधता	३४७
*४७	योग और बंध	३४७
*४८	वेदनीयकर्म का बंधन तथा योग-लेश्या	३४८
*४९	योग और लेश्या	३४९
*५०	योगस्थान और प्रकृति बंध और प्रदेश बंध	३४९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
*५१ योग और बंधक-अबंधक	३४९
परिशिष्ट	
अध्ययन, गाथा, सूत्र आदि की संकेत सूची	३५०
संकलन-सम्पादन-अनुसंधान में प्रमुख ग्रन्थों की सूची	३५०
लेश्या कोश पर विद्वानों की सम्मति	३५२
क्रिया-कोश पर प्राप्त समीक्षा	३५३
मिथ्यात्वी का आध्यात्मिक विकास पर अभिमत	३५४
वर्धमान जीवनकोश, प्रथम खण्ड पर प्राप्त समीक्षा	३५७
वर्धमान जीवनकोश, द्वितीय खण्ड पर प्राप्त समीक्षा	३५७
वर्धमान जीवनकोश, तृतीय खण्ड पर प्राप्त समीक्षा	३५८
'योगकोश' प्रथम खण्ड पर प्राप्त समीक्षा	३५९
"योगकोश पर प्राप्त समीक्षा"	३६०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·०४·०५ योग-कोश

·१ से ४ सयोगी जीव

·१ सयोगी जीव और ज्ञान

·१·१ सजोगी णं भंते ! जीवा किं णाणी अण्णाणी ? जहा सकाइया। (सकायिक पाठ—सकाइया णं भंते ! जीवा किं णाणी अण्णाणी ? गोयमा ! पंच णाणाणि तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए। प्र ३८) एवं मणजोगी, वइजोगी कायजोगी वि। —भग० श ८। उ २। प्र ९४

सयोगी जीव में पाँच ज्ञान तथा तीन अज्ञान की भजना होती है।

·१·२ मनोयोगी और ज्ञान

·१·३ वचन योगी और ज्ञान

·१ ४ काय योगी और ज्ञान

·१ ४ अयोगी और ज्ञान

इसी प्रकार मनोयोगी जीव में पाँच ज्ञान तथा तीन अज्ञान की भजना है।

इसी प्रकार वचन योगी जीव में पांच ज्ञान तथा तीन अज्ञान की भजना है।

इसी प्रकार काय योगी जीव में पांच ज्ञान तथा तीन अज्ञान की भजना है।

जिस सयोगी जीव के भव की अपेक्षा केवल काय योग होता है उसके मति-श्रुत अज्ञान होता है लेकिन ज्ञान नहीं होता है। जिस सयोगी जीव के भव की अपेक्षा काय योग व वचन योग होता है उसके भी मति श्रुत ज्ञान तथा मति-श्रुत अज्ञान की भजना है।

जिस सयोगी जीव के तीनों योग होते हैं उन सयोगी जीव के पांच ज्ञान-तीन अज्ञान की भजना होती है।

सयोगी मिथ्या दृष्टि तथा सम्यग्-मिथ्या दृष्टि में मति अज्ञान-श्रुत अज्ञान की नियमा है तथा विभंग अज्ञान की भजना है। सयोगी सास्वादान सम्यग् दृष्टि, अव्रत सम्यग् दृष्टि तथा संयतासंयत में मति ज्ञान-श्रुत ज्ञान की नियमा है तथा अवधि ज्ञान की भजना है। सयोगी प्रमत्त संयत से अक्षीण मोहतक मति ज्ञान-श्रुत-ज्ञान की नियमा है तथा अवधि ज्ञान-मनः पर्यव ज्ञान की भजना है। सयोगी केवली व अयोगी केवली में केवल ज्ञान की नियमा है। सिद्ध अयोगी होते हैं—केवल ज्ञान की नियमा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·१·५ अयोगी और ज्ञान

सजोगी णं भंते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ? जहा सकाइया, एवं मण जोगी, वइजोगी, कायजोगी वि । अजोगी जहा सिद्धा ।

—भग० श ८ । उ २ । सू १७६

अयोगी जीव में नियम से एक केवल ज्ञान होता है । सिद्ध की तरह ।

नोट—पृथ्वीकायिक से वनस्पतिकायिक जीवों में केवल काय योग होता है । उनमें नियमतः मति अज्ञान और श्रुत अज्ञान होता हैं ।

·१·५ योग और उपयोग

सयोगे अयोगे सिद्धेय केवलज्ञानदर्शनाख्यो द्वौ ।

—गोजी० । गा ७०५ । टीका

सयोगी-अयोगी और सिद्धों में केवल ज्ञान और केवल दर्शन दो उपयोग होते हैं ।

·१.६ योग और केवल ज्ञान

केवल ज्ञान सयोगी में भी होता है, अयोगी में भी होता है ।

केवलज्ञानं सयोगायोगयोः सिद्धे च ।

—गोजी० गा ६८८ । टीका

केवल ज्ञान सयोगी-अयोगी गुणस्थान में व सिद्धों में होता है ।

.२ सयोगायोगयोदेकं केवलज्ञानमेव

—गोजी० गा ७०३ । टीका

सयोगी-अयोगी गुणस्थान में एक केवल ज्ञान होता हैं ।

·१·७ योग और दर्शन

सयोगायोगयोः सिद्धे चैकं केवलदर्शनम् ।

—गोजी० गा ७०३ । टीका

सयोगी-अयोगी और सिद्धों में एक केवल दर्शन होता है ।

·१·८ योग और जीव समास

केवलदर्शनं सयोगायोग गुणस्थानयोः तत्र जीवसमासौ केवलज्ञानोक्तौ द्वौ ।

—गोजी० गा ६९१ । टीका

केवल दर्शन सयोगी-अयोगी गुणस्थानों में होता है । उसमें दो जीवसमास होते हैं जो केवल ज्ञान में होते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·१·९ आहारक-आहारक-मिश्रकाययोग और मनः पर्यव ज्ञान

मणपज्जवपरिहारो पढमुवसम्मत्त दोण्णि आहारा। एदेसु एक्कपगदे णत्थित्तियसेसयं णाणे।

—गोजी० गा ७२९

टीका मनःपर्ययज्ञानं परिहारविशुद्धिसंयमः प्रथमोपशम सम्यक्त्वं आहारकद्विकं च इत्येतेषु मध्ये एकस्मिन् प्रकृते प्रस्तुते अधिकृते सति अवशेषं उद्धरितं नास्ति-न संभवतीति जानीहि।

मनःपर्ययज्ञान, परिहारविशुद्धि संयम, प्रथमोपशम सम्यक्त्व, आहारक, अहारकमिश्रकाययोग —

इनमें से एक प्राप्त होने पर उसके साथ शेष सब नहीं होते हैं। सबसे न्यून ज्ञान सूक्ष्म निगोद के अपर्याप्त के प्रथम समय में होता है।

·१·१० योग और मनःपर्यवज्ञान

इंदियणोइंदियजोगादि पेक्खित्तु उजुमदीहोदि।
णिरवेक्खिय विउलमदीओहिं वा होदि णियमेण॥

—गोजी० गा ४४६

टीका—ऋजुमतिमनःपर्यव स्पर्शनादीन्द्रियाणि नोइन्द्रियं मनोवचनकाय-योगांश्च स्वपरसम्बन्धिनोऽपेक्ष्यैवोत्पद्यते। विपुलमति मनः पर्ययस्तु अवधि-ज्ञानमिव तानपेक्ष्यैवोत्पद्यते नियमेन।

ऋजु मतिमनः पर्यय अपने और अन्य जीवों के स्पर्शन आदि इन्द्रियाँ, मन और मन-वचन-काय योगों की अपेक्षा से ही उत्पन्न होता है। और विपुल मति मनः पर्यव अर्थात् अवधि ज्ञान की तरह उनकी अपेक्षा के बिना ही उत्पन्न होता है।

·१·११ शुभ योग (परिणाम) भी विविध ज्ञानं की समुत्पत्तिमें कारण शुभ योग, (परिणाम) शुभ अध्यवसाय, लेश्या-विशुद्धि से जातिस्मरण ज्ञान की समुत्पत्तिः —

(क) तएणं तव मेहा! लेस्साहिं विसुज्झमाणीहिं अज्झवसाणेणं सोहणेणं सुभेण परिणामेणं तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहापोहमग्गण-गवेसणं करेमाणस्स सन्निपुव्वे जाइसरणे समुप्पज्जित्था।

(ख) तएणं तस्स मेहस्स समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म सुभेहिं परिणामेहिं पसत्थेहिं अज्झवसाणेहिं लेस्साहिं विसुज्झ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माणीहिं तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणंईहापोहमग्गणवेसणं करेमाणस्स सन्निपुव्वे जाइसरणे समुप्पन्ने ।

णाय० श्रु १ । अ १ । अ १ । सू ३२,३३

लेश्या की उत्तरोत्तर विशुद्धता के साथ शुभ योग (परिणाम) भी जाति स्मरण ज्ञान की उत्पत्ति में एक आवश्यक अंग है ।

·१·१२ शुभ योग (परिणाम) से अवधि ज्ञान

आणंदस्स समणोवासगस्स्स अन्नया कदाइ सुभेणं अज्झवसाणेणं सुभेणं परिणामेणं लेस्साहिं विसुज्झमाणीहिं तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ओहिनाण समुप्पन्ने ।

—उवा० अ १ । सू १२

शुभ योग के साथ लेश्या की उत्तरोत्तर विशुद्धि होनी अवधि ज्ञान की प्राप्ति में एक आवश्यक अंग है ।

नोट—जहाँ लेश्या की उत्तरोत्तर विशुद्धि है वहाँ शुभ अध्यवसाय के साथ शुभ योग का होना आवश्यक है ।

·१·१३ शुभ योग (परिणाम) से अवधि ज्ञान

तस्स णं (असोच्चा केवलीस्सणं) भंते ! छट्ठं छट्ठेणं × × × अन्नया कयाइ सुभेणं अज्झवसाणेणं सुभेणं परिणामेणं, लेस्साहिं विसुज्झमाणीहिं-विसुज्झमाणीहिं तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहापोह मग्गणगवेसणं करेमाणस्स विभंगे नामं अन्नाणे समुप्पज्जइ ।

—भग० श ९ । उ ३१ । सू २१

शुभ योग तथा शुभ अध्यवसाय व लेश्या का उत्तरोत्तर विशुद्ध होना विभंग अज्ञान की प्राप्ति में एक आवश्यक अंग है ।

·१·१४ शुभ-अशुभ योगो देव का शुभ-अशुभ योगी देव-देवी को जानना-देखना

अवधि ज्ञानी शुभ योगी देव सम्यग्दृष्टि उपयुक्त-अनुपयुक्त आत्मा द्वारा अविशुद्ध लेशी देव, देवी या अन्यतर को जानता है, देखता है ।

विभंग अज्ञानी शुभ योगी देव मिथ्या दृष्टि उपयुक्त-अनुपयुक्त आत्मा द्वारा अविशुद्ध लेशी देव-देवी या अन्यतर को नहीं जानता हैं, नहीं देखता है ।

·२ सयोगी जीव और मनो-द्रव्य-योग के पुद्गलों का ग्रहण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

•२·१ अनुत्तरौपातिक देव और मनोद्रव्य पुद्गलों का ग्रहण—

(भगवं महावीरे × × × मे गोयमा ।)

इओ चुया दो वि तुल्ला एगट्ठा अविसेसमणागत्ता भविस्सामो । × × × जहा णं वयं एयमट्ठं जाणामो पासामो तहा अणुत्तरोववाइयावि देवा एयमट्ठं जाणंति पासंति ।

से केणट्ठेण जाव पासंति ? गोयमा ! अणुत्तरोववाइयाणं अणंताओ मणोदव्वं वग्गणाओ लद्धाओ पत्ताओ अभिसमण्णागयाओ ।

—भ० श १४ । उ ७ । सू १, २

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने कहा—हे गौतम ! इस भव में मृत्यु के पश्चात् इस शरीर के छूट जाने पर अपन दोनों तुल्य और एकार्थ विशेषता रहित और किसी प्रकार के भेदभाव रहित हो जावेंगे ।

हे भगवन् ? जिस प्रकार अपन दोनों पूर्वोक्त भाव से जानते देखते हैं तो क्या अनुत्तरौपातिक देव भी इस अर्थ को इसी प्रकार जानते-देखते हैं ।

हां गौतम ! क्योंकि अनुत्तरौपपातिक देवों को अवधि ज्ञान की लब्धि से मनोद्रव्य की अनंत वर्गणाएँ ज्ञेय रूप से उपलब्ध है, प्राप्त है, अभिसमन्वागत हुई है ।

नोट—अनुत्तरपौपातिक देव विशिष्ट अवधि ज्ञान के द्वारा मनो द्रव्य (मनो द्रव्य योग) वर्गणाओं को जानते-देखते हैं । अयोगी अवस्था में अपन दोनों को निर्वाण गमनका निश्चय करते हैं ।

•३ सयोगो जीव और बोधि

•१ सम्यग दर्शन में अनुरक्त, निदान रहित, (शुभ योग, प्रशस्त अध्यवसाय) तथा शुक्ल लेश्या में अवगाढ़ होकर जो जीव मरते हैं वे परभव में सुलभ बोधि होते हैं ।

•२ इसके विपरीत मिथ्या दर्शन में रत, निदान सहित (अशुभ योग, अप्रशस्त अध्यवसाय,) कृष्ण लेश्या में अवगाढ़ होकर जो जीव मरते हैं वे परभव में दुर्लभ बोधि होते हैं ।

—उत्त० स ३६ । गा २५७, २५८

नोट—जहाँ तेजो—पद्म तथा शुक्ल लेश्या है वहाँ प्रशस्त अध्यवसाय तथा शुभ योग अवश्य होंगे जहाँ कृष्ण लेश्या-नील-कापोत लेश्या है वहाँ प्रशस्त अध्यवसाय हो सकते हैं तथा अशुभ योग अवश्य होंगे । मनुष्य तिर्यंच पंचेन्द्रिय सम्यग दर्शनी जीव शुक्ल लेशी यदि होता तो किसी एक देवलोक का वह वैमानिक देव का छट्ठे से सर्वार्थ सिद्ध देव का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आयुष्य बांधता है। मिथ्य दर्शनी जीव कृष्ण लेशी अशुभ योगी होता तो वह नरकादि चारों गतियों का अशुभ आयुष्य बांधता है। यह ध्यान रहें अशुभ लेश्या अशुभ योग होते हुए भी अध्यवसाय प्रशस्त हो सकते हैं।

—(भग० श २४)

·४·१ सयोगी जीव और काल की अपेक्षा सप्रदेश-अप्रदेश

·४·१ सजोगी जहा ओहिओ, मणजोगी वयजोगी कायजोगी जीवाइओ तियभंगो, णवरं कायजोगी एगिंदिया, तेसु अभंगयं।

(ओघ पाठ—जीवे णं भंते ! कालादेसेणं किं सपएसे अपएसे ? गोयमा ! णियमा सपएसे। प्र १)

—भग० श ६। उ ४। प्र ५, ६३

·४·२ अजोगी जहा अलेस्सा (६३)

(अलेसेहिं जीव—सिद्धेहिं तियभंगो)

यहाँ काल की अपेक्षा से जीव सप्रदेश है या अप्रदेश—ऐसी पृच्छा है। काल की अपेक्षा से सप्रदेशी व अप्रदेशी का अर्थ टीकाकार ने एक समयकी स्थिति वाले को अप्रदेशी और द्व्यादि समय की स्थिति वाले को सप्रदेशी कहा है। इस सम्बन्ध में उन्होंने एक गाथा भी उद्धृत की है।

"जो जस्स पढयसमए वट्टइ भावस्ससो उ अपएसो।
अण्णम्मि वट्टमाणो कालाएसेण सपएसो॥"

सयोगी जीव (एक वचन) काल की अपेक्षा से नियमतः सप्रदेशी होता है। सयोगी नारकी काल की अपेक्षा से कदाचित् सप्रदेशी होता है, कदाचित् अप्रदेशी होता है। इसी प्रकार यावत् सयोगी वैमानिक देव तक समझना।

सयोगी जीव (एक वचन) काल की अपेक्षा से सप्रदेशी होता है। क्योंकि सयोगी जीव अनादि काल से सयोगी जीव है। सयोगी नारकी उत्पन्न होने के प्रथम समय की अपेक्षा से अप्रदेशी कहलाता है। इसी प्रकार वैमानिक देव तक जानना चाहिए।

सयोगी जीव (बहुवचन) काल की अपेक्षा से नियमतः सप्रदेशी होते हैं क्योंकि सर्व सयोगी जीव अनादि काल से सयोगी जीव है। दंडक में जीवों का बहुवचन से विवेचन करने पर काल की अपेक्षा से सप्रदेशी-अप्रदेशी के निम्नलिखित छः भंग होते हैं—

(१) सर्व सप्रदेशी, अथवा (२) सर्व अप्रदेशी, अथवा (३) एक सप्रदेशी, एक अप्रदेशी, अथवा (४) एक सप्रदेशी, अनेक अप्रदेशी, अथवा (५) अनेक सप्रदेशी, एक अप्रदेशी, अथवा (६) अनेक अप्रदेशी, अनेक सप्रदेशी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सयोगी नारकियों यावत् स्तनितकुमारों में तीन भंग होते हैं, यथा—प्रथम, अथवा पंचम, अथवा षष्ठम। सयोगी पृथ्वीकायिकों यावत् वनस्पति कायिकों में छट्ठा विकल्प होता है। सयोगी द्वीन्द्रियों यावत् वैमानिक देवों में प्रथम, अथवा पंचम, अथवा षष्ठम विकल्प होता है।

मनोयोगी, वचन योगी और काययोगी में जीवादि तीन भंग (प्रथम, पंचम, षष्ठम) कहने चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रिय जीव केवल काययोग वाले ही होते हैं। उनमें अभंग कहना चाहिए। अर्थात् उनमें छट्ठा विकल्प होता है।

अयोगी जीवों का कथन अलेशी जीवों के समान कहना चाहिए। अयोगी (योग रहित) जीव और सिद्धों के तीन भंग कहने चाहिए। और अयोगी मनुष्यों में छह भंग भंग कहने चाहिए।

एक अयोगी जीव (मनुष्य) कदाचित् सप्रदेशी है और कदाचित् अप्रदेशी है। इसी प्रकार एक सिद्ध के विषय में जानना।

·५ सयोगी जीव और ज्ञानावरणीय आदि कार्मका बंध

नाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं कि मणजोगी बंधइ ?
वइजोगी बंधइ ? कायजोगी बंधइ ? अजोगी बंधइ ?
गोयया ! हेट्ठिल्ला तिण्णि भयणाए, अजोगी न बंधइ ?

एवं वेदणिज्जवज्जाओ सत्तवि ? वेदणिज्ज हेट्ठिल्ला बंधति, अजोगी न बंधइ ।।

—भग० श ६ । उ ४ । सू ४७

मनोयोगी, वचनयोगी व काययोगी ज्ञानवरणीय आदि सात कर्म का बंधन भजना से करते हैं लेकिन अजोगी जीव कर्म बंधन नहीं करता है।

नोट—वेदनीय कर्म का बंधन तीनों योग वाले नियमतः करते हैं।

·६ सयोगी जीव और त्रिविध बंध—

कइविहेणं भंते ! बंधे पन्नत्ते ? गोयमा तिविहे बंधे पन्नत्ते, तंजहा जीवप्पओगबंधे अणंतरबंधे, परंपरबंधे। × × × दंसणमोहणिज्जस्स णं भंते कम्मस्स कइविहेबंधे पन्नत्ते। एवं चेव, निरंतरं जाववेमाणियाण, × ×। एवं एएणं × × × एएसि सव्वेसि पयाणं तिविहे बंधे पन्नत्ते सव्वे एएचउव्वीसं दंडगाभाणियव्वा, नवरं जाणियव्वं जस्सजइ अत्थि।

—भग० ग २० । उ ७ । सू १, ८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनोयोगी, वचन योगी तथा काय योगी का बंध तीन प्रकार का होता है, जैसे—जीव प्रयोग बंध, अनंतर बंध व परंपर बंध। मनोयोगी, वचन योगी, काय योगी नारकी का बंध तीन प्रकार का होता है यथा—जीवप्रयोग बंध, अनंतरबंध व परंपर बंध। इसी प्रकार यावत् वैमानिक दंडक तक तीन प्रकार का बंध कहनातथा जिसके जितने योग हो उसके उतने पद कहने।

विवेचन :—जीव के प्रयोग से अर्थात् मन, वचन, काया के व्यापार से कर्म पुद्गलों का आत्माओं के साथ संबंध होना जीव प्रयोग बंध कहलाता है। इस बध में योग का निमित्त है।

·७ सयोगी जीव और जन्म मरण

योग और साधारण वनस्पति का जन्म-मरण

एकस्य साधारण जोवस्य कर्मादान शक्ति लक्षणयोगेन गृहीत पुद्गल गलपिण्डोपकारोऽनन्तानन्त साधारण जीवानां तस्य चानुग्रहणं भवति। पुनरपि अनन्तानन्त साधारण जीवानां योग शक्तिभिः गृहीतपुद्गलपिण्डोपकारः एकस्य अनन्तानन्त साधारण जोवानां चानुग्रहणं समासेन सपिन्डितत्वेन भवति।

—गोजी० गा। १९३। टीका

एक साधारण जीव के कर्मो को ग्रहण करने की शक्ति रूप योग के द्वारा गृहीत पुद्गलपिण्ड अनन्तानन्त साधारण जीवों का भी उपकारी होता है उस जीव का उपकारी होता है। इस तरह अनन्तानन्त साधारण जीवों की योगशक्ति के द्वारा गृहीत पुइगल पिण्ड एक साथ संयुक्त रूप से एक जीव का भी उपकारी होता है और अनन्तानन्त साधारण जीवों का भी उपकारी होता है।

·८ योग स्थान की प्ररूपणा—

·८ १ प्ररूपणा अनुयोग

टीका—तत्थ परूवणं वत्तइस्सामो। तं जहा—सत्तण्णं लद्धिअपज्जत्त-जीव समाणमत्थि उववादजोगट्ठाणाणि एयंतावड्ढि एयंताणुवड्ढिजोगट्ठाणाणि-परिणामजोगट्ठाणाणि च। सत्तण्णं णिव्वत्तिअपज्जत्तजीवसमासाणमत्थि उववाद-जोगट्ठाणाणि एयंताणुवड्ढिजोगट्ठाणाणि च। सत्तण्णं णिव्वत्तिपज्जत्तयाणमत्थि परिणामजोगट्ठाणाणि चेव। परूवणा समत्ता।

—षट्० ४।२।४ सू १७३।पु० १०।पृष्ठ ४०३

प्ररूपणा अनुयोग द्वार का कथन इस प्रकार है—सात लब्ध्य पर्याप्त जीवसमासों के उपपादयोगस्थान, एकान्तानुवृद्धियोगस्थान और परिणामयोगस्थान होते हैं। सात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्वृत्त्यपर्याप्त जीवसमासों के उपपादयोगस्थान और एकान्तानुवृद्धियोगस्थान होते हैं। सात निर्वृत्तिपर्याप्त जीवसमासों के परिणामयोगस्थान ही होते हैं।

·८ २ योग स्थान का प्रमाण—

टीका—संपहि पमाणं वुच्चदे। तं जहा—एदेसिं वुत्तसव्वजीवसमासाणं उपवादजोगट्ठाणाणं एयंताणुवड्ढिजोगट्ठाणाणं परिणामजोगट्ठाणाणं च पमाणं सेडीए असंखेज्जदिभागो। पमाणपरूवणा गदा।

—षट्० खण्ड ४। २। ४ सू १७३। पु० १०। पृष्ठ ४०४

योगस्थान का प्रमाण—ये जो जीवसमासों के उपपाद योगस्थान, एकान्तानुवृद्धि-योगस्थान तथा परिणामयोग स्थान कहे गये हैं उनका प्रमाण जगश्रेणी के असंख्यातवें भाग रूप है।

·८·३ योग के अल्पबहुत्व के भेद

टीका—अप्पाबहुगं (दुविहं) जोगट्ठाणप्पाबहुगं जोगविभागपडिच्छेद-प्पाबहुगं चेदि।

योग स्थानों का अल्पबहुत्व

टीका—तत्थ जोगट्ठाणप्पाबहुगं वत्तइस्सामो। तं जहा-सव्वत्थोवाणि-सत्तण्णं लद्धिअपज्जत्ताणमुववादजोगट्ठाणाणि। तेसिमेगंताणुवड्ढिजोगट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि। परिणामजोगट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि। सत्तण्णंणिव्वत्ति-अपज्जत्तजीवसमासाणं सव्वत्थोवाणि उववादजोगट्ठाणाणि। एगंताणुवड्ढिजोग-ट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि। सत्तण्णंणिव्वत्तिपज्जत्ताणं णत्थि अप्पाबहुगं, परिणामजोगट्ठाणाणि मोत्तूण तत्थ अण्णेसिं जोगट्ठाणाणमभावादो। सव्वत्थ गुणगारोपलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एवं जोगट्ठाणप्पाबहुगं समत्तं।

—षट्० खं ४। २। ४ सू १७३। पु १०। पृष्ठ ४०४

योग का अल्पबहुत्व दो प्रकार का है—योगस्थान अल्पबहुत्व और योगविभाग-प्रतिच्छेद-अल्पबहुत्व।

योगस्थान का अल्पबहुत्व—सात लब्ध्यपर्याप्तों के उपपादयोगस्थान सबसे स्तोक हैं। उनसे उनके एकान्तानुवृद्धिः योगस्थान असंख्यातगुणे हैं। उनसे परिणामयोगस्थान असंख्यात गुणे हैं। सात निर्वृत्यपर्याप्त जीवसमासों के उपपादयोगस्थान सबसे स्तोक हैं। उनसे एकान्तानुवृद्धियोगस्थान असंख्यातगुणे हैं। सात निर्वृत्तिपर्याप्तों के अल्पबहुत्व नहीं होता है, क्योंकि इनमें परिणाम योगस्थान को छोड़कर अन्य योगस्थान नहीं होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'८'४ जीव समास के आश्रय से योग विभाग प्रतिच्छेद का स्वस्थान अल्पबहुत्व—

चोद्दसजीवसमासाणं जोगाविभागपडिच्छेदप्पाबहुगं तिविहं सत्थाणं परत्थाणं सव्वपरत्थाणमिदि। तत्थ ताव सत्थाणं वत्तइस्सामो। तं जहा- सव्वत्थोवा सुहुमेइंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णुववादजोगट्ठाणस्स अविभागपडिच्छेदा। तस्सेव उक्कस्सुववादजोगट्ठाणस्स अविभागपडिच्छेदा असंखेज्जगुणा। तदो तस्सेव जहण्णएगंताणुवड्ढिजोगस्स अविभागपडिच्छेदा असंखेज्जगुणा। तस्सुवरि तस्सेव उक्कस्सएगंताणुवड्ढिजोगस्स अविभागपडिच्छेदा असंखेज्जगुणा। तस्सेव जहण्णपरिणामजोगट्ठागस्स अविभागपडिच्छेदा असंखेज्जगुणा। तस्सुवरि तस्सेव उक्कस्सपरिणामजोगट्ठाणस्स अविभागपडिच्छेदा असंखेज्जगुणा। एवं सेसाणं पि लद्धिअपज्जत्तजीवसमासाणं सत्थाणप्पाबहुगं भाणिदव्वं।

सव्वत्थोवा सुहुमेइंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स जहण्णउववादजोगट्ठाणस्स अविभागपडिछेदा। तस्सेव उक्कस्सउववादजोगट्ठाणस्स अविभागपडिच्छेदा असंखेज्जगुणा। तदो तस्सेव जहण्णएगंताणुवड्ढिजोगस्स अविभागपडिच्छेदा असंखेज्जगुणा। तदो तस्सेव उक्कस्सएयंताणुवड्ढिजोगस्स अविभागपडिच्छेदा असंखेज्जगुणा। एवं सेसाणं छण्णं णिव्वत्तिअपज्जत्ताणं सत्थाणप्पाबहुगं भाणिदव्वं।

सव्वत्थोवा सुहुमेइंदिय णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णपरिणामजोगट्ठाणस्स अविभागपडिच्छेदा। तस्सेव उक्कस्सपरिणामजोगट्ठाणस्स अविभागपडिच्छेदा असंखेज्जगुणा। एवं सेसाणं पि छण्णं णिव्वत्तिपज्जत्ताणं सत्थाणप्पाबहुगं वत्तव्वं।

—षट्० खण्ड ४। २। ४ सू १७३। पु १० पृष्ठ ४०४। ५

चौदह जीवसमासों का योग विभाग प्रतिच्छेद अल्पबहुत्व तीन प्रकार का होता है—स्वस्थान, परस्थान और सर्वपरस्थान।

स्वस्थान अल्पबहुत्व—सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्य पर्याप्त के जघन्य उपपाद योगस्थान सम्बन्धी अविभागप्रतिच्छेद सबसे स्तोक हैं। उनसे उसी के उत्कृष्ट उपपादयोगस्थान सम्बन्धी अविभागप्रतिच्छेद असंख्यात गुणे हैं। उनसे उसी के जघन्य एकान्तानुवृद्धि योग-स्थान सम्बन्धी अविभागप्रतिच्छेद असंख्यातगुणे हैं। उससे आगे उसी के उत्कृष्ट एकान्तनु-वृद्धि योगस्थान सम्बन्धी अविभागप्रतिच्छेद असंख्यातगुणे हैं। उनसे उसी के जघन्य परिणाम योगस्थान सम्बन्थी अविभाग प्रतिच्छेद असंख्यात गुणे हैं। उससे आगे उसी के उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान सम्बन्धी अविभागप्रतिच्छेद असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार शेष लब्ध्य-पर्याप्त जीवसमासों के भी स्वस्थान अल्पबहुत्व जानना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूक्ष्म एकेन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्त जीव के जघन्य उपपादयोग स्थान सम्बन्धी अविभागप्रतिच्छेद सबसे स्तोक हैं। उनसे उसके ही उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान सम्बन्धी अविभागप्रतिच्छेद असंख्यातगुणे हैं। उनसे उसके ही जधन्य एकान्तानुवृद्धियोग सम्बन्धी अविभागप्रतिच्छेद असंख्यात गुणे हैं। उनसे उसके ही उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योग सम्बन्धी अविभाग प्रतिच्छेद असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार शेष छः निर्वृत्यपर्याप्तों के स्वस्थान का अल्पबहुत्व का कथन करना चाहिए।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्त के जघन्य परिणामयोग स्थान सम्बन्धी अविभाग प्रतिच्छेद सबसे स्तोक हैं। उनसे उसके ही उत्कृष्ट परिणामयोगस्थान सम्बन्धी अविभागप्रतिच्छेद असंख्यात गुणे हैं। इसी प्रकार शेष छः निर्वृत्तिपर्याप्त जीवों के भी स्वस्थान अल्पबहुत्व का कथन करना चाहिए।

जीव समास के आश्रय से सर्व परस्थान योगों का अल्प बहुत्व—

८.५ जघन्य योग स्थान की अपेक्षा उपपाद, एकांतानुवृद्धि तथा परिणाम योग स्थान का अल्प बहुत्व—

टीका—एत्तो सव्वपरत्थाणप्पाबहुगं तिविहं—जहण्णयमुक्कस्सयं जहण्णुक्कस्सयं चेदि।

तत्थजहण्णप्पाबहुगं भणिस्सामो। तं जहा-सव्वत्थोवं सुहुमेइंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णुवादजोगट्ठाणं। सुहुमेइंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स जहण्णुववाद जोगट्ठाणअसंखेज्जगुणं। बादरेइंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णुववादजोगट्ठाणमसंखेज्जगुणं। बादरेइंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स जहण्णुववादजोगट्ठाणं असंखेज्जगुणं। बेइंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णुववादजोगट्ठाणमसंखेज्जगुणं। बेइंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स जहण्णुववादजोगट्ठाणमसंखेज्जगुणं। तेइंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णुववादजोगट्ठाणमसंखेज्जगुणं। तेइंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स जहण्णुववादजोगट्ठाणमसंखेज्जगुणं। चउरिंदियलद्धि अपज्जत्तयस्स जहण्णुववादजोगट्ठाणमसंखेज्जगुणं। चउरिंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स जहण्णुववादजोगट्ठाणमसंखेज्जगुणं। असण्णिपंचिंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णुववादजोगट्ठाणमसंखेज्जगुणं। असण्णिपंचिंदियणिव्वत्ति अपज्जत्तयस्स जहण्णुववादजोगट्ठाणमसंखेज्जगुणं। सण्णिपंचिंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णुववादजोगट्ठाणमसंखेज्जगुणं। सण्णिपंचिंदियणिव्वत्ति अपज्जत्तयस्स जहण्णुववादजोगट्ठाणमसंखेज्जगुणं। सुहुमेइंदियलद्धि अपज्जत्तयस्स जहण्णमेगंताणुवड्ढिजोगट्ठाणमसंखेज्जगुणं। सुहुमेइंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स जहण्णमेगंताणुवड्ढिजोगट्ठाणमसंखेज्जगुणं। बादरेइं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दियलद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णमेगंताणुवड्ढिजोगट्ठाणं असंखेज्जगुणं। बादरेइंदिय-णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स जहण्णमेगंताणुवड्ढिजोगट्ठाणमसंखेज्जगुणं। सुहुमेइंदिय-लद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णपरिणामजोगट्ठाणमसंखेज्जगुणं। बादरेइंदियलद्धि-अपज्जत्तयस्स जहण्णपरिणामजोगट्ठाणमसंखेज्जगुणं। सुहुमेइंदियणिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स जहण्णपरिणामजोगट्ठाणमसंखेज्जगुणं। बादरेइंदियणिव्वत्तिपज्जत्त-यस्स जहण्णपरिणामजोगट्ठाणमसंखेज्जगुणं। बेइंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्ण-मेगंताणुवड्ढिजोगट्ठाणमसंखेज्जगुणं। तेइंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णमेगं-ताणुवड्ढिजोगट्ठाणमसंखेज्जगुणं। चउरिंदियलद्धिअपज्जयस्स जहण्णमेगंताणु-ड्ढिजोगट्ठाणमसंखेज्जगुणं। असण्णिपंचिंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णमेगंताणु-वड्ढिजोगट्ठाणमसंखेज्जगुणं। सण्णिपंचिंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णमेगंताणुवड्ढि-जोगट्ठाणमसंखेज्जगुणं। बेइंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। तीइंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णओपरिणामजोगो असंखे-ज्जगुणो। चउरिंदियलद्धिअपज्जत्तस्स जहण्णओ परिणामजोगो असंखे-ज्जगुणो। असण्णिपंचिंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। सण्णिपंचिंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। बेइंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स जहण्णओ एगंताणुवड्ढिजोगो असंखेज्ज्जगुणो। तीइंदियणिव्वत्ति अपज्जत्तयस्स जहण्णओ एगंता-णुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो। चउरिंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स जहण्णओ एगंता-णुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो। असण्णिपंचिंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स जहण्णओ एगंताणुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो। (सण्णिपंचिंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स जहण्णओ एगंताणुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो।)

बेइंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। तेइंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। चउरिंदिय-णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। असण्णिपंचिंदिय-णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। सण्णिपंचिंदिय-णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। एवं जहण्ण-बीणालावो समत्तो।

—षट्० खण्ड ४। २। ४ सू० १७३। पु० १० पृष्ठ ४०८। ४११

सर्व परस्थान अल्पबहुत्व तीन प्रकार का होता है—जघन्य, उत्कृष्ट और जघन्यो-त्कृष्ट। यहाँ पर जघन्य अल्पबहुत्व का कथन किया जाता हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त का जघन्य उपपाद योग स्थान सबसे स्तोक है। उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्त का जघन्य उपपाद योगस्थान असंख्यात गुना है। उससे बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त का जघन्य उपपाद योग स्थान असंख्यातगुणा है। उससे बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्त का जघन्य उपपाद योगस्थान असंख्यातगुणा है। उससे द्वीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त का जघन्य उपपाद योगस्थान असंख्यातगुना है। उससे द्वीन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्त का जघन्य उपपाद योगस्थान असंख्यातगुणा है। उससे त्रीन्द्रिय लब्ध्य-पर्याप्त का जघन्य उपपाद योगस्थान असंख्यातगुणा है। उससे त्रीन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्त का जघन्य उपपाद योगस्थान असंख्यातगुणा है। उससे चतुरिन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त का जघन्य उपपाद योगस्थान असंख्यातगुणा है। उससे चतुरिन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्त का जघन्य उपपाद योगस्थन असंख्यातगुणा है। उससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त का जघन्य उपपाद योग-स्थान असंख्यात गुणा है। उससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्त का जघन्य उपपाद योग स्थान असंख्यातगुणा है। उससे संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त का जघन्य उपपाद योगस्थान असंख्यात गुणा हैं। उससे संज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्त का जघन्य उपपाद योगस्थान असंख्यातगुणा हैं।

उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त का जघन्य एकान्तानुवृद्धि योगस्थान असंख्यात-गुणा हैं। उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय निर्वृत्य पर्याप्त का जघन्य एकान्तानुवृद्धि योगस्थान असं-ख्यातगुणा है। उससे बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त का जघन्य एकान्तानुवृद्धि योगस्थान असंख्यातगुणा है। उससे बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्त का एकान्तानुवृद्धि योगस्थान असंख्यातगुणा है।

उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त जघन्य परिणाम योगस्थान असंख्यातगुणा है। उससे बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त का जघन्य परिणाम योगस्थान असंख्यातगुणा है। उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्त का जघन्य परिणाम योगस्थान असंख्यातगुणा है। उससे बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्त का जघन्य परिणाम योगस्थान असंख्यातगुणा है। उससे द्वीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त का जघन्य एकान्तानुवृद्धि योगस्थान असंख्यातगुणा है। उससे त्रीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त का जघन्य एकान्तानुवृद्धि योगस्थान असंख्यातगुणा है। उससे चतुरिन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त का जघन्य एकान्तानुवृद्धि योगस्थान असंख्यातगुणा है। उससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त का जघन्य एकान्तानुवृद्धि योगस्थान असंख्यातगुणा है। उससे संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त का जघन्य एकान्तानुवृद्धि योगस्थान असंख्यातगुणा है।

उससे द्वीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त का जघन्य परिणाम योग असंख्यातगुणा है। उससे त्रीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त का जघन्य परिणाम योग असंख्यातगुणा है। उससे चतुरिन्द्रिय लब्ध्य-पर्याप्त का जघन्य परिणाम योग असंख्यातगुणा है। उससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्पर्याप्त परिणामयोग असंख्यातगुणा है। उससे संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त का जघन्य परिणाम योग असंख्यातगुणा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उससे द्वीन्द्रिय निवृत्त्यपर्याप्त का जघन्य एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यातगुणा है। उससे त्रीन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्त का जघन्य एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यातगुणा है। उससे चतुरिन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्त का जघन्य एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यातगुणा है। उससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्त का जघन्य एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यातगुणा है। उससे संज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्त का जघन्य एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यातगुणा है।

उससे द्वीन्द्रिय निवृत्तिपर्याप्त का जघन्य परिणाम योग असंख्यातगुणा है। उससे त्रीन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्त का जघन्य परिणाम योग असंख्यातगुणा है। उससे चतुरिन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्त का जघन्य परिणाम योग असंख्यातगुणा है। उससे असंज्ञी पंचेन्द्रिण निर्वृत्ति-पर्याप्त का जघन्य परिणाम योग असंख्यातगुणा है। उससे संज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्त का जघन्य परिणाम योग असंख्यातगुणा है।

·८·६ अल्प बहुत्व—उत्कृष्ट

उपपादयोग, एकान्तानुवृद्धि योग तथा परिणाम योग की अपेक्षा—

टीका—एत्तो उक्कस्सवीणालावं। तं जहा—सव्वथोवो सुहुमेइंदियलद्धि-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ उववादजोगो। सुहुमेइंदियणिव्वत्ति अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ उववादजोगो असंखेज्जगुणो। बादरेइंदियलद्धि अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ उववादजोगो असंखेज्जगुणो। बादरेइंदियणिव्वत्ति अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ उववादजोगो असंखेज्जगुणो। बेइंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ उववादजोगो असंखेज्जगुणो। बेइंदियणिव्वत्ति अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ उववादजोगो असंखेज्जगुणो। तेइंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ उववाद-जोगो असंखेज्जगुणो। तेइंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ उववादजोगो असंखेज्जगुणो। चउरिंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ उववादजोगो असंखे-ज्जगुणो। चउरिंदियणिव्वत्ति अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ उववादजोगो असंखे-ज्जगुणो। असण्णिपंचिंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ उववादजोगो असंखे-ज्जगुणो। असण्णिपंचिंदियणिव्वत्तिअपज्जतयस्स उक्कस्सओ उववादजोगो असंखेज्जगुणो। सण्णिपंचिंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ उववादजोगो असंखेज्जगुणो। सण्णिपंचिंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ उववादजोगो असंखेज्जगुणो।

सुहुमेइंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ एगंताणुवड्ढिजोगो असंखे-ज्जगुणो। सुहुमेइंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ एगंताणुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो। बादरेइंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ एयंताणुवड्ढिजोगो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असंखेज्जगुणो। बादरेइंदियणिव्वत्ति अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ एयंताणुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो। सुहुमेइंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। बादरेइंदियलद्धि अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। सुहुमेइंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। बादरेइंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। बेइंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स उक्कसओ एयंताणुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो। तीइंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ एयंताणुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो। चउरिंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ एयंतावड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो। असण्णिपंचिंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ एयंताणुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो। सण्णिपंचिंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ एयंताणुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो। बेइंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। तेइंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओपरिणामजोगो असंखेज्जगुणो। चउरिंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। असण्णिपंचिंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ परिणामजोगो असखेज्जगुणो। सण्णिपंचिंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। बेइंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ एयंताणुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो। तेइंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ एयंताणुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो। चउरिंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ एयंताणुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो। असण्णिपंचिंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ एयंताणुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो सण्णिपंचिंदिय णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ एयंताणुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो। बोइंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। तीइंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। चउरिंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। असण्णिपंचिंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। सण्णिपंचिंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। एवमुक्कस्सवीणालावो समत्तो।

—षट्० खण्ड ४। २। ४ सू १७३। पु १०। पृष्ठ ४११। १४

उत्कृष्ट वीणालाप की प्ररूपणा—सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का उत्कृष्ट उपपाद योग सबसे कम है। इससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्त का उत्कृट उपपाद योग असंख्यातगुणा है। इससे बादर एकेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का उत्कृष्ट उपपाद योग असंख्यातगुणा है। इससे बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्त का उत्कृष्ट उपपाद योग असंख्यातगुणा है। इससे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वीन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का उत्कृष्ट उपपाद योग असंख्यातगुणा है। इससे द्वीन्द्रिय निवृत्त्यपर्याप्त का उत्कृष्ट उपपाद योग असंख्यातगुणा है। इससे त्रीन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का उत्कृष्ट उपपाद योग असंख्यातगुणा है। इससे त्रीन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्त का उत्कृष्ट उपपाद योग असंख्यातगुणा है। इससे चतुरिन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का उत्कृष्ट उपपाद योगअसंख्यातगुणा है। इससे चतुरिन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्त का उत्कृष्ट उपपाद योग असंख्यात-गुणा है। इससे असंज्ञी पचेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का उत्कृष्ट उपपाद योग असंख्यात गुणा है। इससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्ति अपर्याप्त का उत्कृष्ट उपपाद योग असख्यातगुणा है। इससे संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का उत्कृष्ट उपपाद योग असंख्यातगुणा है। इससे संज्ञी पंचे न्द्रय निर्वृत्ति-अपर्याप्त का उत्कृष्ट उपपाद योग असंख्यातगुणा है।

इससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का उत्कृष्ट **एकान्तानुवृद्धि योग** असंख्यात-गुणा है। इससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्त का उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यात गुणा है। इससे बादर एकेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यात-गुणा है। इससे बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्त का उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यात गुणा है। इससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का **उत्कृष्ट परिणाम योग** असंख्यात गुणा है। इससे बादर एकेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का परिणाम योग असंख्यातगुणा है। इससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्त का उत्कृष्ट परिणाम योग असंख्यातगुणा है। इससे बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्त का उत्कृष्ट परिणाम योग असंख्यातगुणा है। इससे द्वीन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यातगुणा है। इससे त्रीन्द्रिय निवृत्ति पर्याप्त का उत्कृष्ट परिणाम योग असंख्यातगुणा है। इससे चतुरिन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त का उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यातगुणा है। इससे असंज्ञी पचेन्द्रिय-लब्धि अपर्याप्त का उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यातगुणा है। इससे संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यातगुणा है। इससे द्वीन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का उत्कृष्ट परिणाम योग असंख्यातगुणा है। इससे त्रीन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का उत्कृष्ट परिणाम योग असंख्यातगुणा है। इससे चतुरिन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का उत्कृष्ट परिणाम योग असंख्यातगुणा है। इससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का उत्कृष्ट परिणाम योग असंख्यातगुणा है। इससे संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त का उत्कृष्ट परिणाम योग असंख्यात-गुणा है। इससे द्वीन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्त का उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यातगुणा है। इससे त्रीन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्त का उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योग असंख्मातगुणा है। इससे चतुरिन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्त का उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यातगुणा है। इससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्त का उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यातगुणा है। इससे संज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्त का उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यातगुणा है। इससे द्वीन्द्रिय निर्वृत्ति-पर्याप्त का उत्कृष्ट परिणाम योग असंख्यातगुणा है। इससे त्रीन्द्रिय लब्धि-पर्याप्त का उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यातगुणा है। इससे चतुरिन्द्रिय निर्वृत्ति-पर्याप्त का उत्कृष्ट परिणाम योग असंख्यातगुणा है। इससे असंज्ञी पंचेन्दिय निर्वृत्ति पर्याप्त का उत्कृष्ट परिणाम योग असंख्यातगुणा है। इससे संज्ञी पंचेन्द्रिय निवृत्ति-पर्याप्त का **उत्कृष्ट परिणाम योग** असंख्यातगुणा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·८·७ जीव समास के आश्रय से योग का परस्थान अल्प-बहुत्व—

उपपाद योगस्थान, एकान्तानुवृद्धि योगस्थान, परिणाम योगस्थान का अविभाग प्रतिच्छेद—४०

अल्प-बहुत्व—

एत्तो परत्थाणप्पाबहुगं वत्तइस्सामो—किं परत्थाणं ? बादर-सुहुम-बि-ति-चउरिंदिय-असण्णि-सण्णिपंचिंदियाणं मज्झे एक्केक्कस्स लद्धिअपज्जत-णिव्वत्ति-अपज्जत-णिव्वत्तिपज्जत्त भेदभिण्णस्स उववाद-एयंताणुवड्ढि-परिणामजोगट्ठाणाणं जहण्णुक्कस्सभेदभिण्णाणं जमप्पाबहुगं तं परत्थाणं णाम ।

सव्वत्थोवा सुहुमणिगोदलद्धि अपज्जत्तयस्स जहण्णउववाद जोगट्ठाणस्स अविभागपडिच्छेदा । तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स जहण्णउववादजोगट्ठाणस्स अविभागपडिच्छेदा असंखेज्जगुणा । तस्सुवरि तस्सेव लद्धिअपज्जत्तयस्स उक्कस्स-उववादजोगट्ठाणस्स अविभागपडिच्छेदा असंखेज्जगुणा । तस्सुवरि तस्सेव णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सउववाद जोगट्ठाणस्स अविभागपडिच्छेदा असंखेज्जगुणा । तस्सुवरि तस्सेव लद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णएगंताणुवड्ढिजोगट्ठाणस्स अविभाग-पडिछेदा असंखेज्जगुणा । तस्सुवरि तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स जहण्णएगंताणुवड्ढि जोगट्ठाणस्स अविभागपडिच्छेदा असंखेज्जगुणा । तस्सुवरि तस्सेव लद्धिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सएयंताणुवड्ढिजोगट्ठाणस्स अविभागपडिच्छेदा असंखेज्जगुणा । तस्सुवरि तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सएयंताणुवड्ढिजोगट्ठाणस्स अविभागपडिच्छेदा असंखेज्जगुणा । तस्सुवरि तस्सेव लद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णपरिणामजोगट्ठाणस्स अविभागपडिच्छेना असंखेज्जगुणा । तस्सुवरि तस्सेव उक्कस्सपरिणामजोगट्ठाणस्स अविभागपडिच्छेदा असंखेज्जगुणा । तस्सुवरि णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णपरिणाम जोगट्ठाणस्स अविभागपडिच्छेदा असखेज्जगुणा । तस्सुवरि तस्सेव णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सपरिणामजोगट्ठाणस्स अविभागपडिच्छेदा असंखेज्जगुणा । एवं चेव बादरेइंदियस्स वि परत्थाणप्पाबहुगं वत्तव्वं ।

टीका—सव्वत्थोवा बीइंदियलद्धिअपज्जत्तस्स जहण्णुववादजोगट्ठाणस्स अविभागपडिच्छेदा । (तस्सेव लद्धिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सुववादजोगट्ठाणस्स अविभागपडिच्छेदा असंखेज्जगुणा ।) तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स जहण्णुववाद-जोगट्ठाणस्स अविभागपडिच्छेदा असंखेज्जगुणा । (तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सुववादजोगट्ठाणस्स अविभागपडिच्छेदा असंखेज्जगुणा ।) तस्सेव लद्धि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपज्जत्तयस्स जहण्णएयंताणुवड्ढिजोगट्ठाणस्स अविभागपडिच्छेदा असंखेज्जगुणा। तस्सेव लद्धिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सएयंताणुवड्ढिजोगट्ठाणस्स अविभागपडिच्छेदा असंखेज्जगुणा। तस्सेव लद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णपरिणाम जोगट्ठाणस्स अविभागपडिच्छेदा असंखेज्जगुणा। तस्सेव लद्धिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सपरिणामजोगट्ठाणस्स अविभागपडिच्छेदा असंखेज्जगुणा। तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स जहण्णएयंताणुवड्ढिजोगट्ठाणस्स अविभागपडिच्छेदा असंखेज्जगुणा। तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सएयंताणुवड्ढिजोगट्ठाणस्स अविभागपडिच्छेदा असंखेज्जगुणा। तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णपरिणामजोगट्ठाणस्य अविभागपडिच्छेदा असंखेज्जगुणा तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सपरिणामजोगट्ठाणस्स अविभागपडिच्छेदा असंखेज्जगुणा। एवं चेव तीइंदियादीणं पि परत्थाणअप्पबहुगं जाणिदूण भाणिदव्वं।

— षट्० खण्ड ४। २। ४ सू १७३। पु० १०। पृष्ठ ४०६। ८

बादर, सूक्ष्म, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के मध्य में प्रत्येक लब्ध्यपर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त तथा निर्वृत्तिपर्याप्त भेद से भेद को प्राप्त जीव के जघन्य और उत्कृष्ट भेद से उपपाद, एकान्तानुवृद्धि तथा परिणाम योग स्थानों का जो अल्पबहुत्व होता है वह परस्थान अल्पबहुत्व कहलाता है।

सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्त जीव के जघन्य उपपाद योगस्थान सम्बन्धी अविभाग प्रतिच्छेद सबसे स्तोक है। उनसे उसके ही निर्वृत्य पर्याप्त जीव के जघन्य उपपाद योग स्थान सम्बन्धी अविभाग प्रतिच्छेद असंख्यातगुणे हैं। इसके आगे उसीके लब्ध्यपर्याप्त के उत्कृष्ट उपपाद योग स्थान सम्बन्धी अविभाग प्रतिच्छेद असंख्यातगुणे हैं। इसके आगे उसके ही निर्वृत्य पर्याप्त के उत्कृष्ट उपपाद योग स्थान सम्बन्धी अविभाग प्रतिच्छेद असंख्यातगुणे हैं। इसके आगे उसी लब्ध्यपर्याप्त के जघन्य एकान्तानुवृद्धि योग स्थान सम्बन्धी अविभाग प्रतिच्छेद असंख्यातगुणे हैं। इसके आगे उसी निर्वृत्यपर्याप्त के जघन्य एकान्तावृद्धि योग स्थान सम्बन्धी अविभाग प्रतिच्छेद असंख्यातगुणे हैं। इसके आगे उसी लब्ध्यपर्याप्त के उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योग स्थान सम्बन्धी अविभाग प्रतिच्छेद असंख्यातगुणे हैं। इसके आगे उसी निर्वृत्यपर्याप्त के उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि इसके आगे योगस्थान सम्बन्धी अविभाग प्रतिच्छेद असंख्यातगुणे हैं। इसके आगे उसी लब्ध्यपर्याप्त के जघन्य परिणाम योग स्थान सम्बन्धी अविभाग प्रतिच्छेद असंख्यातगुणे हैं। इसके आगे उसीके उत्कृष्ट परिणाम योग स्थान सम्बन्धी अविभाग प्रतिच्छेद असंख्यातगुणे हैं। इसके आगे निर्वृत्ति-पर्याप्त के जघन्य परिणाम योगस्थान सम्बन्धि अविभागप्रतिच्छेद असंख्यातगुणे हैं। इसके आगे निर्वृत्तिपर्याप्त के उत्कृष्ट परिणाम योग स्थान सम्बन्धी अविभाग प्रतिच्छेद असंख्यात-गुणे हैं। इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय जीव के भी परस्थान अल्प-बहुत्व जानना चाहिए।

द्वीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त के जघन्य उपपाद योग स्थान सम्बन्धी अविभाग प्रतिच्छेद सबसे स्तोक हैं। [उनसे उसी लब्ध्यपर्याप्त के उत्कृष्ट उपपाद योग स्थान सम्बन्धी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अविभाग प्रतिच्छेद असंख्यातगुणे हैं।] उनसे उसी निर्वृत्यपर्याप्त के जघन्य उपपाद योग स्थान सम्बन्धी अविभाग प्रतिच्छेद असंख्यातगुणे हैं। [उनसे उसी निर्वृत्यपर्याप्त के उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान सम्बन्धी अविभाग प्रतिच्छेद असंख्यातगुणे हैं।] उनसे उसी लब्ध्यपर्याप्त के जघन्य एकान्तानुवृद्धि योग स्थान सम्बन्धी अविभाग प्रतिच्छेद असंख्यातगुणे हैं। इनसे उसी लब्ध्यपर्याप्त के उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योग स्थान सम्बन्धी अविभाग प्रतिच्छेद असंख्यातगुणे हैं। इनसे उसी लब्ध्यपर्याप्त के जघन्य परिणाम योगस्थान सम्बन्धी अविभाग प्रतिच्छेद असंख्यात गुणे हैं। इनसे उसी लब्ध्यपर्याप्त के उत्कृष्ट परिणाम योग स्थान सम्बन्धी अविभाग प्रतिच्छेद असंख्यातगुणे हैं। इनसे उसी निर्वृत्यपर्याप्त के जघन्य एकान्तानुवृद्धि योगस्थान सम्बन्धी अविभाग प्रतिच्छेद असंख्यातगुणे हैं। इनसे उसी निर्वृत्यपर्याप्त के उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योग स्थान सम्बन्धी अविभाग प्रतिच्छेद असंख्यातगुणे हैं। इनसे उसी निर्वृत्तिपर्याप्त के जघन्य परिणाम योग स्थान सम्बन्धी अविभाग प्रतिच्छेद असंख्यातगुणे हैं। इनसे उसी निर्वृत्तिपर्याप्त के उत्कृष्ट परिणाम योग स्थान सम्बन्धी अविभाग प्रतिच्छेद असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार त्रीन्द्रिय आदि जीवों के भी परस्थान अल्पबहुत्व जानना चाहिए।

टीका—संपहि जहण्णुक्कस्सप्पाबहुगं वत्तइस्सामो। तं जहा—सव्वत्थोवो सुहुमेइंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णओ उववादजोगो। सुहुमेइंदियणिव्वत्ति अपज्जत्तयस्स जहण्णओ उववादजोगो असंखेज्जगुणो। सुहुमेइंदियलद्धि-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ उववादजोगो असंखेज्जगुणो। बादरेइंदियलद्धि-अपज्जत्तयस्स जहण्णओ उववाजोगो असंखेज्जगुणो सुहुमेइंदियणिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ उववादजोगो असंखेज्जगुणो। बादरेइंदियणिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स जहण्णओ उववादजोगो असंखेज्जगुणो। बादरेइंदियलद्धिअपज्जत्त-यस्स उक्कस्सओ उववादजोगो असंखेज्जगुणो। बेइंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णओ उववादजोगो असंखेज्जगुणो। बादरेइंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ उववादजोगो असंखेज्जगुणो। बेइंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स जहण्णओ उववादजोगो असंखेज्जगुणो। बेइंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ उववाद-जोगो असंखेज्जगुणो। तेइंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णओ उववादजोगो असंखेज्जगुणो। बेइंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ उववादजोगो असंखेज्जगुणो। तेइंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स जहण्णओ उववादजोगो असंखेज्ज-गुणो। तेइंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ उववादजोगो असंखेज्जगुणो। चउरिंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णओ उववादजोगो असंखेज्जगुणो। तेइंदिय-णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ उववादजोगो असंखेज्जगुणो। चउरिंदिय-णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स जहण्णओ उववादजोगो असंखेज्जगुणो। चउरिंदियलद्धि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ उववादजोगो असंखेज्जगुणो। असण्णिपंचिंदियलद्धि-
अपज्जत्तयस्स जहण्णओ उववादजोगो असंखेज्जगुणो। चउरिंदियणिव्वत्ति-
अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ उववादजोगो असंखेज्जगुणो। असण्णिपंचिंदियणिव्वत्ति-
अपज्जत्तयस्स जहण्णओ उववादजोगो असंखेज्जगुणो। असण्णिपंचिंदियलद्धि-
अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ उववादजोगो असंखेज्जगुणो। सण्णिपंचिंदियलद्धि-
अपज्जत्तयस्स जहण्णओ उववादजोगो असंखेज्जगुणो। असण्णिपंचिंदियणिव्वत्ति-
अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ उववादजोगो असंखेज्जगुणो। सण्णितंचिंदियणिव्वत्ति-
अपज्जत्तयस्स जहण्णओ उववादजोगो असंखेज्जगुणो। सण्णिपंचिंदियलद्धि-
अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ उववादजोगो असंखेज्जगुणो। सुहुमेइंदिमलद्धिअपज्जत्त-
यस्स जहण्णओ एयंताणुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो। सण्णिपंचिंदियणिव्वत्ति-
अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ उववादजोगो असंखेज्जगुणो। सुहुमेइंदियणिव्वत्ति-
अपज्जत्तयस्स जहण्णओ एयंताणुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो। बादरेइंदियलद्धि-
अपज्जत्तयस्स जहण्णओ एयंताणुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो। बादरेइंदियणिव्वत्ति-
अपज्जत्तयस्स जहण्णओ एयंताणुवड्ढिजोगो असखेज्जगुणो। सुहुमेइंदियलद्धि-
अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ एयंताणुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो। सुहुमेइंदिय-
णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ एयंताणुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो। बादरेइं-
दियलद्धिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ एयंताणुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो। बादरे-
इंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ एयंताणुवड्ढिजोगो असखेज्जगुणो। तदो
सेडीए असंखेज्जदि भागमेत्ताणि जोगट्ठाणाणि अंतरिदूण सुहुमेइंदिय लद्धिअपज्जत्त-
यस्स जहण्णओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। बादरेइंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स
जहण्णओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। सुहुमेइंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स उक्क-
स्सओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। बादरेइंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ
परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। तदोसेडीए असंखेज्जदिभागमंतरं होदूण सुहुमे-
इंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। बादरेइंदिय-
णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। सुहुमेइंदिय-
णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। बादरेइंदिय-
णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। तदो सेडीए
असंखेज्जदिमागमेत्तं अंतरं होदूण बेइंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णएयंताणुवड्ढि-
जोगो असंखेज्जगुणो। तेइंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णओ एयंताणुवड्ढिजोगो
असंखेज्जगुणो। चउरिंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णओ एयंताणुवड्ढिजोगो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असंखेज्जगुणो। असण्णिपंचिंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णओ एयंताणुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो। सण्णिपंचिंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णओ एयंताणुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो। बेइंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ एयंताणुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो। तेइंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ एयंताणुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो। चउरिंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ एयंताणुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो। असण्णिपंचिंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ एयंताणुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो। सण्णिपंचिंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ एयंताणुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो। तदो सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्तजोगट्ठाणाणि अंतरिदूण बेइंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। तेइंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। चउरिंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। असण्णिपंचिंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। सण्णिपंचिंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। बेइंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। तेइंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। चउरिंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। असण्णिपंचिंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। सण्णिपंचिंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। तदो सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्तजोगट्ठाणाणि अंतरिदूण बेइंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स जहण्णओ एयंताणुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो। तेइंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स जहण्णओ एयंताणुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो। चउरिंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स जहण्णओ एयंताणुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो। असण्णिपंचिंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स जहण्णओ एयंताणुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो। सण्णिपंचिंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स जहण्णओ एयंताणुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो। बेइंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ एयंताणुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो। तेइंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ एयंताणुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो। चउरिंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ एयंताणुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो। असण्णिपंचिंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ एयंताणुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो। सण्णिपंचिंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ एयंताणुवड्ढिजोगो असंखेज्जगुणो। तदो सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्तजोगट्ठाणाणि अंतरं होदूण बेइंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। तेइंदिय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। चउरिंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णओपरिणामजोगो असंखेज्जगुणो। असण्णिपंचिंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। सण्णिपंचिंदियसणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। बेइंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। तेइंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। चउरिंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। असण्णिपंचिंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ परिणामजोगी असंखेज्जगुणो। सण्णिपंचिंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ परिणामजोगो असंखेज्जगुणो। गुणगारो सव्वत्थ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो होंतो वि अप्पणो इच्छिदजोगादो हेट्ठिमणाणागुणहाणिसलागाओ विरलेदूण विगं करिय अण्णोण्णब्भत्थरासिमेत्तो होदि। एसो गुणगारो चदुण्णं पि वीणापदाणं वत्तव्वो। एवं जहण्णुक्कस्सा वीणा समत्ता।

—षट्० खण्ड ४। २। ४ सू० १७३। पु० १० पृष्ठ ४१४। २०

अब जघन्योत्कृष्ट अल्प-बहुत्व का कथन किया जाता है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का जघन्य उपपाद योग सबसे कम है। इससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय निर्वृत्ति अपर्याप्त का जघन्य उपपादयोग असंख्यात गुणा है। इससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का उत्कृष्ट उपपाद योग असंख्यात गुणा है। इससे बादर एकेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का जघन्य उपवाद योग असंख्यात गुणा है। इससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्त का उत्कृष्ट उपपाद योग असंख्यात गुणा है। इससे बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्त का जघन्य उपपाद योग असंख्यात गुणा है। इससे बादर एकेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का उत्कृष्ट उपपाद योग असंख्यात गुणा है। इससे द्वीन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का जघन्य उपपाद योग असंख्यात गुणा है। इससे बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्त का उत्कृष्ट उपपाद योग असख्यात गुणा है। इससे द्वीन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्त का जघन्य उपपाद योग असंख्यात गुणा है। इससे द्वीन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त का उत्कृष्ट उपयोग असंख्यात गुणा है। त्रीन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का जघन्य उपपाद योग असंख्यात गुणा है। इससे द्वीन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्त का उत्कृष्ट उपपाद योग असंख्यात गुणा है। इससे त्रीन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्त का जघन्य उपपाद योग असंख्यात गुणा है। इससे त्रीन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का उत्कृष्ट उपपाद योग असंख्यात गुणा है। इससे चतुरिन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का जघन्य उपपाद योग असंख्यातगुणा है। इससे त्रीन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्यात का उत्कृष्ट उपपाद योग असंख्यात गुणा है। इससे चतुरिन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्त का जघन्य उपपाद योग असंख्यात गुणा है। इससे चतुरिन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का उत्कृष्ट उपपाद योग असंख्यात गुणा है। इससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का जघन्य उपपाद योग असंख्यात गुणा है। इससे चतुरिन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्त का उत्कृष्ट उपपाद योग असंख्यात गुणा है। इससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्त का जघन्य उपपाद योग असंख्यात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणा है। इससे असंज्ञी पंचेन्द्रय लब्धि-अपर्याप्त का उत्कृष्ट उपपाद योग असंख्यात गुण है। इससे संज्ञी पचेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का जघन्य उपपाद योग असंख्यात गुणा है। इससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्त का उत्कृष्ट उपपाद योग असंख्यात गुणा है। इससे संज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्त का जघन्य उपपाद योग असंख्यात गुणा है। इससे संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का उत्कृष्ट उपपाद योग असंख्यात गुणा है। इससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का जघन्य एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यात गुणा है। इससे संज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्त का उत्कृष्ट उपपादयोग असंख्यात गुणा है। इससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्त का जघन्य एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यात गुणा है। इससे बादर एकेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का जघन्य एकान्तावृद्धि योग असंख्यात गुणा है। इससे बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्त का जघन्य एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यात गुणा है। इसके सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यात गुणा है। इससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्त का उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यात गुणा है। इससे बादर एकेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यात गुणा है। इससे बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्त का उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यात गुणा है।

इससे आगे श्रेणी के असंख्यातवें भाग मात्र योग स्थानों का अन्तर करके सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का जघन्य परिणाम योग असंख्यात गुणा है। इससे बादर एकेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का जघन्य परिणाम योग असंख्यात गुणा है। इससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त उत्कृष्ट परिणाम योग असंख्यात गुणा है। इससे बादर एकेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का उत्कृष्ट परिणाम योग असंख्यात गुणा है।

इससे आगे श्रेणी के असंख्यातवें भाग मात्र अन्तर होकर सूक्ष्म एकेन्द्रिय निर्वृत्ति-पर्याप्त का जघन्य परिणाम योग असंख्यातगुणा है। बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्ति-पर्याप्त का जघन्य परिणाम योग असंख्यात गुणा है। इससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय निर्वृत्ति-पर्याप्त का उत्कृष्ट परिणाम योग असंख्यात गुणा है। इससे बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्ति-पर्याप्त का उत्कृष्ट परिणाम योग असंख्यात गुणा है।

इससे आगे श्रेणी के असंख्यातवें भाग मात्र अन्तर होकर द्वीन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का जघन्य एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यात गुणा है। इससे त्रीन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का जघन्य ऐकान्तानेवृद्धि योग असंख्यात गुणा है। इससे चतुरिन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का जघन्य एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यात गुणा है। इससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का जघन्य एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यात गुणा है। इससे संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का जघन्य एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यात गुणा है। इससे द्वीन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यात गुणा है। इससे त्रीन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यात गुणा है। इससे चतुरिन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यात गुणा है। इससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यात गुणा है। इसमें संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यात गुणा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इससे आगे श्रेणी के असंख्यातवें भाग मात्र योग स्थानों का अन्तर करके द्वीन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का जघन्य परिणाम योग असंख्यात गुणा है। इससे त्रीन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का जघन्य परिणाम योग असंख्यात गुणा है। इससे चतुरिन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का जघन्य परिणाम योग असंख्यात गुणा है। इससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का जघन्य परिणाम योग असंख्यात गुणा है। इससे संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का जघन्य परिणाम योग असंख्यात गुणा है। इससे द्वीन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का उत्कृष्ट परिणाम योग असंख्यात गुणा है। इससे त्रीन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का उत्कृष्ट परिणाम योग असंख्यात गुणा है। इससे चतुरिन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का उत्कृष्ट परिणाम योग असंख्यात गुणा है। इससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का उत्कृष्ट परिणाम योग असंख्यात गुणा है। इससे संक्षी पंचेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का उत्कृष्ट परिणाम योग असंख्यात गुणा हैं।

इससे आगे श्रेणी के असंख्यातवें भाग मात्र योग स्थानों का अन्तर करके द्वीन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्त का जघन्य एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यात गुणा है। इससे त्रीन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्त का जघन्य एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यात गुणा है। इससे चतुरिन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्त का जघन्य एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यात गुणा है। इससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्त का एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यात गुणा है। इससे संज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्त का जघन्य एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यात गुणा है। इससे द्वीन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्त का उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यात गुणा है। इससे त्रीन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्त का उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यात गुणा है। इससे चतुरिन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्त का उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यात गुणा है। इससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्त का उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यात गुणा है। इससे संज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्त का उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यात गुणा है।

इससे आगे श्रेणी के असंख्यातवें भाग मात्र योग स्थानों का अन्तर होकर द्वीन्द्रिय निर्वृत्ति-पर्याप्त का जघन्य परिणाम योग असंख्यात गुणा है। इससे त्रीन्द्रिय निवृत्ति-पर्याप्त का जघन्य परिणाम योग असंख्यात गुणा है। इससे चतुरिन्द्रिय निर्वृत्ति-पर्याप्त का जघन्य परिणाम योग असंख्यात गुणा है। इससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्ति-पर्याप्त का जघन्य परिणाम योग असंख्यात गुणा है। इससे संज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्ति पर्याप्त का जघन्य परिणाम योग असंख्यात गुणा है। इससे द्वीन्द्रिय निर्वृत्ति-पर्याप्त का उत्कृष्ट परिणाम योग असंख्यात गुणा है। इससे त्रीन्द्रिय निर्वृत्ति-पर्याप्त का उत्कृष्ट परिणाम योग असंख्यात गुणा है। इससे चतुरिन्द्रिय निर्वृत्ति-पर्याप्त का उत्कृष्ट परिणाम योग असंख्यात गुणा है। इससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्ति-पर्याप्त का उत्कृष्ट परिणाम योग असंख्यात गुणा है। इससे संज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्ति-पर्याप्त का उत्कृष्ट परिणाम योग असंख्यात गुणा है।

गुणकार सर्वत्र पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग होते हुए भी अपने इच्छित योग से नीचे की नाना गुण-हानि शलाकाओं को विरलित कर उनके दुगुणा अन्योन्य अभ्यस्त राशि रूप होता है। यह गुणाकार चारों ही वीणापदों के कहना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·९ योग और लेश्या

·१ कषायोदयानुरञ्जिता योगप्रवृत्तिर्वा लेश्या कषायाणमुदयेन अनुरञ्जिताकमप्यतिशयान्तरमुपनीतायोगप्रवृत्तिर्वा लेश्या।

गोजी० । गा ४८९ टीका

कषाय के उदय से अनुरंजित मन, वचन व काय की प्रवृत्ति लेश्या है। अथवा कषायों के उदय से अनुरंजित अर्थात् किसी भी अतिशयान्तर को प्राप्त योग प्रवृत्ति लेश्या है।

·२ यन्मतेन तु योगपरिणामो लेश्या, तदभिप्रायेण योगत्रयजनक कर्मोदयप्रभवाः।

—चतुर्थ कर्म० गा ६६ टीका

जिनके मत में लेश्या योगपरिणाम रूप है उसके अनुसार जो कर्म तीनों योगों के जनक हैं वह उन कर्मों के उदय से उत्पन्न होने वाली है।

लेश्या और योग में अविनाभावी सम्बन्ध है। जहाँ योग है वहाँ लेश्या है। जो जीव सलेशी है वह सयोगी है तथा जो अयोगी है वह अलेशी है।

·३ अयोगे योगाभावात् लेश्या नास्ति।

—गोजी० गा ७०४। टीका

अयोगी में योग का अभाव होने से लेश्या नहीं है।

·४ णवरि य सुक्का लेस्सा सजोगिचरिमोत्ति होदिणियमेण
गयजोगम्मि वि सिद्धे लेस्सा णत्थित्ति णिद्दिट्ठं।

—गोजी० गा ६९३

टीका—अयोगिजिने सिद्धे च लेश्या न सन्तीति।

शुक्ल लेश्या सयोगी गुणस्थान पर्यन्त होती है। अयोगी केवली में लेश्या नहीं होती है।

·५ शेषस्थानेषु सुरगतौ × × × पंचेन्द्रियत्रसकाय योगत्रय × × × शेषमार्गणा-स्थानकेषु षडपि लेश्या—

—चतुर्थ कर्म० गा ३७। टीका

मनो योगी, वचन योगी तथा काय योगी में कृष्णादि छओं लेश्या होती है।

·६ सुक्काजाव सजोगी, निरुद्धलेसो अजोगित्ति।

—जिनवल्लभीय षडशीति गा ७३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छ सु सव्वा तिउतिगं, इगिसुक्का अजोगि अलेस्सा ।

—चतुर्थ कर्म० गा ५० । पूर्वार्ध

सयोगी केवली में तेरहवाँ गुण स्थान है । इस गुणस्थान तक शुक्ल लेश्या होती है । अयोगी गुणस्थान में अलेशी होता है ।

·१० योग और गुणस्थान

·१ उक्तपञ्चदशयोगेषु मध्ये मिथ्यादृष्टिसासादनासंयतेषु त्रयोदश त्रयोदश भवन्ति आहारकतन्मिश्रयोः प्रमत्तादन्यत्राभावात् ।

मिश्रगुणस्थाने तेष्वपर्याप्तयोगत्रयं नेति दश ।

उपरि क्षीणकषायान्तेषु सप्तसु तत्रापि वैक्रियिकयोगाभावात् नव ।

प्रमत्तसंयते एकादश आहारकतन्मिश्रयोगयोरत्र पतितत्वात् ।

सयोगे सत्यानुभयमनोवाग्योगाः औदारिक तन्मिश्र कार्मणकाय योगाश्चेति सप्त । अयोगिजिने योगोनेति शून्यम् ।

—गोजी० गा० ७०४ । टीका

पन्द्रह योगों में से—मिथ्या दृष्टि, सासादन और असयंत गुणस्थानों में तेरह-तेरह योग होते हैं । क्योंकि आहारक, आहारक मिश्र योग प्रमत्त गुणस्थान से अन्यत्र नहीं होते हैं ।

मिश्र गुण स्थान में उनमें से तीन अपर्याप्त योग न होने से दस योग होते हैं ।

ऊपर क्षीणकषायपर्यंत (सातवें से बारहवें गुण स्थान तक) सात गुण स्थानों में वैक्रियिक काय योग न होने से नौ योग होते हैं ।

प्रमत्त संयत में आहारक-आहारक मिश्र के होने से ग्यारह योग होते हैं ।

सयोग केवली में सत्य, अनुभय वचन योग और मनोयोग तथा औदारिक, औदारिक-मिश्र तथा कार्मण काययोग इस तरह सात योग होते हैं । अयोगी केवली में योग नहीं है ।

·२ मिच्छे सासणसम्मे पुंवेदयदे कवाडजोगिम्मि ।
णरतिरिये वि य दोण्णि विहोंतित्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं ।

—गोजी० गा ६८१

टीका—मिथ्यादृष्टौ सासादने पुंवेदोदयासंयते कपाटसमुदघातसयोगे, चैतेषु अपर्याप्त—चतुर्गुणस्थानेषु स औदारिकमिश्र योगः स्यादित्यर्थः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्या दृष्टि में, सासादन में, पुरुष वेद के उदय सहित असंयत में और कपाट समुद्घात सहित सयोगी केवली में इन चार अपर्याप्त अवस्था सहित गुणस्थानों में औदारिक मिश्रकाय योग होता है।

·३ सीलेसीं संपत्तो निरुद्धणिस्सेसआसओ जीवो।
कम्मरयविप्पमुक्को गयजोगो केवली होदि।

—गोजी० गा ६५

टीका—मनोवाक्काय योगरहितत्वादयोगः न विद्यते योगो यस्यासौअयोगः सचासौ केवली च अयोगकेवली इति।

मनो योग, वचन योग, और काय योग से रहित होने से अयोग है। इस तरह से जिनके योग नहीं है तथा केवली भी है वे अयोग-केवली (चौदहवां गुण स्थान है) है।

·४ कार्मण काय योग और गुण स्थान
ओरालियमिस्सं वा चउगुणठाणेसु होदि कम्मइयं।
चदुगदिविग्गहकाले जोगिस्स य पदरलोगपूरणगे॥

—गोजी० गा ६८४

टीका—औदारिकमिश्रवच्चतुर्गुणस्थानेषु कार्मणकाययोगः स्यात् स चतुर्गतिविग्रहकाले सयोगस्य प्रतरलोक पूरणकाले च भवति तेन तत्र गुणास्थानानि जीवसमासाश्च तद्वत् चत्वारि अष्टौ भवन्ति।

औदारिक मिश्र काय योग की तरह कार्मण काय योग चार गुण स्थानों में होता है। वह चार गति सम्बन्धी विग्रह गति काल में और सयोगी केवली के प्रतर और लोक पूरण समुद्घात के काल में होता है। इससे उसमें गुण स्थान और जीव समास उसी की तरह क्रम से चार और आठ होते हैं।

·५ सयोगजिने भावेन्द्रियं न, द्रव्येन्द्रियापेक्षया षट्पर्याप्तयः वागुच्छ्वास निश्वासायुः कायप्राणश्चत्वारि भवन्ति। शेषेन्द्रियमनः प्राणाषट् न सन्ति। तत्रापि वाग्योगे विश्रान्तेत्रयः। पुनः उच्छ्वासनिश्वासे विश्रान्ते द्वौ। अयोगे आयुः प्राण एकः।

—गोजी० गा ७०१। टीका

सयोग केवली में भावेन्द्रिय नहीं है। उनके द्रव्येन्द्रिय की अपेक्षा छह पर्याप्तियां हैं और चार प्राण होते हैं। और वचन बल, उच्छ्वासनिश्वास बल, आयु और काय बल—ये चार प्राण होते हैं। शेष इन्द्रिय और मन ये छह प्राण नहीं है। उन चार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राणों में से भी वचन योग के रुक जाने पर तीन रहते हैं। पुनः उच्छ्वास निश्वास का निरोध होने पर दो रहते हैं।

अयोगकेवली के एक आयु प्राण होता है।

·६ आहारक काय योग और गुण स्थान

·७ आहारक मिश्रकाय योग और गुण स्थान

आहारो पज्जत्ते इदरे खलु होदि तस्स मिस्सोदु।
अंतोमुहुत्तकाले छट्ठगुणे होदि आहारो॥

—गोजी० ग ६८३

टीका—आहारककाययोगः संज्ञिपर्याप्तषष्ठगुणस्थाने जघन्योत्कृष्टेन अन्तर्मुहूर्त्तकाले एव भवति। तन्मिश्रयोगः इतरस्मिन् संज्ञ्यपर्याप्तषष्ठगुणस्थाने खलु जघन्योत्कृष्टेन तावत्काले एव भवति।

आहारक काययोग संज्ञीपर्याप्त छट्ठे गुण स्थान में जघन्य और उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त काल में ही होता है। आहारक काय योग संज्ञी अपर्याप्त अवस्था में छट्ठे गुण स्थान में जघन्य-उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्तकाल में ही होता है। अतः इन दोनों में एक छट्ठा ही गुणस्थान होता है।

·८ सयोगी गुण स्थान में दो जीव समास
अयोगी गुण स्थान में एक जीव समास

× × × सयोगे च संज्ञीपर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ। × × × अयोगे च संज्ञीपर्याप्त एवैकः।

—गोजी० गा ६९९ टीका

सयोगी में संज्ञीपर्याप्त और अपर्याप्त दो जीव समास होते हैं। अयोगी केवली में एक संज्ञीपर्याप्त ही होता है।

·९ आहारक काययोग और जीव समास

·१० आहारक मिश्रकाय योग और जीव समास

टीका—आहारककाययोगः संज्ञिपर्याप्तः × × × तन्मिश्रयोग संज्ञ्यपर्याप्तः × × × जीव समासः स एव एकैकः।

गोजी० गा ६८३। टीका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आहारक काम योग में जीव समास वही संज्ञीपर्याप्त और आहारकमिश्र काय योग में संज्ञीअपर्याप्त एक-एक ही होता है।

.११ मनो योग-वचन योग और गुण स्थान

मज्झिम चउमणवयणे सण्णिप्पहुडिंतु जाव खीणोत्ति ॥
सेसाणं जोगित्ति च अणुभयवयणं तु वियलादो।

—गोजी० गा ६७९

टीका—मध्यमेषु असत्योभयमनोवचनयोगेषु चतुर्षु संज्ञिमिथ्यादृष्ट्यादीनि क्षीणकषायान्तानि द्वादश। तु पुनः सत्यानुभयमनोयोगयोः सत्यवचनयोगे च संज्ञिपर्याप्तमिथ्यादृष्ट्यादीनि सयोगान्तानि त्रयोदश गुणस्थानि भवन्ति। × × × अनुभय वचनयोगे तु गुणस्थानि विकलत्रयमिथ्यादृष्ट्यादीनि त्रयोदश।

मध्यम अर्थात् असत्य और उभय मनो योग और वचन योग—इन चार में संज्ञी मिथ्या दृष्टि से लेकर क्षीण कषाय पर्यन्त बारह गुण स्थान होते हैं। तथा सत्य और अनुभय मनो योग और सत्य वचन योग में संज्ञीपर्याप्त मिथ्या दृष्टि से लेकर सयोगी केवली पर्यन्त तेरह गुण स्थान होते हैं।

अनुभय वचन योग में विकलत्रय मिथ्या दृष्टि से तेरह गुण स्थान होते हैं।

·१२ काय योग और गुण स्थान

ओरालं पज्जत्ते थावरकायादि जाव जोगित्ति।
तम्मिस्समपज्जत्ते चदुगुणठाणेसु णियमेण ॥

—गोजी० गा ६८०

टीका—औदारिककाययोगः एकेन्द्रियस्थावरकाय पर्याप्त मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगान्तत्रयोदशगुणस्थानेषु भवति। तन्मिश्रयोगः अपर्याप्त चतुर्गुण स्थानेष्वेव नियमेन।

औदारिक काय योग एकेन्द्रिय स्थावर काय पर्याप्त मिथ्या दृष्टि से सयोगी केवली पर्यन्त तेरह गुण स्थानों में होता है।

औदारिक मिश्र काय योग नियम से अपर्याप्त अवस्था में चार गुण स्थानों (१, २, ४, १३) में होता है।

·१३ मज्झिमचउमणवयणे सण्णिप्पहुडि तु जाव खीणोत्ति।
सेसाणं जोगित्ति च अणुभयवयणं तु वियलादो ॥

—गोजी० गा ६७९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टीका—मध्यमेषु असत्योभयमनोवचनयोगेषु चतुर्षु संज्ञीमिथ्यादृष्ट्यादीनि क्षीणकषायान्तानि द्वादशः। तु पुनः सत्यानुभयमनोयोगयोः सत्यवचनयोगे च संज्ञीपर्याप्तमिथ्यादृष्ट्यादीनि सयोगान्तानि त्रयोदश गुणस्थानानि भवन्ति। जीवसमासः संज्ञीपर्याप्त एवैकः। अनुभयवचनयोगे तु गुणस्थानानि विकलत्रयमिथ्यादृष्ट्यादीनि त्रयोदश। जीवसमासाः द्वित्रिचतुरिन्द्रियसंज्ञ्यसंज्ञीपर्याप्ताः पञ्च।

·१४ केवलणाणदिवायरकिरणकलावप्पणासियण्णाणो।
णव केवललद्धुग्गम सुजणियपरम प्पववएसो॥

असहायणाणदंसणसहियो इति केवली हुजोगेण।
जुत्तोति सजोगिजिणो अणाइणिहणार्षादिसे उत्तो॥

—गोजी० गा ६३, ६४

टीका—अनेन सयोग भट्टारकस्य भव्यलोकोपकारकत्वलक्षणपरार्थ संपत् प्रणीता × × ×। योगेन सह युक्त इति सयोगः असहायज्ञानदर्शनसहित इति केवली सयोगश्चासौ केवली च सयोग—केवली। घातिकर्मनिर्मूलको जिनः, सयोगकेवली चासो जिनश्च सयोगकेवलिजिनः इत्यनादिनिधनार्षागमे उक्तः प्रतिपादितः।

सयोग केवली भगवान के भव्य जीवों का उपकार करने रूप परार्थ सम्पदा कही है।

योग से युक्त होने से सयोग और असहाय ज्ञान-दर्शन से सहित होने से केवली, इस तरह सयोग और केवली होने से सयोग—केवली है और घाति कर्मों को निर्मूल करने से जिन है। इस तरह अनादि निधन आगम में उन्हें सयोग केवली जिन कहा है। सयोगी केवली तेरहवां गुण स्थान है।

·१५ वैक्रियकाययोग और गुणस्थान

वैक्रियमिश्र काययोग और गुण स्थान

वेगुव्वं पज्जत्तेइदरे खलुहोदितस्स मिस्संतु।
सुरणिरय चउट्ठाणे मिस्से णहि मिस्सजोगोदु॥

गोजी० गा ६५२

टीका—वैक्रियिककाययोगः पर्याप्तदेवनारकमिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्गुणस्थानेषु भवति खलु स्फुटम्। तु पुनः तन्मिश्र योगः मिश्रः मिश्रगुणस्थाने तु नहीति कारणात् देवनारकमिथ्यादृष्टिसासादनासंयतेष्वेव भवति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैक्रिय काय योग पर्याप्त देव नारकियों के मिथ्यादृष्टि आदि चार गुण स्थानों में होता है। वैक्रियमिश्र काय योग मिश्र गुणस्थान में नहीं होता, अतः देवनारकियों के मिथ्यादृष्टि सासादन और असंयत गुणस्थान में ही होता है।

·१६ उवसंत खीणमोहो सजोग केवलिजिणो अजोगी य।
चोद्दस जीवसमासा कमेण सिद्धाय णादव्वा॥

—गोजी० गा १०

टीका—घातिकर्माणि जयति स्येति जिनः, केवलज्ञानमस्यास्तीति केवली, स चासौ, जिनश्च केवलिजिनः। योगेन स वर्तते इति सयोगः, स चासौ केवलि-जिनश्च सयोगकेवलिजिनः। योगः अस्यास्तीति योगी, न योगी अयोगी, अयोगी केवलिजिनः इत्यनुवर्तनात् अयोगी चासौकेवलिजिनश्च अयोगिकेवलि-जिनः।

जिसने घातिकर्मों को जीत लिया है वह जिन है और जिसके केवल ज्ञान है वह केवली है। जो केवली वही जिन होने से केवली जिन है। जो योग सहित है वह सयोग है। जो सयोग होने के साथ केवली जिन है वह सयोग केवली जिन है।

जिसके योग हैं वह योगी है। जो योगी नहीं है वह अयोगी है।

·१७ योग और गुण स्थान की अपेक्षा पर्याप्त-अपर्याप्त

एक्कारसजोगाणं पुण्णगदाणं सपुण्ण आलाओ।
मिस्सचउक्कस्स पुणो सगएक्क अपुण्ण आलाओ॥

—गोजी० गा ७२३

टीका—पर्याप्तिगतानां चतुर्मनश्चतुर्वागौदारिकवैक्रियिकाहारकैकादश-योगानां स्वस्वपूर्णालापो भवति यथा सत्यमनोयोगस्य सत्यमनःपर्याप्तालापः। मिश्रयोगचतुष्कस्य पुनः स्वस्वैकाययर्याप्तालापो भवति। यथा—औदारिक-मिश्रस्यः औदारिकापर्याप्तालापः।

पर्याप्त अवस्था में होने वाले चार मनो योग, चार वचन योग, औदारिक, वैक्रियिक, आहारक काययोग—इन ग्यारह योगों में अपना-अपना पर्याप्त आलाप होता है। जैसे सत्य मनो योग के सत्यमन पर्याप्त आलाप होता है। चार मिश्रयोगों में अपना-अपना एक अपर्याप्त आलाप होता है। जैसे औदारिक मिश्र के औदारिक अपर्याप्त आलाप होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·१८ सयोगि केवली के प्रथम समय में चार कर्मों का अवसान

पढमसमयजिणस्स णं चत्तारिकम्मंसा खीणा भवंति, तंजहा—णाणावरणिज्जं, दंसणावरणिज्जं, मोहणिज्जं, अंतराइयं ।

—ठाण० स्था ४ । उ १ । सू १४२

टीका—'पढमे' त्यादि सूत्रत्रयं व्यक्तं, परं प्रथमः समयो यस्य स तथा स चासौ जिनश्च—सयोगिकेवली प्रथमसमयजिनस्तस्य कर्म्मणः-सामान्यस्यांशाः ज्ञानावरणीयादयो भेदाइति ।

प्रथम समय के सयोगी केवली के चार सत्कर्म क्षीण होते हैं—

१. ज्ञानावरणीय
२. दर्शनावरणीय
३. मोहनीय
४. आन्तरायिक

·१९ सयोगी और जीव समास

·१ (केवलज्ञानं) सयोगायोगयोः सिद्धे च । तत्र जीवसमासौ संज्ञिपर्याप्त-सयोगापर्याप्तौ द्वौ ।

—गोजी० ६८८ । टीका

केवल ज्ञान-सयोगी-अयोगी और सिद्धों में होता है । उसमें संज्ञी पर्याप्त तथा समुद्घातगत सयोगी की अपेक्षा संज्ञी अपर्याप्त ये दो जीव समास होते हैं ।

·२ योग और पर्जाप्त-अपर्याप्त

सयोगिनि उभये । अयोगिनि पर्याप्ता एव ।

—गोजी० गा ७०३ । टीका

सयोगी में पर्याप्त-अपर्याप्त दोनों होते हैं । अयोगी में पर्याप्त ही होते हैं ।

नोट—सयोगी केवली में केवल समुद्घात की अपेक्षा अपर्याप्त भी होते हैं । कहा है

सयोगे पर्याप्तः । समुद्घाते तुभयः । अयोगे पर्याप्त एव ।

सयोगी केवली में पर्याप्त है किन्तु समुद्घात में दोनों है । अयोगी में पर्याप्त है ।

·३ मध्यमेषु असत्योभयमनो वचनयोगेषु × × × सत्यानुभय मनोयोगयोः सत्जवचनयोगे × × × जीवसमासः संज्ञिपर्याप्त एवैकः ।

अनुभय वचन योगे × × × जीवसमासाः द्वित्रिचतुरिन्द्रिय संज्ञ्यसंज्ञी पर्याप्ताः पञ्च ।

—गोजी० गा ६७९ । टीका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मध्यम अर्थात् असत्य और उभय मनोयोग और वचन योग तथा सत्य और अनुभय मनोयोग और सत्य वचन योग के जीव समास एक संज्ञी पर्याप्त ही (जीव का एक भेद चौदहवां) होता है।

अनुभय वचन योग में विकलत्रय जीव समास से दो-इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय संज्ञी-असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त रूप पाँच होते हैं (जीव के भेद छट्ठा, आंठवाँ, दसवाँ, बारहवाँ चौदहवाँ होता है।)

·४ कार्मण काययोग और जीव समास

कार्मणकाययोगः × × × जीव समासश्च × × × अष्टौ भवति।

—गोजी० गा ६८४। टीका

कार्मणकाय योग में जीव समास आठ होते हैं। सात भेद अपर्याप्त के व एक चौदहवां भेद एवं आठ जीव के भेद होते हैं।

·५ वैक्रिय काय योग और जीव समास

·६ वैक्रियमिश्र काय योग और जीव समास

वैक्रियिककाययोग × × × मिश्रकाययोग × × × जीवसमासः तयोः क्रमेण संज्ञिपर्याप्तः तन्निर्वृत्यपर्याप्तः एकैकः।

जीव समास—इनमें से—वैक्रियिक काययोग में संज्ञी पर्याप्त और वैक्रियमिश्र काय योग में संज्ञी अपर्याप्त होता है।

·७ योग और जीव भेद

काययोग और जीव भेद

जीवसमासाः औदारिकयोगे पर्याप्ताः सप्त। तेन मिश्रयोगे अपर्याप्ताः सप्त। सयोगस्य चैकः एवमष्टौ।

—गोजी० गा ६८१। टीका

औदारिक काय योग में सात पर्याप्त जीव समास (जीव के भेद) होते हैं। अतः औदारिक मिश्र काय योग में सात अपर्याप्त जीव समास होते हैं और सयोग केवली में एक जीव समास (चौदहवां भेद) होता है। इस तरह आठ जीव समास होते हैं।

·१२ सयोगी और पर्याप्त-अपर्याप्त अवस्था

·१ योग और पर्याप्त-अपर्याप्त अवस्था

गुणजीवा पज्जत्ती पाणा सण्णा गइंदिया काया।
जोगा वेदकसाया णाणजमा दंसणा लेस्सा॥

—गोजी० गा ७२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टीका—सयोगकेवलिनः चत्वारः वाक्कायायुरुच्छ्वासनिश्वासाख्याः। तस्यैव पुनः मिश्रकायायुषो, अयोगस्यआयुर्नामैकः × × ×। योगाः पर्याप्ता एकादश, अपर्याप्तश्चत्वारः।

सयोग-केवली के चार प्राण वचन, काय, आयु, उच्छास-निश्वास, उसी के पुनः मिश्रकाय और आयु। अयोगी के एक आयु प्राण है। पर्याप्त में योग ग्यारह व अपर्याप्त में चार योग है।

·२ सयोगी केवली के अपर्याप्त अवस्था भी होती है

पज्जत्तसरीरस्स य पज्जत्तुदयस्स कायजोगस्स।
जोगिस्स अपुण्णत्तं अपुण्णजोगो त्ति णिद्दिट्ठं॥

—गोजी० गा १२६

टीका—परिपूर्णपरऔदारिकशरीरस्य पर्याप्तनामकर्मोदययुतस्य काय योगयुक्तस्य सयोगिकेवलिभट्टारकस्य आरोहणावरोहण कपाटद्वये समुद्भूते-कथितमपूर्णत्वं अपूर्णकाययोग इति। ततः कारणादौदारिक मिश्रकाययोगा-क्रान्तः सयोगिकेवलिभट्टारकः कपाट युगलकाले अपर्याप्ततां भजनीति प्रवचने निर्दिष्टं कथितं।

सयोगि केवलि भट्टारक का परम औदारिक शरीर परिपूर्ण है, उनके पर्याप्त नाम कर्म का उदय भी है और वे काय योग से युक्त है। फिर भी वे जब कपाट समुद्घात करते हैं, एक समुद्घात का विस्तार करते हुए और एक का संकोच करते हुए, तब इन दोनों में अपूर्ण काय योग होने से अपूर्णपना कहा है। अतः औदारिक मिश्र काय योग से युक्त सयोगि केवली के दोनों कपाटों के काल में अपर्याप्तपना होता है।

नोट—सयोगि केवली के समुद्घात काल में—कपाट युगल काल में, प्रतर युगल काल में और लोक पूरण में इन पांच समय में अपर्याप्तपना मंदप्रबोधिनी टीका में कहा है। अपूर्ण योग ही अर्थात् औदारिकमिश्र काय तथा कार्मण काय योग का सद्भाव ही उनके उपचार से अपर्याप्तपने का कारण है। मुख्य रूप से वे अपर्याप्त नहीं है।

·१३ सयोगी जीव और द्रव्य

जीवेण मंते। जाइं दव्वाइं (मणजोगत्ताए गेण्हइ ताइं किं ठियाइं गेण्हइ, अठियाइं गेण्हइ।) × × × मणजोगत्ताए जहा कम्मगसरीरं णवरंणियमं छद्दिसिं, एवं वइजोगत्ताए चि।

कायजोगत्ताए वि जहा ओरालियसरीरस्स।

—भग० श। २५। उ २। सू १५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीव जिन द्रव्यों को मनो योग रूप में ग्रहण करता है वह स्थित द्रव्यों को ग्रहण करता है, अस्थित द्रव्यों को नहीं (कार्मण शरीर की तरह) पर नियम से छहों दिशाओं से आये हुए द्रव्यों को ग्रहण करता है।

इसी प्रकार वचन योग के विषय में कहना चाहिए।

जीव जिन द्रव्यों को काय योग रूप से ग्रहण करता है वह स्थित द्रव्यों को भी, अस्थित द्रव्यों को भी ग्रहण करता है। (औदारिक शरीर की तरह) वह उन द्रव्य को भी द्रव्य से भी, क्षेत्र से, काल से व भाव से भी ग्रहण करता है।

वह द्रव्य से अनंत प्रदेशी द्रव्यों को ग्रहण करता है, क्षेत्र से असंख्य प्रदेशावगाढ़ द्रव्यों को ग्रहण करता है × × × । निर्व्याघात से छओं दिशाओं से और व्याघात हो तो कदाचित् तीन, कदाचित् चार और कदाचित् पांच दिशाओं से आये हुए पुद्गलों को ग्रहण करता है। (देखो पण्ण० प० २८)।

नोट—जितने क्षेत्र में जीव रहा हुआ है उस क्षेत्र के अन्दर रहे हुए जो पुद्गल द्रव्य है, वे स्थित द्रव्य कहलाते हैं और उससे बाहर के क्षेत्र में रहे हुए पुद्गल द्रव्य अस्थित द्रव्य कहलाते हैं। वहाँ से खींचकर जीव उनको ग्रहण करता है। इस विषय में किन्हीं आचार्यों की यह मान्यता है कि जो गति रहित द्रव्य है वे स्थित द्रव्य कहलाते हैं और जो गति सहित द्रव्य है वे 'अस्थित द्रव्य' कहलाते हैं।

·१४ सयोगी जीव और योग द्रव्य का ग्रहण

णेरइया अजीवदव्वा परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति, णो अजीवदव्वाणं णेरइयाप० हव्वमागच्छंन्ति। से केणट्ठेण० ?

गोयमा ! णेरइया अजीवदव्वे परियाइयंति, अजीवदव्वे परियाइइत्ता × × × मणजोगं, वइजोगं, कायजोगं च णिव्वत्तयंति × × × णवरं सरीरइंदिय जोगा भाणियव्वा जस्स जे अत्थि।

—भग० श २५। उ २। सू ५

अजीव द्रव्य नारकियों के परिभोग में आते हैं। परन्तु नैरयिक अजीव द्रव्यों के परिभोग में नहीं आते। नारकी अजीव द्रव्यों को ग्रहण करते हैं, ग्रहण करके मनो योग, वचन योग, काय योग में परिणत करते हैं।

इसी प्रकार असुर कुमार से वैमानिक दंडओं तक जानना चाहिए किन्तु जिसके जितने योग हो उसके उतने जानने चाहिए।

·१५ जीव और अधिकरण योग

·१ जीवा णं भंते ! अधिकरणे किं आयप्पयोगणिव्वत्तिए परप्पयोगणिव्वत्तिए तदुभयप्पओगणिव्वत्तिए ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा ! आयप्पओगणिव्वत्तिए वि, परप्पओगणिव्वत्तिए वि तदुभय प्पयोगणिव्वत्तिए ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ? गोयमा ! अविरतिं पहुच्च से तेणट्ठेणं जाव तदुभयप्पयोगणिव्वत्तिए । एवं जाव वेमाणियाणं ।

—भग० श १६ । उ १ । सू ९

जीवों का अधिकरण आत्म-प्रयोग से भी होता है । पर-प्रयोग से भी होता है या तदुभय प्रयोग से होता है । अविरति की अपेक्षा यावत् तदुभय प्रयोग से भी होता है ।

इसी प्रकार नारकी यावत् वैमानिक तक जानना चाहिए ।

नोट—शरीर, इन्द्रिय, योग आदि आंतरिक अधिकरण है । हल, कुदाली आदि शस्त्र तथा धन-धान्य आदि परिग्रह रूप वस्तुए बाह्य अधिकरण है ।

हिंसादि पाप कार्यो में प्रवृत्ति करने वाले मन योग के व्यापार से उत्पन्न अधिकरण आत्म प्रयोग निर्वर्तित कहलाता है । दूसरों को हिंसादि पाप कार्यों में प्रवृत्ति कराने से उत्पन्न हुआ वचनादि योग अधिकरण पर प्रयोग निर्वर्तित कहलाता है । आत्मा द्वारा और दूसरे को प्रवृत्ति कराने वाला उत्पन्न हुआ अधिकरण 'तदुभय प्रयोग निर्वर्तित कहलाता है ।

स्थावरादि जीवों में वचनादि का व्यापार नहीं होता है तथापि उनमें अविरति भाव की अपेक्षा से पर प्रयोग निर्वर्तितादि अधिकरण कहा गया है ।

·२ सयोगी जीव और अधिकरणी या अधिकरण

·३ जीवेणं भंते ! मणजोगं निव्वत्तेमाणेकिं अधिकरणी ? अधिकरणं ।

एवं जहेव सोइंदियं तहेव णिरवसेसं ।

वइजोगो एवं चेव, णवरंएगिंदियवज्जाणं । एवं कायजोगो वि, णवरंसव्व जीवाणं जाव वेमाणिए ।

भग० श १६ । उ १ । सू १७

मनो योग से बांधता हुआ जीव अधिकरणी भी है, और अधिकरण भी । अविरति की अपेक्षा अधिकरणी भी है, अधिकरण भी है । श्रोत्रेन्द्रिय के समान कहना । १६ दंडक की पृच्छा करनी चाहिए ।

वचन योग के विषय में भी इसी प्रकार जानने परन्तु वचन योग में एकेन्द्रियों का कथन नहीं कहना चाहिए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काय योग के विषय में इसी प्रकार जानना चाहिए। काय योग सभी जीवों के होता। इसी प्रकार वैमानिक तक कहना चाहिए।

१६ सयोगी जीव और योग प्राप्त करने की विधि

जघन्य योग से उत्कृष्ट योग प्राप्त करने की विधि

सो जोगो किंविधो त्ति भणिदे एगो तिरिक्खाउयं जहण्णजोग-जहण्णबंधगद्धाहि बंधिय कदलीघादं कादूण समऊणुक्कस्सबंधगद्धाए जहण्णजोगेण णिरयाउयं बंधिय पुणो एगसमयं जत्तियमेत्ताणि जोगट्ठाणाणि चडिदुं सक्कदि तत्तियमेत्ताणं जोगट्ठाणाणं चरिमजोगट्ठाणमेत्तं गहिदं। एवं उक्कस्सबंधगद्धाए एगो समओ तप्पाओग्गमसंखेज्जगुणं जोगं पत्तो। जहा एसो एगसमओ तप्पाओग्गमसंखेज्जगुणं जोगं णीदो एवं सेसेगेसमया वि तप्पाओग्गमसंखेज्जगुण जोगस्स णेदव्वा जावुक्कस्सणिरयाउअबंधगद्धाए सव्वे समया तप्पाओग्गमसंखेज्जगुणं जोगट्ठाणं पत्ता त्ति। एवमणेण विहिणा संखेज्जवारमुक्कस्सबंधगद्धा उवरि उवरि चढाविय णीदे उक्कस्सजोगं पावदि।

एवं णीदे एत्थ चरिमवियप्पो वुच्चदे। तं जहा—जलचरेसु जहण्णजोग-जहण्णबंधगद्धाहि तिरिक्खाउयं बंधिय कदलीघादं काऊण उक्कस्सजोग-उक्कस्सबंधगद्धाहि णिरयाउअं बंधाविदे चरिमवियप्पो होदि। एवं तिरिक्खजलचरआउयदव्वमस्सिदूण णिरयाउअमप्पणोजहण्ण-दव्वप्पहुडि जावुक्कस्सदव्वेत्ति ताव परमाणुत्तरादिकमेण णिरंतरं गंतूण उक्कस्सं जादं।

—षट्० खं ४, २, ४। सू १२२। पु १०। पृ० ३८०-८१

वह (वर्धमान) योग किस प्रकार का है ? इसके उत्तर में कहा गया है—कोई एक जीव जघन्य योग और जघन्य बन्धक काल के द्वारा तिर्यंच आयुष्य को बांधकर कदलीघात के द्वारा एक समय कम उत्कृष्ट बन्धककाल में जघन्य योग से नारकायु को बाँध कर पुनः एक समय में जितने मात्र योगस्थान चढ़ सकता है उतने मात्र योग स्थानों को अन्तिम योग स्थान के रूप में यहाँ पर प्ररूपणा की गई है।

इस प्रकार उत्कृष्ट बन्धक काल का एक समय तत्प्रायोग्य असंख्यातगुणे योग को प्राप्त हो जाता है। जिस प्रकार यह एक समय तत्प्रायोग्य असंख्यातगुणित योग को प्राप्त कराया गया है उसी प्रकार शेष एक-एक समय को भी तत्प्रायोग्य असंख्यातगुणे योग को प्राप्त कराना चाहिए। यह क्रिया तब तक करनी चाहिए जब तक उत्कृष्ट नारकायु सम्बन्धी बन्धक काल के सब समय तत्प्रायोग्य असंख्यातगुने योग को प्राप्त नहीं हो जाते। इस प्रकार संख्यात बार ऊपर चढ़कर ले जाने पर उत्कृष्ट योग को बन्धक काल प्राप्त होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार ले जाने पर यहाँ पर अन्तिम विकल्प कहा जाता है— जलचरों में जघन्य योग और जघन्य बन्धक काल से तिर्यंच आयु को बाँधकर कदलीघात कर उत्कृष्ट योग और उत्कृष्ट बन्धक काल से नारकायु को बंधाने पर अन्तिम विकल्प होता है। इसी प्रकार तिर्यंच जलचर के आयु द्रव्य का आश्रय लेकर नारकायु अपने जघन्य द्रव्य को लेकर उत्कृष्ट द्रव्य तक एक परमाणु अधिक आदि के क्रम से निरन्तर जाते हुए उत्कृष्ट बन जाता है।

·१७ सयोगी जीव और उत्पत्ति

सयोगीनारकी की आत्म प्रयोग (योग रूप व्यापार से) से उत्पत्ति

(णेरइया) आयप्पओगेणं उववज्जंति णो परप्पओगेणं उववज्जंति।

—भग० श २५ उ ७। सू ७

नारकी आत्म प्रयोग से उत्पन्न होते हैं पर प्रयोग से नहीं।

सयोगी असुर कुमार यावत् वैमानिक देव की आत्म प्रयोग से उत्पत्ति—

(असुर कुमारा।) जहा णेरइया तहेव णिरवसेसं जाव णो परप्पओगेणं उववज्जंति। एवं एगिंदियावज्जा जाव वेमाणिया। एगिंदिया एवं चेव। णवरं चउसमइओ विग्गाहो, सेसंतं चेव।

—भग० श २५। उ ८। सू ८

असुर कुकार यावत् वैमानिकदेव आत्म प्रयोग से उत्पन्न होते हैं, पर प्रयोग से नहीं।

·१८ योग और कर्मबंध

·१ णाणावरणिज्जं किं मणजोगी बंधइ, वयजोगी बंधइ, कायजोगी बंधइ, अजोगी बंधइ ? गोयमा ! हेट्ठिल्ला तिण्णि भयणाए, अजोगी ण बंधइ ; एवं वेयणिज्जवज्जाओ, वेयणिज्जं हेट्ठिल्ला बंधंति, अजोगी ण बंधइ।

—भग० श ६। उ ३। प्र ४७

मनो योगी, वचन योगी और काय-योगी ये तीनों ज्ञानावरणीय कर्म कदाचित् नहीं बाँधते हैं। अयोगी नहीं बाँधते हैं। इसी प्रकार वेदनीय कर्म को छोड़ कर शेष सात कर्म प्रकृतियों के विषय में जानना चाहिए।

वेदनीय कर्म को मनोयोगी, वचन योगी और काय योगी बाँधते हैं। अयोगी नहीं बाँधते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·२ सयोगीनारकी तथा अध्यवसाय-योग-करण से आयुष्य बंध

(णेरइया) अज्झवसाण जोगणिव्वत्तिएणं करणोवाएणं एवं खलु ते जीवा परभवियाउयं पकरेंति ।

—भग० श २५ । उ ८ । सू ३

नारकी जीव अपने अध्यवसाय रूप और जोग आदि के व्यापार से करणोपाय (कर्म बंध के हेतु) द्वारा परभव भी आयुष्य बांधते हैं ।

सयोगी असुर कुमार यावत् वैमानिक देव के दंडक तथा अध्यवसाय—योग करण के आयुष्यबंध ।

(असुरकुमारा ।) जहाणेरइया तहेव णिरवसेसं जाव णो परप्पओगेण उववज्जंति । एवं × × × जाव वेमाणिया—

भग० श २५ । उ ८ सू ८

असुर कुमार से वैमानिक देव तक अपने अध्यवसाय और जोग आदि के व्यापार से करणोपाय से परभवका आयुष्य बांधते हैं ।

·३ अबन्धोऽयोगी

—जैनसिदी० प्र ८ । सू २४

अयोगी के कर्मबंध नहीं होता है ।

·१९ सयोगी जीव और कर्म का प्रारम्भ और अंत

·१ सलेस्सा णं भंते ! जीवा पावं कम्म० ?

एवं चेव, एवं सव्वट्ठाणेसु वि जाव अणागारोवउत्ता । एए सव्वे वि पया एयाए वत्तव्वयाए भाणियव्वा ।

—भग० श २९ । उ १ । सू ३

सयोगी जीव मन योगी-वचन योगी-काय योगी जीवों में १—कितने ही सयोगी जीव एक साथ प्रारम्भ करते हैं और एक साथ समाप्त करते हैं ।

२—या एक साथ साथ प्रारम्भ करते हैं और भिन्न समय में समाप्त करते हैं । या ३—भिन्न समय में प्रारम्भ करते हैं और एक साथ समाप्त करते हैं ४ या भिन्न समय में प्रारम्भ करते हैं और भिन्न समय में समाप्त करते हैं । क्योंकि सयोगी जीव चार प्रकार के कहे हैं, यथा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१—कोई सयोगी जीव समान आयु वाले हैं और समान उत्पन्न होते हैं।

२—कई सयोगी जीव समान आयु वाले हैं किन्तु विषम (भिन्न-भिन्न समय में) उत्पन्न होते हैं।

३—कई सयोगी जीव विषम आयु वाले हैं और सब एक साथ उत्पन्न होते हैं और कितनेक सयोगी जीव विषम आयु वाले हैं और विषम उत्पन्न होते हैं।

१—जो समान आयु वाले और समान उत्पन्न होते हैं वे पाप कर्म का भोग एक साथ प्रारम्भ करते हैं, और एक साथ समाप्त करते हैं।

२—जो समान आयु वाले और विषम उत्पन्न होते हैं वे पाप कर्म का योग एक साथ प्रारम्भ करते हैं और भिन्न समय में समाप्त करते हैं।

३—जो विषम आयु वाले और समान उत्पन्न होते हैं वे पाप कर्म का योग भिन्न समय में प्रारम्भ करते हैं और एक साथ समाप्त करते हैं।

४—जो विषम आयु वाले और विषम उत्पन्न होते हैं वे पाप कार्य का योग भिन्न समय में प्रारम्भ करते हैं और भिन्न समय में समाप्त करते हैं।

२० सयोगी नारकी और कर्म वेदन का प्रारम्भ और समाप्ति

णेरइया नं भंते ? पावं कम्मं किं समायं पट्ठविंसु समायं णिट्ठविंसु पुच्छा।

गोयमा ! अत्थेगइया समायं पट्ठविंसु एवं जहेव जीवाणं तहेव भाणियव्वं जाव अणागारोवउत्ता। एवं जाव वेमाणियाणं जस्स जं अत्थि तं एएणं चेव कमेण भाणियव्वं।

—भग० श २९। उ १ सू ४

जिस प्रकार औधिक जीवों की वक्तव्यत्ता कही उसी प्रकार सयोगी-मनो योगी व वचन योगी व काय योगी नारकी की वक्तव्यत्ता कहनी चाहिए। यावत् वैमानिक तक जानना।

जिसके जो जो योग हो वह वह योग कहना।

नोट—पाप कर्म को भोगने का प्रारम्भ और समाप्ति के लिए सम काल और विषम काल की अपेक्षा चौभंगी कही है। वह चौभंगी सम आयु और विषम आयु और सम उत्पत्ति और विषम उत्पत्ति वाले जीवों की अपेक्षा घटित होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·३ सयोगी जीव और ज्ञानावरणीयकर्म के वेदन का प्रारम्भ और समाप्त

,,	दर्शनावरणीय	,,
,,	वेदनीयकर्म	,,
,,	मोहनीयकर्म	,,
,,	आयुष्यकर्म	,,
,,	नामकर्म	,,
,,	गोत्रकर्म	,,
,,	अंतरायकर्म	,,

जहा पावेण दंडओ, एएणं कमेणं अट्ठसु वि कम्मप्पगडीसु अट्ठदंडगा भाणियव्वा जीवाइया वेमाणियपज्जवसाणा।

एसो णवदंडगसंगहिओ पढमो उद्देसो भाणियव्वो।

—भग० श २९। उ १। सू ४

जिस प्रकार पापकर्म का दंडक कहा उसी प्रकार उसी क्रम से आठों कर्म प्रकृतियों के आठ दंडक जीवादि से लेकर वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

नव दंडक सहित प्रथम उद्देशक कहना।

·४ सयोगी अनंतरोपपन्नक नारकी और पाप कर्म का योग

सलेस्सा णं भंते! अणंतरोववण्णगा णेरइया पावं० ? एवं चेव, एवं जाव अणागारोवउत्ता। एवं असुरकुमाराणंवि। एवं जाव वेमाणियाणं, णवरं जं जस्स अत्थि तं तस्स भाणियव्वं।

एवं णाणावरणिज्जेण वि दंडओ। एवं णिरवसेसं जाव अंतराइएणं।

—भग० श २९। उ २। सू ८

सयोगी अनंतरोपपन्नक नारकी प्रथम व द्वितीय भंग से कर्म का वेदन करते हैं। इसी प्रकार मनोयोगी, वचनयोगी व काययोगी का कहना।

सयोगी अनंतरोपपन्नकनारकी दो प्रकार के हैं—यथा १—कितनेकही नारकी समान आयु वाले और समान उत्पत्ति वाले होते हैं—तथा २—कितनेक ही समान आयुवाले और विषम उत्पत्ति वाले होते हैं। प्रथम भंग वाले एक साथ पाप कर्म का वेदन प्रारंभ करते हैं और एक साथ समाप्त करते हैं। दूसरे भंग वाले पाप कर्म का भोगना एक साथ प्रारम्भ करते हैं और भिन्न समय में समाप्त करते हैं। इसी प्रकार असुरकुमार यावत् वैमानिक देव तक कहना। जिसके जितने योग हो उतने कहने।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नोट—आयु उदय के प्रथम समयवर्ती जीव को अनंरोपपन्नक कहते हैं। उनके आयु का उदय समकाल में ही होता है। मरण समय की विषमता के कारण विषमोप पन्नक कहलाते हैं।

इसी प्रकार आठ कर्म प्रकृति के आठ दंडक कहने।

·५ सयोगी परंपरोपपन्नक नारकी और पाप कर्म का वेदन

एवं एएण गमएण जच्चेव बंधिसए उद्देसगपरिवाडी सच्चेव इहवि भाणियव्वा जाव अचरिमोत्ति। अणंतरउद्देसगाणं चउण्ह वि एक्की वत्तव्वया। सेसाणं सत्तण्हं एक्का।

—भग० श २९। उ ३ से ११

वंधीशतक में उद्देशक की तरह जो परिपाटी कही है वह इस पाठ के सम्पूर्ण उद्देशकों की परिपाटी यावत् अचरमोद्देशक पर्यन्त कहना चाहिए। अनंतर सम्बन्धी चार उद्देशकों की एक वक्तव्यत्ता और शेष सात उद्देशकों की एक वक्तव्यत्ता कहनी। नारकी यावत् वैमानिक तक कहना।

·२० सयोगी जीव और अणाहारिक

·१ विग्गहगदिमावण्णा केवलिणो समुग्घहो अजोगीय।
सिद्धा य अणाहारा सेसा आहारया जीवा।

—गोजी० गा० ६६६

विग्रह गति में आये चारों गतियों के जीव, प्रतर और लोकपूरण समुद्घात करने वाले सयोगी जिन व अयोगी जिन व सिद्ध अणाहारिक होते हैं।

नोट—विग्रह गति में चारों गतियों के जीव तथा समुद्घात करने वाले केवली प्रतर और लोकपूरण अवस्था में केवल कार्मण काययोग होता है।

·२ कार्मण काय योगी और अनाहारक

कम्मइयकायजोगी होदि अणाहारयाणपरिमाणं॥

गोजी० गा० ६७१ पूर्वार्ध

टीका—अनाहारककालः कार्मणकाये उत्कृष्टः त्रिसमयः। जघन्य एक समयः।× × ×। कार्मणकाययोगिजीवराशिः अनाहारकपरिमाणं भवति।

अनाहारक काल—कार्मण काय योग में उत्कृष्ट तीन समय का है और जघन्य एक समय का है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·३ थावर कायप्पहुडी सजोगिचरिमोत्ति होदि आहारी।
कम्मइय अणाहारी अजोगिसिद्धे वि णायव्वो

—गोजी० गा० ६९८

आहारक में सयोगकेवलि पर्यन्त गुणस्थान होते हैं। कार्मण योग के समय (मिथ्यादृष्टि, सासादन, असंयत और सयोग केवली के कार्मण काय योग के समय) तथा अयोगी और सिद्ध अणाहारिक होते हैं।

·५ कार्मण काय योगी अनाहारक होते हैं।

कम्मइय अणाहारी अजोगिसिद्धेवि णायव्वो।

—गोजी० गा० ६९८। उत्तरार्ध

टीका—मिथ्यादृष्टिसासादनासंयतसयोगानां कार्मणयोगावसरे अयोगि सिद्धयोश्च अनाहारो ज्ञातव्यः। तत्र जीव समासाः सप्त। अयोगस्य चैकः।

मिथ्यादृष्टि, सासादन, असंयत और सयोगी कार्मण योग के समय अनाहारक होते हैं। अयोगी अनाहारक होते हैं। उसमें जीव समास अपर्याप्त सम्बन्धी सात होते हैं। अयोगी के एक पर्याप्त होता है।

कार्मणकाययोगिजीवराशिः अनाहारकपरिमाणं भवति।

—गोजी० ६७१। टीका

योग मार्गणा में कार्मण काय योगियों का जितना प्रमाण कहा है उतना ही अनाहारकों का प्रमाण है।

·५ सयोगी जीव और आहारादि

सजोगीसु जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

मणजोगी वइजोगी य जहा सम्मामिच्छदिट्ठी (सम्मामिच्छदिट्ठी णं भंते ! किं आहारए अणाहारए ? गोयमा ! आहारए, णो अणाहारए—सू १८८९) णवरं वइजोगो विगलिंदियाण वि।

कायजोगीसु जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।
अजोगी जीव-मणूस-सिद्धा अणाहारगा।

—पण्ण० प २८। उ २। सू १९००। पृ० ४०५

टीका—सामान्यतः सयोगिसूत्रमेकवचने तथैव, बहुवचने जीवएकेन्द्रिय-पदानि वर्जयित्वा शेषेषु स्थानेषु भंङ्गत्रिकं, जीवपदे पृथिव्यादिपदेषु च पुनः प्रत्येकमाहारका अपि अनाहारका अपीति भङ्गः, उभयेषामपि सदैव तेषु स्थानेषु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहुत्वेन लभ्यमानत्वात् 'मणजोगी वइजोगी जहा सम्मामिच्छद्दिट्ठी य' त्ति मनोयोगिनो वाग्योगिनश्च यथा प्राक् सम्यग्मिथ्यादृष्टय उक्तास्तथा वक्तव्याः, एकवचने बहुवचने चाहारका एव वक्तव्या न त्वनाहारका इति भावः, नवरं 'वइजोगो विगलिंदियाणवि' त्ति नवरमिति-सम्यग्मिथ्यादृष्टिसूत्रादयं विशेषः, सम्यग्मिथ्यादृष्टित्वं विकलेन्द्रियाणां नास्तीति तत्सूत्रं तत्र नोक्तं, वाग्योगः पुनर्विकलेन्द्रियाणामप्यस्तीति तत्सूत्रमपि वाग्योगे वक्तव्यं, तच्चैवम्—'मणजोगी णं भंते ! जीवे किं आहारए अणाहारए ? गोयमा ! आहारए नो अणाहारए, एवं एगिंदियविगलिंदियवज्जं जाव वेमाणिए, एवं पुहुत्तेणवि, वइजोगी णं भंते। किं आहारए अणाहारए ? गोयमा ! आहारए णो अणाहारए, एवं एगिंदियवज्जं जाव वेमाणिए, एवं पुहुत्तेणवि' त्ति, काययोगिसूत्रमप्येकवचने बहुवचने च सामान्यतः सयोगिसूत्रमिव, अयोगिनो मनुष्याः सिद्धाश्च, तेनात्र त्रीणि पदानि, तद्यथा—जीवपदं मनुष्यपदं सिद्धपदं च, त्रिष्वपि स्थानेष्वेकवचने बहुवचने चानाहारकत्वमेव।

सयोगी जीव (एक वचन) कदाचित् आहारक होते हैं, कदाचित् अनाहारक होते हैं। इसी प्रकार दंडक के सभी जीवों के विषय में जानना।

सयोगी जीव (बहु वचन) औधिक तथा एकेन्द्रिय जीव में एक भंग होता है। यथा—आहारक भी होते हैं, अनाहारक भी होते हैं। क्योंकि ये दोनों प्रकार के जीव सदैव अनेकों रहते हैं। इसके सिवाय अन्यों में तीन अंग होते हैं (एकेन्द्रियों को छोड़ कर) यथा—(१) अनेक आहारक, अनेक अनाहारक होते हैं। (२) अनेक आहारक, एक अनाहारक। (३) सर्व आहारक होते हैं। मनोयोगी तथा वचन योगी एक वचन-बहुवचन की अपेक्षा सम्यग् मिथ्या दृष्टि की तरह आहारक होते हैं, अनाहारक नहीं होते हैं। वचन योग बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय के होता है लेकिन सम्यग् मिथ्या दृष्टि गुण स्थान नहीं है। वे भी वचन योग में सब आहारक होते हैं—अनाहारक नहीं होते हैं। मनो योग एकेन्द्रिय तथा विकेन्द्रियों में नहीं होता है।

काय योगी में एकेन्द्रियों को छोड़ कर तीन भंग होते हैं।

अयोगी-मनुष्य-सिद्ध तीन पद अनाहारक होते हैं, आहारक नहीं होते हैं।

६ अयोगी जीव अनाहारक होते हैं—

केवलि समुहय विग्गह-गइ-गय।
अरुह अजोइ सिद्ध परमप्पय॥
ते ण लेंति आहारु वियारिय।

—वीरजि० संधि १२। कड ४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अयोगी जीव आहार नहीं लेते हैं अतः वे अनाहारक है।

·२१ सयोगी जीव और आत्मा की अभिन्नता

अण्णउत्थियाणं भंते ! एवं आइक्खंतिजाव परुवेंति—एवं खलु × × × एवं मणजोए, वइजोए, कायजोए × × × वट्टमाणस्स अण्णे जीवे, अण्णे जीवाय × × ×।

गोयमा ! जंणं ते अण्णउत्थिया एवं आइक्खंति जाव मिच्छ ते एवं आहंसु' अहं पुण गोयमा। एवं खलु आइक्खामि जाव परुवेमि—'एवं खलु × × × एवं मणजोए, वइजोए, कायजोए × × × वट्टमाणस्स एवं सच्चेव जीवाया।

—भग० १७। उ २। सू ९

अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं यावत् परूपित करते हैं कि × × × मनो योग-वचन योग-काय योग में × × × आदि में वर्तमान प्राणी या जीव अन्य है, और जीवात्मा अन्य है। यह कथन उनका मिथ्या है। मनो योग यावत् काय योग में वर्तमान प्राणी जीव है और वही जीवात्मा है।

·२२ सयोगी जीव की संख्या

·१ औदारिक काय योग की संख्या

·२ औदारिक मिश्र काय योग की संख्या

·३ कार्मण काय योग की संख्या

कम्मोरालियमिस्सय ओरालद्धासु संचिद अणंता।
कम्मोरालियमिस्सय ओरालियजोगिणो जीवा।

—गोजी० गा० २६४

कार्मण काय योग, औदारिक मिश्र काय योग तथा औदारिक काय योग के आगे कहे गये कालों में संचित हुए कार्मण काय योगी, औदारिक मिश्र काय योगी और औदारिक काय योग जीव प्रत्येक अनंतानंत जानना चाहिए।

·२२ योग की संख्या

आहारक काय योग की संख्या

आहारकामिश्रकाय योग की संख्या

आहारकायजोगाचउवण्णं होंति एक्कसमयम्मि।
आहारमिस्सजोगा सत्तावीसादु उक्कस्सा ॥२७०॥

—गोजी० गा० २७०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आहारक काय योग के धारक एक समय में एक साथ उत्कृष्टतः चौप्पन्न होते हैं तथा आहारक मिश्र काय योगी एक समय में एक साथ उत्कृष्टतः सत्ताईस होते हैं।

विशेष—उत्कृष्ट रूप से एक समय में उक्त संख्या प्रमाण जीव होते हैं, इससे कम हो सकते हैं किन्तु अधिक नहीं हो सकते। अर्थात् वह सब उत्कृष्ट रूप से एक समय में जानना चाहिए।

·२३ अयोगी जीव कौन होते हैं

जेसिं ण संति जोगा सुहासुहा पुण्णपावसंजणया।
ते होंति अजोगिजिणा अणोवमाणंतबलकलिया॥

—गोजी० गा० २४३

जिन आत्माओं के पुण्य-पाप रूप प्रशस्त और अप्रशस्त कर्मबंध के कारण मन-वचन-काय की क्रिया शुभ और अशुभ नहीं है वे आत्मा चरम गुणस्थानवर्ती अयोगी केवली है।

विशेष—योग के आधार से जो बल होता है वह प्रतिनियत विषय वाला ही होता है। परमात्मा का बल केवल ज्ञान आदि की तरह आत्मा का स्वभाव होने से अप्रतिनियत विषय वाला होता है।

·२४ एक काल में एक योग

·१ जोगो वि एक्ककाले एक्केव य होदिणियमेण।

—गोजी० गा० २४२। उत्तरार्ध

टीका—तथा योगोऽपि एक्ककाले स्वयोग्यान्तर्मुहूर्ते एक एव नियमेन भवति द्वौ त्रयो वा योगा एकजीवे युगपन्न सम्भवति। तथा सति एक योगकाले अन्ययोगरूपगमनादि क्रियाणां संभवो नामातिक्रान्त योग संस्कार जनितो न विरुध्यते।

तथा योग भी एक काल में अर्थात् अपने योग्य अन्तर्मुहूर्त में नियम से एक ही होता है। दो या तीन योग एक जीव में एक साथ नहीं होते। ऐसा होने पर एक योग के काल में अन्य योग का कार्य रूप गमनादि क्रिया के होने में कोई विरोध नहीं है क्योंकि जो योग चला गया उसके संस्कार से एक योग के काल में अन्य योग की क्रिया होती है।

·२ वैक्रिय योग क्रिया तथा आहारक योग क्रिया युगपत् नहीं होती है।

वेगुव्विय आहारयकिरिया ण समंपमत्तविरदम्मि।
जोगो वि एक्ककाले एक्केव य होदिणियमेण॥

—गोजी० गा० २४२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टीका प्रमत्तविरते वैक्रियिकयोगक्रिया आहारकयोगक्रिया च द्वे युगपन्न संभवतः। तद्यथा—कदाचिदाहारक योगमवलम्ब्य प्रमत्तसंयतस्य गमनादि-क्रिया प्रवर्ततेतदा विक्रियर्द्धिबलेन विक्रियिकयोगमवलम्ब्य वैक्रियिकक्रिया न घटते आहारकर्धिविक्रियर्ध्योस्तस्य युगपद्वृत्तिविरोधात्। अनेक गणधरादीनां इतरर्धि युगपद्वृत्तिसंभवः सूचितः।× × ×। कुलालदंडप्रयोगाभावेऽपि तत्संस्कारबलेन चक्रभ्रमणवत् संस्कारक्षये बाणपतनवत्क्रिया निवृत्तिदर्शनादेव संस्कारवशेन युगपदनेक क्रियावृत्तिप्रसङ्गे सति प्रमत्तविरते वैक्रियिकाहारकशरीरक्रिययोः युगपत्प्रवृत्तिप्रतिषेधः आचार्येण प्ररुपितोजातः।

प्रमत्तविरत में वैक्रियिक योग क्रिया और आहारक योग किया—ये दोनों एक साथ नहीं होती। जब आहारक योग का अवलम्बन लेकर प्रमत्तसंयत के गमनादि क्रिया होती है तब विक्रिया ऋद्धि के बल से वैक्रियिक योग का अवलम्बन लेकर वैक्रियिक क्रिया नहीं होती। क्योंकि उसके आहारक ऋद्धि और विक्रियाऋद्धि दोनों के एक साथ होने में विरोध है। इससे गणधर आदि के अन्य ऋद्धियों का एक साथ रहना सूचित किया है। तथा योग भी एक काल में अर्थात् अपने योग्य अन्तर्मुहूर्त में नियम से एक ही होता है। दो या तीन योग एक जीव में एक साथ नहीं होते हैं। ऐसा होने पर एक योग के काल में अन्य योग के कार्य रूप गमन आदि क्रिया के होने में कोई विरोध नहीं है, क्योंकि जो योग चला गया उसके संस्कार से एक योग के काल में अन्य योग की क्रिया होती है। जैसे कुम्हार दंड के प्रयोग से चाक को घुमाता है। पीछे दंड का प्रयोग नहीं करने पर भी संस्कार के बल से चाक घूमता रहता है। या धनुष से छूटने पर बाण जब तक उस में पूर्व संस्कार रहता है, तब तक जाता है। पीछे संस्कार नष्ट हो जाने पर गिर जाता है। इस प्रकार संस्कार के वश एक साथ अनेक योगों की क्रिया के होने का प्रसंग उपस्थित होने पर प्रमत्त-विरत में वैक्रियिक और आहारक शरीर की क्रियाओं के साथ होने का निषेध आचार्य ने किया है। अर्थात् ये दोनों क्रिया प्रमत्तविरत के संस्कार वश भी एक साथ नहीं होती।

·२४ औदारिक व औदारिक मिश्र काय योग किसके होता है।

तौ योगौ द्वावपि नरतिरश्चोरेवेति सर्वज्ञ रुक्तम्।

—गोजी० गा० ६८१। टीका

औदारिक व औदारिक मिश्र काय योग—ये दोनों भी योग मनुष्य और तिर्यंचों में ही होते हैं—ऐसा सर्वज्ञदेव ने कहा है।

·२५ जीव सयोगी भी होते हैं व अयोगी भी

·१ (जीवा) पञ्चदशयोगाः अयोगाश्च संति।

—गोजी० गा० ७२८। टीका

पन्द्रह योग वाले जीव है और योग रहित जीव है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·२ सयोगी जीव के भेद

दो भेद—

सजोगी णं भंते ! सजोगीत्ति पुच्छा ? गोयमा ! सजोगी दुविहे पन्नत्ते, तंजहा—अणाइए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सज्जवसिए ।

—पण्ण० प० १८ । द्वा । ८ । सू ९

सयोगी जीव के सयोगीत्व की अपेक्षा दो प्रकार होते हैं—(१) अनादि-अपर्यवसित सयोगी अभव्यत्व की अपेक्षा तथा (२) अनादि सपर्यवसित (भव्यत्व की अपेक्षा) ।

तीन भेद—

योग की अपेक्षा सयोगी जीव के तीन भेद होते हैं—यथा मनोयोगी वचन योगी तथा काय योगी । मनोयोगी तथा वचन योग की स्थिति जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त की तथा काययोगी की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त व उत्कृष्ट अनंत काल की है ।

·२६ सयोगी जीव का योग को अपेक्षा उत्पत्ति मरण:—

·१ योग की अपेक्षा दंडक में उत्पत्ति-मरण के नियम

यह निश्चित है कि अशुभ योगी नारकी सातों नारकी में उत्पन्न होता है, अशुभ योगी रूप में से ही मरण को प्राप्त होता हैं । उस अशुभ योगी के तीन लेश्या होती है—कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या ।

इसी प्रकार असुरकुमार यावत् स्तनित देवों के सम्बन्ध में कहना । लेकिन शुभ योग का भी कथन करना । चूंकि उनमें कृष्ण, नील, कापोत-तेजो लेश्या होती है ।

यह निश्चित है अशुभ योगी पृथ्वीकायिक जीव अशुभ योगी पृथ्वी काय में उत्पन्न होता है और अशुभ योग रूप में मरण को प्राप्त होता है ।

प्रशस्त अध्यवसायी-शुभयोगी पृथ्वीकायिक जीव तेजो लेश्या के साथ तेजो लेशी पृथ्वी कायिक में उत्पन्न होता है और अशुभ योग रूप में मरण को प्राप्त होता है लेकिन तेजो लेश्या में उत्पन्न हो सकता है लेकिन मरण को प्राप्त नहीं होता है ।

इसी प्रकार अप्काय व वनस्पतिकायिक के जीव के सम्बन्ध में जानना चाहिए ।

अशुभ योगी अग्निकायिक जीव अशुभ योगी अग्निकाय में उत्पन्न होते हैं और अशुभ योय रूप में मरण को प्राप्त होते हैं ।

अशुभ योगी वायुकायिक जीव अशुभ योगी वायुकाय में उत्पन्न होते हैं और अशुभ योग रूप में मरण को प्राप्त होते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय व चतुरिन्द्रिय के संबंध मे जानना।

अशुभयोगी तिर्यंचपंचेन्द्रिय अशुभयोगी तिर्यंचपंचेन्द्रिय के रूप में उत्पन्न होते हैं तथा शुभयोगी तिर्यंचपंचेन्द्रिय शुभयोगी तिर्यंचपंचेन्द्रिय में उत्पन्न होते हैं। कदाचित् जिस योग में उत्पन्न होते हैं, कदाचित् उसी योग में मरण को प्राप्त होते हैं। मरण के समम शुभ योग भी हो सकता है, अशुभयोग भी।

अशुभयोगी वाणव्यंतर देव अशुभयोगी वाणव्यंतर देव रूप में उत्पन्न होता है लेकिन शुभयोग का भी कथन करना चाहिए चूंकि उनमें तेजोलेश्या भी होती है।

अशुभयोगी ज्योतिषीदेव शुभयोगी ज्योतिषीदेव में तथा शुभयोगी वैमानिकदेव शुभयोगी वैभानिक देवरूप में उत्पन्न होते हैं। इन देवों का शुभयोग रूप में च्यवन होता है। देखें लेश्या कोश पृ० १५४।

·२८ सयोगी जीव और आरम्भ, परारंभ, उभयारम्भ व अनारम्भ

जोवाणं भंते ! किं आयारंभा, परारंभा, तदुभयारंभा, अनारंभा ? गोयमा ! अत्थेगइया जीवा आयारंभा वि, परारंभा वि, तदुभयारंभावि। नो अणारंभा ; अत्थेगइया जीवा नो आयारंभा, नो परारंभा नो तदुभयारंभा, अणारंभा। से केणट्ठेणं भंते। एवं वुच्चइ—अत्थेगइया जीवा आयारंभावि एवं पडिउच्चारेयव्वं ? गोयमा ! जीवा दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—संसारसमावण्णगा य असंसार समावन्नगा य। तत्थणं जे ते असंसारसमावन्नगा तेणं सिद्धा, सिद्धा णं नो आयारंभा जाव अणारंभा ; तत्थणंजेते संसारसमावन्नगा ते दुविहा पन्नत्ता, तं जहा—संजयाय असंजयाय ; तत्थ णं जे ते संजया ते दुविहा पण्णता, तंजहा पमत्तसंजया य अपमत्तसंजया य। तत्थणं जे ते अप्पमत्तसंजया ते णं नो आयारंभा, नो परारंभा जाव अणारंभा, तत्थ णं जे ते पमत्तसंजया ते सुह जोगं पडुच्च नो आयारंभा, नो परारंभा जाव अणारंभा, असुभं जोगं पडुच्च आयारंभावि जाव नो अणारंभा, तत्थणं जेते असंजया ते अविरतिं पडुच्च आयारंभावि जाव नो अणारंभा। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-अत्थेगइया जीवा जाव अणारंभा।× × ×। मणुस्सा जहा जीवा।

—भग० श १। उ १। सू ४८/५१

जीव दो प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार है—संसारसमापन्नक और असंसार-समापन्नक। जो संसारसमापन्नक है, वे दो प्रकार के कहे गये हैं—यथा संयत और असंयत। इनमें जो संयत है वे दो प्रकार के कहे गये हैं—यथा—प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत है। जो प्रमत्तसंयत है वे शुभयोग की अपेक्षा आरंभी, परारंभी और तदुभयारंभी नहीं है किन्तु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनारंभी है और अशुभयोग की अपेक्षा आरंभी भी है, परारंभी भी है और तदुभयारंभी भी है किन्तु अनारंभी नहीं है ।

नोट—अप्रमत्तसंयत के अशुभयोग नहीं है, शुभयोग है अतः वे आरंभी, परारंभी और तदुभयारंभी नहीं है, किन्तु अनारंभी है ।

मनुष्य के विषय में औधिक जीव की तरह कहना ।

·२९ सयोगी जीव और कषाय

·२९ सयोगी नारकी में कषायोपयोग के विकल्प

(इमीसेणं भंते ! रयणप्पायाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि नेरइयावासंसि नेरइयाणं) । मणजोए वट्टमाणा कोहोवउत्ता माणोवउत्ता, मायोवउत्ता लोभोवउत्ता । गोयमा ! सत्तावीसं भंगा । एवं वइजोए, एवं कायजोए । × × × एवं सत्तवि पुढवीओ नेयव्वाओ × × × ।

—भग० श १ । उ । ५ । सू १८७

इस रत्नप्रभा पृथ्वी में बसने वाले और मनयोग में वर्तनेवाले नारकी जीव क्या क्रोधोपयुक्त है, मानोपयुक्त है, मोयोपयुक्त है या लोभोपयुक्त है ।

सत्ताईस भंग कहना चाहिए ।

इसी प्रकार वचनयोगी व काययोगी में भी कहना चाहिए ।

नोट—उनमें एकवचन तथा बहुवचन की अपेक्षा से क्रोधोपयोग आदि के निम्न-लिखित २७ विकल्प होते हैं—

(१) सर्व क्रोधोपयोगवाले (२) बहु क्रोधोपयोगवाले, एक मानोपयोगवाला (३) बहु क्रोधोपयोगवाले, बहु मानोपयोगवाले (४) बहु क्रोधोपयोगवाले, एक मायोपयोगवाला (५) बहु क्रोधोपयोगवाले, बहु मायोपयोगवाले (६) बहु क्रोधोपयोगवाले, एक लोभोपयोगवाला (७) बहु क्रोधोपयोग वाले, बहु लोभोपयोगवाले (८) बहु क्रोधोपयोगवाले, एक मानोपयोग वाला, एक मायोपयोगवाला (९) बहु क्रोधोपयोगवाले, एक मानोपयोगवाला, बहु मायोपयोग-वाले (१०) बहु क्रोधोपयोगवाले, बहु मनोपयोगवाले, एक मायोपयोगवाला (११) बहु क्रोधोपयोगवाले, बहु मानोपयोगवाले, बहु मायोपयोगवाले, (१२) बहु क्रोधोपयोगवाले, एक एक मानोपयोगवाला, एक लोभोपयोगवाला (१३) बहु क्रोधोपयोगवाले, एक मानोपयोग-वाला, बहु लोभोपयोगवाले (१४) बहु क्रोधोपयोगवाले, बहु मानोपयोगवाले, एक लोभो-पयोगवाला (१५) बहु क्रोधोपयोगवाले, बहु मानोपयोगवाले, बहु लोभोपयोगवाले (१६) बहु क्रोधोपयोगवाले, एक मायोपयोगवाला, एक लोभोपयोगवाला (१७) बहु क्रोधोपयोगवाला, एक मायोपयोगवाला, बहु लोभोपयोगवाले (१८) बहु क्रोधोपयोगवाले, बहु मायोपयोगवाले,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक लोभोपयोगवाला (१९) बहु क्रोधोपयोगवाले, बहु मायोपयोगवाले, बहु लोभोपयोगवाले (२०) बहु क्रोधोपयोगवाले, एक मानोपयोगवाला, एक मायोपयोगवाला, एक लोभोपयोगवाला (२१) बहु क्रोधोपयोगवाले, एक मानोपयोगवाला, एक मायोपयोगबाला, बहु लोभोपयोगवाले (२२) बहु क्रोधोपयोगवाले, एक मायोपयोगवाला, बहु मानोपयोगवाले, एक लोभोपयोगवाला (२३) बहु क्रोधोपयोगवाले, एक मायोपयोगवाला, बहु मायोपयोगवाला, एक लोभोपयोगवाला (२४) बहु क्रोधोपयोगवाले, बहु मानोपयोगवाले, एक मायोपयोगवाला, एक लोभोपयोगवाला (२५) बहु क्रोधोपयोगवाले, बहु मानोपयोगवाले, एक मायोपयोगवाले, बहु लोभोपयोगवाले (२६) बहु क्रोधोपयोगवाले, बहु मानोपयोगवाले, बहु मायोपयोगवाले, एक लोभोपयोगवाला तथा (२७) बहु क्रोधोपयोगवाले, बहु मानोपयोगवाले, बहु मायोपयोगवाले, बहु लोभोपयोगवाले।

इसी प्रकार सातों पृथ्वी के नरकावासों में एक-एक नरकावास में बसे हुए मनोयोगी, वचनयोगी तथा काययोगी नारकियों में क्रोधोपयोग आदि के २७ विकल्प कहने। जिस-जिस योग का प्रतिपादन करना वह-वह योग कहना तथा नरकावासों में योग की भिन्नता लेश्या की तरह होती है।

·२९.२ सयोगी (काय योगी) पृथ्वीकायिक में कषायोपयोग के विकल्प

असंखेज्जेसुणं भंते! पुढविक्काइयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि पुढविक्काइयावासंसि × × × (सव्वेसु वि ठाणेसु) वट्टमाणा पुढविक्काइया किं कोहोवउत्ता, माणोवउत्ता, मायोवउत्ता, लोभोवउत्ता! गोयमा! कोहोवउत्ता वि माणोवउत्तावि, मायोवउत्तावि, लोभोवउत्तावि, एवं पुढविक्काइयाणं सव्वेसु वि, ठाणेसु अभंगणं नवरं तेयलेस्साए असीइभंगा।

एवं आउक्काइया वि, तेउक्काइयवाउक्काइयाणं सव्वेसु वि ठाणेसु अभंगयं।

वणस्सइकाइया जहा पुढविक्काइया।

—भग० श १। उ ५। सू १९२

पृथ्वीकाविक के असंख्यात लाख आवासों में एक-एक आवास में वासित काययोगी पृथ्वीकायिक में कषायोपयोग के विकल्प नहीं कहते।

·२९·३ सयोगी (काययोगी) अप्कायिक में कषायोपयोग के विकल्प

अप्कायिक के असंख्यात लाख आवासों में एक-एक आवास में वासित काययोगी अप्कायिक में कषायोपयोग के विकल्प नहीं कहते (देखो पाठ ·२९·२)।

·२९·४ सयोगी (काययोगी) अग्निकायिक में कषायोपयोग के विकल्प

अग्निकायिक के असंख्यात लाख आवासों में एक-एक आवास में वासित काययोगी अग्निकायिक में विकल्प नहीं कहने (देखो पाठ ·२९·२)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·२९·५ सयोगी (काययोगी) वायुकायिक में कषायोपयोग के विकल्प

वायुकायिक के असंख्यात लाख आवासों में एक-एक आवास में वासित काययोगी वायुकायिक में कषायोपयोग के विकल्प नहीं कहने (देखो पाठ ·२९·२)।

·२९·६ सयोगी (काययोगी) वनस्पतिकायिक में कषायोपयोग के विकल्प

वनस्पतिकायिक के असंख्यात लाख आवासों में एक-एक आवास में वासित काययोगी वनस्पतिकायिक में कषायोपयोग के विकल्प नहीं कहने। वे क्रोधोपयोग वाले भी है, मानोपयोग वाले भी है, मायोपयोग वाले भी है, लोभोपयोग वाले भी है (देखो पाठ ·२९·२)।

·२९·७ सयोगी द्वीन्द्रिय (काय योगी-वचन योगी) के कषायोगी के विकल्प

बेइंदिय तेइंदियचउरिंदियाणं जेहिं ठाणेहिं नेरइयाणं असीइभंगा तेहिं ठाणेहिं असीइं चेव, नवरं अब्भहिया सम्मत्ते। आभिणिबोहियनाणे, सुयनाणे य, एएहिं असीइं भंगा, जेहिं ठाणेहिं नेरइयाणं सत्तावीसं भंगा तेसु ठाणेसु सव्वेसु अभंगयं।

—भग० श १। उ ५। सू १९३

द्वीन्द्रिय के असंख्यात लाख आवासों में एक-एक आवास में वासित काययोगी तथा वचनयोगी द्वीन्द्रिय में कषायोपयोग के विकल्प नहीं कहने।

·२९·८ सयोगी त्रीन्द्रिय में कषायोपयोग के विकल्प

त्रीन्द्रिय के असंख्यात लाख आवासों में एक-एक आवास में बसे हुए काययोगी, वचनयोगी त्रीन्द्रिय में कषायोपयोग के विकल्प नहीं कहने। वे क्रोधोपयोग वाले, भी है, मानोपयोग वाले भी है, मायोपयोग वाले भी है, लोभोपयोग वाले भी है (देखो पाठ ·२९·७)।

·२९·९ सयोगी चतुरिन्द्रिय में कषायोपयोग के विकल्प

चतुरिन्द्रिय के असंख्यात लाख आवासों में एक-एक आवास में वासित काययोगी, वचनयोगी चतुरिन्द्रिय में कषायोपयोग के विकल्प नहीं कहने (देखो पाठ ·२९·७)।

·२९·१० सयोगी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में कषायोपयोग के विकल्प

पंचिंदियतिरिक्खजोणिया जहानेरइया तहा भाणियव्वा, नवरं जेहिं सत्तावीसं भंगातेहिं अभंगयं कायव्वं जत्थ असीइं तत्थ असीइं चेव।

—भग० श १। उ ५। सू १९४

तिर्यंच पंचेन्द्रिय के असंख्यात लाख आवासों में एक-एक आवास मे वासित काययोगी, वचनयोगी व मनोयोगी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में कषायोपयोग के विकल्प नहीं कहने।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·२९ ११ सयोगी मनुष्य में कषायोपयोग के विकल्प

मणुस्साणं वि जेहिं ठाणेहिं नेरइयाणं असीइभंगा तेहिं ठाणेहिं मणुस्साण वि असीइभंगा भाणियव्वा, जेसु ठाणेसु सत्तावीसा तेसुअभंगयं, नवरं मणुस्साणं अब्भहियं जहन्नियाठिई (ठिइए) आहारए असीइभंगा।

—भग० श १ । उ ५ । सू १९५

मनुष्य के एक-एक आवास में वासित मनोयोगी, वचन योगी व काय योगी मनुष्य में कषायोपयोग के विकल्प नहीं कहने।

·२९·१२ सयोगी भवनपति देव में कषायोपयोग के विकल्प

चउसट्ठीए णं भंते ! असुरकुमारावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि असुरकुमारावासंसिअसुरकुमाराणं केवइया ठिइट्ठाणा पन्नत्ता, गोयमा ! असखेज्जा ठिइट्ठाणा पन्नत्ता, जइण्णिया ठिइजहा नेरइया तहा, नवरं-पडिलोमा भंगा भाणियव्वा। सव्वेवि तावहोज्ज लोभोवउत्ता। अहवा लोभोवउत्ताय, मायोवउत्तेय, अहवा लोभोवउत्ता य, मायोवउत्ता य। एएणं गमेणं नेयव्वं जाव थणियकुमाराणं नवरं नाणत्तं जाणियव्वं।

—भग० श १ । उ ५ । सू १९०

असुर कुमार के चौसठ लाख आवासों में एक-एक असुर कुमारावास में वासित मनोयोगी, वचनयोगी, काययोगी असुरकुमार में लोभोपयोग, मायोपयोग, मानोपयोग व क्रोधोपयोग के सत्ताईस विकल्प कहने। नारकियों में क्रोध के बिना छोड़े विकल्प होते हैं परन्तु देवों में लोभ को बिना छोड़े विकल्प बनते हैं। अतः प्रतिलोम अंश होते हैं—ऐसा कहा गया है।

इसी प्रकार नागकुमार से स्तनितकुमार तक कहना। परन्तु आवासों की भिन्नता जाननी।

·२९·१३ सयोगी वाणव्यंतर देव में कषायोपयोग के विकल्प

वाणमंतरजोइसवेमाणिया जहाभवणवाणी नवरं नाणत्तं जाणियव्वं जं जस्स जाव अनुत्तरा।

—भग० श १ । उ ५ सू १९६

वाणव्यंतर के असंख्यात लाख आवासों में एक-एक आवास में वासित मनोयोगी, वचनयोगी, काययोगी वाणव्यंतर में भवनवासी देवों की तरह क्रोधोपयोग, मायोपयोग, मानोपयोग व क्रोधोपयोग के सत्ताईस विकल्प कहते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·२९·१४ सयोगी ज्योतिषी देव में कषायोपयोग के विकल्प

ज्योतिषीदेव के असंख्यात लाख विमाणवासों में वासित मनोयोगी, वचनयोगी, काय-योगी ज्योतिषीदेव में भवनवासी देवों की तरह लोभोपयोग, मायोपयोग, मानोपयोग व क्रोधोपयोग के सत्ताईस विकल्प कहने (देखो पाठ ·२९·१३)।

·२९·१५ सयोगी वैमानिक देव में कषायोपयोग के विकल्प

वैमानिक देवों के भिन्न-भिन्न भेदों में भिन्न-भिन्न संख्यात विमानावासों के अनुसार एक-एक विमानावास में वासित मनोयोगी, वचनयोगी, काययोगी वैमानिक देवों में भवन-वासी देवों की तरह लोभोपयोग, मायोपयोग, मानोपयोग व क्रोधोपयोग के विकल्प कहने (देखो पाठ ·२९·१३)।

देवों में पाये जाने वाले सत्ताईस भंग इस प्रकार है—

असंयोगी १ भंग

१—सभी लोभी

द्विक संयोगी ६ भंग—

१ लोभी बहुत, मायी एक २ लोभी बहुत, मायी बहुत ३ लोभी बहुत, मायी एक ४ लोभी बहुत, मायी बहुत ५ लोभी बहुत, क्रोधी एक ६ लोभी बहुत, क्रोधी बहुत।

त्रिक संयोगी १२ भंग

१. लोभी बहुत, मायी एक, मानी एक
२. लोभी बहुत, मायी एक, मानी बहुत
३. लोभी बहुत, मायी बहुत, मानी एक
४. लोभी बहुत, मायी बहुत, मानी बहुत
५. लोभी बहुत, मायी एक, क्रोधी एक
६. लोभी बहुत, मायी एक, क्रोधी बहुत
७. लोभी बहुत, मायी बहुत, क्रोधी एक
८. लोभी बहुत, मायी बहुत, क्रोधी बहुत
९. लोभी बहुत, मानी एक, क्रोधी एक
१०. लोभी बहुत, मानी एक, क्रोधी बहुत
११. लोभी बहुत, मानी बहुत, क्रोधी एक
१२. लोभी बहुत, मानी बहुत, क्रोधी बहुत

चतुः संयोगी आठ भंग

१. लोभी बहुत, मायी एक, मानी एक, क्रोधी एक
२. लोभी बहुत, मायी एक, मानी एक, क्रोधी बहुत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. लोभी बहुत, मायी एक, मानी बहुत, क्रोधी एक
४. लोभी बहुत, मायी एक, मानी बहुत, क्रोधी बहुत
५. लोभी बहुत, मायी बहुत, मानी एक, क्रोधी एक
६. लोभी बहुत, मायी बहुत, मानी एक, क्रोधी बहुत
७. लोभी बहुत, मायी बहुत, मानी बहुत, क्रोधी एक
८. लोभी बहुत, मायी बहुत, मानी बहुत, क्रोधी बहुत

नोट—सत्ताईस भंगों में 'लोभ' को बहुवचनांत ही रखना चाहिए।

यद्यपि अकेले कार्मण काययोग में अस्सी भंग संभव है तथापि यहाँ पर उसकी विवक्षा नहीं की है। किन्तु सामान्य काययोग की विवक्षा की गई है।

नारकियों में जिन स्थानों में सत्ताईस भंग कहे गये हैं, उन स्थानों में यहाँ अभंगक कहना चाहिए। क्योंकि क्रोधादि उपयुक्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच एक ही साथ बहुत पाये जाते हैं।

इसी प्रकार विकलेन्द्रियों के संबंध में अभंग अर्थात् (नारकी के जीवों में जहां सत्ताईस भंग कहे हैं वहां) भंगों का अभाव कहना चाहिए।

अभंगक कहने का कारण यह है कि विकलेन्द्रिय जीवों में क्रोधादि उपयुक्त जीव एक साथ बहुत पाये जाते हैं।

एक-एक कषाय में उपयुक्त बहुत से पृथ्वीकायिक होते हैं अतः अभंगक समझना चाहिए। (नारकी के सत्ताईसभंग की जगह)

३० सयोगी और समुद्घात

१ सयोगी केवली और समुद्घात

(केवली समुग्घायं) कतिसमइए णं भंते ! आउज्जीकरणे पण्णत्ते ? गोयमा ! असंखेज्जसमइए अंतोमुहुत्तिए आउज्जीकरणे पण्णत्ते ? २१७१

कतिसमइए णं भंते ! केवलिसमुग्घाए पण्णत्ते गोयमा ! अट्ठसमइए पण्णत्ते। तंजहा पढम समए दंडं करेति, बिइए समए कवाडं करेति, ततिए समए मंथं करेति, चउत्थे समए लोगं पूरेइ, पंचमे समए लोयं पडिसाहरति, छट्ठे समए मंथं पडिसाहरति, सत्तमे समए कवाडं परिसाहरति, अट्ठमे समए दंडं पडिसाहरति, दंडं पडिसाहरेत्ता ततो पच्छा सरीरत्थे भवति। २१७२

सेणंभंते ! तहासमुग्घायगते किं मणजोगं जुंजति वइजोगं जुंजतिकायजोगं जुंजति ? गोयमा ! णो मणजोगं जुंजइ णो वइजोग जुंजइ, कायजोगं जुंजति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कायजोगेणं भंते ! जुंजमाणे किं ओरालियसरीरकायजोग जुंजति ओरालियमीसासरीरकायजोगंजुंजति ? किं वेउव्वियसरीरजोगं जुंजति वेउव्विमीसासरीरकायजोगं जुंजति ? किं आहारगसरीरकायजोगं जुंजइ आहारगमीसासरीरकायजोगं जुंजति ? किं कम्मगसरीर कायजोगं जुंजइ ? गोयमा ! ओरालियसरीरकायजोगंपि जुंजति ओरालिमीसासरीरकायजोगं पि जुंजइ, णो वेउव्वियसरीरकायजोगं जुंजति णो वेउव्वियामीसासरीर कायजोगं जुंजति, णो आहारगसरीरकायजोगं जुंजति णो आहारगमीसासरीरकायजोगं जुंजति, कम्मगसरीरकायजोगं पि जुंजति, पढमऽअट्ठमेसु समएसु ओरालियसरीरकायजोगं जुंजति, बितियं-छट्ठ-सतमेसु समएसु ओरालियमीसगसरीरकायजोगं गुंजति, ततिय-चउत्थपंचमेसु समएसु कम्मगसरीरकायजोग जुंजति । २१७३

— पण्ण० पद ३६, ओव० सू० १७४/१७६

केवलि समुद्घात का स्वरूप—आवर्जीकरण असंख्यात समय के अन्तर्मुहूर्त का होता है। उदीरणावलिका में कर्म के प्रक्षेप की क्रिया को आवर्जीकरण कहते हैं।

केवलि समुद्घात आठ समय की होती है। पहले समय में ऊँचे और नीचे लोकांतगामी अपने जीव प्रदेशों से, ज्ञानायोग से अपने शरीर जीतने मोटे भी दंडाकार बनाते हैं। दूसरे समय में दंडवत् बने हुए आत्मप्रदेशों से किवाड़ की तरह आजु-बाजू पूर्वापर दिशा में फैलाते हैं। तीसरे समय में कपारवत् बने हुए आत्मप्रदेशों से दक्षिण-उत्तर दिशा में फैलाते हैं—जिससे मथानी जैसा आकार हो जाता है। चौथे समय में लोक शिखर सहित मन्थान के आन्तरों को पूरते हैं। पांचवें समय में मंथान के आन्तरों के पूरक लोक (आत्मप्रदेशों) से संहृत करते हैं अर्थात् मंथानवत् हो जाते हैं। छट्ठे समय में मंथानवत् (दक्षिणोत्तर दिशावर्ती) आत्मप्रदेशों को संहृत करके कपाटवत् स्थित हो जाते हैं। सातवें समय में कपाटवत् (पूर्व-पश्चिमवर्ती) आत्मप्रदेशों को संहृत करके, दंडस्थ करते हैं और आठवें समय में दंडवत् (ऊपर-नीचे वर्ती) आत्मप्रदेशों को संहृत करते हैं। इसके बाद शरीरस्थ हो जाते हैं।

समुद्घात को प्राप्त केवली के मनोयोग की क्रिया नहीं होती है, वचनयोग की क्रिया नहीं होती है, किन्तु काययोग की क्रिया होती है।

काययोग की क्रिया करते हुए औदारिक शरीर काययोग भी होता है, औदारिकमिश्र काययोग भी होता है। वैक्रिय शरीर काययोग, वैक्रियमिश्र काययोग, आहारक शरीर काययोग, आहारक मिश्र काययोग नहीं होता है। कार्मण शरीर काययोग होता है।

पहले और आठवें समय में औदारिक शरीर काययोग होता है। दूसरे, छट्ठे और सातवें समय में औदारिकमिश्र शरीर काययोग होता है और तीसरे, चौथे और पांचवें समय में कार्मणशरीर काययोग होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·२ केवली समुद्घात के बाद योग की प्रवृत्ति

से णं भंते। तहासमुग्घायगते सिज्झति बुज्झइ मुच्चइ परिणिव्वाइ सव्व-दुक्खांणं अंतं करेति? गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, से णं तओ पडिनियत्तति, ततोपडिनियतित्ता ततो पच्छा मणजोगं पि जुंजति, वइजोगं पि जुंजति, कायजोगं पि जुंजति। २१७४

मणजोग जुंजमाणे किं सच्चमण जोगं जुंजति मोसमण जोगं जुंजति सच्चामोसमणजोगं जुंजति असच्चामोसमणजोगं जुंजति? गोयमा! सच्च मणजोगं जुंजति, णो मोसमणजोगं जुंजति णो संच्चामोसमणजोगं जुंजति, असच्चामोसमण जोगं पि जुंजइ।

वयजोगं जुंजमाणे किं सच्चवइजोगं जुंजति मोसवइ जोगं जुंजति सच्चामोसवइजोगं जुंजति असच्चामोसवइजोगं जुंजति? गोयमा! सच्चवइ-जोगं जुंजइ, णो मोसवइजोगं जुंजइ णो सच्चामोसवइ जोगं जुंजइ, असच्चा-मोसवइजोगं पि जुंजइ।

कायजोगं जुंजमाणे आगच्छेज्ज वा गच्छेज्ज वा चिट्ठेज्ज वा णिसीएज्जं वा तुयट्टेज्ज वा उल्लंघेज्ज वा पलंघेज्जं वा पाडिहारियं पीढ फलग-सेज्जा संथारगं पच्चप्पिणेज्जा। २१७४

—पण्ण० पद ३६

—ओव० सू० १७७ से १८०

भन्ते! क्या कोई समुद्घात गत (समुद्घात में स्थित रहते हुए ही।) सिद्ध होते हैं? बुद्ध होते हैं? मुक्त होते हैं? परिनिर्वृत्त होते हैं? सब दुःखों का अंत करते हैं? हे गौतम यह बात नहीं है। समुद्घात से प्रतिनिर्वृत्त होते हैं। यहाँ अर्थात् इस मनुष्य लोकगत शरीर में स्थित होते हैं। फिर मनोयोगी भी होता है, वचनयोगी भी होता है और काययोग भी होता है।

मनोयोग में संलग्न होते हुए सत्य मनोयोग की क्रिया करते हैं। असत्य मनोयोग की और सत्यमृषा मनोयोग की क्रिया नहीं करते हैं। असत्य-अमृषा मनोयोग की भी क्रिया करते हैं।

वचनयोग की क्रिया में प्रवृत्ति होते हुए सत्य वचनयोग की प्रवृत्ति करते हैं। मृषावचन-योग की और सत्य-मृषावचनयोग की प्रवृत्ति नहीं करते हैं। असत्य-अमृषा वचनयोग की भी प्रवृत्ति करते हैं।

टिप्पण—मनःपर्यवज्ञानी या अनुत्तर विमानवासी देवों के द्वारा मन से पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देने के लिए केवली भगवान् मनोयोग की प्रवृत्ति कहते हैं और जीवादि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पदार्थों की प्ररूपणा करते हुए सत्य वचनयोग की प्रवृत्ति करते हैं और आमन्त्रणादि में असत्य-अमृषा वचनयोग की प्रवृत्ति करते हैं। ऐसा टीकाकार ने कहा है।

काययोग की प्रवृत्ति करते हुए आते हैं, ठहरते हैं, बैठते हैं, सोते हैं, लांघते हैं, विशेष लांघते हैं, उत्क्षेपण (उछालना), अवक्षेपण (नीचे डालना) और तिर्यक्क्षेपण (आजु-बाजु या आगे पीछे रखना)। अथवा ऊँची, नीची और तिरछी गति करते हैं और लौटाने योग्य पटिये, शय्या और संस्तारक लौटाते हैं।

टिप्पण—केवलि समुद्घात के पश्चात् अन्तर्मुहूर्त में योग निरोध होता है।

•३ योग निरोध और सिद्धि

से णं भंते ! तहासजोगी सिज्झति जाव अंतं करेति ? गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे। से णं पुव्वामेव सण्णिस्स पंचेदियस्स पज्जत्तयस्स जहण्णजोगिस्स हेट्ठा असंखेज्जगुणपरिहीणं पढमं मणजोगं णिरुंभइ, ततो अणंतरं च णं बेइंदियस्स पज्जत्तगस्स जहण्णजोगिस्स हेट्ठा असंखेज्जगुणपरिहीणं दोच्चं वइजोगं णिरुंभति, तसो अणंतरं च णं सुहुमस्स पणगजीवस्स अपज्जत्तयस्स जहण्णजोगिस्स हेट्ठा असंखेज्जगुणपरिहीणं तच्चं कायजोगं णिरुंभति।

से णं एतेणं उवाएणं पढमं मणजोगं णिरुंभइ, मणजोगं णिरुंभित्ता वइजोगं णिरुंभति, वइजोगंणिरुंभित्ता कायजोगं णिरुंभति, कायजोगं णिरुंभित्ता जोगणिरोहंकरेति, जोगणिरोहंकरेत्ता अजोगयं पाउणति, अजोगयं पाडणित्ता ईसीहस्सपंचक्खरुच्चारणद्धाए असंखेज्जसमइयं अंतोमुहुत्तियं सेलेसीं पडिवज्जइ × × ×। एगसमएणं अविग्गहेणं उड्ढं गंता सागारोवउत्ते सिज्झति बुज्झति०। २१७

—पण्ण० पद ३६

—ओव० सू १८१ से १८२

भंते। क्या सयोगी (मन, वचन और काय से सक्रिय) सिद्ध होते हैं ?.... यावत् सर्व दुःखों का अंत करते हैं। ऐसा आशय ठीक नहीं है।

वे सबसे पहले पर्याप्तक संज्ञी पंचेन्द्रिय के जघन्य मनोयोग के नीचे स्तर से असंख्यात गुणहीन मनोयोग का निरोध करते हैं। अर्थात् योगनिरोध का आरंभ करने वाले केवली सबसे पहले पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय के अल्पतम मानसिक योग के असंख्यातवें भाग जितने मनोयोग रहता है, शेष सबका निरोध कर देते हैं।

इसके बाद पर्याप्त द्वीन्द्रिय जीव के जघन्य वचनयोग के नीचले स्तर से भी असंख्यात गुणहीन दूसरे वचनयोग का निरोध करते हैं। अर्थात् उस जीव का निम्नतम स्तरीय वाचिक प्रवृत्ति असंख्यातवें भाग जितनी वाचिक प्रवृत्ति रहती है, शेष सबका निरोध करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके पश्चात् अपर्याप्त सूक्ष्मपनक (फूलन) जीव के जघन्य योग के नीचले स्तर से असंख्यात गुणहीन तीसरे काययोग का निरोध करते हैं।

इस उपाय से पहले मनोयोग की प्रवृत्ति को रोक करके वचनयोग की प्रवृत्ति को रोकते हैं। वचनयोग की प्रवृत्ति को रोककर काययोग की प्रवृत्ति का निरोध करते हैं काययोग की प्रवृत्ति को रोककर, योगनिरोध (मन-वचन-काय से संबंधित होने वाली आत्मा की प्रवृत्ति को रोक) करते हैं।

टिप्पण—'एएणं उवाएणं' शब्दों से यह अर्थ झलकता है कि—केवली तथा कथित (पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और अपर्याप्तपनक।) जीवों की निम्नस्तरीय योग प्रवृत्ति के असंख्यातवें भाग जितनी रही हुई योग प्रवृत्ति को समय-समय में कमशः रोकते हुए, पूर्णतः योग निरोध करते हैं।

पज्जत्तमेत्त सन्निस्स, जत्तियाइं जइन्न जोगिस्स।
होंति मनोदव्वाइं, तव्वावारो य जम्मत्तो॥
तदसंखगुण विहीणं, समए समए निरुंभमाणो सो।
मणसो सव्वनिरोहं, करेअसंखेज्ज समएहिं॥
एवमन्यदपि सूत्रद्वयं नेयम्।.....

—टीकायां उद्धृतगाथे

अर्थात् जघन्ययोगी अर्थात् संज्ञी की जितनी मनोद्रव्य की और मनोयोग की प्रवृत्ति की मात्रा होती है, उससे भी असंख्यात गुणहीन मात्रा में मन का समय-समय पर निरोध करते हुए, केवली असंख्यात समय में मनका पूर्णतः निरोध करते हैं।

इसी प्रकार शेष दो सूत्रों के विषय में भी यही समझना चाहिए।

काययोग के निरोध के बाद तो योगनिरोध हो ही जाता है। फिर अलग से योग-निरोध का कथन क्यों किया गया है?—चूंकि वीर्य के द्वारा योगों की प्रवृत्ति होती है। उस योग प्रवृत्ति के मूलकरण वीर्य का निरोध जहाँ तक नहीं होता है वहाँ तक पूर्णतः योग-निरोध नहीं माना जाता। उस करणवीर्य का निरोध भी अकरण वीर्य से हो जाता है। अर्थात् काययोग के निरोध के बाद केवली करणवीर्य से हटकर, अकरणवीर्य में पूर्णतः स्थित हो जाते हैं। संभवतः यही दर्शाने के लिए योगनिरोध और अयोगता का कथन अलग से हुआ है।

योगनिरोध करके अयोगी अवस्था से प्राप्त होते हैं। अयोगी अवस्था (मन, वचन और काय की क्रिया से रहित अवस्था को प्राप्त करके, ईषत्स्पृष्ट पांच ह्रस्व अक्षरों के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उच्चारण करने जितने काल भी असंख्यात समय के अन्तर्मुहूर्त के काल से शैलेशी अवस्था को प्राप्त होते हैं।

टिप्पण—अयोगी अवस्था के अलग से कथन में यह भी रहस्य हो सकता है कि जो आत्मपरिणति योगनिरोध के लिए प्रवृत्त हुई थी उसका भी, कार्य पूरा हो जाने के कारण शमन हो गया।

एक समय में ऊँचे जाकर, साकारोपयोग में सिद्ध होते हैं।

४ टीका—'कइ समइए ण' मित्यादि सुगमं, आवर्जीकरणानन्तरं चाव्यवधानेन केवलिसमुद्घातमारभते, स च कतिसामयिक इत्याशङ्कायां तत्समयनिरुपणार्थमाह—'कइ समइए ण' मित्यादि सुगमं, तत्र यस्मिन् समये यत्करोति तद्दर्शयति—'तं जहा—पढमे समए' इत्यादि, इदमपि सुगमं, प्रागेव व्याख्यातत्वात्, नवरमेवं भावार्थो—यथाऽऽद्यैश्चतुर्भिः समयैः क्रमेणात्मप्रदेशानां विस्तारणं तथैव प्रतिलोमं क्रमेण संहरणमिति, उक्तं चैतदन्यत्रापि—उड्ढं अहो य लोगंतिगामिणं सो सदेहविक्खंभं। पढमे समयंमि दंडं करेइ बिइयंमि य कवाडं ॥१॥ तइयसमयंमि मंथं चउत्थए लोगपूरणं कुणइ। पडिलोमं साहरण काउं तो होइ देहत्थो ॥२॥ अस्मिंश्च समुद्घाते क्रियमाणे सति यो योगो व्याप्रियते तमभिधित्सुराह—'से णं भंते!' इत्यादि, तत्र मनोयोगं वाग्योगं वा न व्यापारयति, प्रयोजनाभावात्, आह च धम्मसार मूलटीकायां हरिभद्रसूरिः—"मनोवचसी तदा न व्यापारयति, प्रयोजनाभावात्" काययोगं पुनर्युञ्जान औदारिककाययोगमौदारिकमिश्रकाययोगं कार्मणकाययोगं वा युनक्ति, न शेषं लब्ध्युपजीवनाभावेन शेषस्य काययोगस्यासंभवात्, तत्र प्रथमे अष्टमे च समये केवलमौदारिकमेव शरीरं व्याप्रियते इत्यौदारिककाययोगः, द्वितीये षष्ठे सप्तमे च समये कार्मणशरीरस्यापि व्याप्रियमाणत्वात् औदारिकमिश्रकाययोगः, तृतीयचतुर्थपञ्चमेषु तु समयेषु केवलमेव कार्मणशरीरव्यापार भागिति कार्मणकाययोगः, आह च भाष्यकृत्—"न किर समुग्घातगतो मणवइजोगप्पयोयणं कुणइ। ओरालियजोगं पुण जुंजइ पढमट्ठमे समए ॥१॥ उभयव्वावाराओ तम्मीसं बीयछट्ठसत्तमए। तियचउत्थपंचमे कम्मगं तु तम्मत्तचेट्ठाओ ॥२॥

'से णं भंते!' इत्यादि, स भदन्त! केवली तथा दण्डकपाटादिक्रमेण समुद्घातं गतः सन् सिद्धयति—निष्ठितार्थो भवति? स च 'वर्त्तमानसामीप्ये वर्त्तमानवद्वे' तिवचनात् सेत्स्यन्नपि व्यवहारत उच्यते तत आह—बुध्यते-अवगच्छति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केवलज्ञानेन यथाऽहं निश्चयतो निष्ठितार्थो भविष्यामि निःशेषकर्मांशापगमतः तत आह—मुच्यतेऽशेषकर्मांशैरिति गम्यते, मुच्यमानश्च कर्मणुवेदनापरितापरहितो भवति तत आह—परिनिर्वाति—सामस्त्येन शीतीभवति, समस्तमेतदेकेन पर्यायेण स्पष्टयति—सर्वदुःखानामन्तं करोतीति, भगवानाह—गौतम ! नायमर्थः समर्थो—नायमर्थः सङ्गतो यः समुद्घातं गतः सर्वदुःखानामन्तं करोतीति, योगनिरोधस्याद्याप्यकृतत्वात्, सयोगस्य च वक्ष्यमाणयुक्त्या सिद्धचभावादिति भावः, ततः किं करोतीत्यत आह—से ण' मित्यादि, सः—अधिकृतसमुद्घातगतः णमिति वाक्यालङ्कारे ततः समुद्घातात् प्रतिनिवर्त्तते, प्रतिनिवर्त्य च ततः—प्रतिनिवर्त्तनात् पश्चादनन्तरं मनोयोगमपि वाग्योगमपि काययोगमपि युनक्ति—व्यापारयति, यतः स भगवान् भवधारणीयकर्मसु नामगोत्रवेदनीयेष्वचिन्त्यमाहात्म्यसमुद्घातवशतः प्रभूतेष्वायुषा सह समीकृतेष्वप्यन्तर्मुहूर्त्तभाविपरमपदत्वतस्तस्मिन् काले यद्यनुत्तरोपपातिकादिना देवेन मनसा पृच्छ्यते तर्हि व्याकरणादिना मनः पुद्गलान् गृहीत्वा मनोयोगं युनक्ति, तमपि सत्यमसत्यामृषारूपं वा, मनुष्यादिना पृष्टः सन्नपृष्टो वा कार्यवशतो वाक्पुद्गलात् गृहीत्वा वाग्योगं तमपि सत्यमसत्यामृषा वा, न शेषान् वाग्मनसोर्योगान्, क्षीणरागादित्वात्, आगमनादौ चौदारिकादिकाययोगं, तथाहि—भगवान् कार्यवशतः कुतश्चित् स्थानात् विवक्षिते स्थाने आगच्छेत्, यदिवा क्वापि गंच्छेत्, अथवा तिष्ठेत्-उद्ध्वंस्थानेन वाऽवतिष्ठेत् निषीदेद्वा तथाविधश्रमापगमाय त्वग्वर्त्तनं वा कुर्यात्, अथवा विवक्षिते स्थाने तथाविधसम्पातिमसत्त्वाकुलां भूमिमवलोक्य तत्परिहाराय जन्तुरक्षानिमित्तमुल्लङ्घनं प्रलङ्घनं वा कुर्यात्, तत्र सहजात् पादविक्षेपान्मनागधिकतरः पादविक्षेपः उल्लङ्घनं स एवातिविकटः प्रलङ्घनं, यदिवा प्रातिहारिकं पीठफलकशय्यासंस्तारकं प्रत्यर्पयेत्, यस्मादानीतं तस्मै समर्पयेत्, इह भगवता आयश्यामेन प्रातिहारिकपीठफलकादीनां प्रत्यर्पणमेवोक्तं ततोऽवसीयते नियमादन्तर्मुहूर्त्तावशेषायुष्क एवावर्ज्जीकरणादिकमारभते, नप्रभूतावशेषायुष्कः, अन्यथा ग्रहणस्यापि सम्भवात्तदप्युपादीयते, एतेन यदाहुरेके—'जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्ते शेषे समुद्घातमारभते उत्कर्षतः षट्सु मासेषु शेषेष्वि' ति तदपास्तं द्रष्टव्यं, षट्सु मासेषु कदाचिदपान्तराले वर्षाकालसम्भवात् तन्निमित्तं पीठफलकादीनामादानमप्युपपद्येत, न च तत्सूत्रसम्मतमिति तत्प्ररूपणमुत्सूत्रमवसेयं, एतच्चोत्सूत्रंआवश्यकेऽपि समुद्घातानन्तरमव्यवधानेन शैलेश्यभिधानात्, (यतः) तत्सूत्रं 'दंडकवाडे मंथंतरे य साहारणा सरीरत्थे। भासाजोगनिरोहे सेलेसी सिज्झणा चेव ॥१॥ यदि पुनरुत्कर्षतः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षण्मासरूपमपान्तरालं भवेत्ततस्तदप्यभिधीयते, न चोक्तं, तस्मादेव अयुक्तमेतदिति, तथा चाह भाष्यकारः—"कम्मलहुयाए समओ भिन्नमुहुत्तावसेसओ कालो। अन्नेजहन्नमेयं छम्मासुक्कोसमिच्छंति ॥१॥ तत्तोऽनंतरसेलेसीवयणओ जं च पाडिहारीणं। पच्चप्पणमेव सुए इहरा गहणंपि होज्जाहि ॥२॥ अत्र कर्म्मलघुतानिमित्तं समुद्घातस्य समयः अवसरो भिन्नमुहूर्त्तावशेषकालः, शेषं सुगमं, तदेवमन्तर्मुहूर्त्तकालं यथायोगं योगत्रयव्यापारभाक् केवली भूत्वा तदनन्तरमत्यन्ताप्रकम्पं लेश्यातीतं परमनिर्जराकारणं ध्यानं प्रतिपत्सुरवश्यं योगनिरोधायोपक्रमते, योगे सति यथोक्तरूपस्य ध्यानस्यासम्भवात्, तथाहियोगपरिणामो लेश्या, तदन्वयव्यतिरेकानुविधानात्, ततो यावद्योगस्तावदश्यंभाविनी लेश्येति न लेश्यातीतध्यान सम्भवः, अपिच—यावद्योगस्तावत्कर्मबन्धोऽपि,' जोगा पयडिपएसं ठिइअणुभागं कसायओ कुणइ' इति वचनात्, केवलं स कर्म्मबन्धः केवलयोगनिमित्तत्वात् समयत्रयावस्थायी, तथाहि—प्रथमसमये कर्म बध्यते, द्वितीय समये वेद्यते, तृतीये तु समये तत्कर्माकर्मी भवति, तत्र यद्यपि समयद्वयरूपस्थितिकानि कर्माणि म्रियन्ते, पूर्वाणि पूर्वाणि कर्माणि प्रलयमुपगच्छन्ति, तथापि समये समये सन्तत्या कर्मादाने प्रवर्त्तमाने सति न मोक्षः स्याद्, अथ चावश्यं मोक्षं गन्तव्यं तस्मात् कुरुते योगनिरोधमिति, उक्तं च—"स ततो योगनिरोधं करोति लेश्यानिरोधमभिकांक्षन्। समयस्थितिं च बन्धं योगनिमित्तं स निरुरुत्सुः ॥१॥ समये समये कर्मादाने सति सन्ततेर्न मोक्षः स्यात्। यद्यपि हि विमुच्यन्ते स्थितिक्षयात् पूर्वकर्म्माणि ॥२॥ नाकर्मणो हि वीर्यं योगद्रव्येण भवति जीवस्य। तस्यावस्थानेन तु सिद्धः समयस्थितेर्बन्धः ॥३॥" अत्र बन्धस्य समयमात्रस्थितिकता बन्धसमयमतिरिच्य वेदितव्या भाष्यमप्येनं पूर्वोक्तं सकलमपि प्रमेयं पुष्णाति, तथा च तद्वृतो ग्रन्थः—"विणिवित्तसमुग्घाओ तिण्णिवि जोगे जिणो पउंजिज्जा। सच्चमसच्चामोसं च सो मणं तह वईजोगं ॥१॥ ओरालियकायजोगं गमणाई पाडिहारियाणं वा। पच्चप्पणं करेज्जा जोगनिरोहं तओ कुणइ ॥२॥ किन्न सजोगी सिज्झइ ? स बंधहेउत्ति जं सजोगोऽयं। न समेइ परमसुक्कं स निज्जराकारणं परमं ॥३॥"

'से णं भंते ! तहा सजोगी सिज्झइ' इत्यादि, सुगमं, योगनिरोधं कुर्वन् प्रथमं मनोयोगं निरुणद्धि, तच्च पर्याप्तमात्रसंज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य प्रथमसमये यावन्ति मनोद्रव्याणि यावन्मात्रश्च तद्व्यापारः तस्मादसंख्येयगुणहीनं मनोयोगं प्रतिसमयं निरुन्धानोऽसंख्येयैः समयैः साकल्येन निरुणद्धि, उक्तं च—"पज्जत्तमेत्तसण्णिस्स जत्तियाइं जहण्णजोगिस्स। होंति मणोदव्वाइं तव्वावारो य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जम्मत्तो ॥१॥ तदसंखगुणविहीणं समये समये निरुंभमाणो सो। मणसो सव्व-निरोहं करे असंखेज्जसमएहिं ॥२॥" एतदेवाह—'से णं भंते !' इत्यादि, सः अधिकृतकेवली योगनिरोधं चिकीर्षन् पूर्वमेव संज्ञिनः पर्याप्तस्य जघन्ययोगिनः सत्कस्य मनोयोगस्येति गम्यतेऽधस्तात् असंख्येयगुणपरिहीनं समये समये निरुन्धानोऽसंख्येयैः समयैः साकल्येनेति गम्यते प्रथमं मनोयोगं निरुणद्धि, 'ततोऽनन्तरं च ण' मित्यादि, तस्मात् मनोयोगनिरोधादनन्तरं चशब्दो वाक्यसमुच्चये णमिति वाक्यालङ्कारे द्वीन्द्रियस्य पर्याप्तस्य जघन्ययोगिनः सत्कस्य वाग्योगस्येति गम्यतेऽधस्तात् वाग्योगं असंख्येयगुणपरिहीनं समये समये निरुन्धानोऽसंख्येयैः समयैः साकल्येनेति गम्यते द्वितीयं वाग्योगं निरुणद्धि, आह च भाष्यकृत्—पज्जत्त-मित्तबेदिय जहण्णवइजोगपज्जवा जे उ। तदसंखगुणविहीणं समये समये निरुंभंतो ॥१॥ सव्ववइजोगरोहं संखाईएहिं कुणइ समएहिं" 'ततोऽणंतरंच ण' मित्यादि, ततो वाग्योगादनन्तरं च णं प्राग्वत् सूक्ष्मस्य पनकजीवस्य अपर्याप्तकस्य प्रथमसमयोत्पन्नस्येति भावार्थः जघन्ययोगिनः सर्वाल्पवीर्यस्य पनकजीवस्य यः काययोगस्तस्याधस्तादसंख्येयगुणहीणं काययोगं समये समये निरुन्धन् असंख्येयैः समयैः समस्तमपीति गम्यते तृतीयं काययोगं निरुणद्धि, तं च काययोगं निरुन्धानः सूक्ष्मक्रियमप्रतिपाति ध्यानमधिरोहति, तत्सामर्थ्याच्च वदनोदरादिविवरपूरणेन संकुचितदेहत्रिभागवर्त्तिप्रदेशो भवति, तथा चाह भाष्यकृत्—"तत्तो य सुहुमपणगस्स पढमसमयोववण्णस्स। जो किर जहण्णजोगी तदसंखेज्जगुणहीणमेक्केक्के। समएहिं रुंभमाणो देहति भागं च मुंचंतो ॥१॥ रुंभइ स काययोगं संखाईएहिं चेव समएहिं" काययोगनिरोधकालान्तरे चरमे अन्तर्मुहूर्त्ते वेदनीयादित्रयस्य प्रत्येकं स्थितिः सर्वापवर्त्तनया अपवर्त्तयायोग्यवस्था-समाना क्रियते गुणश्रेणिक्रमविरचितप्रदेशा, तद्यथा—प्रथमस्थितौस्तोकाः प्रदेशाः द्वितीयस्यां स्थितौ ततोऽसंख्येयगुणाः, तृतीयस्यां ततोऽप्यसंख्येयगुणाः, एवं तावद्वाच्यं यावच्चरमा स्थितिः, स्थापना, एताः प्रथमसमयगृहीतदलिकनिर्वर्त्तिता गुणश्रेणयः, एवं प्रतिसमयगृहीतदलिकनिर्वर्त्तिताः कर्मत्रयस्य प्रत्येकमसंख्येया द्रष्टव्याः, अन्तर्मुहूर्त्तसमयानामसंख्यातत्वात्, आयुषस्तु स्थितिर्यथाबद्धं वावतिष्ठते, सा च गुणश्रेणिक्रमविपरीतक्रमदलिकरचना, स्थापना चेयम्—अयं च सर्वोऽपि मनोयोगादिनिरोधो मन्दमतिसुखावबोधार्थमाचार्येण स्थूरदृष्ट्या प्रतिपादितः, यदि पुनः सूक्ष्मदृष्ट्या तत्स्वरूपजिज्ञासा भवति तदा पञ्चसंग्रहटीका निभालनीया, तस्या-मतिनिपुणं प्रपञ्चेन तस्याभिधानात्, इह च ग्रन्थगौरवभयान्नास्माभिरभिहितः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'से ण' मित्यादि, सोऽधिकृतः केवली णमिति पूर्ववत् एतेनानन्तरोदितेनोपायेन—उपायप्रकारेण, शेषं सुगमं यावदयोगतां 'पाउणइ' त्ति प्राप्नोति, अयोगताप्राप्त्यभिमुखो भवति इति भावार्थः, अयोगतां च प्राप्य—अयोगताप्राप्त्यभिमुखो भूत्वा 'ईसिं' ति स्तोकं कालं शैलेशीं प्रतिपद्यते इति सम्बन्धः, कियता कालेन विशिष्टां इत्यत आह—ह्रस्वपञ्चाक्षरोच्चारणाद्धया, किमुक्तं भवति ?—नातिद्रुतं नातिविलम्बितं किन्तु मध्यमेन प्रकारेण यावता कालेन ड्डञणनम इत्येवंरूपाणि पञ्चाक्षराणि उच्चार्य्यन्ते तावता कालेन विशिष्टामिति, एतावान् कालः किंसमयप्रमाण इति निरूपणार्थमाह—असङ्ख्येयसामयिकां असङ्ख्येयसमयप्रमाणां, यच्चासंख्येयसमयप्रमाणं तच्च जघन्यतोऽप्यन्तर्मुहूर्तप्रमाणं तत एषाऽप्यन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणेति ख्यापनायाह—'आन्तर्मुहूर्त्तिकीं शैलेशी' मिति, शीलं चारित्रं तच्चेह निश्चयतः सर्वसंवररूपं तद् ग्राह्यं, तस्यैव सर्वोत्तमत्वात्, तस्येशः शीलेशः तस्य याऽवस्था सा शैलेशी तां प्रतिपद्यते, तदानीं च ध्यानं ध्यायति व्यवच्छिन्नक्रियमप्रतिपाति, उक्तं च—"सीलं व समाहाणं निच्छयओ सव्वसंवरो सो य। तस्सेसो सीलेसो सेलेसी होइ तदवत्था ॥१॥ हस्सक्खराइं मज्झेण जेण कालेण पंच भण्णंति। अच्छइ सेलेसिगतो तत्तियमित्तं तओ कालं ॥२॥ तणुरोहारभाओ झायइ सुहुमकिरियानियट्टिं सो। वोच्छिन्नकिरियमप्पडिवाई सेलेसिकालंमि ॥३॥" न केवलं शैलेशीं प्रतिपद्यते पूर्वरचितगुणश्रेणीकं च वेदनीयादिकं कर्म अनुभवितुमिति शेषः, प्रतिपद्यते च तत्पूर्वं काययोगनिरोधगते चरमेऽन्तर्मुहूर्त्ते रचिता गुणश्रेणयः—प्राग्निर्दिष्टस्वरूपा यस्य तत्तथा, ततः किं करोतीत्यत आह 'तीसे सेलेसिअद्धाए' इत्यादि, तस्यां शैलेश्यद्धायां वर्त्तमानोऽसंख्येयाभिर्गुणश्रेणीभिः पूर्वनिर्वर्त्तिताभिः प्रापिता ये कर्मत्रयस्य पृथक् प्रतिसमयमसंख्येयाः कर्मस्कन्धास्तान् 'क्षपयन्' विपाकतः प्रदेशतो वा वेदनेन निर्जरयन् चरमे समये वेदनीयमायुर्नामगोत्रमित्येतान् चतुरः 'कर्मांशान्' कर्मभेदान् युगपत् क्षपयति, युगपच्च क्षपयित्वा ततोऽनन्तरसमये औदारिकतैजसकार्मणरूपाणि त्रीणि शरीराणि 'सव्वाहिं विप्पजहणाहिं' इति सर्वैर्विप्रहानैः, सूत्रे स्त्रीत्वं प्राकृतत्वात्, विप्रजहाति, किमुक्तं भवति ?—यथा प्राक् देशतस्त्यक्तवान् तथा न त्यजति, किन्तु सर्वैः प्रकारैः परित्यजतीति, उक्तं च "ओरालियाइं चयइ सव्वाहिं विप्पजहणाहिं जं भणियं। निस्सेसं तहा न जहा देसच्चाएण सो पुव्विं ॥४॥" परित्यज्य च तस्मिन्नेव समये कोशबन्धविमोक्षलक्षणसहकारिसमुत्थस्वभावविशेषादेरण्डफलमिव भगवानपि कर्मसम्बन्धविमोक्षलक्षणसहकारिसमुत्थस्वभावविशेषाद्ऊर्ध्वं लोकान्ते गत्वेति सम्बन्धः उक्तं च

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"एरण्डफलं च जहा बंधच्छेदेरियं दुयं जाति। तह कम्मबंधणछेदणेरितो जाति सिद्धोवि ॥१॥" कथं गच्छतीत्यत आह—'अविग्रहेण' विग्रहस्याभावोऽविग्रहः तेन एकेन समयेनास्पृशन्, समयान्तरप्रदेशान्तरास्पर्शनेनेत्यर्थः, ऋजुश्रेणिं च प्रतिपन्नः, एतदुक्तं भवति—यावत्स्वाकाशप्रदेशेष्विहावगाढस्तावत एव प्रदेशानूर्ध्वमृजुश्रेण्याऽवगाहमानो विवक्षिताच्च समयादन्यत् समयान्तरमस्पृशन् गत्वा, तथा चोक्तमावश्यकचूर्णौ—"जत्तिए जीवोऽवगाढो तावइयाए ओगाहणाए उड्ढं उज्जुगं गच्छति न वंकं, बिइयं च समयं न फुसइ" इति भाष्यकारोऽप्याह—रिउसेढिं पडिवन्नो समयपएसंतरं अफुसमाणो। एगसमएण सिज्झइ अह सागारोवउत्तो सो ॥१॥" इत्थमूर्ध्वं गत्वा किमित्याह—साकारोपयुक्तः सन् सिद्ध्यति—निष्ठितार्थो भवति, सर्वा हि लब्धयः साकारोपयोगोपयुक्तस्य उपजायते नानाकारोपयुक्तस्य, सिद्धिरप्येषा सर्वलब्ध्युत्तमा लब्धिरिति साकारोपयोगोपयुक्तस्योपजायतेः आह च—"सव्वाओ लद्धीओ जं सागारोवओगलाभाओ। तेणेह सिद्धिलद्धी उप्पज्जइ तदुवउत्तस्स ॥१॥"

५ तोयमिव नालियाए तत्तायसभायणोदरत्थं वा।
परिहाउ कमेण जहा तह जोणिमणोजलं जाण ॥

—ध्याश० गा ७५

टीका—'तोयमिव' उदकमिव 'नालिकायाः' घटिकायाः, तथा तप्तं च तदायसभाजनं—लोहभाजनं च तप्तायसभाजनं तदुदरस्थं, वा विकल्पार्थः, परिहीयते क्रमेण यथा, एष दृष्टान्तः, अयमर्थोपनयः—'तथा' तेनैव प्रकारेण योगिमन एवाविकलत्वाज्जलं योगिमनोजलं 'जानीहि' अवबुद्ध्यस्व, तथाऽप्रमादानलतप्तजीव भाजनस्थं मनोजलं परिहीयत इति भावना, अलमतिविस्तरेणेति गाथार्थः ॥७५॥

'अपनयति ततोऽपिजिनवैद्य' इति वचनाद् एवं तावत् केवली मनोयोगं निरुणद्धीत्युक्तम्, अधुना शेषयोगनियोगविधिमभिधातुकाम आह—

एवं चिय वयजोगं निरुंभइ कमेण कायजोगंपि।
तो सेलेसोव्व थिरो सेलेसी केवली होइ ॥

—ध्याश० गा ७६

टीका—'एवमेव' एभिरेव विषादिदृष्टान्तैः, किं?—वाग्योगं निरुणद्धि, तथा क्रमेण काययोगमपि निरुणद्धीति वर्तते, ततः 'शैलेश इव' मेरुरिव स्थिरः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन् शैलेशी केवली भवतीति गाथार्थः ॥७६॥ इह च भावार्थो नमस्कारनियुक्तौ प्रतिपादित एव, तथापि स्थानाशून्यार्थं स एव लेशतः प्रतिपाद्यते, तत्र योगानामिदं स्वरूपम्—औदारिकादिशरीरयुक्तस्याऽऽत्मनो वीर्यपरिणतिविशेषः काययोगः, तथौदारिकवैक्रियाहारकशरीरव्यापाराहृतवाग्द्रव्यसमूहसाचिव्याज्जीवव्यापारो वाग्योगः, तथौदारिकवैक्रियाहारकशरीरव्यापाराहृतमनोद्रव्यसाचिव्याज्जीवव्यापारो मनोयोग इति, स चामीषां निरोधं कुर्वन् कालतोऽन्तर्मुहूर्तं भाविनि परमपदे भवोपग्राहिकर्मसु च वेदनीयादिषु समुद्घाततो निसर्गेण वा समस्थितिषु सत्स्वेतस्मिन् काले करोति × × × ।

आवर्जीकरण करने के बाद—जल्दी ही केवली समुद्घात का आरम्भ करते हैं। केवली समुद्घात के आठ समयों में—जिस प्रकार आदि के चार समयों में अनुक्रमतः आत्म प्रदेशों का विस्तार करते हैं उसी प्रकार प्रतिलोम क्रम से संहरण करते हैं। प्रथम समय में ऊर्ध्व और अधो लोकान्त तक स्वदेव प्रमाण विस्तार वाला दंड करते हैं, दूसरे समय में कपाट करते हैं, तीसरे समय में मंथन करते हैं और चतुर्थ समय में लोक-व्याप्त करते हैं। इसके बाद प्रतिलोम क्रम से संहरण कर शरीर में स्थित होते हैं।

अस्तु केवली समुद्घात में मनोयोग तथा वचन योग का व्यापार नहीं होता है क्योंकि उनके व्यापार का कोई अर्थ नहीं है। इस सम्बन्ध में धर्मसार की मूल टीका में हरिभद्रसूरि ने कहा है—"उस समय में प्रयोजन न होने से मन और वचन योग का व्यापार नहीं करता है। काययोग का व्यापार करता हुआ—औदारिक काययोग, औदारिक मिश्र काययोग और कार्मण काययोग का व्यापार करता है—अवशेष काययोग का व्यापार नहीं करता है। क्योंकि लब्धि का उपयोग न होने से बाकी काययोग असंभव है। उनमें प्रथम और आठवें समय में औदारिक शरीर का व्यापार है। अतः केवल औदारिक काययोग होता है। तीसरे, चौथे व पांचवें समय में केवल कार्मण काययोग है क्योंकि केवल कार्मण शरीर का व्यापार वाला है, दूसरे, छट्ठे व सातवें समय में कार्मण शरीर का भी व्यापार है अतः औदारिक मिश्र काययोग है। इस सम्बन्ध में भाष्यकार ने कहा है—"वस्तुतः केवली समुद्घात गत जीव मन और वचन योग का व्यापार नहीं करता है परन्तु प्रथम और आठवें समय में औदारिक काययोग का व्यापार करता है। औदारिक और कार्मण-दोनों का व्यापार होने से औदारिक मिश्र काययोग—दूसरे, छट्ठे व सातवें समय में होता है। तीसरे, चौथे और पांचवें समय में मात्र कार्मण शरीर भी चेष्टा होने से कार्मण काययोग होता है।

केवली समुद्घात गत जीव सर्व दुःखों का अंत नहीं करता है परन्तु केवली समुद्घात से निवृत्त होकर—मनयोग, वचनयोग व काययोग का व्यापार करता है क्योंकि उन भगवान के नाम, गोत्र और वेदनीय रूप भवधारणीय कर्म बहुत (घने) होते हैं। उस समय उसके अचिन्त्य प्रभाव वाले समुद्घात के वश से आयुष्य के समान करने के बाद अन्तर्मुहूर्त में परमपद—मोक्ष प्राप्त योग्य होने के—उस समय जो अनुत्तरौपातिक आदि देव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन से पूछते हैं तो उत्तर देने के लिए मन के पुद्गलों को ग्रहण कर मनोयोग का व्यापार करते हैं वे भी सत्य या असत्य-मृषा रूप मन का व्यापार करते हैं। मनुष्यादि के पूछने पर कार्यवश से वचनयोग के पुद्गलों को ग्रहण कर वचनयोग का व्यापार करते हैं और सत्य या असत्य मृषा रूप वचन का व्यापार करते हैं बाकी के मन और वचन के योग की क्रिया नहीं करते हैं क्योंकि उनके रागादि क्षीण हो गया है। गमना-गमन में औदारिक काययोग का व्यापार करते हैं। इस प्रकार भगवन् कार्यनिमित्त विवक्षित स्थान से विवक्षित स्थान आते हैं। अथवा किसी स्थान पर जाते हैं, खड़े रहते हैं या बैठते हैं। उस प्रकार का श्रम दूर करने के लिए आलोटना अथवा विवक्षित स्थान में उस प्रकार के आकर पड़े हुए जीवों से व्याप्त भूमि को देख कर उनका त्याग करने के लिए प्राणियों की रक्षा के लिए उल्लंघन अथवा प्रलंघन करते हैं। उनमें स्वाभाविक पाद विक्षेप, गमन करते कांइक अधिक गमन करना—उल्लंघन, मोटे पैर भरना—प्रलंघन अथवा पास में रहे हुए पीठ-आसन, फलक-पाटिया, आसन-वसति और संस्तारक वापस देवे अर्थात् जिनके पास से लाये, उन्हें वापस सौंपें। यहाँ आर्यश्यामासूरि ने पास रहे हुए आसन, फलक आदि वापस सौंपने का कहा है। इससे जाना जाता है कि केवली समुद्घात से निवृत्त होने बाद उनका आयुष्य अन्तर्मुहूर्त का बाकी रहता है उस समय में आवर्जीकरणादि करते हैं परन्तु अधिक आयुष्य बाकी रहने पर नहीं करते हैं। यदि ऐसा न हो तो उनके ग्रहण करने का भी संभव होने से उन्हें ग्रहण भी करना पड़ता है। इस कथन को कोई आचार्य कहते हैं—जघन्य से अंतर्मुहूर्त बाकी होता है और उत्कृष्टतः छः मास अवशेष रहे उस समय समुद्घात करते हैं। उसका निरास जानना चाहिए। क्योंकि छः मास के बीच में वर्षा काल भी संभव होने से—उस निमित्त से आसन, फलकादि ग्रहण भी संभव है। परन्तु वह सूत्र से सम्मत नहीं है अतः वह प्ररूपणा उत्सूत्र जाननी चाहिए। तथा आवश्यक सूत्र में भी समुद्घात करने के बाद तुरन्त शैलेशी कथन से यह उत्सूत्र प्ररूपणा जाननी चाहिए। वह सूत्र इस प्रकार है—"दंड, कपाट, मंथन, आंतरा, पूर्ति, संहरण, शरीरस्थ, वचनयोग निरोध, शैलेशी और सिद्ध अनुक्रमतः जानना चाहिए। जो उत्कृष्ट से छः मास का अन्तर पड़ता है तो भी कहा जाता है परन्तु कथन नहीं किया है अतः वह अयुक्त है। इस प्रकार भाष्यकार ने कहा है—कर्म को न्यून करने के निमित्त (समुद्घात) शेष अन्तर्मुहूर्त का काल जानना चाहिए। अन्य आचार्यों ने इससे जघन्य काल कहा है और छः मास का उत्कृष्ट काल कहा है (वह अयुक्त है।) क्योंकि बाद में तुरन्त शैलेशी का कथन होने से और पास में हुए पीठ, फलकादि को वापस करने का सूत्र कहा है। अन्यथा उसे ग्रहण करने का भी कहा है। यहाँ इस प्रमाण से अन्तर्मुहूर्त तक यथा संभव तीन योग के व्यापार वाले केवली होकर, उसके बाद अत्यन्त स्थिरता रूप, लेश्या रहित और परम निर्जरा का कारण ध्यान को स्वीकार करने की इच्छा वाले योग-निरोध करने के लिए प्रारम्भ करते हैं। क्योंकि योग होने के समय उक्त स्वरूप वाले ध्यान का होना असम्भव है। इस दृष्टि से योग परिणाम—लेश्या है क्योंकि योग के अन्वय और व्यतिरेक के अनुसार है। इस कारण जहाँ तक योग है वहाँ तक लेश्या है। इस कारण लेश्या रहित ध्यान संभव नहीं है। तथा जहाँ तक योग है वहाँ तक कर्मबंध भी है क्योंकि योग से प्रकृति और प्रदेश बंध होता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है तथा स्थिति और अनुभागबंध कषाय से होता है ऐसा शास्त्र का वचन है। केवल वह कर्मबंध मात्र योग निमित्तक होने से दो समय का है। वह इस प्रकार है—प्रथम समय कर्म बंधता है और दूसरे समय में वेदन होता है और तीसरे समय में कर्म अकर्मरूप होता है। उनमें जो कोई दो समय की स्थितिवाला कर्म करता है और पूर्व-पूर्व का कर्म नष्ट होता जाता है। तो भी समय-समय में निरन्तर कर्म का ग्रहण होता है तो मोक्ष नहीं होता और अवश्य मोक्ष जायेंगे। अतः वे योग निरोध करते हैं। वे लेश्या का निरोध करने की इच्छा करते हैं और योग निमित्त समस्थिति बंध को रोकने की इच्छा करते हुए योग निरोध करते हैं। समय-समय में कर्म-ग्रहण करने से तो कर्म प्रवाह लिए हुए मोक्ष नहीं होता है चूंकि स्थिति के क्षय के पूर्व कर्म का छूटकारा होता है। और कर्म रहित का योग द्रव्य से वीर्य नहीं होता है परन्तु योग के अवस्थान से समय स्थिति का बंध होता है। बंध का समय मात्र की स्थिति बंध के समय को छोड़ कर जाननी चाहिए। भाष्य भी इस पूर्वोक्त सर्व प्रमेय अर्थ को पुष्ट करते हैं। उस प्रकार उसका यह ग्रन्थ है—"समुद्घात से निवृत्त होकर जिन तीन योग का व्यापार करते हैं। सत्य, असत्यमृषा मनोयोग, वचनयोग, और गमनादि में औदारिक काययोग का व्यापार करते हैं। उसी प्रकार पार्श्ववर्ती पीठ, फलकादि का प्रत्यर्पण—वापस देने की क्रिया कहते हैं और उसके बाद योग निरोध कहते हैं। सयोगी कैसे सिद्ध नहीं होते हैं क्योंकि बंध का हेतु योग है, उस योग से सयोगी परम निर्जरा का कारण परम शुक्ल ध्यान को प्राप्त नहीं होता है।

चूंकि योग निरोध करते हुए सर्वप्रथम मनोयोग का निरोध करते हैं और उस पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय के प्रथम समय जितने मनोद्रव्य और जितना उसका व्यापार होता है उससे असंख्यात गुण न्यून मनोयोग का प्रतिसमय निरोध करता हुआ असंख्यात समय से सर्वथा निरोध करता है। कहा है कि—"जघन्य योग वाला पर्याप्त मात्र संज्ञी के जितने मनोद्रव्य होते हैं और जितना उसका व्यापार होता है उससे असंख्यात गुण हीन समय-समय में रोकता हुआ असंख्यात समय में मन को सर्वथा निरोध करता है।

प्रस्तुत केवली योग का निरोध करने की इच्छा करते हुए सर्वप्रथम जघन्य योग वाले संज्ञी पर्याप्त के (मनोयोग का यहाँ अध्याहार है) अर्थात् उसके मनोयोग के नीचे असंख्यात गुण-हीन समय-समय में रोकता हुआ असंख्यात समय में सर्वथा प्रथम मनोयोग का निरोध करता है। मनोयोग को रोकने के बाद जघन्य योग वाले बेइन्द्रिय पर्याप्त के वचन योग के नीचे के (यहाँ वचनयोग पद अर्थात् जान लेना) वचनयोग को असंख्यात गुण हीन समय-समय में रोकता हुआ सर्वथा द्वितीय वचनयोग का निरोध करता है। इस सम्बन्ध में भाष्यकार ने कहा है—"पर्याप्त मात्र द्वीन्द्रिय के जघन्य वचन योग के जो पर्याप्त है उससे असंख्यात गुण-हीन वचनयोग को समय-समय में रोकता हुआ असंख्यात समय में सर्व वचनयोग निरोध करता है।

इसके बाद—प्रथम समय में उत्पन्न हुआ अपर्याप्त सूक्ष्म पनक (निगोद) जीव का जघन्य योग वाला—जो सबसे अल्प वीर्य वाला सूक्ष्मपनक जीव का जो काययोग है उसके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नीचे असंख्यात गुण हीन काययोग को समय-समय रोकता हुआ असंख्यात समय में समस्त रूप में तीसरे काययोग का निरोध करता है। वह काययोग का निरोध करता हुआ सूक्ष्म क्रिय अप्रतिपाती शुक्ल ध्यान को प्राप्त होता है। वह ध्यान के सामर्थ्य से मुख और उदरादि के रिक्त भाग को पूरने (भरने) के लिए शरीर के तीसरे भाग के आत्म प्रदेशों को संकुचित करता है अर्थात् शरीर दो तृतीयांश भाग में आत्म-प्रदेश घन रूप होते हैं। जैसे कि सात हस्त प्रमाण शरीर होते हैं तो उसका तीसरा भाग दो हाथ और आठ अंगुल संकुचित होता है और चार हस्त और सोलह अंगुल प्रमाण आत्मप्रदेश घन रूप होते हैं। इसी प्रकार भाष्यकार ने कहा है—"उसके बाद प्रथम समय में उत्पन्न हुए सूक्ष्मपनक का जो जघन्य काययोग है उससे असंख्यात गुण हीन काययोग को एक-एक समय में रोकता हुआ और शरीर के तीसरे भाग का त्याग करता हुआ असंख्यात समय में काययोग का निरोध करता है। काययोग के निरोध काल में अन्तिम अन्तर्मुहूर्त में वेदनीय आदि तीन कर्म में प्रत्येक कर्म की स्थिति सर्व अपवर्तना करण से घटाकर ? गुणश्रेणि के क्रम से कर्मप्रदेशों की रचनावली अयोगी अवस्थान काल प्रमाण करता है।

अस्तु मयोयोगादि का निरोध मंद बुद्धि वाले को सुख पूर्वक बोध देने के लिए आचार्य ने स्थूल दृष्टि से वर्णन किया है यावत् अयोगी रूप को प्राप्त करता है अर्थात् अयोगी रूप प्राप्ति के सम्मुख होता है। अयोगी रूप की प्राप्ति के सम्मुख होकर ईसिं—ईषत्—थोड़े काल में शैलेशी को प्राप्त करता है। पांच ह्रस्व अक्षर के उच्चारण के काल प्रमाण-शैलेशी की अवस्था है। इसकी स्थिति असख्यात समय प्रमाण है—ऐसा सूत्रकार ने कहा है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण शैलेशी को प्राप्त करता है। उस समय व्यवच्छिन्न क्रिया अप्रतिपाती शुक्ल ध्यान ऊपर आरुढ होता है। कहा है—"शील-समाधि और वह सर्व संवर रूप जाननी चाहिए। उसका जो स्वामी उसकी अवस्था—शैलेशी है।

(१) शैलेशी को प्राप्त हुआ जितने काल में पांच ह्रस्वअक्षर (ड़-ऱ-ण-न-म अथवा अ-इ-उ, ऋ-लृ) का मध्यम प्रकार से उच्चारण हो उतना काल।

(२) काययोग के निरोध के प्रारम्भ से सूक्ष्म क्रिय अनिवृत्ति ध्यान हो और शैलेशी काल में व्यवच्छिन्न क्रिय अप्रतिपाती ध्यान होता है।

(३) केवल शैलेशी को प्राप्त करता है—ऐसा नहीं परन्तु पूर्व में रचित गुण श्रेणि वाले कर्म से अनुभव के लिए प्राप्त करता है। अर्थात् पूर्व में काययोग के निरोध के अन्तिम अन्तर्मुहूर्त में पूर्व में जिनका स्वरूप कहा है—ऐसी गुण श्रेणि जिसकी रचित हुई है ऐसे कर्म का अनुभव प्राप्त करता है।

अस्तु वह शैलेशी काल में रहता हुआ पूर्व में रचित असंख्याती गुण श्रेणी को प्राप्त हुआ तीन कर्म के अलग-अलग प्रति समय असंख्यात कर्म स्कन्धों को 'क्षपयन्' विपाक से व प्रदेश से वेदने योग्य कर्म की निर्जरा करता हुआ अन्तिम समय में वेदनीय, आयुष्य-नाम और गोत्र—ये चार कर्म के भेदों से एक साथ क्षय करता है। एक साथ क्षय करके—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसके बाद के समय में औदारिक, तैजस और कार्मण रूप तीन शरीर का सर्व प्रकार से त्याग करने योग्य-त्याग करता है अर्थात् सर्व प्रकार से त्याग करता है। जिस प्रकार पूर्व शरीर का देश से त्याग करता था वैसा त्याग नहीं करता है, परन्तु सर्व प्रकार से त्याग करता है। कहा है—औदारिकादि शरीर को सर्व प्रकार से त्याग से छोड़ता है। (वैक्रियमिश्र काययोग में किसी भी प्रकार का समुद्घात नहीं होता है। तथा न मरण होता है।) जैसे बंधन के विच्छेद से प्रेरित हुआ एरंड फल जाता है वैसे ही कर्म बंध के विच्छेद से प्रेरित हुआ सिद्ध भी होता है। आवश्यक चूर्णि में कहा है—जितने आकाश प्रदेशों में जीव स्थित है उतनी अवगाहना से ऊपर ऋजु गति से जाता है। साकार उपयोगवाला एक समय में सिद्ध होता है।

वे सिद्ध औदारिकादि शरीर रहित है। क्योंकि सिद्धों के प्रथम समय में उनका त्याग होता है।

चूंकि रागादि की उत्पत्ति में परिणामी कारण आत्मा है और सहकारी कारण रागादि मोहनीय कर्म है सिद्धों के रागादि मोहनीय कर्म नहीं है उसको पूर्व ही ध्यानाग्नि से भस्मसात् किया है। धर्म संग्रहणी में कहा है—क्षीण हुए उस रागादि सहकारी कारण के अभाव से वापस उत्पन्न नहीं होते हैं क्योंकि रागादि रहित को संक्लेश नहीं होता है। कहा है—जैसे बीज अत्यन्त दग्ध होने से अंकुर की उत्पत्ति नहीं होती है वैसे ही कर्म रूपी बीज के दग्ध होने से अंकुर उत्पन्न नहीं होता है। वे सिद्ध जाति, जन्म, जरा, वृद्धावस्था, मरण और बंधन ज्ञानावरणीयादि कर्मों से मुक्त है।

०६ मनोयोगी और वचनयोगी का समुद्घात क्षेत्र

जोगाणुवादेण पंचमणजोगी पंचवचिजोगी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ?

—षट० खं २। ६। सू ५२। पु ७। पृष्ठ० ३४०

टीका—एत्थ सत्थाणे दो वि सत्थाणाणि अत्थि, समुग्घादे वेयणकसाय-वेउव्विय-तेजाहार-मारणंतियसमुग्घादा अत्थि, उट्ठाविदउत्तरसरीराणं मारणंतियगदाणं पि मण-वचि-जोगसंभवस्स विरोहाभावादो। उववादो णत्थि, तत्थ कायजोग मोत्तूणण्णजोगाभावादो।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे।

—षट० खं २। ६। सू ५३। पु ७। पृष्ठ० ३४०

टीका—एदस्सत्थो वुच्चदे। तं जहा—सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदा एदे दस वि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे ; तेजाहारसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जस्स संखेज्जदिभागे ; मारणंतिय समुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे अच्छंति। उववादं णत्थि, मणजोग-वचिजोगाणं विवक्खादो।

योग मार्गणानुसार पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीव स्वस्थान और समुद्घात की अपेक्षा कितने क्षेत्र में रहते हैं।

यहाँ स्वस्थान में दोनों स्वस्थान और समुद्घात में वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात, वैक्रियिक समुद्घात, तैजस समुद्घात, आहारक समुद्घात एवं मारणान्तिक समुद्घात है, क्योंकि, उत्तर शरीर को उत्पन्न करने वाले, मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त जीवों के भी मनोयोग वचनयोग के होने में कोई विरोध नहीं है। मनोयोगी व वचनयोगी जीवों में उपपाद पद नहीं है क्योंकि, उनमें काययोग को छोड़ कर अन्य योगों का अभाव है।

पाँचों मनोयोगी व पांचों वचनयोगी जीव उक्त पदों से लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।

अस्तु—स्वस्थान-स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात, वैक्रियिक समुद्घात को प्राप्त ये दश ही जीव तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में और अढाई द्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। तैजस समुद्घात व आहारक समुद्घात को प्राप्त उक्त जीव चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और अढाई द्वीप के संख्यातवें भाग में रहते हैं। मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त उक्त जीव तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में तथा मनुष्य तथा तिर्यग्लोक की अपेक्षा असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। उपपाद पद नहीं है। क्योंकि मनोयोग व वचनयोग की यहाँ विवक्षा है।

७ काययोगी का समुद्घात क्षेत्र

औदारिकमिश्र काययोगी का समुद्घात क्षेत्र

कायजोगि-ओरालियमिस्सकायजोगी सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?

—षट० खं २। ६। सू ५४। पु ७। पृष्ठ० ३४१

टीका—सुगममेदं।

सव्वलोए।

—षट० खं २। ६। सू ५५। पु ७। पृष्ठ० ३४१

टीका—एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे। तं जहा—सत्थाणवेयण-कसाय-मारणंतिय-उववादेहि सव्वलोगे। कुदो ? आणंतियादो। विहारवदिसत्थाण-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेउव्वियपदेहि कायजोगिणो तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। कुदो ? जगपदरस्स असंखेज्जदिभागमेत्ततसरासिस्स गहणादो। तेजाहारपदेहि कायजोगिणो चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जस्स संखेज्जदिभागे। दंड-कवाड—पदर-लोगपूरणेहि कायजोगिणो ओघभंगो।

काययोगी और औदारिकमिश्र काययोगी जीव स्वस्थान समुद्घात व उपपाद पद से कितने क्षेत्र में रहते हैं।

काययोगी और औदारिकमिश्र काययोगी जीव उक्त पदों से सर्वलोक में रहते हैं।

स्वस्थान, वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात, मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद से पदों से काययोगी व औदारिकमिश्र काययोगी सर्वलोक में रहते हैं, क्योंकि वे अनंत हैं। विहार व स्वस्थान और वैक्रियिक समुद्घात पदों से काययोगी जीव तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में और अढाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं, क्योंकि जगप्रतर के असंख्यातवें भाग मात्र त्रसराशि का यहाँ ग्रहण है। तैजस समुद्घात और आहारक समुद्घात पदों से काययोगी जीव चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और अढाईद्वीप के संख्यातवें भाग में रहते हैं। दंड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण समुद्घात की अपेक्षा काययोगियों के क्षेत्र का निरूपण ओघ के समान है।

.०६ औदारिक काययोगी का समुद्घात क्षेत्र

ओरालियकायजोगी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ?

—षट० खं २। ६। सू ५६। पु ७। पृष्ठ० ३४२

टीका सुगमं।

सव्वलोए।

—षट० खं २। ६। सू ५७। पु ७। पृष्ठ० ३४२

टीका—एदस्सत्थो वुच्चदे सत्थाण-वेयण-कसाय-मारणंतियेहि सव्वलोगे। कुदो ? सव्वत्थावट्ठाणाविरोहिजोवाणमोरालियकायजोगीणं मारणंतियादो। विहारपदेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। कुदो ? तसणालिं मोत्तूणण्णत्थ विहाराभावादो। वेउव्विय-तेजा-दंडसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। णवरि तेजासमुग्घादगदा माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे। कवाड-पदर-लोगपूरणाहारपदाणि णत्थि, ओरालियकायजोगेण तेसिं विरोहादो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उववादं णत्थि ।

षट० खं २ । ६ । सू ५८ । पु ७ । पृष्ठ० ३४३

टीका—ओरालियकायजोगेण सह एदस्स विराहादो ।

औदारिक काययोगी जीव स्वस्थान व समुद्घात की अपेक्षा सर्वलोक में रहते हैं ।

अस्तु स्वस्थान, वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात और मारणान्तिक समुद्घात की अपेक्षा उक्त जीव सर्वलोक में रहते हैं, क्योंकि सर्वत्र अवस्थान के अविरोधी औदारिक काययोगी जीवों के मारणान्तिक समुद्घात होता है । विहार पद की अपेक्षा तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में और अढाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं ? क्योंकि त्रसराशि को छोड़कर उक्त जीवों का अन्यत्र विहार नहीं है । वैक्रियिक समुद्घात, तैजस समुद्घात और दण्ड समुद्घात को प्राप्त उक्त जीव चारों लोकों के असंख्यातवें भाग में और अढाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं । विशेष इतना है कि तैजस समुद्घात को प्राप्त उस जीव मानुष क्षेत्र के संख्यातवें भाग में रहते हैं । कपाट समुद्घात, प्रतर समुद्घात, लोकपुरण समुद्घात और आहारक समुद्घात पद नहीं है, क्योंकि औदारिक काययोग के साथ उनका विरोध है ।

·०७ वैक्रिय काययोगी का समुद्घात क्षेत्र

वेउव्वियकायजोगी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ?

—षट० खं २ । ६ सू ५९ । पु ७ । पृष्ठ० ३४३

टीका—सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।

—षट० खं० २ । ६ । सू ६० । पु ७ पृष्ठ० ३४३

टीका—एदस्सत्थो वुच्चदे—सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्वियपदेहि वेउव्वियकायजोगिणो तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाईज्जादो असंखेज्जगुणे । कुदो ? पहाणीकयजोइसियरासित्तादो । मारणंतियसमुग्घादेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । एत्थ ओवट्टणं जाणिय कायव्वं ।

उववादो णत्थि ।

—षट० खं २ । ६ सू ६१ । पु ७ । पृष्ठ० ३४३ । ४

टीका—वेउव्वियकायजोगेण उववादस्स विरोहादो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैक्रिय काययोगी जीव स्वस्थान व समुद्घात से लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।

अस्तु स्वस्थान-स्वस्थान, विहार वत्स्वस्थान, वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात और वैक्रियिक समुद्घात पद से वैक्रिय काययोगी जीव तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में और अढाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं, क्योंकि यहाँ ज्योतिषी राशि की प्रधानता है। मारणान्तिक समुद्घात की अपेक्षा तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोक की अपेक्षा असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। यहाँ अपवर्तन करके जानना चाहिए।

वैक्रियिक काययोगियों के उपपाद नहीं होता है क्योंकि वैक्रियिक काययोग के साथ उपपाद पद का विरोध है।

०८ वैक्रियमिश्र काययोगी का समुद्घात क्षेत्र

वेउव्वियमिस्सकायजोगी सत्थाणेण केवडिखेत्ते ?

—षट० खं २। ६। सू ६२। पु ७। पृष्ठ० ३४४

टीका—सुगमं।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे।

—षट० खं २। ६। सू ६३। पु ७। पृष्ठ० ३४४

टीका—एदस्स अत्थो—तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे। कुदो ? देवरासिस्स संखेज्जदिभागमेत्तवेउव्वियमिस्सकायजोगिदव्वुवलंभादो।

समुग्घाद-उववादा णत्थि।

—षट० खं २। ६। सू ६४। पु ७। पृष्ठ० ३४४। ४५

टीका—वेउव्वियमिस्सेण सह एदेसिं विरोहादो। होदु मारणंतिय-उववादेहि सह विरोहो, ण वेयण-कसायसमुग्घादेहि। तम्हा वेउव्वियमिस्सम्मि समुग्घादो णत्थि त्ति ण घडदे ? एत्थ परिहारो वुच्चदे—सत्थाणखेत्तादो वाचयदुवारेण लोगस्स असंखेज्जदिभागेण वेयण-कसाय-वेउव्विय-विहारवदि-सत्थाण-तेजाहारखेत्ताणि अपुधभूदत्तादो तत्थेव लीणाणि त्ति एदाणि एत्थ खुद्दाबंधे ण परिग्गहिदाणि। तदो मारणंतियमेक्कं चेव केवलिसमुग्घादेण सहिदं एत्थ समुग्घादणिद्देसेण घेप्पदि। सो च समुग्घादो एत्थ णत्थि, तेणेसो ण दोसो त्ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अधवा वेयण-कसाय-वेउव्विय-तेजाहाराणं पि एत्थ खुद्दाबंधे अत्थि समुग्घादवव-एसो, किंतु ण ते पहाणं, मारणंतियखेत्तादो तेसिमहियखेत्ताभावादो। तदो पहाणं मारणंतियपदं जत्थ अत्थि, तत्थ समुग्घादो वि अत्थि। जत्थ तं णत्थि, ण तत्थ समुग्घादो त्ति वुच्चदे। तदो दोहि पयारेहि 'समुग्घादो णत्थि' त्ति ण विरुज्झदे।

वैक्रियिकमिश्र काययोगी जीव स्वस्थान की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।

अस्तु - वैक्रियिकमिश्र काययोगी जीव स्वस्थान से तीनों लोकों के असंख्यातवें भाग में, अढाईद्वीप से असंख्यातगुणे और तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में रहते हैं, क्योंकि देवराशि के संख्यातवें भाग मात्र वैक्रियिकमिश्र काययोगी द्रव्य पाया जाता है।

समुद्घात व उपपाद पद नहीं है, क्योंकि वैक्रियिकमिश्र काययोग के साथ इनका विरोध है।

प्रश्न उठता है कि वैक्रियिकमिश्र काययोग की मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद पदों के साथ भले ही विरोध हो, किन्तु वेदना समुद्घात और कषाय समुद्घात के साथ कोई विरोध नहीं है। अतः वैक्रियिकमिश्र काययोग में समुद्घात नहीं है यह वचन घटित नहीं होता है।

समाधान—उक्त शंका का यहाँ परिहार कहा जाता है। स्वस्थान क्षेत्र से कथन की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग से वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात, वैक्रियिक समुद्घात, विहार वत्समुद्घात, तैजस समुद्घात और आहारक समुद्घात के क्षेत्र अभिन्न होने से उसी में लीन है। अतएव ये यहाँ क्षुद्रकबंध में नहीं ग्रहण किये गये हैं। इसी कारण केवलि-समुद्घात सहित एक मारणान्तिक समुद्घात ही यहाँ समुद्घात निर्देश से ग्रहण किया जाता है। और वह समुद्घात यहाँ है नहीं, इसलिए यह कोई दोष नहीं है। अथवा वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात, वैक्रियिक समुद्घात, तैजस समुद्घात और आहारक समुदघात का भी यहाँ 'क्षुद्रकबंध' में समुद्घात संज्ञा प्राप्त है। क्योंकि वे प्रधान नहीं है। क्योंकि मारणान्तिक क्षेत्र की अपेक्षा उनके अधिक क्षेत्र का अभाव है। अतः जहाँ प्रधान मारणान्तिक पद है वहाँ समुद्घात भी है। किन्तु वह नहीं है वहाँ समुद्घात भी नहीं है, ऐसा कहा जाता है। इस प्रकार दोनों प्रकारों से 'समुद्घात' नहीं है। यह वचन विरोध से प्राप्त नहीं होता है।

०९ आहारक काययोगी का समुद्घात क्षेत्र

आहारकायजोगी वेउव्वियकायजोगिभंगो।

—षट० खं २। ६। सू ६५। पु ७। पृष्ठ० ३४५

टीका—एसो दव्वट्ठियणिद्देसो। पज्जवट्ठियणयं पडुच्च भण्णमाणे अत्थि तदो विसेसो। तं जहा—सत्थाण-विहारवदिसत्थाणपरिणदा चदुण्हं लोगाणम-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संखेज्जदिभागे, माणुस खेत्तस्स संखेज्जदिभागे। मारणंतियसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे त्ति।

आहारक काययोगियों के क्षेत्र का निरूपण वैक्रियिक काययोगियों के क्षेत्र के समान हैं।

अस्तु—यह द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा निर्देश है। पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा निरूपण करने पर वैक्रियिक काययोगियों के क्षेत्र में यहाँ विशेषता है। वह इस प्रकार है—स्वस्थान और विहारवत्स्वस्थान क्षेत्र के परिणत आहारक काययोगी जीव चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और मानुष क्षेत्र के संख्यातवें भाग में रहते हैं। मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त उक्त जीव चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और अढाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं।

·१० आहारकमिश्र काययोगी का समुद्घात क्षेत्र

आहारमिस्सकायजोगी केवडिखेत्ते ?

—षट० खं २। ६। सू ६६। पु ७। पृष्ठ० ३४६

टीका एसो वि दव्वट्ठियणिद्देसो, लोगस्स असंखेज्जदिभागत्तणेण दोण्हं खेत्ताणं समाणत्तं पेक्खिय पवुत्तीदो। पज्जवट्ठियणयं पडुच्च भेदो अत्थि। तंजहा आहारमिस्सकायजोगी चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे त्ति।

आहारिकमिश्र काययोगियों का क्षेत्र वैक्रियिकमिश्र काययोगियों के समान है।

अस्तु यह भी द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा निर्देश है। क्योंकि, लोक के असंख्यातवें भागत्व से दोनों क्षेत्रों की समानता की अपेक्षा कर इसकी प्रवृत्ति हुई है। पर्यायर्थिक नय की अपेक्षा भेद है। वह इस प्रकार है—आहारकमिश्र काययोगी जीव चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और मानुष क्षेत्र के संख्यातवें भाग में रहते हैं।

·११ कार्मण काययोगी का समुद्घात क्षेत्र

कम्मइयकायजोगी केवडिखेत्ते ?

—षट० खं २। ६। सू ६७। पु ७। पृष्ठ० ३४६

टीका—सुगमं।

सव्वलोगे।

—षट० खं २। ६। सू ६८। पु ७। पृष्ठ० ३४६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टीका—एदं देसामासियसुत्तं ण होदि, वुत्तत्थं मोत्तूणदेण सूइदत्थाभावादो। कधं कम्मइयकायजोगिरासी सव्वलोए ? ण, तस्स अणंतस्स सव्वजीवरासिस्स असंखेज्जदिभागत्तणण तदविरोहादो।

कार्मण काययोगी जीव सर्वलोक में रहते हैं। क्योंकि कार्मण काययोगी राशि के समान सर्वराशि के असंख्यातवें भाग होने से उसमें कोई विरोध नहीं है अतः कार्मण काययोगी जीव राशि सर्वलोक में रहती है।

·३१ सयोगी जीवों का विभाग

·१ सयोगी औघिक जीवों का विभाग

जीवा णं भंते ! किं सच्चमणप्पओगी जाव किं कम्मासरीरकाप्पयओगी ? गोयमा ! जीवा सव्वे वि ताव होज्जा सच्चमणप्पओगी वि जाव वेउव्वियमीसासरीरकायप्पओगी वि कम्मासरीरकायप्पओगी वि, अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगी य १ अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य २ अहवेगे य आहारगमीसारीरकायप्पयोगी ३ अहवेगे य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य ४ चउभंगो, अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य १ अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य २ अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य ३ अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य ४, एएजीवाणं अट्ठ भंगा।

—पण्ण० प १६। सू १०७७। पृष्ठ० २६२

टीका—'जीवा णं भंते !' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, निर्वचनसूत्रे सर्वेऽपि तावद् भवेयुः सत्यमनः प्रयोगिण इत्यादिरेको भङ्गः, किमुक्तं भवति ?—सदैव जीवा बहव एव सत्यमनःप्रयोगिणोऽप्यसत्यमनःप्रयोगिणोऽपि यावद् वैक्रियमिश्रशरीरकायप्रयोगिणोऽपि कार्मणशरीरकायप्रयोगिणोऽपि लभ्यन्ते, तत्र सदैव वैक्रियमिश्रशरीरकायप्रयोगिणो नारकादीनां सदैवोपपातोत्तरवैक्रियारम्भसम्भवात्, सदैव कार्मणशरीरकायप्रयोगिणः सर्वदैव वनस्पत्यादीनां विग्रहेणावान्तरगतौ लभ्यमानत्वात्, आहारकशरीरी व कदाचित्सर्वथा न लभ्यते, षण्मासान् यावदुत्कर्षतोऽन्तरसम्भवात्, यदापि लभ्यते तदापि जघन्यपदे एको द्वौ वा उत्कर्षतः सहस्रपृथक्त्वं, उक्तं च "आहारगाइं लोए छम्मासे जा न होंतिवि कयाई। उक्कोसेणं नियमा एक्कं समयं जहन्नेणं ॥१॥ होंताइं जहन्नेणं इक्कं दो तिण्णि पंचवा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हवंति। उक्कोसेणं जुगवं पुहुत्तमेत्तं सहस्साणं ॥२॥ ततो यदा आहारकशरीर-कायप्रयोगी आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी चैकोऽपि न लभ्यते तदा बहुवचन-विशिष्टत्रयोदशपदात्मक एको भंगः, त्रयोदशपदानामपि सदैव बहुत्वेनावस्थि-तत्वात्, यदा त्वेक आहारकशरीरकायप्रयोगी लभ्यते तदा द्वितीयः, तेऽपि यदा बहवो लभ्यन्ते तदा तृतीयः, एवमेव आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगिपदेनापिद्वौ भंगौ लभ्येते इत्येकयोगे चत्वारो भंगाः द्विकसंयोगेऽपि प्रत्येकमेकवचनबहु-वचनाभ्यां चत्वार इति सर्वसंख्या जीवपदेन नव भंगाः।

जीव (बहुवचन) क्या सत्यमनप्रयोग वाला है यावत् क्या कार्मणशरीरप्रयोग वाला है ?

१—सब जीव सत्यमनप्रयोग वाले, असत्यमनप्रयोग वाले यावत् वैक्रियमिश्र शरीर प्रयोग वाले तथा कार्मणशरीर कायप्रयोग वाले भी होते हैं। (यहाँ आहारक काययोग व आहारकमिश्र काययोग को छोड़ा है)।

अथवा एक आहारकशरीर कायप्रयोग वाला होता है, (१) अथवा कितनेक आहारक-शरीर कायप्रयोग वाले होते हैं, (२) अथवा एक आहारकमिश्र शरीर कायप्रयोग वाला होता है, (३) अथवा कितनेक आहारकमिश्र शरीर कायप्रयोग वाले होते हैं, (४) यह चतुर्भंगी जाननी चाहिए।

अथवा एक आहारकशरीर कायप्रयोग वाला और एक आहारकमिश्रशरीर काय-प्रयोग वाला होता है, (१) अथवा एक आहारकशरीर कायप्रयोग वाला और कितनेक आहारकमिश्रशरीर कायप्रयोग वाले होते है, (२) अथवा कितनेक आहारकशरीर कायप्रयोग वाले होते हैं और एक आहारकमिश्रशरीर कायप्रयोग वाला होता है, (३) अथवा कितनेक आहारकशरीर कायप्रयोग वाले होते हैं और कितनेक आहारकमिश्रशरीर कायप्रयोग वाले होते हैं। ४।

इस प्रकार जीवों के आश्रयी आठ भंग—विकल्प जानने चाहिए।

अस्तु सर्व जीव सत्यमनप्रयोग वाले होते हैं—इत्यादि प्रथम भंग-विकल्प होता है। तात्पर्य यह है कि सर्वदा घने जीव सत्यमनप्रयोग वाले, असत्यमनप्रयोग वाले, यावत् वैक्रिय-मिश्रशरीर कायप्रयोग वाले और कार्मणशरीर कायप्रयोग वाले भी होते हैं। नारकादि जीवों को हमेशा उपपात और उत्तरवैक्रिय का आरंभ सम्भव है। कार्मणशरीर कायप्रयोग वाले हमेशा होते हैं, क्योंकि वनस्पति आदि विग्रहगति से हमेशा अवान्तर गति में होते हैं। आहारक शरीरी कदाचित् सर्वथा नहीं होता है क्योंकि उसका उत्कृष्ट से छः मास तक का अन्तर संभव है। जब आहारकशरीरी होता है तब जघन्य से एक, दो और उत्कृष्ट से सहस्र पृथक्त्व—दो हजार से नव हजार तक होते हैं। कहा है—"लोक में आहारकशरीर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किसी को भी उत्कृष्ट छः मास तक अवश्य नहीं होता है। और जघन्य से एक समय तक नहीं होता है। जब होता है तब जघन्य से एक, दो, तीन अथवा पाँच होता है और उत्कृष्ट एक साथ सहस्र पृथक्त्व होता है। इस कारण जब आहारकशरीर कायप्रयोग वाला और आहारकमिश्र शरीर कायप्रयोग वाला एक भी नहीं होता है तब दो प्रयोग के सिवाय बहुवचन युक्त तेरह पद का प्रथम भंग होता है क्योंकि तेरह पदों का भी हमेशा बहुपन होता है।

जब एक आहारकशरीर-कायप्रयोग वाला होता है तब दूसरा भंग घटित होता है। वह भी जब घने होते हैं तब तीसरा विकल्प घटित होता है।

इस प्रकार ही आहारकमिश्रशरीर-कायप्रयोग पद से भी दो भंग होते हैं। इस प्रकार एक के योग में चार भांगे होते हैं।

द्विक संयोग में भी प्रत्येक के एकवचन और बहुवचन में चार भंग,

इस प्रकार सर्व संख्या में जीवपद के आश्रयी नव भंग होते हैं।

२ सयोगी नारकी जीवों का विभाग

णेरइया णं भंते ! किं सच्चमणजोगी जाव किं कम्मासरीरकायप्पओगी ? गोयमा ! णेरइया सव्वे वि ताव होज्जा सच्चमणजोगी वि जाव वेउव्वियमीसासरीरकायप्पओगी वि, अहवेगे य कम्मासरीरकायप्पओगी य १ अहवेगे य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य २।

—पण्ण० प १६। सू १०७८। पृष्ठ० २६२

टीका—नैरयिकपदे सत्यमनःप्रयोगिप्रभृतीनि वैक्रियमिश्रशरीरकायप्रयोगिपर्यन्तानि सदैव बहुवचनेन दश पदान्यवस्थितानीत्येको भंगः, अथ वैक्रियमिश्रशरीरकायप्रयोगिणः सदैव कथं लभ्यन्ते ? द्वादशमौहूर्त्तिकगत्युपपातविरहकालभावात्, उच्यते, उत्तरवैक्रियापेक्षया, तथाहि द्वादशमौहूर्तिको गत्युपपातविरहकालस्तथापि तदानीमपि उत्तरवैक्रियारम्भिणः संभवन्ति, उत्तरवैक्रियारम्भे च भवधारणीयं वैक्रियमिश्रं, तद्बलेनोत्तरवैक्रियारम्भात्, भवधारणीयप्रवेशे चोत्तरवैक्रियमिश्रं, उत्तरवैक्रियबलेन भवधारणीये प्रवेशात्, तत एवोत्तरवैक्रियापेक्षया भवधारणीयोत्तरवैक्रियमिश्रसंभवात् तदानीमपि वैक्रियशरीरमिश्रकायप्रयोगिणो नेरयिका लभ्यन्ते, कार्मणशरीरकायप्रयोगी च नैरयिकः कदाचिदेकोऽपि न लभ्यते, द्वादशमौहूर्त्तिकगत्युपपात विरहकालभावात्, यदापि लभ्यते तदापि जघन्यत एको द्वौ वा उत्कर्षतोऽसंख्येयाः, ततो यदा एकोऽपि कार्मणशरीरकायप्रयोगी न लभ्यते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तदा प्रथमो भंगो यदा पुनरेकस्तदा द्वितीयो यदा बहवस्तदा तृतीय इति, अत एव भंगाः भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कवैमानिकेषु भावनीयाः ।

१—सब नारकी जीव सत्यमनप्रयोग वाले यावत् वैक्रियमिश्रप्रयोग वाले होते हैं ।

(१) अथवा एक नारकी कार्मणशरीरकायप्रयोग वाला होता है । (२) अथवा कितनेक नारकी कार्मणशरीरकायप्रयोग वाले होते हैं ।

अस्तु नैरयिक पद में सत्यमनप्रयोग वाले से आरंभी वैक्रियमिश्र कायप्रयोग वाले पर्यन्त दस पद हमेशा बहुवचन से स्थित है । इस कारण यह प्रथम भंग है ।

प्रश्न उठता है कि—वैक्रियमिश्रशरीर कायप्रयोग वाले हमेशा कैसे हो सकते हैं ? क्योंकि नरकगति में बारह मुहूर्त का उपपात विरहकाल है ।

इसका उत्तर यह है कि—यह उत्तरवैक्रिय की अपेक्षा कहा है । वह इस प्रकार है—यद्यपि बारह मुहूर्त का गति में उपपात विरहकाल होता है, फिर भी उस समय भी उत्तरवैक्रिय शरीर का आरंभ करने वाले संभव है और उत्तरवैक्रिय के प्रारंभ में भवधारणीय वैक्रिय से मिश्र होता है, क्योंकि वैक्रिय शरीर के सामर्थ्य से उत्तरवैक्रिय का आरंभ करता है । भवधारणीय शरीर के प्रवेश में भी उत्तरवैक्रिय से मिश्र होता है, क्योंकि उत्तरवैक्रिय के बल से भवधारणीय शरीर में प्रवेश करता है । इस कारण उत्तरवैक्रिय की अपेक्षा भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय के मिश्र का संभव होने से उस समय भी वैक्रियमिश्रशरीर कायप्रयोग वाले नैरयिक होते हैं । कार्मणशरीर कायप्रयोग वाला नारकी कदाचित् एक भी न होते हो, क्योंकि बारह मुहूर्त की गति में उपपात विरहकाल होता है । जब होता है तब भी जघन्य एक, दो और उत्कृष्ट से असंख्यात होते हैं । इस कारण जब कार्मणशरीर कायप्रयोगवाला एक भी नहीं होता है तब प्रथम भंग होता है । जब एक होता है तब दूसरा भंग, जब घने होते हैं तब तीसरा भंग होता है ।

·३ सयोगी भवनवासियों का विभाग

एवं असुरकुमारा वि जाव थणियकुमारा वि ।

—पण्ण० प १६ । सू १०७९ । पृष्ठ० २६३

[टीका के लिए नारकी का पाठ देखो]

जैसा नारकी (बहुवचन) के विषय में कहा है वैसा ही असुरकुमारों यावत् स्तनित-कुमारों के विषय में भी जानना चाहिए ।

अस्तु नारकी की तरह यहाँ तीन भंग कहना चाहिए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·४ सयोगी एकेन्द्रिय का विभाग

,, पृथ्वीकायिक ,,

,, अप्कायिक ,,

,, तेउकायिक ,,

,, वायुकायिक ,,

,, वनस्पतिकायिक ,,

पुढविकाइया णं भंते ! किं ओरालियसरीरकायप्पओगी ओरालिमीसासरीरकायप्पओगी कम्मासरीरकायप्पओगी ? गोयमा ! पुढविकाइया णं ओरालियसरीरकायप्पओगी वि ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी वि कम्मासरीरकायप्पओगी वि। एवं जाव वणप्फतिकाइयाणं। णवरं वाउक्काइया वेउव्वियसरीरकायप्पओगी वि वेउव्वियमीसासरीरकायप्पओगी वि।

—पण्ण० प १६। सू १०८०। पृष्ठ० २६३

टीका—पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिषु औदारिकशरीरकायप्रयोगिणोऽपि औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगिणोऽपि कार्मणशरीरकायप्रयोगिणोऽपि सदा बहव एव लभ्यन्ते इति पदत्रयबहुवचनात्मकः प्रत्येकमेक एव भंगः, वायुकायिकेष्वौदारिकद्विकवैक्रियद्विककार्मणशरीरलक्षणपदपञ्चकबहुवचनात्मक एको भंगः, तेषु वैक्रियशरीरिणां वैक्रियमिश्रशरीरिणां च सदैव बहुत्वेन लभ्यमानत्वात्।

पृथ्वीकायिक जीव (बहुवचन) औदारिक शरीर कायप्रयोग वाले, औदारिकमिश्रशरीर कायप्रयोग वाले और कार्मणशरीर कायप्रयोग वाले भी होते हैं।

इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक जीवों के विषय में जानना चाहिए। किन्तु वायुकायिक जीव वैक्रियशरीर कायप्रयोग वाले और वैक्रियमिश्रशरीर कायप्रयोगवाले भी होते हैं।

पृथ्वी, अप्, अग्नि, वायु और वनस्पतिकाय में (बहुवचन) औदारिकशरीर-कायप्रयोगवाले, औदारिकमिश्रशरीर-कायप्रयोगवाले और कार्मणशरीर-कायप्रयोगवाले भी हमेशा बहुत होते हैं। अतः प्रत्येक में तीन पदों के बहुवचन रूप एक ही भंग होता है। वायुकायिकों में औदारिकद्विक, वैक्रियद्विक और कार्मणशरीर—इन पाँच पदों के बहुवचनरूप एक भंग होता है क्योंकि उनमें वैक्रियशरीरवाले और वैक्रियमिश्र शरीरवाले हमेशा बहुत होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·५ सयोगी द्वीन्द्रिय का विभाग
·६ ,, त्रीन्द्रिय ,,
·७ ,, चतुरिन्द्रिय ,,

बेइंदिया णं भंते ! किं ओरालियसरीरकायप्पओगी जाव कम्मासरीर-कायप्पओगी ? गोयमा ! बेइंदिया सव्वे वि ताव होज्जा असच्चामोसवइप्पओगी वि ओरालियसरीरकायप्पओगी वि ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी वि, अहवेगे य कम्मासरीरकायप्पओगी य १ । अहवेगे य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य २ । एवं जाव चउरिंदिया ।

—पण्ण० प १६ । सू १०८१ । पृष्ठ० २६३

टीका—द्वीन्द्रियेषु यद्यप्यान्तमौहूर्त्तिक उपपातविरहकालस्तथाप्युपपात-विरहकालोऽन्तर्मुहूर्त्तं लघु औदारिकमिश्रगतमन्तर्मुहूर्त्तमतिबृहत्प्रमाणमत औदा-रिकमिश्रशरीरकायप्रयोगिणोऽपि तेषु सदैव लभ्यन्ते, कार्मणशरीरकायप्रयोगी तु कदाचिदेकोऽपि न लभ्यते, आन्तर्मौहूर्त्तिकोपपातविरहकालभावात्, यदापि लभ्यते तदापि एको द्वौ वा उत्कर्षतोऽसंख्येयाः, ततो यदा एकोऽपि कार्मणशरीरकायप्रयोगी न लभ्यते तदा प्रथमो भंगः, यदा पुनरेकः कार्मणशरीरी लभ्यते तदा द्वितीयः, यदा बहवस्तदा तृतीय इति, एवं त्रिचतुरिन्द्रियेष्वपि भावनीयम् ।

सर्व बेइन्द्रिय असत्यमृषा वचनप्रयोगवाले, औदारिकशरीर कायप्रयोगवाले और औदारिकमिश्रशरीर कायप्रयोगवाले भी होते हैं अथवा एक कार्मणशरीर कायप्रयोगवाला भी होता है १—केतनेक कार्मणशरीर कायप्रयोगवाले भी होते हैं । २—इसी प्रकार तेइन्द्रिय तथा चतुरिन्द्रिय के विषय में जानना चाहिए ।

अस्तु—बेइन्द्रियों में जो कि अन्तर्मुहूर्तकाल का उपपात-विरहकाल है तो भी उपपात-विरहकाल का अन्तर्मुहूर्त छोटा है और औदारिकमिश्र का अन्तर्मुहूर्त बहुत मोटा है । अतः उनमें औदारिकमिश्रशरीर कायप्रयोगवाले भी हमेशा होते हैं । कार्मणशरीर कायप्रयोगवाले तो कदाचित् एक भी नहीं होते हैं । क्योंकि उनका उपपात-विरहकाल अन्तर्मुहूर्त होता है । जब वह होता है तब जघन्य से एक, दो और उत्कृष्ट से असंख्यात होते हैं । इस कारण जब एक भी कार्मणशरीर कायप्रयोग वाला नहीं होता है तब प्रथम भंग घटित होता है । जब एक कार्मणशरीर होता है तब द्वितीय भंग और जब बहुत होते हैं तब तीसरा भंग होता है ।

इसी प्रकार तेइन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय के विषय में समझना चाहिए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·८ सयोगी पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का विभाग

पंचेदियतिरिक्खजोणिया जहा नेरइया। णवरं ओरालियसरीरकायप्पओगी वि ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी वि, अहवेगे य कम्मासरीरकायप्पओगी य ? अहवेगे य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य २।

—पण्ण० प १६। सू १०८२। पृष्ठ० २६३

टीका—'पंचिंदियतिरिक्खजोणिया जहा नेरइया' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिका यथा नैरयिकास्तथा वक्तव्याः, नवरं वैक्रियमिश्रवैक्रियशरीरकायप्रयोगिस्थाने औदारिकऔदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगिणो वक्तव्याः, किमुक्तं भवति ? सत्यमनः प्रयोगिणोऽपीत्यादि तावद्वक्तव्यं यावदसत्यामृषावाग्योगिनोऽपि तत औदारिकशरीरकायप्रयोगिणोऽपि औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगिणऽपीति वक्तव्यं, एतानि दश पदानि बहुवचनेन सदाऽवस्थितानि, यद्यपि च तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाणामप्युपपातविरहकाल आन्तर्मुहूर्त्तिकस्तथाप्युपपातविरहकालान्तर्मुहूर्त्तं लघु औदारिकमिश्रान्तर्मुहूर्त्तमतिबृहदित्यत्रप्यौदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगिणः सदा लभ्यन्ते, यस्तु द्वादशमौहूर्त्तिक उपपातविरहकालः स गर्भव्युत्क्रान्तिकपञ्चेन्द्रियतिरश्चां न सामान्यपञ्चेन्द्रियतिरश्चामिति, कार्मणशरीरकायप्रयोगी तु तेष्वपि कदाचिदेकोऽपि न लभ्यते, आन्तर्मौहूर्त्तिकोपपातविरहकालभावात्, ततो यदा एकोऽपि कार्मणशरीरी न लभ्यते तदा प्रथमो भंगः यदा पुनरेको लभ्यते तदा द्वितीयः यदा बहवस्तदा तृतीयः।

पंचेन्द्रियतिर्यंच नारकी की तरह जानना चाहिए परन्तु वे औदारिकशरीरकायप्रयोग वाले भी और औदारिकमिश्रशरीर कायप्रयोगवाले भी होते हैं। अथवा एक कार्मणशरीर कायप्रयोगवाला होता है ? अथवा कितनेक कार्मणशरीर कायप्रयोगवाले होते हैं।

अस्तु—जैसा नारकी के संबंध में कहा—वैसा ही पंचेन्द्रिय तिर्यंचपंचेन्द्रिय के संबंध में जानना चाहिए। परन्तु वैक्रिय और वैक्रियमिश्रशरीर कायप्रयोगवालों के स्थान में औदारिक और औदारिकमिश्रशरीर कायप्रयोगवाला कहना चाहिए। तात्पर्य यह है कि—१—सत्यमनः प्रयोगवाला यावत् असत्यामृषावचन प्रयोगवाला ९—औदारिकशरीर कायप्रयोगवाला और बाद में १०—औदारिकमिश्रशरीर कायप्रयोगवाला होता है ऐसा कहना चाहिए।

ये दस पद हमेशा बहुवचन की अपेक्षा अवस्थित है। जो कि तिर्यंच पंचेन्द्रियों का उपपात-विरहकाल अन्तर्मुहूर्त का है तो भी उपपात-विरहकाल का अन्तर्मुहूर्त छोटा है, औदारिकमिश्र का अन्तर्मुहूर्त बहुत बड़ा है। अतः यहाँ पर भी औदारिकमिश्रशरीर कायप्रयोगवाले सदा होते हैं। जो बारह मुहूर्त का उपपात-विरहकाल कहा है वह गर्भज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के आश्रयी समझना चाहिए। परन्तु सामान्य तिर्यंचों की अपेक्षा नहीं जानना चाहिए। कार्मणशरीर-त्रायप्रयोमवाला तो तिर्यंच पंचेन्द्रिय भी कदाचित् एक भी नहीं होता है क्योंकि उनका उपपात-विरहकाल अन्तर्मुहूर्त का है। इस कारण जब एक भी कार्मणशरीरी नहीं होता है तब प्रथम भंग होता है। जब एक होता है तब द्वितीय भंग और जब बहुत होते हैं तब तीसरा भंग होता है।

·९ सयोगी मनुष्य का विभाग (एकक भंग)

·१ मणूसा णं भंते ! किं सच्चमणप्पओगी जाव किं कम्मासरीरकायप्पओगी ? गोयमा ! मणूसा सव्वे वि ताव होज्जा सच्चमणजोगी वि जाव ओरालियसरीरकायप्पओगी वि वेउव्वियसरीरकायप्पओगी वि वेउव्वियमीसासरीरकायप्पओगी वि, अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य १ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य २ अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगी य ३ अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य ४ अहवेगे य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य ५ अहवेगे य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य ६ अहवेगे य कम्मगसरीरकायप्पओगी य ७ अहवेगे य कम्मगसरीरकायप्पओगिणो य ८, एते अट्ठ भंगा पत्तेयं।

—पण्ण० प १६। सू १०८३। पृष्ठ० २६३-६४

टीका—मनुष्येषु मनश्चतुष्टयवाक्चतुष्टयौदारिकवैक्रियद्विकरूपाण्येकादश पदानि सदैव बहुवचनेन लभ्यन्ते, वैक्रियमिश्रशरीरिणःकथं सदैव लभ्यन्ते इति चेत् ? उच्यते, विद्याधरापेक्षया, तथाहि—विद्याधरा अन्येऽपि केचिन्मिथ्याष्ट्यादयो वैक्रियलब्धिसम्पन्नाः अन्यान्यभावेन सदैव विकुर्वणायां लभ्यन्ते, आह च मूलटीकाकारः—"मनुष्या वैक्रियमिश्रसरीरप्रयोगिणः सदैव विद्याधरादीनां विकुर्वणाभावा" दिति, औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी कार्मणशरीरकायप्रयोगी च कदाचित्सर्वथा न लभ्यते, द्वादशमौहूर्त्तिकोपपातविरहकालभावात्, आहारकशरीरी आहारकमिश्रशरीरी च कादाचित्कः प्रागेवोक्तः, तत औदारिकमिश्राद्यभावे पदैकादशबहुवचनलक्षण एको भंगः, तत औदारिकमिश्रपदेन एकवचनबहुवचनाभ्यां द्वौ भंगौ, एवमेव द्वौ भंगौ आहारकपदेन द्वौ चाहारकमिश्रयदेन द्वौ कार्मणपदेनेत्येकैकसंयोगे अष्टौ भंगाः।

मनुष्य सभी सत्यमनः प्रयोगी यावत् औदारिकशरीर कायप्रयोगी, वैक्रियशरीर कायप्रयोगी, वैक्रियमिश्रशरीर कायप्रयोगी भी बहुवचन की अपेक्षा से सतत होते हैं। यहाँ पर वैक्रियमिश्रशरीर कायप्रयोगी का बहुवचन की अपेक्षा से कथन विद्याधर की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपेक्षा से किया गया है, क्योंकि कुछ मिथ्यादृष्टि वैक्रियलब्धिसम्पन्न विद्याधर अन्यान्य भाव से विकुर्वणा में रहते हैं। मूल टीकाकार ने भी कहा है—मनुष्य वैक्रियमिश्रशरीर-कायप्रयोगी बहुवचन की अपेक्षा से विद्याधर आदि के सदैव विकुर्वणा करते रहने के कारण उपलब्ध होते हैं।

अथवा एक समय में एक औदारिकमिश्रशरीर कायप्रयोगी होता है (१), अथवा एक समय में अनेक (बहुवचन) औदारिकमिश्रशरीर कायप्रयोगी होते हैं (२), अथवा कदाचित् एक आहारकशरीर कायप्रयोगी उपलब्ध होता है (३), अथवा कदाचित् अनेक (बहुवचन) आहारकशरीर कायप्रयोगी उपलब्ध होते हैं (४), अथवा कदाचित् एक आहारकमिश्रशरीर कायप्रयोगी उपलब्ध होता है (५), अथवा कदाचित् अनेक (बहुवचन) आहारकमिश्रशरीर कायप्रयोगी उपलब्ध होते हैं (६), अथवा कदाचित् एक कार्मणशरीर कायप्रयोगी उपलब्ध होता है (७), अथवा कदाचित् अनेक (बहुवचन) कार्मणशरीर कायप्रयोगी उपलब्ध होते हैं। ये आठ भंग होते हैं।

औदारिकमिश्रशरीर कायप्रयोगी तथा कार्मणशरीर कायप्रयोगी कदाचित् सर्वथा नहीं होते हैं, क्योंकि इनमें बारह मुहूर्त के उपपात का विरहकाल होता है। आहारकशरीरी तथा आहारकमिश्रशरीर कदाचित् होते हैं यह पहले ही कहा जा चुका है। इस प्रकार औदारिकमिश्रादि के अभाव में ग्यारह पदों का बहुवचन रूप भंग होता है, औदारिकमिश्र पद से एकवचन और बहुवचन रूप दो भंग होते हैं, इसी प्रकार दो भंग आहारक पद से, दो भंग आहारकमिश्र पद से, दो भंग कार्मण पद से होते हैं। एक-एक के संयोग से आठ भंग होते हैं।

·९·२ सयोगी मनुष्य के विभाग (युग्म भंग)

अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगी य १ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य आहारग-सरीरकायप्प-ओगिणो य २ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारगसरीर-कायप्पओगी य ३ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारगसरीर-कायप्पओगिणो य ४ एवं एते चत्तारि भंगा, अहवेगे य ओरालियमीसासरीर-कायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य १ अहवेगे य ओरालियमीसा-सरीरकायओगी य आहारगमीसरीरकायप्पओगिणो य २ अहवेगे य ओरालियमी-सासरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य ३ अहवेगे य ओरा-लियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य ४ चत्तारि भंगा, अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य कम्मासरीरकायप्पओगी य १ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य २ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणोय कम्मासरीरकायप्पओगी य ३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य ४ एते चत्तारि भंगा, अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य १ अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य २ अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य ३ अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य ४ चत्तारि भंगा, अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगी य कम्मासरीरकायप्पओगी य १ अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगी य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य २ अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य कम्मासरीरकायप्पओगीय ३ अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य कम्मगसरीरकायप्पओगिणो य ४ चउरो भंगा, अहवेगे य आहारगमीसगसरीरकायप्पओगी य कम्मगसरीरकायप्पओगी य १ अहवेगे य आहारगमीसगसरीरकायप्पओगी य कम्मगसरीरकायप्पओगिणो य २ अहवेगे य आहारगमीसगसरीरकायप्पओगिणो य कम्मगसरीरकायप्पओगी य ३ अहवेगे य आहारगमीसगसरीरकायप्पओगिणो य कम्मगसरीरकायप्पओगिणो य ४ चत्तारि भंगा, एवं चउवीसं भंगा।

—पण्ण० प १६ । सू १०८३ । पृष्ठ० २६४-६५

अस्तु द्विकसंयोग में प्रत्येक के एकवचन और बहुवचन में औदारिकमिश्र और आहारकपद के चार भंग होते हैं। इस प्रकार ही औदारिकमिश्र और आहारकमिश्र पद के चार भंग होते हैं। औदारिकमिश्र और कार्मण के चार भंग होते हैं। आहारक और आहारकमिश्र के चार भंग होते हैं। आहारक और कार्मण के चार भंग होते हैं और आहारकमिश्र और कार्मण के चार भंग होते हैं। इस प्रकार सर्व मिलकर द्विकसंयोग में चौबीस भंग होते हैं। यथा—

१—अथवा एक औदारिकमिश्रशरीर कायप्रयोगवाला और एक आहारकशरीर कायप्रयोगवाला होता है। २—अथवा एक औदारिकमिश्रशरीर कायप्रयोगवाला और कितनेक आहारकशरीर कायप्रयोगवाले होते हैं। ३—अथवा कितनेक औदारिकमिश्रशरीर कायप्रयोगवाले और एक आहारकमिश्रशरीर कायप्रयोगवाला होता है। ४—अथवा कितनेक औदारिकमिश्रशरीर कायप्रयोगवाले और कितनेक आहारकशरीर कायप्रयोगवाले होते हैं। इस प्रकार चार भंग—विकल्प होते हैं।

१—अथवा एक औदारिकमिश्रशरीर कायप्रयोगवाला और एक आहारकशरीर कायप्रयोगवाला होता है। २—अथवा एक औदारिकमिश्रशरीर कायप्रयोगवाला और कितनेक आहारकमिश्रशरीर कायप्रयोगवाले होते हैं। ३—अथवा कितनेक औदारिकमिश्रशरीर कायप्रयोगवाले और एक आहारकमिश्रशरीर कायप्रयोगवाला होता है। ४—अथवा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कितनेक औदारिकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले और कितनेक आहारकमिश्र शरीर-काय प्रयोगवाले होते हैं। इस प्रकार चार भंग—होते हैं।

१—अथवा औदारिकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाला और एक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाला होता है। २—अथवा एक औदारिकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाला और कितनेक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं। ३—अथवा कितनेक औदारिमिश्र शरीर काय-प्रयोगवाले और एक कार्मण शरीर प्रयोगवाला होता है। ४—अथवा कितनेक औदारिक-मिश्र शरीर काय प्रयोगवाले और कितनेक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं। इस प्रकार चार भंग होते हैं।

१—अथवा एक आहारक शरीर कायप्रयोगवाला और एक आहारकमिश्र शरीर कायप्रयोगवाला होता है। २—अथवा एक आहारक शरीर कायप्रयोगवाला और कितनेक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाला होता है। ३—अथवा कितनेक आहारक शरीर काय प्रयोगवाले और एक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं। ४—अथवा कितनेक आहारक शरीर काय प्रयोगवाले और कितनेक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं। इस प्रकार चार भंग होते हैं।

१—अथवा एक आहारक शरीर काय प्रयोगवाला और एक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाला होता है। २—अथवा एक आहारक शरीर काय प्रयोगवाला और कितनेक कार्मण शरीर प्रयोगवाले होते हैं। ३—अथवा कितनेक आहारक शरीर काय प्रयोगवाले और एक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाला होता है। ४—अथवा कितनेक आहारक शरीर काय प्रयोगवाले और कितनेक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं। इस प्रकार चार भंग होते हैं।

१—अथवा एक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाला और एक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाला होता है। २—अथवा एक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाला और कितनेक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं। ३—अथवा कितनेक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले और एक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाला होता है। ४—अथवा कितनेक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले और कितनेक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं। इस प्रकार चार भंग होते हैं।

इस प्रकार सब मिलकर (४ × ६) चौबीस भंग होते हैं।

सयोगी मनुष्य के विभाग (त्रिक भंग)

अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसगसरीरकायप्पओगी य १ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकाय-प्पयोगी य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसगसरीरकायप्पओगिणो य २ अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगिणो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य ३ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकाय-
प्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य
४ अहवेगे य ओरालियमीससरीरकायप्पओगिणो य आहारगसरीरकायप्पओगी य
आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य ५ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकाय-
प्पओगिणो य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो
य ६ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारगसरीरकाय-
प्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य ७ अहवेगे य ओरालियमीसा-
सरीरकायप्पओगिणो य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीर-
कायप्पओगिणो य ८ एते अट्ठ भंगा, अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी
य आहारगसरीरकायप्पओगी य कम्मयसरीरकायप्पओगी य १ अहवेगे य ओरालि-
यमीसासरीरकायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगी य कम्मगसरीरकायप्प-
ओगीणो य २ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य आहारगसरीरकाय-
प्पओगिणो य कम्मगसरीरकायप्पओगी य ३ अहवेगे य ओरालियमीसासरीर-
कायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य कम्मगसरीरकायप्पओगिणो य
४ अहवेगे य ओरलियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारगसरीरकायप्पओगी य
कम्मगसरीरकायप्पओगी य ५ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य
आहारगसरीरकायप्पओगी य कम्मगसरीरकायप्पओगिणो य ६ अहवेगे य
ओरालियमीसासरीरका यप्पओगिणो य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य कम्मग-
यरीरकायप्पओगी य ७ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारग
सरीरकायप्पओगिणो य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य ८ एते अट्ठ भंगा, अहवेगे
य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य कम्मा-
सरीरकायप्पओगी य १ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य आहारग-
मीसासरीरकायप्पओगी य कम्मगसरीरकायप्पओगिणो य २ अहवेगे य ओरालि-
यमीसासरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य कम्माशरीर-
कायप्पओगी य ३ अहवेमे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य आहारगमी-
सासरीरकायप्पओगिणो य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य४ अहवेगे य ओरालिय-
मीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य कम्माशरीर-
कायप्पओगी य ५ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारगमी-
सासरीरकायप्पओगी य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य ६ अहवेगे य ओरालियमी-
सासरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य कम्मासरीर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कायप्पओगी य ७ अहवेगे य ओरालियमीसाशरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसाशरीरकायप्पओगिणो य कम्माशरीरकायप्पओगिणो य ८ एते अट्ठ भंगा, अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य कम्मासरीरकायप्पओगी य १ अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य २ अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगणिो य कम्मासरीरकायप्पओगो य ३ अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य ४ अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य कम्मासरीरकायप्पओगी य ५ अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य ६ अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसाररीरकायप्पओगिणो य कम्मासरीरकायप्पओगी य ७ अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य ८ एवं एते तियसंजोएणं चत्तारि अट्ठभंगा, सव्वे वि मिलिया बत्तीसं भंगा जाणियव्वा ३२।

—पण्ण० प १६। सू १०८३। पृष्ठ० २६५-६६

त्रिकसंयोग में औदारिकमिश्र, आहारक और आहारकमिश्र पद में एक वचन और बहुवचन के आठ भांगे होते हैं। औदारिकमिश्र, आहारक और कार्मण के आठ भांगे होते हैं, औदारिकमिश्र, आहारकमिश्र और कार्मण के आठ भांगे होते हैं, और आहारक, आहारकमिश्र और कार्मण के आठ भांगे होते हैं।—इस प्रकार सब मिलकर त्रिकसंयोगी बतीस भांगे होते हैं।

अस्तु १—अथवा एक औदारिकमिश्र-शरीर-काय प्रयोगवाला, एक आहारक-शरीर काय प्रयोगवाला और एक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाला होता है। २—अथवा एक औदारिकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाला, एक आहारक शरीर काय प्रयोगवाला, कितनेक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाला होता है। ३—अथवा एक औदारिकमिश्र-शरीर काय प्रयोगवाला, कितनेक आहारक शरीर काय प्रयोगवाले और एक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाला होता है। ४—अथवा एक औदारिकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाला, कितनेक आहारक शरीर काय प्रयोगवाले और कितनेक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं। ५—अथवा कितनेक औदारिकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले, एक आहारक-शरीर काय प्रयोगवाले और एक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं। ६—अथवा कितनेक औदारिकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं, एक आहारक शरीर काय प्रयोगवाला और कितनेक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं। ७—अथवा कितनेक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

औदारिकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं, कितनेक आहारक शरीर काय प्रयोगवाले और एक आहारकमिश्र काय प्रयोगवाला होता है। ८—अथवा कितनेक औदारिकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं, कितनेक आहारक शरीर काय प्रयोग वाले और कितनेक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं। इस प्रकार आठ भांगे होते हैं।

१—अथवा एक औदारिकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाला, एक आहारक शरीर काय प्रयोगवाला और एक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाला होता है। (२) अथवा एक औदारिक-मिश्र शरीर काय प्रयोगवाला, एक आहारक शरीर काय प्रयोगवाला और कितनेक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं। ३—अथवा एक औदारिकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाला, कितनेक आहाराक शरीर काय प्रयोगवाले और एक कार्मण शरीर काय प्रयोग वाले होते हैं। ४—अथवा एक औदारिकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाला, कितनेक आहारक शरीर काय प्रयोगवाले और कितनेक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं। ५—अथवा कितनेक औदारिकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले, एक आहारक शरीर काय प्रयोगवाला और एक कार्मण शरीर कायप्रयोग वाला होता है। (६) अथवा कितनेक औदारिक मिश्र शरीर कायप्रयोगवाले, एक आहारक शरीर कायप्रयोगवाला तथा कितनेक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाले, एक आहारक शरीर कायप्रयोगवाला तथा कितनेक कार्मण शरीर कायप्रयोगवाले होते हैं। ७—अथवा कितनेक औदारिकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले, कितनेक आहारक शरीर काय प्रयोगवाले और एक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाला होता है। ८—अथवा कितनेक औदारिकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले, कितनेक आहारक शरीर काय प्रयोगवाले और कितनेक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं। इस प्रकार आठ भांगे होते हैं।

१—अथवा एक औदारिकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाला, एक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाला और एक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाला होता है। २—अथवा एक औदारिकमिश्र काय प्रयोगवाला, एक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाला तथा कितनेक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं। ३—अथवा एक औदारिकमिश्र शरीर काय प्रयोग-वाला, कितनेक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले और एक कार्मण शरीर काय प्रयोग-वाले होते हैं। ४—अथवा एक औदारिकमिश्र शरीर काय वाला, कितनेक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले और कितनेक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं। ५ – कितनेक औदारिकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाला, एक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाला और एक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाला होता है। ६—अथवा कितनेक औदारिकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले, एक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले व कितनेक कार्मण शरीर काय प्रयोग-वाले होते हैं। ७ —कितनेक औदारिकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाला, कितनेक आहारिकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले और एक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं। ८—अथवा कितनेक औदारिकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले, कितनेक आहारकमिश्र शरीर कायप्रयोगवाले और कितनेक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं। इस प्रकार आठ भंग होते हैं।

१—अथवा एक आहारक शरीर काय प्रयोगवाला, एक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाला और एक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाला होता है। २—अथवा एक आहारक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शरीर काय प्रयोगवाला, एक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाला तथा कितनेक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं। ३—अथवा एक आहारक शरीर काय प्रयोगवाला, कितनेक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाला व एक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाला होता है। ४—एक आहारक शरीर काय प्रयोगवाला, कितनेक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाला और कितनेक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं। ५—अथवा कितनेक आहारक शरीर काय प्रयोगवाला, एक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले और एक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं। ६—अथवा कितनेक आहारक शरीर काय प्रयोगवाले, एक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले व कितनेक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं। ७—अथवा कितनेक आहारकशरीर काय प्रयोगवाले, कितनेक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले और एक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं। ८—अथवा कितनेक आहारक शरीर काय प्रयोगवाले, कितनेक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले और कितनेक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं।

इस प्रकार त्रिक संयोग से चार प्रकार से आठ-आठ भंग होते हैं। सर्व मिलकर बत्तीस भंग जानने चाहिए।

९.४ सयोगी मनुष्य के विभाग (चतुः संयोगी)

अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य कम्मासरीरकायप्पओगी य १ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य २ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य आहारसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य कम्मासरीरकायप्पओगी य ३ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य ४ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य कम्मासरीरकायप्पओगी य ५ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य ६ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य कम्मासरीरकायप्पओगी य ७ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य ८ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कायप्पओगी य कम्मासरीरकायप्पओगी य ९ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकाय-प्पओगिणो य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य १० अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य कम्मासरीर-कायप्पओगी य ११ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारग-सरीरकायप्पओगी य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य कम्मासरीरकायप्प-ओगिणो य १२ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारगसरीर-कायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य कम्मासरीरकायप्पओगी य १३ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारगसरीरकायप्प-ओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगी य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य १४ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसासरीरकायप्पओगिणो य कम्मासरीरकायप्पओगी य १५ अहवेगे य ओरालियमीसासरीरकायप्पओगिणो य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहार-गमीसासरीरकायप्पओगिणो य कम्मासरीरकायप्पओगिणो य १६ एवं प्रते चउ-संजोएणं सोलस भंगा भवंति। सव्वे वि य णं संपिंडिया असीतिं भंगा भवंति ८०।

—पण्ण० प १६। सू १०८३। पृष्ठ० २६६-६७

औदारिकमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र और कार्मण इन चार पदों से एकवचन और बहुवचन से सोलह भांगे होते हैं। सर्व मिलकर अस्सी भांगे होते हैं।

१—अथवा एक औदारिकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाला, एक आहारक शरीर प्रयोगवाला, एक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाला और एक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाला होता है।

२—अथवा एक औदारिकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाला, एक आहारक शरीर काय प्रयोगवाला, एक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले और कितनेक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं।

३—अथवा एक औदारिकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाला, एक आहारक शरीर काय प्रयोगवाला, कितनेक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले और एक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं।

४—अथवा एक औदारिकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाला, एक आहारक शरीर काय प्रयोगवाला, कितनेक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले और कितनेक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५—अथवा एक औदारिकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाला, कितनेक आहारक शरीर काय प्रयोगवाले, एक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले और एक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाला होता है।

६—अथवा एक औदारिकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाला, कितनेक आहारक शरीर काय प्रयोगवाले, एक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाला और कितनेक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं।

७—अथवा एक औदारिकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले, कितनेक आहारक शरीर काय प्रयोगवाले, कितनेक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले और एक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं।

८—अथवा एक औदारिकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाला, कितनेक आहारक शरीर काय प्रयोगवाले, कितनेक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले और कितनेक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं।

९—अथवा कितनेक औदारिकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले, एक आहारक शरीर काय प्रयोगवाला और एक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाला तथा एक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाला होता है।

१०—अथवा कितनेक औदारिकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाला, एक आहारक शरीर काय प्रयोगवाला, एक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाला और कितनेक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं।

११—अथवा कितनेक औदारिकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले, एक आहारक शरीर काय प्रयोगवाला, कितनेक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले और एक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं।

१२—अथवा कितनेक औदारिकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले, एक आहारक शरीर काय प्रयोगवाले, कितनेक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले और कितनेक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं।

१३—अथवा कितनेक औदारिकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले, कितनेक आहारक शरीर काय प्रयोगवाले, एक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले और एक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं।

१४—अथवा कितनेक औदारिकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले, कितनेक आहारक शरीर काय प्रयोगवाले, एक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाला व कितनेक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५—कितनेक औदारिकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले, कितनेक आहारक शरीर काय प्रयोगवाले, कितनेक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले और एक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं।

१६—अथवा कितनेक औदारिकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले, कितनेक आहारक शरीर काय प्रयोगवाले, कितनेक आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोगवाले व कितनेक कार्मण शरीर काय प्रयोगवाले होते हैं।

इस प्रकार इस चतुः सयोगी सोलह भांगे हुए। सब इकट्ठा करने से मनुष्य-संबंधी अस्सी भांगे होते हैं।

·१० वाणव्यंतर देवों में विभाग से प्रयोग

·११ ज्योतिषी ,,

·१२ वैमानिक ,,

वाणमंतर—जोइसिय—वेमाणिया जहा असुरकुमारा (सू १०७९)॥ १०८४।

—पण्ण० प १६।

वाणव्यन्तर, ज्योतिषी तथा वैमानिक देवों के विषय में असुरकुमारों की तरह जानना चाहिए। अस्तु यहाँ तीन भंग कहने चाहिए।

·३२ सयोगी जीव और नियमा-भजना

·०१ मनोयोगी और वचनयोगी जीव की नियमा-भजना

·०२ काययोगी जीव की नियमा-भजना

·०३ औदारिक काययोगी जीव की नियमा-भजना

·०४ औदारिकमिश्र काययोगी जीव की नियमा-भजना

·०५ वैक्रिय काययोगी जीव की नियमा-भजना

·०९ कार्मण काययोगी जीव की नियमा-भजना

जोगाणुवादेण पंचमणजोगी पंचवचिजोगी कायजोगी ओरालियकायजोगी ओरालियमिस्सकायजोगी वेउव्वियकायजोगी कम्मइयकायजोगी णियमा अत्थि।

—षट्० खं २। ४। सू १०। पु ७। पृष्ठ० २४०

योगमार्गणा के अनुसार पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, औदारिकमिश्र काययोगी, वैक्रिय काययोगी और कार्मण काययोगी नियम से रहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·०६ वैक्रियमिश्र काययोगी जीव की नियमा-भजना

·०७ आहारक काययोगी जीव की ,, ,,

·०८ आहारकमिश्र ,, ,, ,, ,,

वेउव्वियमिस्सकायजोगी आहारकायजोगी आहारमिस्सकायजोगी सिया अत्थि सिया णत्थि।

—षट्० खं २। ४। सू ११। पु ७। पृष्ठ० २४०

वैक्रियमिश्र काययोगी, आहारक काययोगी तथा आहारकमिश्र काययोगी कदाचित् रहते हैं, कदाचित् नहीं भी रहते हैं।

·३३ सयोगी जीव और समवसरण

·१ सलेस्सा णं भंते! जीवा किं किरियावाई—पुच्छा। गोयमा! किरियावाई वि, अकिरियावाई वि, अण्णाणियवाई वि, वेणइयवाई वि। एवं जाव सुक्कलेस्सा। × × ×। सजोगी जाव कायजोगी जहा सलेस्सा।

—भग० श ३०। उ १। सू ३-६

सयोगी जीव क्रियावादी भी होते हैं, अक्रियावादी भी हैं, अज्ञानवादी भी हैं तथा विनयवादी भी हैं।

मनोयोगी, वचनयोगी व काययोगी जीव क्रियावादी भी हैं, अक्रियावादी भी हैं, अज्ञानवादी भी है, व विनयवादी भी है।

·२ अलेस्सा णं भंते! जीवा—पुच्छा। गोयमा! किरियावाई, णो अकिरियावाई, णो अण्णाणियवाई, णो वेणइयवाई। × × ×। अजोगी जहा अलेस्सा।

—भग० श ३०। उ १। सू ४-६

अयोगी जीव क्रियावादी होते हैं; अक्रियावादी, अज्ञानवादी तथा विनयवादी नहीं होते हैं।

·३ सयोगी नारकी और समवसरण

सलेसी णं भंते। णेरइया किं किरियावाई? एवं चेव। एवं जाव काउलेस्सा। × × × एवं एएणं कमेणं जच्चेव जीवाणं वत्तव्वया सच्चेव णेरइयाणं वत्तव्वया वि जाव अणागारोवउत्ता। णवरं जं अत्थि तं भाणियव्वं, सेसं णं भण्णइ।

—भग० श ३०। उ १। सू ८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सयोगी यावत् काययोगी नारकी क्रियावादी भी हैं, अक्रियावादी, विनयवादी व अज्ञानवादी भी है।

·४ सयोगी असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार देव और समवसरण

जहा णेरइया एवं जाव थणियकुमारा।

—भग० श ३० । उ १ । सू ८

सयोगी यावत् काययोगी असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार देव क्रियावादी भी होते हैं, अज्ञानवादी, विनयवादी और अक्रियावादी भी होते हैं।

·५ सयोगी पृथ्वीकायिक जीव और समवसरण

·६ से ·१२ सयोगी अप्कायिक यावत् चतुरिन्द्रिय जीव और समवसरण

पुढविकाइयाणं भंते ! किं किरियावाई पुच्छा। गोयमा ! णो किरियावाई, अकिरियावाई वि, अण्णाणवाई वि, णो वेणइयवाई। एवं पुढविकाइणं जं अत्थि तत्थ सव्वत्थ वि एयाइं दो मज्झिल्लाइं समोसरणाइं जाव अणागारोवउत्ता वि, एवं जाव चउरिंदियाण।

—भग० श ३० । उ १ । सू ९

सयोगी काययोगी पृथ्वीकायिकजीव क्रियावादी और विनयवादी नहीं है, अक्रियावादी और अज्ञानवादी है।

इसी प्रकार अप्कायिकजीव से चतुरिन्द्रियजीव क्रियावादी और विनयवादी नहीं है, अक्रियावादी और अज्ञानवादी है।

नोट—अनेक प्रकार के परिणामवाले जीव जिसमें हो उसे समवसरण कहते हैं अर्थात् भिन्न-भिन्न मतों एवं दर्शनों को समवसरण कहते हैं। विनयवाद के योग्य परिणाम न होने से विनयवादी नहीं होते हैं।

·१३ सयोगी पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीव और समवसरण

पंचिंदिय - तिरिक्ख - जोणिया जहा जीवा। णवरं जं अत्थि तं भाणियव्वं।

—भग० श ३० । उ १ । सू ९

सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी-काययोगी पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीव औधिक जीवों की तरह क्रियावादी भी हैं, अक्रियावादी अज्ञानवादी और विनयवादी भी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·१४ सयोगी मनुष्य और समवसरण

·१५ अयोगी मनुष्य और समवसरण

मणुस्सा जहा जीवा तहेव णिरवसेसं।

—भग० श ३० । उ १ । सू ९

सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी-काययोगी मनुष्य औधिकजीव की तरह क्रियावादी भी है। अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी भी है।

अयोगी मनुष्य क्रियावादी होते हैं। अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी नहीं है।

·१६ सयोगी वाणव्यंतर देव और समवसरण

·१७ सयोगी ज्योतिषी देव और समवसरण

·१८ सयोगी वैमानिक देव और समवसरण

वाणमंतर-जोइसिय—वेमाणिया जहा असुरकुमारा।

—भग० श ३० । उ १ । सू ९

सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी-काययोगी वाणव्यंतर ज्योतिषी-वैमानिकदेव क्रियावादी भी होते हैं। अक्रियावादी, विनयवादी और अज्ञानवानी भी होते हैं।

·१९ क्रियावादी सयोगी जीव का आयुष्य-बन्ध समवसरण की अपेक्षा से

·१ सलेस्सा णं भंते ! जीवा किरियावाई किं णेरइयाउयं पकरेंति-पुच्छा। गोयमा ! णो णेरइयाउयं एवं जहेव जीवा तहेव सलेस्सा वि चउहि वि समोसरणेहिं भाणियव्वा। (औधिक जीव पाठ—किरियावाई णं भंते ! जीवा × × × णो णेरइयाउयं पकरेंति, णो तिरिक्खजोणियाउयं पकरेंति, मणुस्साउयं पि पकरेंति, देवाउयं पि पकरेंति। ४ प्र १०) × × × सजोगी जाव कायजोगी जहा सलेस्सा × × ×।

—भग० श ३० । उ १ । सू १३ और २२

क्रियावादी सयोगी जीव नरकायु और तिर्यंचायु का बन्ध नहीं करता है तथा मनुष्यायु और देवायु का बन्ध करता है। देवायु में भी वे सिर्फ वैमानिक देवों की आयु बांधते हैं। परन्तु भवनपति, वाणव्यंतर और ज्योतिषी देव का आयुष्य नहीं बांधते हैं।

·२० अक्रियावादी विनयवादी और अज्ञानवादी सयोगी जीव और आयुष्यबंध समवसरण की अपेक्षा से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सयोगी अक्रियावादी जीव नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु और देवायु चारों प्रकार की आयु बांधते हैं।

इसी प्रकार सयोगी विनयवादी तथा सयोगी अज्ञानवादी भी चारों प्रकार की आयु बांधते हैं।

·२१ अयोगी क्रियावादी जीव का समवसरण की अपेक्षा से आयुष्य-बन्ध

अलेस्सा णं भंते ! जीवा किरियावाई किं णेरइयाउयं—पुच्छा। गोयमा ! णो णेरइयाउयं पकरेइ, णो तिरिक्खजोणियाउयं पकरेइ, णो मणुस्साउयं पकरेइ, णो देवाउयं पकरेइ × × ×। अजोगी जहा अलेस्सा × × ×।

—भग० श ३०। उ १। सू १७ और २२

अयोगी क्रियावादी जीव न नरकायु बांधता है, न तिर्यंचायु बांधता है, न मनुष्यायु बांधता है और न देवायु बांधता है।

·२२ सयोगी नारकी और अक्रियावादी की अपेक्षा आयुष्यबंध

·२३ ,, अज्ञानवादी ,,

·२४ ,, विनयवादी ,,

(णेरइया) जे अकिरियावाई, अण्णाणियवाई, वेणइयवाई ते सव्वट्ठाणेसु वि णो णेरइयाउयं पकरेइ, तिरिक्खजोणियाउयं वि पकरेइ, मणुस्साउयं वि पकरेइ, णो देवाउयं पकरेइ।

—भग० श ३०। उ १। सू २४, २५

सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी व काययोगी अक्रियावादी, अज्ञानवादी व विनयवादी नारकी—तिर्यंच का भी आयुष्य बांधते हैं, मनुष्य का भी आयुष्य बांधते हैं। नैरयिक व देव का आयुष्य नहीं बांधते हैं।

·२५ सयोगी नारकी और क्रियावादी की अपेक्षा आयुष्यबंध

सलेस्साणं भंते ! × × × एवं सव्वे वि णेरइया जे किरियावाई ते मणुस्साउयं एगं पकरेइ।

—भग० श ३०। उ १। सू २५

सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी व काययोगी क्रियावादी नारकी एकमात्र मनुष्य का ही आयुष्य बांधते हैं।

·२६ सयोगी असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार और क्रियावादी की अपेक्षा आयुष्यबंध

एवं जाव थणियकुमारा जहेव णेरइया।

—भग० श ३०। उ १। सू २५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी व काययोगी क्रियावादी असुरकुमार यावत् स्तनित-कुमार क्रियावादी नारकी की तरह एकमात्र मनुष्य का ही आयुष्य बांधते हैं।

·२७ सयोगी असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार और अक्रियावादी की अपेक्षा आयुष्यबंध

एवं जाव थणियकुमारा जहेव णेरइया।

—भग० श ३० । उ १ । सू २४

सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी व काययोगी असुरकुमार नारकी की तरह तिर्यंच-योनिक का भी आयुष्य बांधते हैं, मनुष्य का भी आयुष्य बांधते हैं। देव व नारकी का आयुष्य नहीं बांधते हैं।

·२८ सयोगी पृथ्वीकायिक और समवसरण की अपेक्षा आयुष्यबंध

सलेस्सा णं भंते! (अकिरयावाई × × × अण्णाणियवाई) एवं जं जं पयं अत्थि पुढविकाइयाणं तहिं-तहिं मज्झिमेसु दोसु समोसरणेसु एवं चेव दुविहं आउयं पकरेइ। णवरं तेउलेस्साए णं किं पि पकरेइ।

—भग० श ३० । उ १ । सू २६

सयोगी-काययोगी पृथ्वीकायिकजीव— अक्रियावादी-अज्ञानवादी नारकी और देव का आयुष्य नहीं बांधते हैं—किन्तु मनुष्य और तिर्यंच का आयुष्य बांधते हैं। लेकिन उनके तेजोलेश्या में किसी भी आयुष्य का बंध नहीं होता है।

·२९ सयोगी अप्कायिक जीव और समवसरण की अपेक्षा आयुष्यबंध

एवं आउक्काइयाणवि।

—भग० श ३० । उ १ । सू २७

सयोगी-काययोगी अप्कायिक अक्रियावादी व अज्ञानवादी होते हैं। वे तिर्यंच एवं मनुष्य का आयुष्य बांधते हैं—देव व नारकी का आयुष्य नहीं बांधते हैं।

·३० सयोगी वनस्पतिकायिक जीव और समवसरण की अपेक्षा आयुष्यबंध

एवं वणस्सइकाइयाण वि।

—भग० श ३० । उ १ । सू २७

इसी प्रकार सयोगी-काययोगी वनस्पतिकायिक जीव दोनों समवसरण में तिर्यंच व मनुष्य का आयु बांधते हैं। देव का व नारकी का आयुष्य नहीं बांधते हैं।

·३१ सयोगी अग्निकायिक जीव और समवसरण में आयुष्यबंध

·३२ सयोगी वायुकायिक जीव और समवसरण में आयुष्यबंध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेउकाइया वाउकाइया सव्वट्ठाणेसु मज्झिमेसु दोसु समोसरणेसु णो णेरइयाउयं पकरेइ तिरिक्खजोणियाउयं पकरेइ, णो मणुस्साउयं पकरेइ, णो देवाउयं पकरेइ।

—भग० श ३० । उ १ । सू २७

सयोगी-काययोगी अग्निकायिक में व वायुकायिक में मध्य के दोनों समवसरण (अक्रियावादी-अज्ञानवादी) होते हैं। उनमें से वे सिर्फ तिर्यंच का आयुष्य बांधते हैं। नारकी, देव व मनुष्य का आयुष्य नहीं बांधते हैं।

·३३ सयोगी द्वीन्द्रिय यावत् चतुरिन्द्रिय और समवसरण में आयुष्यबंध

बेइंदिय-तेइंदिय—चउरिंदियाणं जहा पुढविकाइयाणं, णवरं सम्मत्त-णाणेसु ण एक्कंपि आउयं पकरेइ।

—भग० श ३० । उ १ । सू २७

सयोगी-वचनयोगी व काययोगी में पृथ्वीकायिक की तरह द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय व चतुरिन्द्रिय अक्रियावादी-अज्ञानवादी होते हैं। वे तिर्यंच व मनुष्य का आयुष्य बांधते हैं। देव-नारकी का आयुष्य नहीं बांधते हैं।

·३४ सयोगी क्रियावादी पंचेन्द्रियतिर्यंच और आयुष्यबंध

सेसा जाव अणागारोवउत्ता सव्वे जहा सलेस्सा जहा चेव भाणियव्वा।

—भग० श ३० । उ १ । सू २९

सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी व काययोगी क्रियावादी पंचेन्द्रिय तिर्यंच मात्र देव का आयुष्य बांधते हैं। मनुष्य, तिर्यंच व नारकी का आयुष्य नहीं बांधते हैं।

·३५ सयोगी अक्रियावादी पंचेन्द्रियतिर्यंच और आयुष्यबंध

·३६ ,, अज्ञानवादी ,,

·३७ ,, विनयवादी ,,

सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी व काययोगी अक्रियावादी, अज्ञानवादी व विनयवादी पंचेन्द्रिय तिर्यंच चारों प्रकार का आयुष्य बांधते हैं।

·३८ सयोगी मनुष्य क्रियावादी और आयुष्यबंध

जहा पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं वत्तव्वया भणिया एवं मणुस्साण वि भाणियव्वा × × ×।

—भग० श ३० । उ १ । सू २९

क्रियावादी पंचेन्द्रिय तिर्यंच के समान सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी व काययोगी मनुष्य—देव का आयुष्य बांधते हैं। मनुष्य-नारकी तिर्यंच का आयुष्य नहीं बांधते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·३९ सयोगी मनुष्य अक्रियावादी और आयुष्यबंध

·४० ,, विनयवादी ,,

·४१ ,, अज्ञानवादी ,,

सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी व काययोगी अक्रियावादी अज्ञानवादी व विनयवादी मनुष्य चारों गति का आयुष्य बांधते हैं।

·४२ अयोगी क्रियावादी मनुष्य और आयुष्यबंध

(मणुस्साणं) × × × अयोगी य एए ण एगं वि आउयं पकरेइ।

—भग० श ३० । उ १ । सू २९

अयोगी मनुष्य किसी का भी आयुष्य नहीं बांधते हैं।

·४३ सयोगी क्रियावादी वाणव्यंतर यावत् वैमानिकदेव और आयुष्यबंध।

वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा असुरकुमारा।

—भग० श ३० । उ १ । सू २९

सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी व काययोगी क्रियावादी वाणव्यंतर यावत् वैमानिकदेव मात्र एक मनुष्य का आयुष्य बांधते हैं। अन्य का नहीं।

·४४ सयोगी अक्रियावादी वाणव्यंतर यावत् वैमानिकदेव और आयुष्यबंध

पाठ ऊपर देखो।

अक्रियावादी-विनयवादी-अज्ञानवादी सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी व काययोगी वाणव्यंतर से वैमानिकदेव चारों प्रकार के आयुष्य का बंध करते हैं।

·४५ सयोगी जीव का समवसरण और भवसिद्धिक/अभवसिद्धिक

सलेस्सा णं भंते ! जीवा किरियावाई किं भवसिद्धिया-पुच्छा। गोयमा ! भवसिद्धिया, णो अभवसिद्धिया। सलेस्सा णं भंते। जीवा अकिरियावाई किं भवसिद्धिया-पुच्छा। णोयमा ! भवसिद्धिया वि, अभवसिद्धिया वि। एवं अण्णाणियवाई वि, वेणइयवाई वि जहा सलेस्सा। × × ×। सजोगी जाव कायजोगी जहा सलेस्सा। × × ×।

—भग० श ३० । उ १ । सू ३२-३४

सयोगी, मनोयोगी, वचनयोगी व काययोगी क्रियावादी जीव भवसिद्धिक होते हैं, अभवसिद्धिक नहीं होते हैं।

अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी सयोगी यावत् काययोगी जीव भवसिद्धिक भी होते हैं, अभवसिद्धिक भी होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·४६ अयोगी क्रियावादी और भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक

अलेस्सा णं भंते ! जीवा किरियावाई किं भव०-पुच्छा । गोयमा ! भवसिद्धिया, णो अभवसिद्धिया । × × × अयोगी जहा सम्मदिट्ठी । (सम्मदिट्ठी जहा अलेस्सा) ।

—भग० श ३० । उ १ सू ३४

अयोगी क्रियावादी सम्यग्दृष्टि की तरह भवसिद्धिक है, अभवसिद्धिक नहीं है ।

·४७ सयोगी नारकी और समवसरण की अपेक्षा भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक

एवं णेरइया वि भाणियव्वा, णवरं णायव्वं जं अत्थि ।

—भग० श ३० । उ १ । सू ३४

इसी प्रकार सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी-काययोगी क्रियावादी नारकी भवसिद्धिक हैं, अभवसिद्धिक नहीं है । अक्रियावादी, अज्ञानवादी, विनयवादी की अपेक्षा नारकी भवसिद्धिक भी है, अभवसिद्धिक भी है ।

·४८ सयोगी असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार और समवसरण की अपेक्षा भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक

एवं असुरकुमारा वि जाव थणियकुमारा ।

—भग० श ३० । उ १ । सू ३४

इसी प्रकार सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी व काययोगी असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार क्रियावादी भवसिद्धिक है, अभवसिद्धिक नहीं हैं । अक्रियावादी, अज्ञानवादी, विनयवादी असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार भवसिद्धिक भी है, अभवसिद्धिक भी है ।

·४९ सयोगी अक्रियावादी पृथ्वीकायिक और भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक

,, अज्ञानवादी ,,

पुढविक्काइया सव्वट्ठाणेसु वि मज्झिल्लेसु दोसु वि समोसरणेसु भवसिद्धिया वि, अभवसिद्धिया वि ।

—भग० श ३० । उ १ । सू ३४

सयोगी, काययोगी पृथ्वीकायिक अक्रियावादी व अज्ञानवादी भवसिद्धिक भी है, अभवसिद्धिक भी है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५० सयोगी अक्रियावादी अप्कायिक यावत् वनस्पतिकायिक व भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक
सयोगी अज्ञानवादी ,, ,,

एवं जाव वणस्सइकाइया।

—भग० श ३० । उ १ । सू ३४

इसी प्रकार सयोगी, काययोगी अक्रियावादी, अज्ञानवादी अप्कायिक यावत् वनस्पतिकायिक जीव भवसिद्धिक भी है, अभवसिद्धिक भी है।

५१ सयोगी द्वीन्द्रिय यावत् चतुरिन्द्रिय अक्रियावादी और भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक
,, अज्ञानवादी ,,

बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिया एवं चेव × × ×। णवरं सम्मत्ते ओहिणाणे आभिणिबोहियणाणे सुयणाणे एएसु चेव दोसु मज्झिमेसु समोसरणेसु भवसिद्धिया णो अभवसिद्धिया, सेसं तं चेव।

—भग० श ३० । उ १ । सू ३४

सयोगी-काययोगी-वचनयोगी द्वीन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय अक्रियावादी, अज्ञानवादी भवसिद्धिक भी है, अभवसिद्धिक भी है। लेकिन सम्यक्त्वी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी जीव दोनों समवसरण में भवसिद्धिक है, अभवसिद्धिक नहीं है।

५२ सयोगी तिर्यंचपंचेन्द्रिय और समवसरण की अपेक्षा भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक

पंचिंदियतिरिक्खजोणिया जहा णेरइया, णवरं णायव्वं जं अत्थि।

—भग० श ३० । उ १ । सू ३४

सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी व काययोगी क्रियावादी तिर्यंच पंचेन्द्रिय भवसिद्धिक है, अभवसिद्धिक नहीं है।

अक्रियावादी, अज्ञानवादी, विनयवादी तिर्यंच-पंचेन्द्रिय भवसिद्धिक भी है, अभवसिद्धिक भी है।

५३ सयोगी मनुष्य और समवसरण की अपेक्षा भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक

मणुस्सा जहा ओहिया जीवा। (सजोगी जाव कायजोगी जहा सलेस्सा।) अयोगी जहा समदिट्ठी।

—भग० श ३० । उ १ । सू ३४

सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी व काययोगी मनुष्य क्रियावादी भवसिद्धिक है, अभवसिद्धिक नहीं है। अक्रियावादी, अज्ञानवादी, विनयवादी मनुष्य भवसिद्धिक भी है, अभवसिद्धिक भी है। अयोगी क्रियावादी मनुष्य भवसिद्धिक है, अभवसिद्धिक नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·५४ सयोगी वाणव्यंतरदेव यावत् वैमानिकदेव और समवसरण की अपेक्षा भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक

वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा असुरकुमारा ।

—भग० श ३० । उ १ । सू ३४

सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी व काययोगी वाणव्यंतर यावत् वैमानिकदेव क्रियावादी भवसिद्धिक है, अभवसिद्धिक नहीं है । अक्रियावादी, अज्ञानवादी, विनयवादी भवसिद्धिक भी है, अभवसिद्धिक भी है ।

·५५ सयोगी अनन्तरोपपन्नक नारकी यावत् वैमानिकदेव और समवसरण

सलेस्सा णं भंते ! अणंतरोववन्नगा णेरइया किं किरियावाई ? एवं चेव, एवं जहेव पढमुद्देसे णेरइयाणं वत्तव्वया तहेव इहवि भाणियव्वा । णवरं जं जस्स अत्थि अणंतरोववण्णगाणं णेरइया तं तस्स भाणियव्वं ।

एवं सव्वजीवाणं जाव वेमाणिया । णवरं अणंतरोववण्णगाणं जं जहिं अत्थि तं तहिं भाणियव्वं ।

—भग० श ३० । उ २ । सू १-२

सयोगी व काययोगी अनंतरोपपन्नक नारकी क्रियावादी, अक्रियावादी, विनयवादी और अज्ञानवादी है ।

इसी प्रकार यावत् वैमानिकदेव तक सब जीवों के संबंध में जानना । लेकिन अनंतरोपपन्नक जीवों में जिसमें जो संभव हो उसमें वह कहना ।

·५६ सयोगी अनन्तरोपपन्नक नारकी और समवसरण की अपेक्षा आयुष्यबंध

(सजोगी णं भंते) × × ×। किरियावाई अणंतरोववण्णगा णेरइया णंकिंचि वि आउयं पकरेइ जाव अणागारोवउत्तति ।

एवं जाव वेमाणिया, णवरं जं जस्स अत्थि तं तस्स भाणियव्वं ।

—भग० श ३० । उ २ । सू ४

सयोगी-काययोगी अनन्तरोपपन्नक क्रियावादी किसी भी आयुष्य का बंध नहीं करते हैं । इसी प्रकार अक्रियावादी, अज्ञानवादी व विनयवादी भी किसी प्रकार का आयुष्य नहीं बांधते हैं । इसी प्रकार यावत् वैमानिकदेवों तक कहना लेकिन जिसमें जो संभव हो उसमें वह कहना ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·५७ सयोगी अनंतरोपपन्नक नारकी और समवसरण की अपेक्षा भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक

सलेस्सा णं भंते किरियावाई अणंतरोववण्णगा णेरइया किं भवसिद्धीया, अभवसिद्धीया ?

गोयमा ! भवसिद्धीया, णो अभवसिद्धीया। एवं एएणं अभिलावेणं जहेव ओहिए उद्देसए णेरइया वत्तव्वया भणिया तहेव इहवि भाणियव्वा जाव अणगारोवउत्तति।

—भग० श ३० । उ २ । सू ७

सयोगी-काययोगी अनंतरोपपन्नक क्रियावादी नारकी भवसिद्धिक है अभवसिद्धिक नहीं है। अक्रियावादी, अज्ञानवादी, विनयवादी भवसिद्धिक भी है, अभवसिद्धिक भी है।

सयोगी अनंतरोपपन्नक असुरकुमार यावत् वैमानिकदेव और समवसरण की अपेक्षा भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक

एवं जाव वेमाणियाणं। णवरं जं जस्स अत्थि तं तस्स भाणियव्वं। इमं से लक्खणं—जे किरियावाई सुक्कपक्खिवा सम्मामिच्छदिट्ठीया एए सव्वे भवसिद्धीया, णो अभवसिद्धीया। सेसा सव्वे भवसिद्धीया वि, अभवसिद्धीया वि।

—भग० श ३० । उ २ । सू ७

अनंतरोपपन्नक सयोगी, काययोगी असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार क्रियावादी भवसिद्धिक है, अभवसिद्धिक नहीं है। अक्रियावादी-अज्ञानवादी-विनयवादी भवसिद्धिक भी है, अभवसिद्धिक भी है।

नोट—तत्काल उत्पन्न हुआ जीव अनन्तरोपपन्नक कहाता है। क्रियावादी, शुक्लपाक्षिक व सम्यग्दृष्टि—ये भव्य ही होते हैं, अभव्य नहीं। शेष जीव भव्य-अभव्य दोनों प्रकार के हैं। अलेशी, सम्यग्मिथ्यादृष्टि ज्ञानी, अवेदी, अकषायी व अयोगी—ये भव्य ही होते हैं, इनका समावेश क्रियावादी में हो गया।

इसी प्रकार यावत् वैमानिकदेव तक जानना लेकिन जिसके जो संभव हो वह कहना।

·५८ सयोगी परंपरोपपन्नक नारकी यावत् वैमानिक क्रियावादी आदि सयोगी परंपरोपपन्नक यावत् वैमानिक क्रियावादी आदि और आयुष्यबंध सयोगी परंपरोपपन्नक यावत् वैमानिक क्रियावादी और भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परंपरोपवण्णगा णं भंते ! णेरइया किरियावाई० ? एवं जहेव ओहिओ उद्देसओ तहेव परंपरोववण्णएसु वि णेरइयादीओ तहेव णिरवसेसं भाणियव्वं, तहेव तियदंडगसंगहिओ ।

—भग० श ३० । उ ३ । सू १

सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी व काययोगी परंपरोपपन्नक नारकी क्रियावादी भी है, अक्रियावादी भी है, विनयवादी भी है, अज्ञानवादी भी है । वैमानिक तक जानना । औधिक उद्देशक में जैसा कहा वैसा ही तीनों दंडको (क्रियावादित्ववादि, आयुबंध व भव्याभव्यादि) के संबंध में निरवशेष कहना ।

·५९ अनंतरावगाढ़ सयोगी नारकी आदि दंडक और समवसरण
·६० परंपरावगाढ ,,
·६१ अनंतराहारक ,,
·६२ परंपराहारक ,,
·६३ अनंतरपर्याप्तक ,,
·६४ परम्परपर्याप्तक ,,
·६५ चरम ,,
·६६ अचरम ,,

एवं एएणं कमेणं जच्चेव बंधिसए उद्देसगाणं परिवाडी सच्चेव इहंपिजाव अचरियो उद्देसो, णवरं अणंतरा चत्तारि एक्कगमगा, परंपराचत्तारिवि एक्कगमएणं ।

एवंचरिमा वि अचरिमा वि एवं चेव । णवरं अलेस्सो केवली अजोगीण भण्णंति, सेसं तहेव ।

—भग० श ३० । उ ४ से ११ । सू १

इस प्रकार इसी क्रम से बंधकशतक में (देखो) में उद्देशकों की जो परिपाटी कही है उसी परिपाटी से यहाँ अचरम उद्देशक तक जानना । विशेषता यह है कि अनंतर शब्दघटित चार उद्देशकों में तथा परंपर घटित चार उद्देशकों में एक सा गमक कहना ।

इसी प्रकार चरम तथा अचरम शब्दघटित उद्देशकों के संबंध में भी कहना लेकिन अचरम में अलेशी, केवली व अयोगी के संबंध में कुछ भी न कहना ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·३४ सयोगी जीव और अल्पबहुत्व

·२ जीव समास के आश्रय से योग का अल्पबहुत्व

·०१ सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक के अल्पतम योग

सव्वत्थोवो सुहुमेइंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो १४५ ।

टीका—एवं उत्ते सुहुमेइंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स पढमसमयतब्भवत्थस्स विग्गहगदीए वट्टमाणस्स जहण्णओ उववादजोगो घेत्तव्वो । पढमसमयआहारय-पढमसमयतब्भवत्थस्स सुहुमेइंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णओ उववादजोगो किण्ण गहिदो ? ण, णोकम्मसहकारिकारणबलेण जोगे उड्डिमागदे तत्थं जोगस्स जहण्णत्तसंभवाभावादो ।

—षट्० खण्ड ४ । २ । ४ । सू १४५ । पु० १० पृष्ठ० ३९६

अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय का जघन्य योग सबसे न्यून है ।

ऐसा कहने पर उस भव के प्रथम समय में स्थित हुआ व विग्रहगति में बर्तमान ऐसे सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक के जघन्य उपपाद योग को ग्रहण करना चाहिए ।

आहारक होने के प्रथम समय में रहने वाले व उस भव के प्रथम समय में स्थित हुए सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक के जघन्य उपपाद योग को नहीं ग्रहण करना चाहिए । क्योंकि नोकर्म सहकारी कारण के बल से योग की वृद्धि को प्राप्त होने पर वहाँ योग की जघन्यता संभव नहीं है ।

·०२ बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक के जघन्य योग असंख्यातगुण

बादरेइंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो ।

टीका—को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । कुदो ? बादरे-इंदियलद्धिअपज्जत्तयस्स पढमसमयतब्भवत्थस्स विग्गहगदीए वट्टमाणस्स जहण्ण-उववादजोगादो हेट्ठिमसुहुमेइंदियलद्धिअपज्जत्तउववादजोगट्ठाणेसु असंखेज्जजोग-गुणहाणीणं संभवादो । तत्थतणणाणागुणहाणिसलागाओ विरलिय विगुणिय अण्णोण्णब्भत्थे कदे गुणगाररासी होदि त्ति वुत्तं होदि ।

—षट्० खण्ड ४ । २ । ४ । सू १४६ । पु० १० । पृष्ठ० ३९६ । ७

बादर एकेन्द्रिय का अपर्याप्तक का जघन्य योग उससे असंख्यातगुणा है ।

गुणकार क्या है ? गुणकार पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है, क्योंकि उस भव के प्रथम समय में स्थित व विग्रहगति में वर्तमान ऐसे बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक के जघन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपपाद योग से अधस्तन सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक के उपपाद योग-स्थानों में असंख्यात योगगुणहानियों की संभावना है। वहां की नाना-गुणहानि-शलाकाओं का विरलन करके दुगुणा कर परस्पर गुणा करने पर गुणकार राशि होती है—यह अभिप्राय है।

·०३ द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक के जघन्य योग असंख्यातगुण
बीइंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥

टीका—को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। कारणं पुव्वं व परूवेदव्वं। सव्वत्थ लद्धिअपज्जत्तयस्स पढमसमयतब्भवत्थस्स विग्गहगदीए वट्टमाणस्स जहण्णओ उववादजोगो घेत्तव्वो।

—षट्० खण्ड ४। २। ४। सू १४७। पु० १०। पृष्ठ० ३९७

उससे द्वीन्द्रिय अपर्याप्त का जघन्य योग असंख्यातगुणा है। गुणाकार पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है। इसके कारण की प्ररूपणा पहले के ही समान करनी चाहिए। सब जगह उस भव में स्थित होने के प्रथम समय में रहने वाले व विग्रहगति में वर्तमान ऐसे लब्ध्यपर्याप्तक के जघन्य उपपाद योग को ग्रहण करना चाहिए।

·०४ त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक के जघन्य योग असंख्यातगुण
तीइंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥

टीका—को गुणगारो ? हेट्ठिमणाणागुणहाणिसलागाओ विरलिय विगुणिय अण्णोण्णब्भत्थरासी।

—षट्० खण्ड ४। २। ४। सू १४८। पु० १०। पृष्ठ० ३९७

उससे त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक का जघन्य योग असंख्यातगुणा है।

अधस्तन नाना-गुण-हानि-शलाकाओं का विरलन करके द्विगुणित कर परस्पर गुणा करने पर जो राशि उत्पन्न हो वह यहाँ गुणाकार है।

·०५ चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक के जघन्य योग असंख्यातगुण
चउरिंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो।

टीका—को गुणगारो ? जोगगुणगारो।

—षट्० खण्ड ४। २। ४। सू १४९। पु० १०। पृष्ठ० ३९७

उससे चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक का जघन्य योग असंख्यातगुणा है।

गुणकार यहाँ योग-गुणकार अर्थात् पल्योपम का असंख्यातवां भाग है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·०६ असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक के जघन्य योग असंख्यातगुण

असण्णिपंचिंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥

टीका—को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।

—षट्० खण्ड ४ । २ । ४ । सू १५० । पु० १० । पृष्ठ० ३९८

उससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक का जघन्य योग असंख्यातगुणा है ।

गुणकार पल्योपम का असंख्यातवां भाग है ।

·०७ संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक के जघन्य योग असंख्यातगुण

सण्णिपंचिंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो ।

टीका—को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।

—षट्० खण्ड ४ । २ । ४ । सू १५१ । पु० १० । पृष्ठ० ३९८

उससे संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक का जघन्य योग असंख्यातगुणा है ।

गुणकार पल्योपम का असंख्यातवां भाग है ।

·०८ सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक के उत्कृष्ट योग असंख्यातगुण

सुहुमेइंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो ।

टीका—को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एत्थ सुहुमेइंदियअपज्जत्ता दुविहा-लद्धिअपज्जत्त-णिव्वत्तिअपज्जत्तभेएण । तत्थ केसिमपज्जत्ताणमुक्कस्सजोगो घेप्पदे ? सुहुमेइंदियलद्धिअपज्जत्ताणमुक्कस्सपरिणामजोगो घेत्तव्वो । कुदो ? णिव्वत्तिअपज्जताणमुक्कस्सजोगो णाम उक्कस्सएयंताणुवड्ढिजोगो, तत्तो एदस्स उक्कस्सपरिणामजोगस्स असंखेज्जगुणत्तदंसणादो । कुदो णव्वदे ? जहण्णुक्कस्सवीणादो ।

—षट्० खण्ड ४ । २ । ४ । सू १५२ । पु० १० । पृष्ठ० ३९८

उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है ।

गुणकार पल्योपम का असंख्यातवां भाग है ।

यहाँ लब्ध्यपर्याप्तक और निर्वृत्यपर्याप्तक के भेद से सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक के दो प्रकार हैं । यहाँ सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकों के उत्कृष्ट परिणामयोग को यहाँ ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि निर्वृत्यपर्याप्तकों के उत्कृष्ट योग जो उत्कृष्ट एकांतानुवृद्धियोग है उससे इसका उत्कृष्ट परिणाम योग असंख्यातगुणा देखा जाता है ।

यह जघन्योत्कृष्ट वीणा से जाना जाता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·०९ बादर एकेन्द्रिय लब्धयपर्याप्तक के उत्कृष्ट योग असंख्यातगुण

बादरेइंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो ।

टीका—को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एत्थ वि लद्धिअपज्जत्तयस्स बादरेइंदियउक्कस्सपरिणामजोगो घेत्तव्वो, जहण्णुक्कस्सबीणादो बादरेइंदियउक्कस्सपरिणामजोगो णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सएयंताणुवड्ढिजोगं पेक्खिदूण एदस्स असंखेज्जगुणत्तुवलंभादो ।

—षट्० खण्ड ४ । २ । ४ । सू १५३ । पु० १० । पृष्ठ ३९८ । ९

उससे बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है ।

गुणकार पल्योपम का असंख्यातवां भाग है । यहाँ भी लब्ध्यपर्याप्तक बादर एकेन्द्रिय के उत्कृष्ट परिणामयोग को ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि जघन्य व उत्कृष्ट वीणा के अनुसार बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक के उत्कृष्ट एकांतानुवृद्धियोग को देखते हुए बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त का उत्कृष्ट परिणामयोग असंख्यातगुणा पाया जाता है ।

·१० सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक के जघन्य योग असंख्यातगुण

सुहुमेइंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो ।।

टीका—को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एत्थ सुहुमेइंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णपरिणामजोगो घेतव्वो ।

—षट्० खण्ड ४ । २ । ४ । सू १५४ । पु० १० । पृष्ठ० ३९९

सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक का जघन्य योग उससे असंख्यातगुणा है ।

गुणकार पल्योपम का असंख्यातवां भाग है । यहाँ सूक्ष्म एकेन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्तक के जघन्य परिणामयोग को ग्रहण करना चाहिए ।

·११ बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक के जघन्य योग असंख्यातगुण

बादरेइंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो ।

टीका—को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एत्थ बादरेइंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णपरिणाम जोगो घेत्तव्वो ।

—षट्० खण्ड ४ । २ । ४ सू १५५ । पु० १० । पृष्ठ० ३९९

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक का जघन्य योग उससे असंख्यातगुणा है ।

गुणकार पल्योपम का असंख्यातवां भाग है । यहाँ बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्तक के जघन्य परिणामयोग को ग्रहण करना चाहिए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

•१२ सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक के उत्कृष्ट योग असंख्यातगुण

सुहुमेइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो।

टीका—को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।

—षट्० खण्ड ४। २। ४ सू १५६। पु० १०। पृष्ठ० ३९९

उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है।

गुणकार पल्योपम का असंख्यातवां भाग है।

•१३ बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक के उत्कृष्ट योग असंख्यातगुण

बादरेइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो।

टीका—को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।

—षट्० खण्ड ४। २। ४ सू १५७। पु० १०। पृष्ठ० ३९९-४००

उससे बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है।

गुणकार पल्योपम का असंख्यातवां भाग है।

•१४ द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक के उत्कृष्ट योग असंख्यातगुण

बीइंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो।

टीका—को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एत्थ बीइंदिय-अपज्जत्ता लद्धिणिव्वत्तिअपज्जत्तभेएण दुविहा। तत्थ कस्सउक्कस्सजोगो घेप्पदे ? णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सएयंताणुवड्ढिजोगो घेत्तव्वो। कुदो ? बीइंदिय-लद्धिअपज्जत्तउक्कस्सपरिणामजोगादो वि बीइंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्क-स्सएगंताणुवड्ढिजोगस्स जहण्णुक्कस्सवीणाबलेण असंखेज्जगुणत्तुवलंभादो। उवरिमेसु वि णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सएयंताणुवड्ढिजोगो चेव घेत्तव्वो।

—षट्० खण्ड ४। २। ४। सू १५८। पु० १० पृष्ठ० ४००

उससे द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है।

गुणकार पल्योपम का असंख्यातवां भाग है। यहाँ द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक लब्ध्यपर्याप्तक और निर्वृत्यपर्याप्तक के भेद से दो प्रकार हैं। उनमें से निर्वृत्यपर्याप्तक के उत्कृष्ट एकांतानुवृद्धि योग को ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि द्वीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक के उत्कृष्ट परिणामयोग से भी द्वीन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्तक का उत्कृष्ट एकांतानुवृद्धि योग जघन्योत्कृष्ट वीणा के बल से असंख्यातगुणा पाया जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगे के सूत्रों में भी जहाँ अपर्याप्तक पद आया है वहाँ निर्वृत्यपर्याप्तक के उत्कृष्ट एकांतानुवृद्धियोग को ही ग्रहण करना चाहिए।

·१५ त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक के उत्कृष्ट योग असंख्यातगुण

तीइंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सजोगो असंखेज्जगुणो ॥

टीका—गुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।

—षट्० खण्ड ४। २। ४। सू १५९। पु० १०। पृष्ठ० ४००

उससे त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है।

गुणकार पल्योपम का असंख्यातवां भाग है।

·१६ चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक के उत्कृष्ट योग असंख्यातगुण

चदुरिंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सजोगो असंखेज्जगुणो ॥

टीका—गुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। कारणं सुगमं।

—षट्० खण्ड ४। २। ४। सू १६०। पु० १०। पृष्ठ० ४००

उससे चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है।

गुणकार पल्योपम का असंख्यातवां भाग है।

·१७ असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक के उत्कृष्ट योग असंख्यातगुण

असण्णिपंचिंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सजोगो असंखेज्जगुणो ॥

टीका—गुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। कारणं सुगमं।

—षट्० खण्ड ४। २। ४। सू १६१। पु० १० पृष्ठ० ४०१

उससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है।

गुणकार पल्योपम का असंख्यातवां भाग है।

·१८ संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक के उत्कृष्ट योग असंख्यातगुण

सण्णिपंचिंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥

टीका—गुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।

—षट्० खण्ड ४। २। ४। सू १६२। पु० १०। पृष्ठ० ४०१

उससे संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है।

गुणकार पल्योपम का असंख्यातवां भाग है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·१९ द्वीन्द्रिय पर्याप्तक के जघन्य योग असंख्यातगुण

बीइंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो ।।

टीका—गुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एत्थ णिव्वत्तिपज्जत्त-जहण्णपरिणामजोगो घेत्तव्वो ।

—षट्० खण्ड ४ । २ । ४ । सू १६३ । पु० १० । पृष्ठ० ४०१

उससे द्वीन्द्रिय पर्याप्तक का जघन्य योग असंख्यातगुणा है ।

गुणकार पल्योपम का असंख्यातवां भाग है, यहाँ निर्वृत्तिपर्याप्त के जघन्य परिणाम योग से ग्रहण करना चाहिए ।

·२० त्रीन्द्रिय पर्याप्तक के जघन्य योग असंख्यातगुण

तीइंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो ।।

टीका—गुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । उवरि सव्वत्थ गुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो चेव होदि त्ति घेत्तव्वं ।

—षट्० खण्ड ४ । २ । ४ । सू १६४ । पु० १० । पृष्ठ० ४०१

उससे त्रीन्द्रिय पर्याप्तक का जघन्य योग असंख्यातगुणा है ।

गुणकार पल्योपम का असंख्यातवां भाग है । आगे जब जगह गुणकार पल्योपम का असंख्यातवां भाग ही होता है । ऐसा ग्रहण करना चाहिए ।

·२१ चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक के जघन्य योग असंख्यातगुण

चउरिंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो ।।

टीका—सुगमं ।

—षट्० खण्ड ४ । २ । ४ । सू १६५ । पु० १० । पृष्ठ० ४०१

उससे चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक का जघन्य योग असंख्यातगुणा है ।

·२२ असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक के जघन्य योग असंख्यातगुण

असण्णिपंचिंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो ।।

टीका—सुगमं ।

—षट्० खण्ड ४ । २ । ४ । सू १६६ । पु० १० । पृष्ठ० ४०१ ४०२

उससे असंज्ञी पर्याप्तक का जघन्य योग असंख्यातगुणा है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·२३ संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक के जघन्य योग असंख्यातगुण

सण्णिपंचिंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो ।।

टीका—सुगमं ।

—षट्० खण्ड ४ । २ । ४ । सू १६७ । पु० १० । पृष्ठ० ४०२

उससे संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक का जघन्य योग असंख्यातगुणा है ।

·२४ द्वीन्द्रिय पर्याप्तक के उत्कृष्ट योग असंख्यातगुण

बीइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो ।।

टीका—सुगमं ।

—षट्० खण्ड ४ । २ । ४ । सू १६८ । पु० १० । पृष्ठ० ४०२

उससे द्वीन्द्रिय पर्याप्तक का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है ।

·२५ त्रीन्द्रिय पर्याप्तक के उत्कृष्ट योग असंख्यातगुण

तीइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो ।।

टीका—सुगमं ।

—षट्० खण्ड ४ । २ । ४ । सू १६९ । पु० १० । पृष्ठ० ४०२

उससे त्रीन्द्रिय पर्याप्तक का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है ।

·२६ चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक के उत्कृष्ट योग असंख्यातगुण

चउरिंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो ।।

टीका—सुगमं ।

—षट्० खण्ड ४ । २ । ४ । सू १७० । पु० १० । पृष्ठ० ४०२

उससे चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है ।

·२७ असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक के उत्कृष्ट योग असंख्यातगुण

असण्णिपंचिंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो ।।

टीका—सुगमं ।

—षट्० खण्ड ४ । २ । ४ । सू १७१ । पु० १० । पृष्ठ० ४०२

उससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·२८ संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक के उत्कृष्ट योग असंख्यातगुण

सण्णिपंचिंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो ॥

टीका—सुगमं ।

—षट्० खण्ड ४ । २ । ४ सू १७२ । पु० १० । पृष्ठ० ४०२-४०३

उससे संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है ।

·२९ उपयुक्त असंख्यातगुण प्रमाण

एवमेक्केक्कस्स जोगगुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥

टीका पुव्वुत्तासेसजोगट्ठाणाणं गुणगारस्स पमाणमेदेण सुत्तेण परूविदं । पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो गुणगारो होदि त्ति कधं णव्वदे ? एदम्हादो चेव सुत्तादो । ण च पमाणंतरमवेक्खदे, अणवत्थापसंगादो ।

—षट्० खण्ड ४ । २ । ४ । सू १७३ । पु० १० । पृष्ठ० ४०३

इस प्रकार प्रत्येक जीव के गुणकार पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण है ।

इस सूत्र द्वारा पूर्वोक्त समस्त योग स्थानों के गुणकार का प्रमाण कहा गया है ।

अस्तु यह सूत्र स्वयं प्रमाणभूत होने से किसी अन्य प्रमाण की अपेक्षा नहीं करता, क्योंकि ऐसा होने पर अनवस्था दोष का प्रसंग आता है ।

·३० सयोगी जीवों का अल्पबहुत्व

जोगाणुवादेण सव्वत्थोवा मणजोगी ॥१०७॥

टीका—कुदो ? देवाणं संखेज्जदिभागप्पमाणत्तादो ।

वचिजोगी संखेज्जगुणा ॥१०८॥

टीका—कुदो ? पदरंगुलस्स संखेज्जदिभागेण वचिजोगिअवहारकालेण संखेज्जपदरंगुलमेत्ते मणजोगिअवहारकाले भागे हिदे संखेज्जरूवोवलंभादो ।

अजोगी अणंतगुणा ॥१०९॥

टीका—को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो ।

कायजोगी अणंतगुणा ॥११०॥

टीका—गुणगारो अभवसिद्धिएहिंतो सिद्धेहिंतो सव्वजीवपढमवग्गमूलादो वि अणंतगुणो । अण्णेण पयारेण जोगप्पबहुअपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि ।

सव्वत्थोवा आहारमिस्सकायजोगी ॥१११॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आहारकायजोगी संखेज्जगुणा ॥११२॥

टीका—को गुणगारो ? दोण्णि रूवाणि ।

वेउव्वियमिस्सकायजोगी असंखेज्जगुणा ॥११३॥

टीका—गुणगारो जगपदरस्स असखेज्जदिभागो ।

सच्चमणजोगी संखेज्जगुणा ॥११४॥

टीका—कुदो ? विस्ससादो ।

मोसमणजोगी संखेज्जगुणा ॥११५॥

टीका—कुदो ? सच्चमणजोगअद्धादो मोसमणजोगअद्धाए सखेज्जगुणत्तादो सच्चमणजोगपरिणमणवारेहिंतो मोसमणजोगपरिणमणवाराणं संखेज्जगुणत्तादो वा ।

सच्च-मोसमणजोगी संखेज्जगुणा ॥११६॥

टीका—एत्थ पुव्वं व दोहि पयारेहि संखेज्जगुणत्तस्स कारणं वत्तव्वं ।

असच्च-मोसमणजोगी संखेज्जगुणा ॥११७॥

टीका—एत्थ वि पुव्विल्लं दुविहकारणं वत्तव्वं ।

मणजोगो विसेसाहिया ॥११८॥

टीका—केत्तियमेत्तो विसेसो ? सच्च-मोससच्चमोसमणजोगिमेत्तो विसेसो ।

सच्चवचिजोगी संखेज्जगुणा ॥११९॥

टीका—कारणं ? मणजोगिअद्धादो वचिजोगिअद्धाए संखेज्जगुणत्तादो मणजोगवारेहिंतो सच्चवचिजोगवाराणं संखेज्जगुणत्तादो वा ।

मोसवचिजोगी संखेज्जगुणा ॥१२०॥

टीका—एत्थ वि पुव्वं व दुविहकारणं वत्तव्वं ।

सच्चमोसवचिजोगी संखेज्जगुणा ॥१२१॥

टीका—एत्थ वि तं चेव कारणं ।

वेउव्वियकायजोगी संखेज्जगुणा ॥१२२॥

टीका—कुदो ? मण-वचिजोगद्धाहिंतो कायजोगद्धाए संखेज्जगुणत्तादो ।

असच्चमोसवचिजोगी संखेज्जगुणा ॥१२३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टीका—कुदो ? बीइंदियपज्जत्तजीवाणं गहणादो ।

वचिजोगी विसेसाहिया ॥१२४॥

टीका केत्तिमेत्तेण ? सच्च-मोस-सच्चमोसवचिजोगिमेत्तेण ।

अजोगी अणंतगुणा ॥१२५॥

टीका—को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो ।

कम्मइयकायजोगी अणंतगुणा ॥१२६॥

टीका—को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहिंतो सिद्धेहिंतो सव्वजीवाणं पढम-वग्गमूलादो वि अणंतगुणो कुदो ? अंतोमुहुत्तगुणिदअजोगिरासिपमाणेणोवट्टिदसव्व-जीवरासिमेत्तत्तादो ।

ओरालियमिस्सकायजोगी असंखेज्जगुणा ॥१२७॥

टीका—को गुणगारो ? अंतोमुहुत्तं ।

ओरालियकायजोगी संखेज्जगुणा ॥१२८॥

कायजोगी विसेसाहिया ॥१२९॥

टीका—केत्तियमेत्तो विसेसो ? सेसकायजोगिमेत्तो ।

—षट्० भा २ । ११ । सू १०७-२८ । पु ७ । पृ० ५५०-५४

योगमार्गणा के अनुसार मनोयोगी सबसे स्तोक हैं, क्योंकि वे देवों के संख्यातवें भाग रूप हैं। इनसे वचनयोगी संख्यातगुणा हैं, क्योंकि प्रतरांगुल के संख्यातवें भाग रूप वचनयोगी के अवहारकाल से संख्यात प्रतरांगुल रूप मनोयोगी के अवहारकाल को भाजित करने पर संख्यात रूप उपलब्ध होता है। इनसे अयोगी अनन्तगुणा हैं, क्योंकि वे अभव्य-सिद्धिक जीवों से अनन्तगुणा हैं। इनसे काययोगी अनन्तगुणा हैं। इसका गुणकार अभव्यसिद्धिकों, सिद्धों और सर्वजीवों के प्रथम वर्गमूल से भी अनन्तगुणा है।

अन्य प्रकार से योगमार्गणा के अनुसार अल्पबहुत्व का निरूपण निम्न प्रकार से किया जाता है।

आहारकमिश्र काययोगी सबसे स्तोक हैं। इनसे आहारक काययोगी संख्यातगुणा हैं। इसका गुणकार दो रूप है। इनसे वैक्रियमिश्र काययोगी असंख्यातगुणा हैं। इसका गुणकार जगप्रतर का असंख्यातवां भाग रूप है। इनसे सत्यमनोयोगी संख्यातगुणा हैं, क्योंकि यह स्वाभाविक है। इनसे मृषामनोयोगी संख्यातगुणा हैं, क्योंकि सत्यमनोयोगी के काल की अपेक्षा मृषामनोयोग का काल संख्यातगुणा है, अथवा सत्यमनोयोग के परिणमन वारों की की अपेक्षा मृषामनोयोग का परिणमन बार संख्यातगुणा होता है। इनसे सत्य-मृषामनोयोगी संख्यातगुणा हैं। यहाँ पर पूर्व समान दोनों प्रकारों से संख्यातगुणत्व का कारण जानना चाहिए। इनसे असत्यमृषामनोयोगी संख्यातगुणा हैं। यहाँ पर भी पूर्वोक्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोनों प्रकारों से संख्यातगुणत्व का कारण जानना चाहिए। इनसे मनोयोगी विशेषाधिक हैं, क्योंकि इनकी विशेषता सत्यमनोयोगी, मृषामनोयोगी और सत्य-मृषामनोयोगियों के बराबर है। इनसे सत्यवचनयोगी संख्यातगुणा हैं, क्योंकि मनोयोगी के काल से वचनयोगी का काल संख्यातगुणा है, अथवा मनोयोग के बारों की अपेक्षा सत्यवचनयोग के बार संख्यातगुणा हैं। इनसे मृषावचनयोगी संख्यातगुणा हैं। यहाँ पर पूर्वोक्त दोनों कारणों से संख्यातगुणत्व जानना चाहिए। इनसे सत्य-मृषावचनयोगी संख्यातगुणा हैं। यहाँ पर भी पूर्वोक्त कारणों से ही संख्यातगुणत्व जानना चाहिए। इनसे वैक्रियकाययोगी संख्यातगुणा हैं, क्योंकि मनोयोग और वचनयोग के काल से काययोग का काल संख्यातगुणा है। इनसे असत्य-मृषावचनयोगी संख्यातगुणा हैं, क्योंकि यहाँ पर द्वीन्द्रिय पर्याप्त जीवों का ग्रहण किया गया है। इनसे वचनयोगी विशेष-अधिक हैं। इनकी विशेषता सत्यवचनयोगी, मृषावचनयोगी और सत्य-मृषावचनयोगी रूप है। इनसे अयोगी अनन्तगुणा हैं, क्योंकि ये अभव्यसिद्धिक जीवों से अनन्तगुणा हैं। इनसे कार्मण काययोगी अनन्तगुणा हैं। गुणकार अभव्यसिद्धिकों, सिद्धों और सर्व जीवों के प्रथम वर्गमूल से भी अनन्तगुणा हैं, क्योंकि वह अन्तर्मुहूर्त से गुणित अयोगिराशि से अपवर्तित सर्व जीव-राशि रूप है। इनसे औदारिक-मिश्र काययोगी असंख्यातगुणा हैं। इसका गुणकार अन्तर्मुहूर्त रूप हैं। इनसे औदारिक काययोगी संख्यातगुणा हैं। इनसे काययोगी विशेष-अधिक हैं। विशेषता शेष काययोगी रूप है।

·३१ सयोगी जीव और अल्पबहुत्व

अप्पाबहुए सव्वत्थोवा मणजोगी वइजोगी असंखिज्जगुणा अजोगी अणंत-गुणा कायजोगी अणंतगुणा।

—जीवा० प्रति ९। सू २५७। पृष्ठ० ४४९

टीका—सर्वस्तोका मनोयोगिनो, देवनारकगर्भजतिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्या-णामेव मनोयोगित्वात्, तेभ्यो वाग्योगिनोऽसंख्येयगुणाः द्वित्रिचतुरसंज्ञिपञ्चेन्द्रि-याणां वाग्योगित्वात्, अयोगिनोऽनन्तगुणाः सिद्धानामनन्तत्वात्, तेभ्यः काय-योगिनोऽनन्तगुणाः वनस्पतीनां सिद्धेभ्योऽप्यनन्तत्वात्।

सबसे कम मनोयोगी है क्योंकि देव, नारक, गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य, ये सब ही मनोयोगी होते हैं। वचनयोगी इनकी अपेक्षा असंख्यातगुणे अधिक है क्योंकि द्वीन्द्रिय, तेइन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-असंज्ञी पंचेन्द्रिय, ये सब वचनयोगी होते हैं। इनकी अपेक्षा अयोगी अनंतगुणे है। क्योंकि सिद्ध अनंतगुणे हैं। इनकी अपेक्षा काययोगी अनंतगुणे हैं क्योंकि वनस्पतिकाय सिद्धों से अनंतगुणे हैं।

·३२ सयोगी जीवों का अल्पबहुत्व

एतेसि णं जीवाणं सजोगीणं मणजोगीणं वइजोगीणं कायजोगीणं अजोगीण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ? गोयमा !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वत्थोवा जीवा मणजोगी १, वइजोगी असंखेज्जगुणा २, अजोगी अणंतगुणा ३, कायजोगी अणंतगुणा ४, सजोगी विसेसाहिया ५।

—पण्ण० प ३। सू २५२। पृष्ठ० ९६

टीका—सर्वस्तोका मनोयोगिनः, संज्ञिनः पर्याप्ता एवहि मनोयोगिनः ते च स्तोका इति, तेभ्यो वाग्योगिनोऽसंख्येयगुणाः द्वीन्द्रियादीनां वाग्योगिनां संज्ञिभ्योऽसंख्यातगुणत्वात् तेभ्योऽयोगिनोऽनन्तगुणाः, सिद्धानामनन्तत्वात्, तेभ्यः काययोगिनोऽनन्तगुणाः वनस्पतीनामनन्तत्वात्, यद्यपि निगोदजीवानामनन्तानामेकं शरीरं तथापि तेनकेन शरीरेण सर्वेऽप्याहारादिग्रहणं कुर्वन्तीति सर्वेषामपि काययोगित्वान्नानन्तगुणत्वव्याघातः, तेभ्यः सामान्यतः सयोगिनो विशेषाधिकाः, द्वीन्द्रियादीनामपि वाग्योगादीनां तत्र प्रक्षेपात्।

इन सयोगी जीवों में मनोयोगी, वचनयोगी, काययोगी तथा अयोगी जीव कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं? गौतम! मनोयोगी सबसे अल्प हैं, क्योंकि संज्ञी पर्याप्त जीव ही मनोयोगी होते हैं और वे अल्प हैं। इनसे वचनयोगी असंख्यातगुणा हैं, क्योंकि द्वीन्द्रियादि वाग्योगी संज्ञी जीवों से असंख्यातगुणा हैं। इनसे अयोगी अनन्तगुणे हैं, क्योंकि सिद्ध अनन्त हैं। इनसे काययोगी अनन्तगुणे हैं, क्योंकि वनस्पतिकाय अनन्त हैं। यद्यपि अनन्त निगोदों का शरीर एक होता है तथापि वे एक शरीर से आहारादि का ग्रहण करते हैं, अतः सभी के काययोगी होने के कारण अनन्त गुण का व्याघात नहीं होता है। इनसे सामान्यतः सयोगी विशेषाधिक हैं, क्योंकि द्वीन्द्रियादि वचनयोगियों का भी वहाँ पर प्रक्षेप किया गया है।

३३ एयस्स णं भंते! पण्णरसविहस्स जहण्णुक्कोसगस्स कयरे कयरे० जाव विसेसाहिया वा?

१ सव्वत्थोवे कम्मगसरीरस्स जहण्णए जोए २ ओरालियमीसगस्स जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे ३ वेउव्वियमीसगस्स जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे ४ ओरालियसरीरगस्स जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे ५ वेउव्वियसरीरस्स जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे ६ कम्मगसरीरस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे ७ आहारगमीसस्स जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे ८ तस्स चेव उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे ९-१० ओरालियमीसगस्स, वेउव्वियमीसगस्स य एएसि णं उक्कोसए जोए दोण्ह वि तुल्ले असंखेज्जगुणे ११ असच्चामोसमणजोगस्स जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे १२ आहारगसरीरस्स जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे १३-१९ तिविहस्स मणजोगस्स चउव्विहस्स वयजोगस्स—एएसि णं सत्तण्ह वि तुल्ले जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे २० आहारगसरीरस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे २१-३० ओरालियसरीरस्स,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेउव्वियसरीरस्स, चउव्विहस्स य मणजोगस्स, चउव्विहस्स य वइजोगस्स—एएसि णं दसण्ह वि तुल्ले उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे।

—भग० श २५। उ १। सू ७

१ कार्मण शरीर का जघन्य काययोग सबसे स्तोक होता है। २ उससे औदारिक-मिश्र का जघन्य योग असंख्यातगुणा होता है। ३ उससे वैक्रियमिश्र का जघन्य योग असंख्यातगुणा होता है। ४ उससे औदारिक शरीर का जघन्य योग असंख्यातगुणा होता है। ५ उससे वैक्रिय शरीर का जघन्य योग असंख्यातगुणा होता है। ६ उससे कार्मण शरीर का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा होता है। ७ उससे आहारकमिश्र का जघन्य योग असंख्यातगुणा है। ८ उससे उसी का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है। ९-१० उससे औदारिकमिश्र और वैक्रियमिश्र का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है तथा परस्पर तुल्य है। ११ उससे असत्यमृषा मनोयोग का जघन्य योग असंख्यातगुणा है। १२ उससे आहारक शरीर का जघन्य योग असंख्यातगुणा है। १३-१९ उससे तीन प्रकार के मनोयोग और चार प्रकार के वचन योग, इन सातों का जघन्य योग असंख्यातगुणा है और परस्पर तुल्य है। २० उससे आहारक शरीर का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है। २१-३० उससे औदारिक शरीर, वैक्रिय शरीर, चार प्रकार के मनोयोग तथा चार प्रकार के वचनयोग—इन दसों का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है तथा परस्पर तुल्य है।

३४ सयोगी और अल्पबहुत्व

एएसि णं भंते ! चोद्दसविहाणं संसारसमावण्णगाणं जीवाणं जहण्णुक्कोसगस्स जोगस्स कयरेहिंतो कयरे जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! १ सव्वत्थोवे सुहुमस्स अपज्जत्तगस्स जहण्णए जोए २ बायरस्स अपज्जत्तगस्स जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे ३ बेइंदियस्स अपज्जत्तगस्स जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे ४ एवं तेइंदियस्स ५ एवं चउरिंदियस्स ६ असण्णिस्स पंचिंदियस्स अपज्जत्तगस्स जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे ७ सण्णिस्स पंचिंदियस्स अपज्जत्तगस्स जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे ८ सुहुमस्स पज्जत्तगस्स जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे ९ बायरस्स पज्जत्तगस्स जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे १० सुहुमस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे ११ बायरस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे १२ सुहुमस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे १३ बायरस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे १४ बेइंदियस्स पज्जत्तगस्स जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे १५ एवं तेइंदियस्स० १८ एवं जाव सण्णिपंचिंदियस्स पज्जत्तगस्स जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे १९ बेइंदियस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे २० एवं तेइंदियस्स वि २१ एवं चउरिंदियस्स वि २३ एवं जाव सण्णिपंचिंदियस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२४ बेइंदियस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे २५ एवं तेइंदियस्स वि पज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे २६ चउरिंदियस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे २७ असण्णिपंचिंदियस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्ज-गुणे २८ एवं सण्णिपंचिंदियस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे।

—भग० श २५। उ १। सू ३

१ सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त का जघन्य योग सबसे अल्प है। २ उससे बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त का जघन्य योग असंख्यातगुणा है। ३ उससे द्वीन्द्रिय अपर्याप्त का जघन्य योग असंख्यातगुणा है। ४ उससे त्रीन्द्रिय अपर्याप्त का जघन्य योग असंख्यातगुणा है। ५ उससे चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त का जघन्य योग असंख्यातगुणा है। ६ उससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त का जघन्य योग असंख्यातगुणा है। ७ उससे संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त का जघन्य योग असंख्यातगुणा है। ८ उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त का जघन्य योग असंख्यातगुणा है। ९ उससे बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त का जघन्य योग असंख्यातगुणा है। १० उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है। ११ उससे बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है। १२ उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है। १३ उससे बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है। १४ उससे द्वीन्द्रिय पर्याप्त का जघन्य योग असंख्यातगुणा है। १५ उससे त्रीन्द्रिय पर्याप्त का जघन्य योग असंख्यातगुणा है। १६-१८ उससे चतुरिन्द्रिय पर्याप्त, असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त और संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त का जघन्य योग उत्तरोत्तर असंख्यातगुणा है। १९ उससे द्वीन्द्रिय अपर्याप्त का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है। २०-२३ इसी प्रकार त्रीन्द्रिय अपर्याप्त, चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त, असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त का उत्कृष्ट योग उतरोत्तर असंख्यातगुणा है। २४ उससे द्वीन्द्रिय पर्याप्त का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है। २५ इसी प्रकार त्रीन्द्रिय पर्याप्त का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है। २६ उससे चतुरिन्द्रिय पर्याप्त का उत्कृष्ट योग असंख्यात-गुणा है। २७ उससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है। २८ उससे संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है।

विवेचन—इनमें सूक्ष्म अपर्याप्त एकेन्द्रिय का जघन्य योग सबसे अल्प है क्योंकि उनका शरीर सूक्ष्म और अपर्याप्त होने से (अपूर्ण होवे के कारण) दूसरे सभी जीवों के योगों की अपेक्षा उसका योग सबसे अल्प होता है और यह कार्मण शरीर द्वारा औदारिक शरीर ग्रहण करने के प्रथम समय में होता है। तत्पश्चात् समय-समय योगों की वृद्धि होती है और उत्कृष्ट योग तक बढ़ता है। अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय का जघन्य योग, पूर्वोक्त की अपेक्षा असंख्यातगुण होता है। बादर होने से उसका योग असंख्यातगुण बड़ा होता है। इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिए।

यद्यपि पर्याप्त तेइन्द्रिय की उत्कृष्ट काया की अपेक्षा पर्याप्तक बेइन्द्रियों की काया तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय की उत्कृष्ट काया, संख्यात योजन होने से संख्यात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुण ही होती है, तथापि यहां परिस्पन्दन (कम्पन-हलन-चलन) रूप योग की विवक्षा होने से तथा क्षयोपशम विशेष की सामर्थ्य से असंख्यातगुण होने का कथन विरुद्ध नहीं है, क्योंकि यह कोई नियम नहीं है कि असंख्यातगुण वाले का कथन विरुद्ध नहीं है, क्योंकि यह कोई नियम नहीं है कि अल्प कायवाले का परिस्पन्दन अल्प ही होता है और महाकायवाले का परिस्पन्दन बहुत ही होता है क्योंकि इससे विपरीतता भी देखी जाती है। जैसे—अल्प कायवाले का परिस्पन्दन महान् भी होता है और महाकायवाले का परिस्पन्दन अल्प भी होता है।

•३५ अंतोमुहुत्तमेत्ता चउमणजोगा कमेण संखगुणा
तज्जोगो सामण्णं चउवचिजोगा तदो दु संखगुणा

—गोजी० गा २६२

सत्य, असत्य, उभय और अनुभय—ये चार मनोयोगों में से प्रत्येक का काल अन्तर्मुहूर्त है तथापि क्रम से संख्यातगुणा है अर्थात् सत्य मनोयोग का काल सबसे स्तोक अन्तर्मुहूर्त है। उससे संख्यातगुणा अन्तर्मुहूर्त असत्य मनोयोग का काल है। उससे संख्यातगुणा अन्तर्मुहूर्त उभय मनोयोग का काल है। उससे संख्यातगुणा अन्तर्मुहूर्त अनुभय मनोयोग का काल है। वह भी अन्तर्मुहूर्त मात्र ही है। इन चारों योगों के काल का जोड़ सामान्य मनोयोग का काल है।

टीका—सत्यासत्योभयानुभयाख्याः ! चत्वारो मनोयोगाः अन्तर्मुहूर्तमात्राः प्रत्येक मन्तर्मुहूर्तकालवृत्तयः तथापि क्रमेण संख्येयगुणा भवन्ति—

एवं कालानां युतिः सामान्यं सामान्यमनोयोग कालो भवति। अयमप्यन्तर्मुहूर्तमात्र एव।

तज्जोगो सामण्णं चउवचिजोगा तदो दु संखगुणा।

—गोजी० गा २६२। उत्तरार्ध

टीका—ततः सामान्य मनोयोगकालात्तु पुनः ते चत्वारो वाग्योगकाला अपि क्रमेण संख्यातगुणाः ; तथापि प्रत्येकमन्तर्मुहूर्तमात्रा एव—एषां युतिः × × × अपि अन्तर्मुहूर्तमात्री भवति।

सामान्य मनोयोग के काल से चारों वचनयोगों का काल भी क्रम से संख्यातगुणा है तथापि प्रत्येक का काल अन्तर्मुहूर्त मात्र ही है अर्थात् चारों मनोयोग के कालों के जोड़ से संख्यातगुणा अन्तर्मुहूर्त सत्यवचन योग का काल है। उससे संख्यातगुणा अन्तर्मुहूर्त असत्यवचन का काल है। उससे संख्यातगुणा उभय वचन का काल है। उससे संख्यातगुणा अनुभय वचन का योग काल है। इन सबका योग भी अन्तर्मुहूर्त मात्र है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·३६ काययोग का अल्पबहुत्व

अत्र कार्मणकाययोगिनः सर्वतः स्तोका एभ्यः औदारिकमिश्रकाययोगिनः असंख्यातगुणाः एभ्यः औदारिककाययोगिनः संख्यातगुणाः ।

—गोजी० गा २६५ । टीका

यहाँ सबसे थोड़े कार्मण-काय योगी है, इनसे औदारिकमिश्र-काय योगी असंख्यातगुणे तथा इनसे औदारिक-काय योगी संख्यातगुणे हैं ।

·३७ पन्द्रह योगों का अल्पबहुत्व

·०१ पंचमनोयोगी तथा पंचवचन योगी का अल्पबहुत्व

·०२ काययोगी का अल्पबहुत्व

·०३ औदारिककाययोगी का अल्पबहुत्व

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-कायजोगि-ओरालियकायजोगेसु तीसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।

—षट्० खं० १ । ८ । सू १०५ । पु ५ । पृष्ठ० २९०

टीका—एदेहि उत्तसव्वजोगेहि सह उवसमसेढिं चढंताणं वुक्कस्सेण चउवण्णत्तमत्थि त्ति तुल्लत्तं परूविदं । उवरिमगुणट्ठाणजीवेहिंतो ऊणा त्ति थोवा त्ति परूविदा । एदेसिं बारसण्हमप्पाबहुआणं तिसु अद्धासु ट्ठिदउवसमगा मूलपदं जादा ।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तेत्तिया चेव ।

—षट्० खं० १ । ८ । सू १०६ । पु ५ । पृष्ठ० २९०

टीका—सुगममेदं ।

खवा संखेज्जगुणा ।

—षट्० खं० १ । ८ । सू १०७ पु ५ । पृष्ठ० २९०

टीका—अट्ठुत्तरसदपरिमाणत्तादो ।

खीणकसायवीदरागछदुमत्था तेत्तिया चेव ।

—षट्० खं० १ । ८ । सू १०८ । पु ५ । पृष्ठ० २९१

टीका—सुगममेदं ।

सजोगिकेवली पवेसणेण तेत्तिया चेव ।

—षट्० खं० १ । ८ । सू १०८ । पु ५ । पृष्ठ० २९१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टीका—एदं पि सुगमं। जेसु जोगेसु सजोगिगुणट्ठाणं संभवदि, तेसिं चेवेदमप्पाबहुअं घेत्तव्वं।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा।

—षट्० खण्ड १। ८। सू ११०। पु ५। पृष्ठ० २९१

टीका—को गुणकारो ? संखेज्जसमया। जहा ओघम्हि संखेज्जसमयसाहणं कदं, तहा एत्थ वि कायव्वं।

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा।

—षट्० खं० १। ८। सू १११। पु ५। पृष्ठ० २९१

टीका—एत्थ वि जहा ओघहि गुणगारो साहिदो तहा साहेदव्वो। णवरि अप्पिदजोगजीवरासिपमाणं णादूण अप्पाबहुअं कायव्वं।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।

—षट्० खं० १। ८। सू ११२। पु ५। पृष्ठ० २९१/२

टीका—सुगममेदं।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा।

—षट्० खं० १। ८। सू ११३। पु ५। पृष्ठ० २९२

टीका—को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागस्स संखेज्जदिभागो। सेसं सुगमं।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।

—षट्० खं० १। ८। सू ११४। पु ५। पृष्ठ० २९२

टीका—को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो। कारणं जाणिदूण वत्तव्वं।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।

—षट्० खं० १। ८। सू ११५। पु ५। पृष्ठ० २९२

टीका—को गुणगारो ? संखेज्जसमया। एत्थ वि कारणं णिहालिय वत्तव्वं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।

—षट्० खण्ड १। ८। सू ११६। पु० ५। पृष्ठ० २९२

टीका—को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो। जोगद्धाणं समासं कादूण तेण सामण्णरासिमोवट्टिय अप्पिजोगद्धाए गुणिदे इच्छिद-इच्छिदरासीओ होंति। अण्ण पमारेण सव्वत्थ दव्वपमाणमुप्पाइय अप्पाबहुअं वत्तव्वं।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा, मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा।

—षट्० खण्ड १। ८। सू ११७। पु० ५। पृष्ठ० २९३

टीका—एत्थ एवं संबंधो कायव्वो। तंजहा-पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि असंजदसम्मादिट्ठीहिंतो तेसिं चेव जोगाणं मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा। को गुणगारो ? पदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ। केत्तियमेत्ताओ ? सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताओ। को पडिभागो ? घणगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पदरंगुलाणि। कायजोगि-ओरालियकायजोगिअसंजदसम्मादिट्ठीहिंतो तेसिं चेव जोगाणं मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा। को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहिं अणंतगुणो, सिद्धेहि वि अणंतगुणो, अणंताणि सव्वजीवरासिपढमवग्ग-मूलाणि त्ति।

असंजदसम्मादिट्ठी-संजदासंजद-पमत्तापमत्त-संजदट्ठाणे सम्मत्तप्पाबहु-अमोघं।

—षट्० खण्ड १। ८। सू ११८। पु० ५। पृष्ठ० २९३

टीका—एदेसिं गुणट्ठाणाणं जधा ओघम्हि सम्मत्तप्पाबहुअं उत्तं, तधा एत्थ वि अणूणाहियं वत्तव्वं।

एवं तिसु अद्धासु।

—षट्० खण्ड १। ८। सू ११९। पु० ५। पृष्ठ० २९४

टीका—सुगममेदं।

सव्वत्थोवा उवसमा।

—षट्० खण्ड १। ८। सू १२०। पु० ५। पृष्ठ० २९४

टीका—एदं पि सुगमं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खवा संखेज्जगुणा।

—षट्० खण्ड १। ८। सू १२१। पु० । पृष्ठ० २९४

टीका—अप्पिदजोगउवसामगेहिंतो अप्पिदजोगाणं खवा संखेज्जगुणा। एत्थ पक्खेवसंखेवेण मूलरासिमोवट्टिय अप्पिदपक्खेवेण गुणिय इच्छिदरासिपमाणमुप्पाएदव्वं।

·०४ औदारिकमिश्र काययोगी का अल्पबहुत्व

ओरालियमिस्सकायजोगीसु सव्वत्थोवा सजोगिकेवली।

—षट्० खण्ड १। ८। सू १२२। पु० ५। पृष्ठ० २९४

टीका—अप्पिदजोगउवसामगेहिंतो अप्पिदजोगाणं खवा संखेज्जगुणा। एत्थ पक्खेवसंखेवेण मूलरासिमोवट्टिय अप्पिदपक्खेवेण गुणिय इच्छिदरासिपमाणमुप्पाएदव्वं।

असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।

—षट्० खण्ड १। ८। सू १२३। पु० ५। पृष्ठ० २९४

टीका—कुदो? देव-णेरइय-मणुस्सेहिंतो आगंतूण तिरिक्खमणुसेसुप्पण्णाणं असंजदसम्मादिट्ठीणमोरालियमिस्सम्हि सजोगिकेवलीहिंतो संखेज्जगुणाणमुवलंभा।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।

—षट्० खण्ड १। ८। सू १२४। पु० ५। पृष्ठ० २९५

टीका—को गुणकारो? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि।

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा।

—षट्० खण्ड १। ८। सू १२५। पु० ५। पृष्ठ० २९५

टीका—को गुणकारो? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो, सिद्धेहि वि अणंतगुणो, अणंताणि सव्वजीवरासिपढमवग्गमूलाणि।

असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी।

—षट्० खण्ड १। ८। सू १२६। पु० ५। पृष्ठ० २९५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टीका—दंसणमोहणीयखएणुप्पण्णसद्दहणाणं जीवाणमइदुल्लभत्तादो।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।

—षट्० खण्ड १। ८। सू १२७। पु ५। पृष्ठ० २९५

टीका—खओवसमियसम्मत्ताणं जीवाणं बहूणमुवलंभा। को गुणकारो? संखेज्जा समया।

·०५ वैक्रिय काययोगी का अल्पबहुत्व

वेउव्वियकायजोगीसु देवगदिभंगो।

—षट्० खण्ड० १। ८। सू १२८। पु ५। पृष्ठ० २९५-२९६

टीका—जधा देवगदिम्हि अप्पाबहुअं उत्तं, तधा वेउव्वियकायजोगीसु वत्तव्वं। तं जधा—सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी। सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा। असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा। मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा। असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी। खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा। वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।

·०६ वैक्रियमिश्र-काययोगी का अल्पबहुत्व

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी।

—षट्० खण्ड० १। ८। सू १२९ पु ५। पृष्ठ० २९६

टीका कारणं पुव्वं व वत्तव्वं।

असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।

—षट्० खण्ड० १। ८। सू १३०। पु ५। पृष्ठ० २९६

टीका—को गुणकारो? आवलियाए असंखेज्जदिभागो। एत्थ कारणं संभालिय वत्तव्वं।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा।

—षट्० खण्ड० १। ८। सू १३१। पु ५। पृष्ठ० २९६

टीका—को गुणकारो? पदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताओ। को पडिभागो? घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पदरंगुलाणि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असंजदसम्मादिट्ठिठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ।

—षट्० खण्ड० १ । ८ । सू १३२ । पु ५ । पृष्ठ० २९७

टीका—कुदो ? उवसमसम्मत्तेण सह उवसमसेढिम्हि मदजीवाणमइथोवत्तादो ।

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।

—षट्० खण्ड० १ । ८ । सू १३३ । पु ५ । पृष्ठ० २९७

टीका—उवसामगेहिंतो संखेज्जगुणअसंजदसम्मादिट्ठि-आदिगुणट्ठाणेहिंतो संचयसंभवादो ।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ।

—षट्० खण्ड० १ । ८ । सू १३४ । पु ५ । पृष्ठ० २९७

टीका—तिरिक्खेहिंतो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तवेदग-सम्मादिट्ठिजीवाणं देवेसु उववादसंभवादो । को गुणकारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि ।

०७ आहारक-काययोगी का अल्पबहुत्व

०८ आहारकमिश्र-काययोगी का अल्पबहुत्व

आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ।

—षट्७ खण्ड० १ । ८ । सू १३५ । पु ५ । पृष्ठ० २९७

टीका—सुगममेदं ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।

—षट्० खण्ड० १ । ८ । सू १३६ । पु ५ । पृष्ठ० २९७

टीका—एदं पि सुगमं । उवसमसम्मादिट्ठीणमेत्थ संभवाभावा तेसिमप्पाबहुगं ण कहिदं । किमट्ठं उवसमसम्मत्तेण आहाररिद्धी ण उप्पज्जदि ? उवसमसम्मत्तकालम्हि अइदहरम्हि तदुप्पत्तीए संभवाभावा । ण उवसमसेढिम्हि उवसमसम्मत्तेण आहाररिद्धीओ लब्भइ, तत्थ पमादाभावा । ण च तत्तो ओइण्णाण आहाररिद्धी उवलब्भइ, जत्तियमेत्तेण कालेण आहाररिद्धी उप्पज्जइ, उवसमसम्मत्तस्स तत्तियमेत्तकालमवट्ठाणाभावा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

०९ कार्मण काययोगी का अल्पबहुत्व

कम्मइयकायजोगीसु सव्वत्थोवा सजोगिकेवली।

—षट्० खण्ड० १। ८। सू १३७। पु ५। पृष्ठ० २९८

टीका—कुदो ? पदर-लोगपूरणेसु उक्कस्सेण सट्ठिमेत्तसजोगिकेवलीण-मुवलंभा।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।

—षट्० खण्ड० १। ८। सू १३८। पु ५। पृष्ठ० २९८

टीका—को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।

—षट्० खण्ड० १। ८। सू १३९। पु ५। पृष्ठ० २९९

टीका—को गुणकारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो। एत्थ कारणं णादूण वत्तव्वं।

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा।

—षट्० खण्ड० १। ८। सू १४१। पु ५। पृष्ठ० २९९

टीका—को गुणकारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो, सिद्धेहि वि अणंत-गुणो, अणंताणि सव्वजीवरासिपढमवग्गमूलाणि।

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सवत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।

—षट्० खण्ड० १। ८। सू १४१। पु ५। पृष्ठ० २९९

टीका—कुदो ? उवसमसेडिम्हि उवसमसम्मत्तेण मदसंजदाणं संखे-ज्जत्तादो।

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।

—षट्० खण्ड० १। ८। सू १४२। पु ५। पृष्ठ० २९९-३००

टीका—पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तखइयसम्मादिट्ठीहिंतो असंखेज्ज-जीवा विग्गहं किण्ण करेंति त्ति उत्ते उच्चदे—ण ताव देवा खइयसम्मादिट्ठिणो असंखेज्जा अक्कमेण मरंति, मणुसेसु असंखेज्जखइयसम्मादिट्ठिप्पसंगा। ण च

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मणुसेसु असंखेज्जा मरंति, तत्थासंखेज्जाणं सम्मादिट्ठीणमभावा। ण तिरिक्खा असंखेज्जा मारणंतियं करेंति, तत्थ आयुणुसारिवयत्तादो। तेण विग्गहगदीए खइयसम्मादिट्ठिणो संखेज्जा चेव होंति। होंता वि उवसमसम्मादिट्ठीहिंतो संखेज्जगुणा, उवसमसम्मादिट्ठिकारणादो खइयसम्मादिट्ठिकारणस्स संखेज्जगुणजादो।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।

—षट्० खण्ड० १। ८। सू १४३। पु ५। पृष्ठ० ३००

टीका—को गुणकारो? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि। को पडिभागो? खइयसम्मादिट्ठिरासिगुणिदअसंखेज्जावलियाओ।

१० सयोगी जीवों का अल्प बहुत्व

अप्पाबहुअं तिविहं सत्थाणादिभेएण। सत्थाणे पयदं। पंचमणजोगितिण्णिवचिजोगिवेउव्विय-वेउव्वियमिस्सकायजोगीणं सत्थाणस्स देवगइभंगो। वचिजोगिअसच्चमोसवचिजोगीणं सत्थाणस्स पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्तभंगो। सेसकायजोगीसु मिच्छाइट्ठीणं सत्थाणं णत्थि। सासणसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-संजदा-संजदाणं सत्थाणस्स ओघभंगो।

परत्थाणे पयदं। सव्वत्थोवा असच्चमोसमणजोगिणो चत्तारि उवसामगा। असच्चमोसमणजोगिणो चत्तारि खवगा संखेज्जगुणा। असच्चमोसमणजोगिणो सजोगिकेवली संखेज्जगुणा। असच्चमोसमणजोगिणो अप्पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा। असच्चमोसमणजोगिणो पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा। असच्चमोसमणजोगिअसंजदसम्माइट्ठिअवहारकालो असंखेज्जगुणो। असच्चमोसमणजोगिसम्मामिच्छाइट्ठिअवहारकालो असंखेज्जगुणो। असच्चमोसमणजोगिसासणसम्माइट्ठिअवहारकालो सखेज्जगुणो। असच्चमोसमणजोगिसंजदासजद-अवहारकालो असंखेज्जगुणो। तस्सेव दव्वमसंखेज्जगुणं। असच्चमोसमणजोणिसासणसम्माइट्ठिदव्वमसंखेज्जगुणं। असच्चमोसमणजोगिसम्मामिच्छाइट्ठिदव्वं संखेज्जगुणं। असच्चमोसमणजोगिअसंजदसम्माइट्ठिदव्वमसंखेज्जगुणं। पलिदोवममसंखेज्जगुणं। असच्चमोसमणजोगिमिच्छाइट्ठिअवहारकालो असंखेज्जगुणो। तस्सेव विक्खंभसूई असंखेज्जगुणा। सेढी असंखेज्जगुणा। दव्वमसंखेज्जगुणं। पदरमसंखेज्जगुणं। लोगो असंखेज्जगुणो। एवं चत्तारिमण-पंचवचिजोगीणं परत्थाणप्पाबहुगं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वत्तव्वं । वेउव्वियकायजोगीसु सव्वत्थोवो असंजदसम्माइट्ठिअवहारकालो । उवरि मणजोगपरत्थाणभंगो । वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु सव्वत्थोवो असंजदसम्माइट्ठिअवहारकालो । सासणसम्माइट्ठिअवहारकालो असंखेज्जगुणो । तस्सेव दव्वमसंखेज्जगुणं असंजदसम्माइट्ठिदव्वमसंखेज्जगुणं । उवरि मणजोगिपरत्थाणभंगो । सव्वत्थोवा कायजोगिणो उवसामगा । खवगा संखेज्जगुणा । एवं णेयव्वं जाव । पलिदोवमं ति । पलिदोवमादो उवरि मिच्छाइट्ठी अणंतगुणा । एवं ओरालियकायजोगीणं पि वत्तव्वं । ओरालियमिस्सकायजोगीसु सव्वत्थोवा सजोगिकेवली । असंजदसम्माइट्ठी संखेज्जगुणा । सासणसम्माइट्ठिअवहारकालो असंखेज्जगुणो । तस्सेव दव्वमसंखेज्जगुणं । पलिदोवममसंखेज्जगुणं । मिच्छाइट्ठी अणंतगुणा । आहार-आहारमिस्सेसु णत्थि सत्थाणं परत्थाणं वा । कम्मइयकायजोगीसु सव्वत्थोवा सजोगिणो । असंजदसम्माइट्ठिअवहारकालो असंखेज्जगुणो । सासणसम्माइट्ठिअवहारकालो असंखेज्जगुणो । तस्सेव दव्वमसंखेज्जगुणं । असंजदसम्माइट्ठिदव्वमसंखेज्जगुणं । पलिदोवममसंखेज्जगुणं । कम्मइयकायजोगिमिच्छाइट्ठिणो अणंतगुणा ।

सव्वपरत्थाणे पयदं । सव्वत्थोवा आहारमिस्सकायजोगिजीवा । आहारकायजोगिजीवा संखेज्जगुणा । अप्पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा । पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा । सव्वेसिमसंजदसम्मादिट्ठीणं अवहारकालो असंखेज्जगुणो । एवं णेयव्वं जाव पलिदोवमं त्ति । किमट्ठमेवं जाणिज्जदे । वेउव्वियमिस्स-ओरालियमिस्स कम्मइयकायजोगीसु सासणसम्माइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठिरासीणं माहप्पं ण जाणिज्जदि त्ति । पुव्वं किमिदं परूविदं ? ण, आइरियाणं तस्स अभिप्पायंतरदरिसणट्ठत्तादो । पलिदोवमादो उवरि वचिजोगिअवहारकालो असंखेज्जगुणो । असच्चमोसवचिजोगिअवहारकालो विसेसाहिओ । वेउव्वियकायजोगिअवहारकालो संखेज्जगुणो । एवं सच्चमोसवचिजोगि-मोसवचिजोगि-सच्चवचिजोगिमणजोगीणं अवहारकाला संखेज्जगुणा । असच्चमोसमणजोगीणं अवहारकालो विसेसाहिओ । सच्चमोसमणजोगिअवहारकालो संखेज्जगुणो । एवं मोसमणजोगि-सच्चमणजोगि-वेउव्वियमिस्सकायजोगीणं अवहारकाला संखेज्जगुणा । तस्सेव विक्खंभसूई असंखेज्जगुणा । सच्चमणजोगिविक्खंभसूई संखेज्जगुणा । एवं मोसमणजोगि-सच्चमोसमणजोगि-असच्चमोसमणजोगीणं । तदो मणजोगिविक्खंभसूई विसेसाहिया । सच्चवचिजोगिविक्खंभसूई संखेज्जगुणा । एवं मोसवचिजोगि (सच्चमोसवचिजोगि) वेउव्वियकायजोगि-असच्चमोसवचि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जोगिविक्खंभसूचीओ संखेज्जगुणाओ। वचिजोगिविक्खंभसूई विसेसाहिया। सेढी असंखेज्जगुणा। तदो वेउव्वियमिस्सकायजोगिमिच्छाइट्ठिदव्वमसंखेज्जगुणं। सच्च-मणजोगिदव्वं संखेज्जगुणं। एवं मोसमणजोगि-सच्चमोसमणजोगि-असच्च-मोसमणजोगिदव्वाणि जहाकमेण संखेज्जगुणाणि। मणजोगिदव्वं विसेसाहियं। सच्चवचिजोगिदव्वं संखेज्जगुणं। एवं मोसवचिजोगि-सच्चमोसवचिजोगि-वेउव्वियकायजोगि-असच्चमोसवचिजोगिदव्वाणि जहाकमेण संखेज्जगुणाणि। तदो वचिजोगिदव्वं विसेसाहियं। पदरमसंखेज्जगुणं। लोगो असंखेज्जगुणो। तदो अजोइणो अणंतगुणा। कम्मइयकायजोगिणो अणंतगुणा। ओरालिय-मिस्सकायजोगिणो असंखेज्जगुणा। ओरालियकायजोगिणो मिच्छाइट्ठी संखेज्ज-गुणा।

—षट्० खण्ड० १। २। सू १४३। पु ३। पृष्ठ० ४०८-१३

स्वस्थान आदि के भेद से अल्पबहुत्व तीन प्रकार का है। उनमें से स्वस्थान अल्पबहुत्व प्रकृत है। पाँच मनोयोगी, तीन वचनयोगी, वैक्रिय काययोगी और वैक्रिय-मिश्र-काययोगियों का स्वस्थान अल्पबहुत्व देवगति के समान हैं। वचनयोगी और अनुभय-वचनयोगियों का स्वस्थान अल्पबहुत्व पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तों के स्वस्थान अल्पबहुत्व के समान है। शेष काययोगियों में मिथ्यादृष्टि जीवों के स्वस्थान अल्पबहुत्व नहीं पाया जाता है। उन्हीं के सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयतों का स्वस्थान अल्पबहुत्व ओघ अल्पबहुत्व ओघ स्वस्थान अल्पबहुत्व के समान है।

अब पर स्थान में अल्पबहुत्व प्रकृत है।

१—अनुभय मनोयोगी चारों गुणस्थानवर्ती उपशामक सबसे थोड़े हैं। अनुभय मनोयोगी चार गुणस्थानवर्ती रूपक उपशामकों से संख्यातगुणे हैं।

अनुभय मनोयोगी सयोगि केवली जीव उक्त क्षपकों से संख्यातगुणे हैं। अनुभय मनोयोगी अप्रमत्त संयत जीव उक्त सयोगी केवलियों से संख्यातगुणे हैं। अनुभय मनोयोगी प्रमत्त संयत जीव उक्त अप्रमत्त संयतों से संख्यातगुणे हैं। अनुभय मनोयोगी असंयत सम्यग्दृष्टियों का अवहारकाल उक्त प्रमत्त संयतों से असंख्यातगुणा है। अनुभय मनोयोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टियों का अवहारकाल उक्त असंयत अवहारकाल से असंख्यातगुणा है। अनुभय मनोयोगी सासादन सम्यग्दृष्टियों का अवहारकाल उक्त सम्यग्मिथ्यादृष्टि के अवहारकाल से असंख्यातगुणा है। अनुभय मनोयोगी संयतासंयतों का अवहारकाल उक्त सासादन सम्यग्दृष्टि अवहारकाल से असंख्यातगुणा है। उन्हीं अनुभय मनोयोगी संयता-संयतों का द्रव्य उन्हीं के अवहारकाल से असंख्यातगुणा है। अनुभय मनोयोगी सासादन सम्यग्दृष्टियों का द्रव्य उक्त संयतासंयतों के द्रव्य से असंख्यातगुणा है। अनुभय मनोयोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टियों का द्रव्य उक्त सासादन सम्यग्दृष्टियों के द्रव्य से संख्यातगुणा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुभय मनोयोगी असंयतसम्यग्दृष्टियों का द्रव्य उक्त सम्यग्मिथ्यादृष्टियों के द्रव्य से असंख्यातगुणा है। पल्योपम उक्त असंयत सम्यग्दृष्टियों के द्रव्य से असंख्यातगुणा है। अनुभय मनोयोगी मिथ्यादृष्टियों का अवहारकाल पल्योपम से असंख्यातगुणा है। उन्हीं की विष्कंभ सूची अवहारकाल से असंख्यातगुणी है। जगश्रेणी विष्कंभ सूची से असंख्यातगुणी है। उन्हीं अनुभय मनोयोगी मिथ्यादृष्टियों का द्रव्य जग-श्रेणी से असंख्यातगुणा है। जगप्रतर द्रव्य प्रमाण से असंख्यातगुणा है। लोक जगप्रतर से असंख्यातगुणा है।

इसी प्रकार शेष चार मनोयोगी और पांचों वचनयोगियों का परस्थान अल्पबहुत्व कहना चाहिए।

वैक्रियिक काययोगियों में असंयतसम्यग्दृष्टियों का अवहारकाल सबसे स्तोक है। इसके ऊपर मनोयोग के परस्थान अल्पबहुत्व के समान जानना चाहिए।

वैक्रियिकमिश्र-काययोगियों में असंयतसम्यग्दृष्टियों का अवहारकाल सबसे स्तोक है। सासादन सम्यग्दृष्टियों का अवहारकाल असंयतसम्यग्दृष्टियों के अवहारकाल से असंख्यातगुणा है। उन्हीं सासादन सम्यग्दृष्टि वैक्रियिकमिश्र-काययोगियों का द्रव्य अपने अवहारकाल से असंख्यातगुणा है। असंयतसम्यग्दृष्टि वैक्रियिकमिश्र-काययोगियों का द्रव्य सासादन द्रव्य से असंख्यातगुणा है।

इसके ऊपर मनोयोगियों के परस्थान अल्पबहुत्व के समान जानना चाहिए।

काययोगी उपशामक सबसे स्तोक है। काययोगी क्षपक काययोगी उपशामकों से संख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार पल्योपम तक ले जाना चाहिए। पल्योपम के ऊपर काययोगी मिथ्यादृष्टि जीव अनंतगुणे हैं।

इसी प्रकार औदारिककाययोगियों का भी कथन करना चाहिए।

औदारिकमिश्र काययोगियों में सयोगी केवली जीव सबसे स्तोक है। असंयतसम्यग्दृष्टि जीव सयोगी केवलियों से संख्यातगुणे हैं। सासादन सम्यग्दृष्टियों का अवहारकाल असंयतसम्यग्दृष्टियों से असंख्यातगुणा है। उन्हीं का द्रव्य अपने अवहारकाल से असंख्यातगुणा है। पल्योपम सासादन सम्यग्दृष्टि औदारिकमिश्रकाययोगियों से असंख्यातगुणा है। औदारिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव पल्योपम से अनंतगुणे हैं।

आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग में स्वस्थान अथवा परस्थान अल्पबहुत्व नहीं पाया जाता है।

कार्मणकाययोगियों में सयोगी केवली जीव सबसे स्तोक है। असंयतसम्यग्दृष्टियों का अवहारकाल सयोगिकेवलियों के प्रमाण से असंख्यातगुणा है। सासादन सम्यग्दृष्टियों का अवहारकाल असंयत सम्यग्दृष्टियों के अवहारकाल से असंख्यातगुणा है। उन्हीं का द्रव्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने अवहारकाल से असंख्यातगुणा है। असंयत सम्यग्दृष्टियों का द्रव्य सासादन सम्यग्दृष्टियों से असंख्यातगुणा है। पल्योपम असंयत सम्यग्दृष्टियों के द्रव्य से असंख्यातगुणा है। कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टियों का द्रव्य पल्योपम से अनंतगुणा है।

अब सर्व परस्थान में अल्पबहुत्व प्रकृत है।

१—आहारकमिश्र-काययोगी जीव सबसे स्तोक है।

२—आहारक काययोगी जीव आहारकमिश्र काययोगियों से संख्यातगुणे है।

३—अप्रमत्त संयत जीव आहारक काययोगियों से संख्यातगुणे है।

४—प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तसंयतों से संख्यातगुणे है।

५—सभी का असंयतसम्यग्दृष्टि अवहारकाल प्रमत्तसंयतों से असंख्यातगुणा है।

इसी प्रकार पल्योपम तक ले जाना चाहिए।

चूंकि वैक्रियमिश्र, औदारिकमिश्र और कार्मण-काययोगियों में सासादन-सम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि राशियों का महात्म्य अर्थात् परस्पर अल्पबहुत्व नहीं जाना जाता है। अतः ऐसा समझना चाहिए।

क्योंकि वहाँ अन्य आचार्यों का अभिप्रायान्तर दिखलाना उनके अल्पबहुत्व के कथन का प्रयोजन था।

पल्योपम के ऊपर वचनयोगियों का अवहारकाल असंख्यातगुणा है। अनुभय वचनयोगियों का अवहारकाल वचनयोगियों के अवहारकाल से विशेषाधिक है। वैक्रियिक-काययोगियों का अवहारकाल अनुभय वचनयोगियों के अवहारकाल से संख्यातगुणा है।

इसी प्रकार उभयवचनयोगी, मृषावचनयोगी और सत्यवचनयोगी जीवों का अवहारकाल उत्तरोत्तर संख्यातगुणा है। अनुभय मनोयोगियों का अवहारककाल सत्यवचनयोगियों के अवहारकाल से विशेषाधिक है। उभयमनोयोगियों का अवहारकाल अनुभय वचनयोगियों के अवहारकाल से संख्यातगुणा है।

इसी प्रकार असत्य-मनोयोगी, सत्य-मनोयोगी और वैक्रियिकमिश्र-काययोगियों का अवहार काल उत्तरोत्तर संख्यातगुणा है।

उन्हीं की अर्थात् वैक्रियिकमिश्र-काययोगियों की विष्कंभ सूची उन्हीं के अवहारकाल से असंख्यातगुणी है। सत्य-मनोयोगियों की विष्कंभ सूची वैक्रियिकमिश्र-काययोगियों की विष्कंभ सूची से संख्यातगुणी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार मृषा-मनोयोगी, उभय-मनोयोगी और अनुभय मनोयोगियों की विष्कंभ सूची भी समझना चाहिए।

अनुभय मनोयोगियों की विष्कंभ सूची से मनोयोगियों की विष्कंभ सूची विशेषाधिक है। सत्य-वचनयोगियों की विष्कंभ सूची मनोयोगियों की विष्कंभ सूची से संख्यातगुणी है।

इसी प्रकार मृषा-वचनयोगी, उभयवचन योगी, वैक्रियिक-काययोगी और अनुभय वचनयोगियों की विष्कंभ सूचियां भी उत्तरोत्तर संख्यातगुणी हैं। वचनयोगियों की विष्कंभ सूची अनुभय वचनयोगियों की विष्कंभ सूची से विशेषाधिक है। जगश्रेणी वचन-योगियों की विष्कंभ सूची से असंख्यातगुणी है। जगश्रेणी से वैक्रियिकमिश्र-काययोगियों का द्रव्य असंख्यातगुणा है।

सत्य मनोयोगियों का द्रव्य वैक्रियिकमिश्र-काययोगियों के द्रव्य से संख्यात-गुणा है।

इसी प्रकार मृषामनोयोगी, उभयमनोयोगी, अनुभय-मनोयोगियों का द्रव्य यथा क्रम से संख्यात गुणा है। मनोयोगियों का द्रव्य अनुभय-मनोयोगियों के द्रव्य से संख्यातगुणा है।

इसी प्रकार मृषा-वचनयोगी, उभय-वचनयोगी वैक्रियिक-काययोगी और अनुभय वचनयोगियों का द्रव्य यथाक्रम से संख्यातगुणा है। अनुभय वचनयोगियों के द्रव्य से वचनयोगियों का द्रव्य विशेषाधिक है। जग-प्रतर वचनयोगियों के द्रव्य से असंख्यात-गुणा है।

लोक जगप्रतर से असंख्यातगुणा है। लोक से अयोगी जीव अनंतगुणे हैं। अयोगियों से कार्मणकाययोगी जीव अनंतगुणे हैं। कार्मणकाययोगियों से औदारिकमिश्र-काययोगी जीव असंख्यातगुणे हैं। औदारिकमिश्र-काययोगियों से औदारिक-काययोगी मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणे हैं।

***११ योग स्थान का अल्पबहुत्व**

एवमेक्केक्कस्स जोगगुणगारे पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥

टीका—पुव्वुत्तासेसजोगट्ठाणाणं गुणगारस्स पमाणमेदेण सुत्तेण परुविदं। पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो गुणगारो होदि त्ति कधं णव्वदे ? एदम्हादो चेव सुत्तादो। ण च पमाणंतरमवेक्खदे, अणवत्थापसंगादो। तत्थ परुवणं वत्तइस्सामो। तं जहा—सत्तण्णं लद्धिअपज्जत्तजीवसमासाणमत्थि उववादजोगट्ठाणाणि एयंताणुव-ड्ढिजोगट्ठाणाणि परिणामजोगट्ठाणाणि च। सत्तण्णंणिव्वत्तिअपज्जत्तजीवसमासाण-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मत्थि-उववादजोगट्ठाणाणि एयंताणुवड्ढिजोगट्ठाणाणि च। सत्तण्णं णिव्वत्ति-पज्जत्तयाणमत्थि परिणामजोगट्ठाणाणि चेव। परूवणा समत्ता।

संपहि पमाणं वुच्चदे। तं जहा—एदेसिं वुत्तसव्वजीवसमासाणं उववाद-जोगट्ठाणाणं एयंताणुवड्ढिजोगट्ठाणाणं च पमाणं सेडीए असंखेज्जदिभागो। पमाण-परूवणा गदा।

अप्पाबहुगं (दुविहं) जोगट्ठाणप्पाबहुगं जोगविभागपडिच्छेदप्पाबहुगं चेदि। तत्थ जोगट्ठाणप्पाबहुगं वत्तइस्सामो। तं जहा—सत्तण्णं लद्धिअपज्जत्ताणमुव-वादजोगट्ठाणाणि। तेसिमेगताणुवड्ढिजोगट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि। परिणाम-जोगट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि। सत्तण्णं णिव्वत्तिअपज्जत्तजीवसमासाणं सव्व-त्थोवाणि उववादजोगट्ठाणाणि। एगंताणुवड्ढिजोगट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि। सत्तण्णं णिव्वत्तिपज्जत्ताणं णत्थि अप्पाबहुगं, परिणामजोगट्ठाणाणि मोत्तूण तत्थ अण्णेसिं जोगट्ठाणाणमभावादो। सव्वत्थ गुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्ज-दिभागो। एवं जोगट्ठाणप्पाबहुगं समत्तं।

—षट्० ४। २। ४। १७३। पृष्ठ ४०३। ४। पु १०

इस प्रकार प्रत्येक जीव के योग का गुणकार पल्योपमके असंख्यातवें भाग-प्रमाण है।

पूर्वोक्त समस्त योग-स्थानों के गुणकार का प्रमाण कहा गया है। यह सूत्र स्वयं प्रमाण-भूत होने से किसी अन्य प्रमाण की अपेक्षा नहीं करता, क्योंकि ऐसा होने पर अनवस्था दोष का प्रसंग आता है।

यह मूल वीणा का अल्पबहुत्व-आलाप देशामर्शक है। क्योंकि, वह प्ररूपणादि अनुयोग-द्वारों का सूचक है। इसलिए यहां प्ररूपणा-प्रमाण, अल्पबहुत्व—इन तीन अनुयोग द्वारों की प्ररूपणा करनी चाहिए। उनमें प्ररूपणा को कहते हैं। वह इस प्रकार है—

सात लब्ध्यपर्याप्त, जीव समासों के उपपाद योग-स्थान, एकांतानुवृद्धि योग-स्थान और परिणाम योग-स्थान होते हैं। सात निवृत्यपर्याप्त, जीव समासों के उपपाद योग-स्थान व एकांतानुवृद्धि योग-स्थान होते हैं। सात निवृत्तिपर्याप्तकों के परिणाम-योग-स्थान ही होते हैं। प्ररूपणा समाप्त हुई।

अब प्रमाण की प्ररूपणा की जाती है—इन उक्त सब जीव-समासों के उपपादयोग स्थानों, एकांतानुवृद्धियोग-स्थानों और प्रमाण योग-स्थानों का प्रमाण जगश्रेणि के असंख्यातवें भाग मात्र है। प्रमाण की प्ररूपणा समाप्त हुई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अल्पबहुत्व दो प्रकार के हैं—योगस्थान अल्पबहुत्व और योगविभागप्रतिच्छेद अल्पबहुत्व। उनमें योगस्थान अल्पबहुत्व इस प्रकार है।

सात लब्ध्यपर्याप्तकों के उपपाद-योग-स्थान सबसे स्तोक है। उससे उनके एकांतानुवृद्धि योगस्थान असंख्यातगुणे हैं। उनसे परिणाम योगस्थान असंख्यातगुणे हैं।

सात निर्वृत्ति अपर्याप्त जीव समासों के उपपाद योगस्थान सबसे स्तोक है। उनसे एकांतानुवृद्धि योग-स्थान असंख्यातगुणे हैं।

सात निर्वृत्तिपर्याप्तकों के अल्पबहुत्व नहीं है क्योंकि, परिणामयोगस्थानों को छोड़कर उनमें अन्य योग-स्थानों का अभाव है। गुणकार सर्वत्र पल्योपम का खसंख्यातवां भाग है।

·११ करण-कृति की अपेक्षा यौगिक जीवों का परस्थान अल्पबहुत्व

पंचमणजोगि-तिण्णिवचिजोगीसु सव्वत्थोवा आहारपरिसादणकदी। संघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया। वेउव्वियपरिसादणकदी असंखेज्जगुणा। ओरालियपरिसादणकदी विसेसाहिया। ओरालियसंघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा। वेउव्वियसंघादण-परिसादणकदी संखेज्जगुणा। तेजाकम्मइयसंघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया।

वचिजोगि-असच्चमोसवचिजोगीसु सव्वत्थोवा आहारपरिसादणकदी। संघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया। वेउव्वियपरिसादणकदी असंखेज्जगुणा। ओरालियसंघादण-परिसादणकदी संखेज्जगुणा। तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया।

कायजोगो ओघं। णवरि तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी णत्थि। ओरालिय-कायजोगीसु सव्वत्थोवा आहारपरिसादणकदी। वेउव्वियसंघादणमसंखेज्जगुणं। परिसादणकदी असंखेज्जगुणा। संघादणपरिसादणकदी विसेसाहिया। ओरालिय-परिसादणकदी विसेसाहिया। ओरालियसंघादण-परिसादणकदी अणंतगुणा। तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया। ओरालियमिस्सकायजोगीसु पंचिंदियअपज्जत्तभंगो। वेउव्विय-कायजोगीसु णत्थि अप्पाबहुगं, तिण्णिपदाणं सारिच्छियादो। वेउव्वियमिस्स-कायजोगीणं णारगभंगो।

आहारकायजोगीसु णत्थि अप्पाबहुगं, चदुण्हं पदाणं सारिच्छियादो। आहारमिस्सकायजोगीसु सव्वत्थोवा आहारसंघादणकदी। संघादण-परिसा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दणकदी संखेज्जगुणा। ओरालियपरिसादणकदी तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी तिण्णि वि सरिसा विसेसाहिया।

कम्मइयकायजोगीसु सव्वत्थोवा ओरालियपरिसादणकदी। तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी अणंतगुणा।

—षट्० ४। १ सू ७१। पु ९। पृष्ठ० ४४२। ४

पाँच मनोयोगी और तीन वचनयोगी जीवों में आहारक शरीर की परिशातनकृति युक्त जीव सबसे थोड़े हैं। उससे उसी की संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक है। उनसे वैक्रियिक शरीर की परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे औदारिक शरीर की परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक है। उनसे औदारिक शरीर की संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे वैक्रियिक शरीर की संघातन परिशातनकृति उक्त जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे तैजस और कार्मण शरीर की संघातन-परिशातनकृति उक्त जीव विशेष अधिक हैं।

वचनयोगी और असत्यमृषा वचनयोगी जीवों में आहारक शरीर की परिशातन कृति युक्त जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक है। उनसे वैक्रियिक शरीर की परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे है। उनसे औदारिक शरीर की संघातन परिशातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे है। उनसे तैजस व कार्मण शरीर की संघातन परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक है।

काययोगी जीवों की प्ररुपणा ओघ के समान है। विशेष इतना है कि उनमें तैजस और कार्मण शरीर की परिशातनकृति नहीं होती है।

औदारिक काययोगियों में आहारक शरीर की परिशातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक है। उनसे वैक्रियिक शरीर की संघातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे है। उनसे वैक्रियिक शरीर की परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे है। उनसे उसीकी संघातन परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक है। उनसे औदारिक शरीर की परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक है। उनसे औदारिक शरीर की संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव अनन्तगुणे उनसे तैजस और कार्मण शरीर की संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक है।

औदारिकमिश्रकाययोगियों में अपवे पदों के अल्पबहुत्व की प्ररुपणा पंचेन्द्रिय अपर्याप्तों के समान है।

वैक्रियिककाययोगियों में अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि उनमें तीनों पद सदृश है।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों की प्ररुपणा नारकियों के समान है।

आहारककाययोगियों में अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि उनमें चारों पद समान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आहारकमिश्रकाययोगियों में आहारकशरीर की संघातनकृति युक्त जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे उसी की संख्यातन-परिशातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे औदारिकशरीर की परिशातनकृति तथा तैजस व कार्मणशरीर की संघातन-परिशातनकृति, इन तीनों पदों से युक्त जीव सदृश विशेष अधिक है।

कार्मणकाययोगियों में औदारिकशरीर की परिशातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक है। उनसे तैजस और कार्मणशरीर की संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव अनतगुणे हैं।

·३५ सयोगी जीवों का लोक-क्षेत्र में अवस्थान

·०१ पंच मनोयोगी तथा पंच वचनयोगी का अवस्थान

जोणाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली केवडि खेत्ते लोगस्स असेखज्जदिभागे।

—षट्० खण्ड० १। ३। सू २९। पु ४। पृष्ठ० १०२

टीका—एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे-पंचमणजोगि-पंचवचिजोगिमिच्छादिट्ठिसत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। वेउव्वियसमुग्घादगदाणं कधं मणजोग-वचिजोगाणं संभवो? ण, तेसिं पि णिप्पण्णुत्तरसरीराणं मणजोग-वचिजोगाणं परावत्तिसंभवादो। मारणंतियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे। मारणंतियसमुग्घादगदाणं असंखेज्जजोयणायामेण ठिदाणं मुच्छिादाणं कधं मणवचिजोगसंभवो? ण, वारणाभावादो अवत्ताणं णिब्भरसुत्तजीवाणं व तेसिं तत्थ संभवं पडि विरोहाभावादो। मण-वचिजोगेसु उववादो णत्थि। सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव असमुग्घादसजोगिकेवलि त्ति मूलोघभंगो। णवरि सासणअसंजदसम्माइट्ठीणं उववादो णत्थि।

योगमार्गणा के अनुवाद से पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगियों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर सयोगी-केवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।

अस्तु—स्वस्थान-स्वस्थान, विहारवत्स्व स्थान, वेदना समुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिक समुद्घात पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्य लोकादि तीनों लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में और अढाई-द्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न है कि—वैक्रियिकसमुद्घात को प्राप्त जीवों के मनोयोग और वचनयोग कैसे संभव है।

उत्तर—नहीं, क्योंकि, निष्पन्न हुआ है, विक्रियात्मक उत्तर शरीर जिनके, ऐसे जीवों के मनोयोग और वचनयोगों का परिवर्तन संभव है।

मारणान्तिक समुद्घात गत पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्य लोक आदि तीनों लोकों के असंख्यातवें भाग में, मनुष्यलोक और तिर्यग्लोक के असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं।

प्रश्न है कि मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त, असंख्यातयोजन आयाम से स्थित और मुर्च्छित हुए संज्ञी जीवों के मनोयोग और वचनयोग कैसे संभव हैं।

उत्तर—नहीं, क्योंकि बाधक कारण के अभाव होने से निर्भर (भरपूर) सोते हुए जीवों के समान अव्यक्त मनोयोग और वचनयोग मारणान्तिक समुद्घात गत मुर्च्छित अवस्था में भी संभव है, इसमें कोई विरोध नहीं है।

·०२ काययोगी का अवस्थान

कायजोगीसु मिच्छाइट्ठी ओघं।

—षट्० खण्ड० १। ३। सू ३०। पु ४। पृष्ठ० १०३

टीका—सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववाद-गदा कायजोगि-मिच्छाइट्ठी सव्वलोए। विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाण-मसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। एत्थ ओवट्टणा जाणिय कायव्वा।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे।

—षट्० खण्ड० १। ३। सू ३१। पु ४। पृष्ठ० १०३

टीका—जोगाभावादो एत्थ अजोगीणमग्गहणं। सेसं सुगमं।

सजोगिकेवली ओघं।

—षट्० खण्ड० १। ३। सू ३२। पु ४। पृष्ठ० १०४

टीका—गुणपडिवण्णाणमेगजोगो किण्ण कदो? ण, सजोगिम्हि लोगस्स असंखेज्जेसु भागेसु सव्वलोगे वा इदि विसेसुवलंभादो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काययोगियों में मिथ्यादृष्टि जीवों का क्षेत्र ओघ के समान सर्वलोक है।

अस्तु स्वस्थान-स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत काययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सर्वलोक में रहते हैं। विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घातगत काययोगी मिथ्यादृष्टिजीव सामान्यलोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में और अढाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। यहाँ पर अपवर्तना जानकरके करना चाहिए।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती काययोगी जीव लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।

योगाभाव होने से इस सूत्र में अयोगिकेवलियों का ग्रहण नहीं किया गया है। शेष सूत्र का अर्थ सुगम है।

काययोगवाले सयोगिकेवली का क्षेत्र ओघ सयोगिकेवली के क्षेत्र के समान है।

अस्तु सयोगिकेवली—क्षेत्र में सयोगिकेवली लोक के असंख्यात बहुभागों में और सर्वलोक में रहते हैं।

०३ औदारिक काययोगी का अवस्थान

ओरालियकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी ओघं।

—षट्० खण्ड० १। ३। सू ३३। पु ४ पृष्ठ० १०४

टीका—एदे सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतियसमुग्घादगदा सव्वलोए, सुहुमपज्जत्ताणं सव्वलोगखेत्तेसु संभवादो। उववादो णत्थि, णिरुद्धोरालियकायजोगादो। विहारवदिसत्थाणगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, तसपज्जत्तरासिस्स संखेज्जदिभागस्स संचारो होदि त्ति गुरुवएसादो। अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। वेउव्वियसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे, ओरालियकायजोगे णिरुद्धे वेउव्वियकायजोगिसहगदवेउव्वियसमुग्घादस्स असंभवादो।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली लोगस्स असंखेज्जदिभागे।

—षट्० खण्ड० १। ३। सू ३४। पु ४। पृष्ठ० १०५

टीका—कधं सजोगिकेवली लोगस्स असंखेज्जदिभागे? ण एस दोसो, ओरालियकायजोगे णिरुद्धे ओरालियमिस्स-कम्मइयकायजोगसहगदकवाड-पदर-लोग-पूरणाणमसंभवादो। सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमुववादो णत्थि। पमत्ते आहारसमुग्घादो णत्थि। सेसं जाणिय वत्तव्वं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

औदारिक काययोगियों में मिथ्यादृष्टि जीवों का क्षेत्र ओघ के समान सर्वलोक है।

अस्तु स्वस्थान-स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और मारणान्तिक-समुद्घातगत—ये औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि यावत् सर्वलोक में रहते हैं। क्योंकि सूक्ष्म पर्याप्त एकेन्द्रिय जीव सर्वलोकवर्ती क्षेत्र में संभव है। किन्तु उक्त जीवों के उपपाद पद नहीं होता है, क्योंकि यहाँ पर औदारिक-काययोग से निरुद्ध जीवों का क्षेत्र बताया जा रहा है।

विहारवत्स्वस्थानवाले औदारिक-काययोगी जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में और तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में रहते हैं, क्योंकि समस्त त्रसपर्याय-राशि के संख्यातवें भाग का ही संचार (विहार) होता है, ऐसा गुरु का उपदेश है। उक्त औदारिक-काययोगी मिथ्यादृष्टि जीव अढाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। वैक्रिय-समुद्घातगत औदारिक-काययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और अढाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। क्योंकि, औदारिक-काययोग से निरुद्ध क्षेत्र का वर्णन करते समय वैक्रियिक-काययोगी जीवों के होने वाला वैक्रियिकसमुद्घात असंभव है।

सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर सयोगी केवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुण-स्थानवर्ती औदारिक-काययोगी जीव लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।

अस्तु औदारिक-काययोग से निरुद्ध क्षेत्र का वर्णन करते समय औदारिकमिश्र-काययोग और कार्मणकाययोग के साथ में होने वाले कपाट, प्रतर और लोकपूरणसमुद्घातों का होना संभव नहीं है। इसलिए औदारिक-काययोगी सयोगिकेवली लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।

सासादन सम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि औदारिक-काययोगी जीवों के उपपाद नहीं होता है। प्रमत्तसंयतगुणस्थान में आहारकसमुद्घात पद भी नहीं है, क्योंकि यहाँ पर औदारिक-काययोगियों का क्षेत्र बताया जा रहा है। शेष गुणस्थानों में यथासंभव पद जानकर कहना चाहिए।

०४ औदारिकमिश्र काययोगी का अवस्थान

ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठि ओघं।

—षट्० खण्ड० १। ३। सू ३५। पु ४। पृष्ठ० १०५

टीका—बहुसु कधमेगवयणणिद्देसो? ण एस दोसो, बहूणं पि जादीए एगत्तुवलंभादो। अधवा मिच्छाइट्ठी इदि एसो बहुवयणणिद्देसो चेव। कधं पुण एत्थ विहत्ती णोवलब्भदे? 'आइ-मज्झंतवण्णसरलोवो' इदि विहत्तिलोवादो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदा ओरालियमिस्सकायजोगिमिच्छाइट्ठी सव्वलोगे। विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियसमुग्घादा णत्थि, तेण तेसिं विरोहादो। ओरालियमिस्सस्स वेउव्वियादिपदेहि भेदसंभवादो ओघणिद्देसो ण घडदे ? ण एस दोसो, एत्थ विज्जमाणपदाणं परूवणा ओघपरूवणाए तुल्लेत्ति ओघत्तविरोधाभावादो।

सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी अजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे।

—षट्० खण्ड० १। ३। सू ३६। पु ४। पृष्ठ० १०६

टीका—एत्थ पुव्वसुत्तादो ओरालियमिस्सकायजोगो अणुवट्टदे। तेणेवं संबंधो भवदि-ओरालियमिस्सकायजोगीसु सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी सजोगिकेवली केवडि खेत्ते इदि। सासणम्मादिट्ठी-सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणे। कुदो ? ओरालियमिस्सम्हि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तसासणसम्मादिट्ठिरासिस्स संभवादो। एत्थ सेसपदाणि णत्थि, तेण तेसिं तत्थ विरोधादो। असंजदसम्माइट्ठी-सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे, संखेज्जपरिमाणादो। सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमुववादो। किमट्ठं ण उत्तो ? ण, ओरालियमिस्सम्हि ट्ठिदाणमोरालियमिस्सकायजोगेसु उववादाभावादो। अधवा उववादो अत्थि, गुणेण सह अक्कमेण उपात्तभवसरीर पढमसमए उवलंभादो, पंचावत्थावदिरित्तओरालियमिस्सजीवाणमभावादो च। सजोगिकेवली कवाडगदो तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणे।

औदारिकमिश्र काययोगियों में मिथ्यादृष्टि जीव ओघ के समान सर्वलोक में रहते हैं ॥३५॥

अस्तु संख्या की अपेक्षा बहुत से भी जीवों के जाति-विवक्षा से एकत्व पाया जाता है। आदि, मध्य और अंत के वर्ण और स्वर का लोप हो जाता है।

स्वस्थान-स्वस्थान, वेदना समुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत औदारिकमिश्र-काययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सर्वलोक में रहते हैं। यहाँ पर विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियसमुद्घात—ये दो पद नहीं होते हैं क्योंकि, औदारिकमिश्र काययोग के साथ इन दोनों का विरोध है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्तु यहाँ औदारिकमिश्र-काययोग में विद्यमान स्वस्थान आदि पदों की प्ररूपणा ओघ प्ररूपणा के तुल्य है अतः ओघपना विरोध को प्राप्त नहीं होता है।

औदारिकमिश्र-काययोगी सासादन-सम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगी केवली लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।

इस सूत्र में पूर्व सूत्र से 'औदारिकमिश्र काययोग' इस पद की अनुवृत्ति होती है। अतः सूत्र के अर्थ का इस प्रकार संबंध होता है। औदारिकमिश्र काययोगियों में सासादन सम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगी-केवली कितने क्षेत्र में रहते हैं। स्वस्थान-स्वस्थान, वेदना समुद्घात और कषायसमुद्घात सासादन सम्यग्दृष्टि जीव सामान्य लोकादि चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और अढाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। क्योंकि औदारिकमिश्रकाय में पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण सासादन सम्यग्दृष्टियों की राशि का पाया जाना संभव है। यहाँ पर शेष विहारवत्स्वस्थानादि पद नहीं होते हैं। क्योंकि सासादन गुणस्थान के साथ उन पदों का यहाँ पर विरोध है।

स्वस्थान-स्वस्थान, वेदना समुद्घात और कषायसमुद्घात औदारिकमिश्र-काययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीव सामान्य लोकादि चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और मनुष्य क्षेत्र के संख्यातवें भाग में रहते हैं क्योंकि वे संख्यात राशि-प्रमाण होते हैं।

औदारिकमिश्र-काययोगी सासादन सम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के उपपाद नहीं होता है। क्योंकि, औदारिकमिश्र काययोग में स्थित जीवों का पुनः औदारिकमिश्र-काययोगियों में उपपाद नहीं होता है। अथवा उपपाद होता है, क्योंकि सासादन और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान के साथ अक्रम से उपपात भव शरीर के प्रथम समय में उसका सद्भाव पाया जाता है। दूसरी बात यह है कि स्वस्थान-स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषाय-समुद्घात, केवलिसमुद्घात और उपपाद—इन पांच अवस्थाओं के अतिरिक्त औदारिकमिश्र-काययोगी जीवों का सद्भाव है।

कपाट समुद्घात, औदारिकमिश्र-काययोगी, सयोगिकेवली भगवान् सामान्यलोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में और अढाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं।

०५ वैक्रियकाययोगी का अवस्थान

वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे।

—षट्० खण्ड० १। ३। सू ३७। पु ४। पृष्ठ० १०८

टीका—एदस्सत्थो—सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाणवेदण-कसाय-वेउ-व्वियसमुग्घादगदा मिच्छादिट्ठी तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे, पहाणीकयजोइसियरासित्तादो। मारणंतियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुण। एत्थ ओवट्टिय दट्ठव्वं। सासणदिपरूवणा ओघपरूवणाए तुल्ला, णवरि सव्वत्थ उववादो णत्थि।

वैक्रियमिश्र-काययोगियों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर असंयत सम्यग्दृष्टि गुण-स्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।

अस्तु स्वस्थान-स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना समुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिक समुद्घातगत वैक्रियिक काययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक अदि तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में और अढाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। क्योंकि यहाँ वैक्रियिक-काययोग के प्रकरण में ज्योतिष्क देव राशि की प्रधानता है। मारणान्तिक समुदघातगत वैक्रियिक-काययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्य लोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में और नरलोक और तिर्यग्लोक—इन दोनों लोकों से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। यहाँ अपवर्तना स्वयं जान लेना चाहिए। सासादन सम्यग्दृष्टि आदि शेष तीन गुणस्थानवर्ती वैक्रिय-काययोगी जीवों के स्वस्थानादि पदों की क्षेत्र-प्ररूपणा ओघ-क्षेत्र-प्ररूपणा के तुल्य है। विशेषता केवल यह है कि इन सभी गुणस्थानों में उपपाद पद नहीं होता है।

·०६ वैक्रियमिश्र-काययोगी का अवस्थान

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे।

—षट्० खण्ड० १। ३। सू ३८। पु ४। पृष्ठ० १०९

टीका—एदस्सत्थो—वेउव्वियकायजोगी मिच्छादिट्ठी सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरिय-लोगस्स संखेज्जदिभागे अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्माइट्ठी सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे।

वैक्रियमिश्र-काययोगियों में मिथ्यादृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि और असंयत सम्यग्-दृष्टि गुणस्थानवर्ती जीव लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।

अस्तु स्वस्थान, वेदना समुदघात और कषाय समुद्घातगत वैक्रियमिश्र-काययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोकादि तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में और अढाई द्वीप से असंख्यानगुणे क्षेत्र में रहते हैं। स्वस्थान, वेदना समुद्घात और कषायसमुद्घातगत सासादन सम्यग्दृष्टि और असंयत सम्यग्दृष्टि जीव सामान्य लोकादि चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और अढाई द्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·०७ आहारककाययोगी तथा आहारकमिश्र-काययोगी का अवस्थान

आहारकायजोगीसु आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे।

—षट्० खण्ड० १। ३। सू ३९। पु ४। पृष्ठ० १०९

टीका—एदस्स अत्थो—सत्थाण-विहारवदिसत्थाणपरिणद-पमत्तसंजदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स सखेज्जदिभागे। मारणतिय-समुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणम-संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। सेसपदाणि णत्थि। आहारमिस्सकायजोगिणो पमत्तसंजदा सत्थाणगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे।

आहारक-काययोगियों में और आहारकमिश्र-काययोगियों में प्रमत्त-संयत गुणस्थान-वर्ती जीव लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।

अस्तु स्वस्थान-स्वस्थान और विहारवत्स्वस्थान इन दोनों पदों से परिणत आहारक काययोगी प्रमत्त-संयत सामान्यलोकादि चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और मानुष-क्षेत्र के संख्यातवें भाग में रहते हैं। मारणान्तिक समुद्घातगत आहारक काययोगी सामान्यलोकादि चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और अढाई द्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं।

आहारक-काययोगी प्रमत्त-संयत के उक्त तीन पदों के सिवाय शेष सात पद नहीं होते हैं। स्वस्थानगत आहारकमिश्र-काययोगी प्रमत्त-संयत सामान्यलोकादि चारों लोकों के असंख्यातवें भाग में और मानुष-क्षेत्र के संख्यातवें भाग में रहते हैं।

·०८ कार्मणकाययोगी का अवस्थान

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी ओघं।

—षट्० खण्ड० १। ३। सू ४०। पु ४। पृष्ठ० ११०

टीका—सत्थाण-वेदण-कसाय-उववादगदा कम्मइयकायजोगिमिच्छादि-ट्ठिणो जेण सव्वत्थ सव्वद्धं होंति, तेण सव्वलोगे वुत्ता।

सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्माइट्ठी ओघं।

—षट्० खण्ड० १। ३। सू ४१। पु ४। पृष्ठ० ११०

टीका—एदे दो वि रासीओ जेण चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइ-जादो असंखेज्जगुणे खेत्ते अच्छंति, तेण सुत्ते ओघमिदि वुत्तं।

सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जेसु भागेसु सव्वलोगे वा।

—षट्० खण्ड० १। ३। सू ४२। पु ४। पृष्ठ० १११

टीका—सुगममेदं सुत्तं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कार्मणकाययोगियों में मिथ्यादृष्टि जीव ओघ मिथ्यादृष्टि के समान सर्वलोक में रहते हैं।

अस्तु स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और उपपाद—इन पदों से प्राप्त कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टिजीव चूंकि सर्वत्र सर्वकाल में पाये जाते हैं अतः वे सर्वलोक में रहते हैं।

कार्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव ओघ के समान लोक के असंख्यायवें भाग में रहते हैं।

अस्तु इन दोनों गुणस्थानों को प्राप्त कार्मणकाययोगी राशियां चूंकि सामान्य लोकादि चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और अढाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहती है अतः सूत्र में 'ओघ' ऐसा पद कहा गया है।

कार्मणकाययोगी-सयोगिकेवली भगवान लोक के असंख्यातवें भागों में और सर्वलोक में रहते हैं।

·३६ सयोगी जीवों की क्षेत्र-स्पर्शना

·०१ पंचमनोयोगी तथा पंचवचनयोगी की क्षेत्र-स्पर्शना

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।

—षट्० खण्ड० १। ४। सू ७४। पु ४। पृष्ठ० २५५

टीका—एदं सुत्तं वट्टमाणकालमस्सिदूण ट्ठिदमिदि एदस्स परूवणं कीरमाणे जधा खेत्ताणिओगद्दारे पंचमणवचिजोगिमिच्छादिट्ठीणं परूवणा कदा, तधा एत्थ वि मंदबुद्धिसिस्ससंभालणट्ठं परूवणा कादव्वा।

अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा।

—षट्० खण्ड० १। ४। सू ७५। पु ४। पृष्ठ० २५५

टीका—पंचमण-पंचवचिजोगि मिच्छादिट्ठीहि सत्थाणसत्थाणपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो पोसिदो। एत्थ सत्थाणखेत्ताणयणविधाणं जाणिय कादव्वं। एसो 'वा' सद्दसूचिदत्थो। विहार-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा पोसिदा। घणलोगमट्ठभागूणतेदालीसरूवेहि छिण्णेगभागो, अधोलोगं साद्धचउव्वीसरूवेहि छिण्णेगभागो, उड्ढलोगमट्ठभागूणसाद्धट्ठारस रूवेहि छिण्णेग-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भागो, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो पोसिदो त्ति जं उत्तं होदि। मारणंतियपदेण सव्वलोगो पोसिदो।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा ओघं।

—षट्० खण्ड० १। ४। सू ७६। पु ४। पृष्ठ० २५६

टीका—वट्टमाणकालमस्सिदूण जधा खेत्ताणिओगद्दारस्स ओघम्हि एदेसिं चदुण्हं गुणट्ठाणाणं खेत्तपरूवणा कदा, तधा एत्थ वि सिस्ससंभालणट्ठं परूवणा कादव्वा ; णत्थि कोइ विसेसो। अदीदकालमस्सिदूण जधा पोसणाणिओगद्दारस्स ओघम्हि तीदाणागदकालेसु एदेहि चदुगुणट्ठाणजीवेहि छ्चुत्तखेत्तपरूवणा कदा, तधा एत्थ वि कादव्वा, विसेसाभावा। णवरि सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीसु उववादो णत्थि, उववादेण पंचमण-वचिजोगाणं सह अणवट्ठाण लक्खणविरोहा।

योगमार्गणा के अनुवाद से पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगियों में मिथ्यादृष्टि जीवों ने लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है।

अस्तु यह सूत्र वर्तमानकाल का आश्रयकरके स्थित है, अतः इसकी प्ररूपणा करने पर जैसी क्षेत्रानुयोगद्वार में पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीवों की प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकार यहाँ पर भी मंदबुद्धि शिष्यों को संभालने के लिए स्पर्शन-प्ररूपणा करनी चाहिए।

पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीवों ने अतीत और अनागत-काल की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्वलोक स्पर्श किया है।

अस्तु स्वस्थान-स्वस्थान-पदपरिणत पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीवों ने सामान्य लोकादि तीन लोकों का असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग और मनुष्य क्षेत्र से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यहाँ पर स्वस्थान-स्वस्थान क्षेत्र के निकालने का विधान जान करके करना चाहिए। वह 'वा' शब्द से सूचित अर्थ है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत उक्त जीवों ने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं, जो कि घनाकार लोक को आठवें भाग से कम तेतालीस (४२$\frac{३}{४}$) रूपों से विभक्त करने पर एक भाग, अथवा अधोलोक से साढे चौबीस (२४$\frac{३}{४}$) रूपों से विभक्त करने पर एक भाग, अथवा ऊर्ध्वलोक को आठवें भाग से कम साढे अठारह १८$\frac{३}{४}$) रूपों से विभक्त करने पर एक भाग प्रमाण होता है। अर्थात् उक्त तीनों ही पद्धतियों से क्षेत्र निकालने पर वही देशोन आठ राजु प्रमाण आ जाता है।

उदाहरण—(१) घनलोक —३४३ ÷ $^{३४३}/_{४२\frac{३}{४}}$ = ८ राजु
(२) अधोलोक—१९६ ÷ $^{४९}/_{२४\frac{३}{४}}$ = ८ राजु
(३) ऊर्ध्वलोक—१४७ ÷ $^{१४७}/_{१८\frac{३}{४}}$ = ८ राजु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार सामान्य लोकादि तीनों लोकों का संख्यातवां भाग और नरलोक तथा तिर्यग्लोक से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। मारणान्तिकपदपरिणत जीवों ने सर्वलोक स्पर्श किया है।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवों का स्पर्शन-क्षेत्र ओघ के समान है।

अस्तु वर्तमानकाल का आश्रय करके जैसी क्षेत्रानुयोगद्वार के ओघ में इन चारों गुणस्थानों की प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकार से यहाँ पर भी शिष्यों के संभालने के लिए स्पर्शप्ररूपणा करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्य कोई विशेषता नहीं है। अतीतकाल का आश्रय करके जैसी स्पर्शनानुयोगद्वार के ओघ में अतीत और अनागतकालों की अपेक्षा इन चार गुणस्थानवर्ती जीवों से स्पर्शित क्षेत्र की प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकार से यहाँ पर भी करना चाहिए। क्योंकि इसमें कोई विशेषता नहीं है। विशेष बात यह है कि सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टियों में उपपाद पद नहीं होता है, क्योंकि उपपाद के साथ पांचों मनोयोग और पांचों वचनयोगों का सहावस्थान-लक्षण विरोध है। अर्थात् उपपाद में उक्त योग संभव नहीं है।

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।

—षट्० खण्ड० १। ४। सू ७७। पु ४ पृष्ठ० २५७

टीका—एदेसिमट्ठण्हं गुणट्ठाणाणं जधा पोसणाणिओगद्दारस्स ओघम्हि तिण्णि काले अस्सिदूण परूवणा कदा, तधा एत्थ वि कादव्वा। जदि एवं, तो सुत्ते ओघमिदि किण्ण परूविदं ? ण, तधा परूवणाए कायजोगाविणाभाविसजोगिचउव्विहसमुग्घादखेत्तपडिसेहफलत्तादो।

प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर सयोगिकेवलीगुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती उक्त जीवों ने लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है।

अस्तु आठों गुणस्थानों की स्पर्शनानुयोगद्वार के ओघ में तीनों कालों का आश्रय करके जैसी स्पर्शनप्ररूपणा की गई है, उसी प्रकार से यहाँ भी करना चाहिए।

क्योंकि उस प्रकार की प्ररूपणा काययोग के अविनाभावी सयोगिकेवली के चारों प्रकार के समुद्घात क्षेत्र के प्रतिषेध करने के लिए है।

नोट—केवल काययोग के निमित्त से ही केवली के समुद्घात होता है जिसका स्पर्शन-क्षेत्र लोक का असंख्यातवां भाग, असंख्यातबहुभाग और सर्वलोक है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·०२ काययोगी की क्षेत्र स्पर्शना

कायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं ।

—षट्० खण्ड० १ । ४ । सू ७८ । पु ४ । पृष्ठ० २५८

टीका—सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियउववादपरिणद-कायजोगिमिच्छादिट्ठीणं तिसु वि कालेसु सव्वलोगतुवलंभादो, विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियपदेहि वट्टमाणकाले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागत्तेण, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तेण, माणुसखेत्तादो असंखेज्जदिगुणत्तेण ; अदीदकाले अट्ठ-चोद्दस-भागत्तेण च तुल्लतुवलंभादो, सुत्तेण ओघमिदि उत्तं ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ओघं ।

—षट्० खण्ड० १ । ४ । सू ७९ । पु ४ । पृष्ठ० २५८

टीका—एदेसिमेक्कारसण्हं गुणट्ठाणाणं तिविहं कालस्सदूण सत्थाणादि-पदाणं परूवणा कीरमाणे पोसणाणिओगद्दारोघम्हि जधा तिविहकालमस्सिदूण एक्कारसण्हं गुणट्ठाणाणं सत्थाणादिपरूवणा कदा, तधा कादव्वा ; णत्थि एत्थ कोवि विसेसो ।

सजोगिकेवली ओघं ।

—षट्० खण्ड० १ । ४ सू ८० । पु ४ । पृष्ठ० २५८ । ९

टीका—एदस्स सुत्तस्स पुधारंभो किंफलो ? ण, सजोगिकेवलिचत्तारि-समुग्घादा कायजोगाविणाभाविणो त्ति मंदमेहाविजणावबोहणफलत्तादो । एगजोगं कादूण ओघमिदि उत्ते वि ओघतण्णहाणुववत्तीदो कायजोगी वि चदुण्हं समुग्घादा-णमत्थित्तं परिच्छिज्जदे चे, ण एस दोसो, ओघमिदि उत्ते इमाणि पदाणि अत्थि, इमाणि च णत्थि त्ति (ण) णव्वदे । जाणि संभवंति पदाणि तेसिं परूवणाओ ओघपरूवणाए तुल्ला त्ति एत्तियमेत्तं चेव णव्वदे । तेण पुध सुत्तारंभो काय-जोगिम्हि चउव्विहसमुग्घादाणमत्थित्तपदुप्पायणफलो त्ति ।

काययोगियों में मिथ्यादृष्टि जीवों का स्पर्शन-क्षेत्र ओघ के समान सर्वलोक है ।

अस्तु स्वस्थान-स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद-पदपरिणत काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों का स्पर्शन-क्षेत्र तीनों ही कालों में सर्वलोक पाया जाता है । विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिक-पदपरिणत उक्त जीवों ने वर्तमानकाल में सामान्य लोकादि तीनों लोकों के असंख्यातवें भाग से, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और मनुष्य क्षेत्र से असंख्यातगुणे क्षेत्र की अपेक्षा तथा अतीतकाल में आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भाग प्रमाण से तुल्यता पाई जाती है, इसलिए सूत्र में 'ओघ' ऐसा पद कहा है।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती काययोगी जीवों का स्पर्शन-क्षेत्र ओघ के समान है।

अस्तु इन ग्यारह गुणस्थानों की तीनों कालों को आश्रय लेकर ग्यारह गुणस्थानों की स्वस्थानादि पर-सबंधी प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकार से यहाँ पर भी करना चाहिए, क्योंकि यहाँ पर कोई विशेषता नहीं है।

काययोगी सयोगिकेवली का स्पर्शन-क्षेत्र ओघ के समान लोक का असंख्यातवां भाग, असंख्यातबहुभाग और सर्वलोक है।

सयोगीकेवली में दण्ड, कपाटादि चारों समुद्घात काययोग के अविभाभावी होते हैं, इस बात का मंदमेधावीजनों को ज्ञान कराने के लिए इस सूत्र का पृथक् निर्माण किया गया है।

अस्तु पृथक सूत्र का प्रारम्भ काययोगी सयोगिकेवली में चारों प्रकार के समुद्घातों का अस्तित्व प्रतिपादन करने रूप फल के लिए है।

०३ औदारिक-काययोगी की क्षेत्र स्पर्शना

ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं।

—षट्० खण्ड० १। ४। सू ८१। पु ४। पृष्ठ० २५९

टीका—दव्वट्ठियपरूवणाए ओघत्तं जुज्जदे। पज्जवट्ठियपरुवणाए पुण ओघत्तं णत्थि, ओरालियजोगे णिरुद्धे विहारवेउव्वियपदाणमट्ठ-चोद्दसभागत्ताणुवलंभादो। तदो एत्थ भेदपरूवणा कीरदे—सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतियपरिणदेहि तिसु वि कालेसु सव्वलोगो पोसिदो। उववादो णत्थि, दोण्हं सहाणवट्ठाणलक्खणविरोहा। वट्टमाणकाले वेउव्वियपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो पोसिदो। तीदाणागदेसु तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागो, दोलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो, वाउक्काइय-वेउव्वियफोसणस्स पाधण्णविवक्खाए। विहारपरिणदेहि ओरालियकायजोगि-मिच्छादिट्ठीहि वट्टमाणकाले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइजादो असंखेज्जगुणो पोसिदो। तीदाणागदकालेसु तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइजादो असंखेज्ज-गुणो पोसिदो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।

—षट्० खण्ड० १। ४। सू ८२। पु ४। पृष्ठ० २६०

टीका—एदस्स वट्टमाणकालसंबंधिसुत्तस्स खेत्ताणिओगद्दारे ओरालिय-कायजोगिसासणसुत्तस्सेव परूवणा कादव्वा।

सत्त चोद्दसभागा वा देसूणा।

—षट्० खण्ड० १। ४। सू ८३। पु ४। पृष्ठ० २६०। २६१

टीका—सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसायवेउव्वियपरिणदेहि सासणसम्मादिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदि-भागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो पोसिदो। उववादो णत्थि। मारणंतिय-परिणदेहि सत्त चोद्दसभागा देसूणा पोसिदा। केण ऊणा? इसिपब्भारपुढवीए उवरिमबाहलभेण।

सम्मामिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।

—षट्० खण्ड० १। ४। सू ८४। पु ४। पृष्ठ० २६१

टीका—एदस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्ताणिओगद्दारोरालियकायजोग-सम्मामिच्छादिट्ठिसुत्त परूवणाए तुल्ला। सत्थाणसत्थाणविहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि ओरालियसम्मामिच्छादिट्ठीहि तीदाणागदकालेसु तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्ज-गुणो पोसिदो। मारणंतिय-उववादा णत्थि।

असंजदसम्मादिट्ठीहि संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।

षट्० खण्ड० १। ४। सू ८५। पु ४। पृष्ठ० २६१। २

टीका—सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसायवेउव्विय-मारणं-तियपरिणदेहि असंजदसम्मादिट्ठीहि संजदासंजदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-भागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो वट्टमाणद्धाए पोसिदो।

छ चोद्दसभागा वा देसूणा।

—षट्० खण्ड० १। ४। सू ८६। पु ४। पृष्ठ० २६२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टीका—सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाणवेदण-कसाय-वेउव्विय-परिण-देहि असंजदसम्मादिट्ठीहि संजदासंजदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरिय-लोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो। एसो वा सद्दसूचिदत्थो। मारणंतिय (उववाद) परिणदेहि छ चोद्दसभागा देसूणा पोसिदा, अच्चुदकप्पादो उवरि असंजदसम्मादिट्ठिसंजदासंजदाणमुववादाभावादो।

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।

—षट्० खण्ड० १। ४। सू ८७। पु ४। पृष्ठ० २६२। ३

टीका—एदेसिमट्ठण्हं गुणट्ठाणाणं तिण्णि वि काले अस्सिदूण परूवणं कीरमाणे खेत्तपोसणाणं मूलोघपमत्तादिपरूवणाए समाणा परूवणा कादव्वा। णवरि सजोगिकेवलिम्हि कवाड-पदर-लोगपूरणाणि णत्थि। तं कधं णव्वदे? सजोगिकेवलीहि लोगस्स असंखेज्जा भागा सव्वलोगो वा फोसिदो त्ति सुत्तेण अणिद्दिट्ठत्तादो।

औदारिककाययोगी जीवों में मिथ्यादृष्टियों का स्पर्शन-क्षेत्र ओघ के समान सर्वलोक में है।

अस्तु द्रव्यार्थिकनय की प्ररूपणा में तो ओघपना घटित होता है, किन्तु पर्यायार्थिक-नय की प्ररूपणा में ओघपना घटित नहीं होता है, क्योंकि औदारिककाययोग के विरुद्ध करने पर विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिक पदों के स्पर्शन का क्षेत्र आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भाग नहीं पाया जाता है। इससे यहाँ पर भेद प्ररूपणा की जाती है। स्वस्थान-स्वस्थान, वेदना, कषाय और मारणान्तिकपदपरिणत औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों ने तीनों ही कालों में सर्वलोक स्पर्श किया है। यहाँ पर उपपाद नहीं है। क्योंकि औदारिक-काययोग और उपपादपद—इन दोनों का सहानवस्थान लक्षण विरोध है। वर्तमानकाल में वैक्रियिकपदपरिणत उक्त जीवों ने सामान्यलोक आदि चार लोकों का असंख्यातवां भाग और मनुष्यलोक से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। अतीत और अनागत इन दोनों कालों में सामान्यलोक आदि तीन लोकों का संख्यातवां भाग और नरलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकों से असंख्यातगुणा क्षेत्रस्पर्श किया है, क्योंकि यहाँ पर वायुकायिक जीवों के वैक्रियिक पद संबंधी स्पर्शन क्षेत्र की प्रधानता से विवक्षा की गई है। विहारवत्स्व-स्थान पदसे परिणत औदारिक काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों ने वर्तमानकाल में सामान्यलोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग और अढाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। उन्हीं जीवों ने अतीतकाल और अनागतकाल में सामान्यलोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग और अढाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

औदारिक काययोगी सासादन सम्यग्दृष्टि जीवों ने लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है।

अस्तु इस वर्तमानकाल संबंधी सूत्र की क्षेत्रानुयोग द्वार में कहे गये औदारिक काययोगी सासादन सम्यग्दृष्टियों की क्षेत्र-प्ररूपणा करनेवाले सूत्र के समान स्पर्शन-प्ररूपणा करनी चाहिए।

उक्त जीवों ने अतीत और अनागत काल की अपेक्षा कुछ कम सात बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं।

स्वस्थान-स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत सासादन सम्यग्दृष्टियों ने सामान्य लोकादि तीन लोकों का असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग और मानुषक्षेत्र से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। इन जीवों के उपपाद पद नहीं होता है। मारणान्तिक-पद-परिणत उक्त जीवों ने कुछ कम सात बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं।

ईषत्प्राग्भार पृथ्वी के उपरिमभाग के बाहल्य-प्रमाण से कुछ कम क्षेत्र समझना चाहिए।

औदारिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों ने लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है।

अस्तु इस क्षेत्र की प्ररूपणा क्षेत्रानुयोगद्वार में वर्णित औदारिककाययोगी, सम्यग्-मिथ्यादृष्टियों के क्षेत्र का वर्णन करनेवाले सूत्र की प्ररुपणा के तुल्य है। स्वस्थान-स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिक पदपरिणत औदारिक काययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों ने अतीत और अनागत काल में सामान्य लोकादि तीन लोकों का असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग और अढाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। औदारिक काययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि के मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद—ये दो पद नहीं होते हैं।

औदारिक काययोगी, असंयत सम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवों ने लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है।

अस्तु स्वस्थान-स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घात इन पदों से परिणत औदारिक काययोगी असंयत सम्यग्दृष्टि और संयतासंयत ने सामान्य लोकादि तीन लोकों का असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग और अढाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यह 'वा' शब्द से सूचित अर्थ है। मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद पद परिणत उक्त जीवों ने कुछ कम छह बटे चौदह ($\frac{६}{१४}$) भाग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्पर्श किये हैं, क्योंकि अच्युत कल्प से ऊपर असंयत सम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवों का उपपाद नहीं होता है।

लाक्षणिक साहित्य में कोश का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। कार्मण काययोगी जीव मरण को प्राप्त नहीं होता है। यद्यपि असंयत सम्यग्दृष्टि व संयतासंयत की उपपाद अच्युत-कल्प तक का कहा है। द्रव्य लिंगी-मिथ्यादृष्टि का उपपाद नौ ग्रैवेयक तक है।

प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर सयोगी केवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती औदारिक काययोगी जीवों ने लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है।

अस्तु इन आठों गुणस्थानों का तीनों ही कालों का आश्रय करके स्पर्शप्ररूपणा करने पर क्षेत्र और स्पर्शन अनुयोगद्वार के मूलोघ प्रमत्तादि गुणस्थानों की प्ररूपणा के समान प्ररूपणा करनी चाहिए। विशेष बात यह है कि सयोगी-केवली-गुणस्थान में कपाट, प्रतर और लोक पूरण समुद्घात नहीं होते हैं। (क्योंकि औदारिक काययोग की अवस्था में उनके केवल एक दंड समुद्घात ही होता है।)

चूंकि सयोगि-केवलियों ने लोक का असंख्यात वहुभाग और सर्वलोक स्पर्श किया है। इस सूत्र से निर्दिष्ट नहीं की गई है। अतः हम जानते हैं कि औदारिक काययोगी सयोगिजिन के कपाट आदि तीन समुद्घात नहीं होते हैं।

नोट—औदारिक काययोग की अवस्था में केवल एक दंड समुद्घात ही होता है, कपाट समुद्घात आदि नहीं। इसका कारण यह है कि कपाट समुद्घात में औदारिकमिश्र काययोग और प्रतर और लोक पूरण समुद्घात में कार्मण काययोग होता है—ऐसा नियम है। अतः यहाँ, औदारिक काययोग की प्ररूपणा करते समय सयोगी केवली में कपाट, प्रतर और लोक पूरण समुद्घात नहीं होने हैं।

०४ औदारिकमिश्र काययोगी की क्षेत्र-स्पर्शना

ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं।

—षट्० खण्ड० १। ४। सू ८८। पु ४। पृष्ठ० २६३

टीका—सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादपरिणदेहि ओरालियमिस्सकायजोगिमिच्छादिट्ठीहि तिसु वि कालेसु जेण सव्वलोगो फोसिदो, तेण ओघत्तमेदेसिं ण विरुज्झदे। विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियपदाणमेत्थाभावा णोघत्तं जुज्जदे ? होदु णाम एदेसिं दोण्हं पि पदाणमभावो, तधावि पदसंखाविवक्खाभावा विज्जमाणपदाणं फोसणस्स ओघपदफोसणेण तुल्लत्तमत्थि त्ति ओघत्तं ण विरुज्झदे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सासणसम्माइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।

—षट्० खण्ड० १। ४। सू ८९। पु ४। पृष्ठ० २६४। ५

टीका—एदेसिं तिण्हं गुणट्ठाणाणं वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगो। सत्थाण-सत्थाण-वेदण-कसाय-उववादपरिणदओरालियमिस्ससासणसम्मादिट्ठीहि अदीद-काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो। कधं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तं? देव-णेरइयमणुस्स-तिरिक्खसासणसम्मादिट्ठीहि तिरिक्खमणुस्सेसुप्पज्जिय सरीरं घेत्तूण ओरालिय-मिस्सकायजोगेण सह सासणगुणमुव्वहंतेहि अदीदकाले संखेज्जंगुलबाहल्लरज्जुपदरं मज्झिल्लमसमुद्दवज्जं सव्वं जेण फुसिज्जदि तेण तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो त्ति वयणं जुज्जदे। एत्थ विहार-वेउव्विय-मारणंतिय-पदाणि णत्थि, एदेसिमो-रालियमिस्सकायजोगेण सहअवट्ठाणविरोहा। उववादो पुण अत्थि, सासणगुणण सह अक्कमेण उवात्तभवसरीरपढमसमए उववादोवलंभा। मिच्छादिट्ठीणं पुण मारणंतिय-उववाद-पदाणि लब्भंति, अणंतो ओरालियमिस्सेइंदिय अपज्जत्तरासी सट्ठाणे परट्ठाणे च वक्कमणोवक्कमणं करेमाणो लब्भदि त्ति। सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-उववाद परिणदेहि असंजदसम्मादिट्ठीहि ओरालियमिस्सकायजोगीहि तीदे काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। कधं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तं? ण, पुव्वं तिरिक्खमणुस्सेसु आउअं बंधिय पच्छा सम्मत्तं घत्तूण दंसणमोहणीयं खविय बद्धाउवसेण भोगभूमिसंठाणअसंखेज्जदीवेसु उप्पण्णहि भवसरीरग्गहण-पढमसमए वट्टमाणेहि ओरालियमिस्सजोगअसंजदसम्मादिट्ठीहि अदीदकाले पोसिदतिरियलोगस्स संखेज्जदिभागुवलंभा। कवाडगदेहि सजोगिकेवलीहि ओरालियमिस्सकायजोगे वट्टमाणेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो; अदीदेण तिरियलोगादो संखेज्ज-गुणो पोसिदो। एत्थ कवाडखेत्तादो जगपदरुप्पायणविधाणं जाणिय वत्तव्वं।

औदारिकमिश्रकाययोगियों में मिथ्यादृष्टि जीवों का स्पर्शन-क्षेत्र ओघ के समान सर्वलोक है।

स्वस्थान-स्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद परिणत औदारिकमिश्र काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों ने तीनों ही कालों में चूंकि सर्वलोक स्पर्श किया है, अतः ओघपना इन पदोंवाले जीवों से विरोध को प्राप्त नहीं होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्तु औदारिकमिश्र काययोगी जीवों के विहारवत्स्वस्थान और वैक्रिय समुद्घात इन दो पदों का अभाव भले ही रहा जावे, तथापि पदों की संख्या की विवक्षा न करने से उनमें विद्यमान पदों के स्पर्शन की ओघ पद के स्पर्शन के साथ तुल्यता है ही अतः ओघपना विरोध को प्राप्त नहीं होता है।

औदारिकमिश्रकाययोगी सासादन सम्यग्दृष्टि, असंयत सम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवली जीवों ने लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है।

अस्तु इन तीनों ही गुणस्थानों के स्वर्शन की वर्तमानकालिक प्ररूपणाक्षेत्र के समान है। स्वस्थान-स्वस्थान, वेदना, कषाय, समुद्घात और उपपादपदपरिणत औदारिकमिश्र काययोगी सासादन सम्यग्दृष्टि जीवों ने अतीतकाल में सामान्य लोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवां भाग, तिर्यग् लोक का संख्यातवां भाग और अढाईद्वीप से असंख्यागुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

चूंकि देव, नारकी, मनुष्य और तिर्यंच सासादन-सम्यग्दृष्टि जीवों में (यथासंभव) तिर्यंच और मनुष्यों में उत्पन्न होकर शरीर को ग्रहण करके औदारिकमिश्र काययोग के साथ सासादन गुणस्थान को धारण करते हुए अतीतकाल में बीच के समुद्र को छोड़ कर संख्यात अंगुल बाहल्यवाले संपूर्ण राजुप्रतररूप क्षेत्र का स्पर्श किया है अतः तिर्यग् लोक का संख्यातवां भाग यह वचन युक्तियुक्त है।

यहाँ पर विहारवत्स्वस्थान, वैक्रियिक और मारणान्तिक पद नहीं होते हैं, क्योंकि इन पदों का औदारिकमिश्रकाययोग के साथ अवस्थान का विरोध है, किन्तु उपपाद पद होता है क्योंकि सासादन गुणस्थान के साथ अक्रम से (युगपत्) उपात्त भवशरीर के प्रथम समय में उपपाद पाया जाता है। मिथ्यादृष्टि जीवों के भी मारणान्तिक और उपपाद पद पाये जाते हैं। क्योंकि अनंत-संख्यक औदारिकमिश्र काययोगी एकेन्द्रिय अपर्याप्त राशि, स्वस्थान और परस्थान में अपक्रमण और उपक्रमण करती हुई, अर्थात् जाती-आती पाई जाती है। स्वस्थान-स्वस्थान, वेदना, कषायसमुद्घात और उपपादपदपरिणत औदारिकमिश्र काययोगी असंयत सम्यग्दृष्टि जीवों में अतीत काल में सामान्य लोकादि तीन लोकों का असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग और अढाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

औदारिकमिश्रकाययोग असंयत सम्यग्दृष्टियों के उपपाद क्षेत्र से तिर्यग् लोक का संख्यातवां भाग कैसे कहा है—यह एक प्रश्न है।

इसका समाधान यह है कि—नहीं, क्योंकि पूर्व में तिर्यंच और मनुष्यों में आयु को बांधकर पीछे सम्यक्त्व को ग्रहण कर, और दर्शन मोहनीय का क्षय करके बांधी हुई आयु के वश से भोगभूमि के रचनावाले असंख्यात द्वीपों में उत्पन्न हुए तथा भवशरीर के ग्रहण करने के प्रथम समय में वर्तमान, ऐसे औदारिकमिश्रकाययोगी असंयत सम्यग्दृष्टि जीवों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के द्वारा अतीतकाल में स्पर्श किया गया क्षेत्र तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग पाया जाता है।

कपाट समुद्घात को प्राप्त, औदारिकमिश्रकाययोग में वर्तमान सयोगि-केवलियों ने सामान्य लोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवां भाग, तिर्यग् लोक का संख्यातवाँ भाग और अढाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यहाँ पर कपाट समुद्घातगत क्षेत्र की अपेक्षा से स्पर्शनक्षेत्र संबंधी जगप्रतर के उत्पादन का विधान जान करके कहना चाहिए। (इसके लिए देखो—क्षेत्र प्ररूपणा पृ० ४९ आदि षट्खंडागम पु ४)।

०५ वैक्रियकाययोगी की क्षेत्र-स्पर्शना

वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।

—षट्० खण्ड० १। ४। सू ९०। पु ४। पृष्ठ० २६६

टीका—एदं सुत्तं जेण वट्टमाणकाले पडिबद्धं तेणेदस्स वक्खाणे कीरमाणे जधा खेत्ताणिओगद्दारे वेउव्वियकायजोगिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि-बद्धसुत्तरस वक्खाणं कदं, तधा एत्थ वि कायव्वं।

अट्ठ तेरह चोद्दसभागा वा देसूणा।

—षट्० खण्ड० १। ४। सू ९१। पु ४। पृष्ठ० २६६

टीका—सत्थाणसत्थाणपरिणद-वेउव्वियमिच्छादिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। विहारवदिसत्थाणवेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि अट्ठ चोद्दसभागा फोसिदा। उववादो णत्थि। मारणंतियपरिणदेहि तेरह चोद्दसभागा फोसिदा, हेट्ठा छ, उवरि सत्त रज्जू। घणलोगमेगरूवस्स अट्ठतेरसभागूण-सत्तावीसरूवेहि खंडिद एग खंडं फोसंति त्ति वुत्तं होइ।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं।

—षट्० खण्ड० १। ४। सू ९२। पु ४। पृष्ठ० २६७

टीका—एदस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगो। सत्थाणसत्थाण-परिणदवेउव्वियकायजोगिसासणसम्मादिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो। एत्थ तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागपरूवणं पुव्वं व वत्तव्वं। विहारवदिसत्थाण-वेदणकसाय-वेउव्वियपरिणदेहि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठ चोद्दसभागा फोसिदा। उववादो णत्थि। मारणंतियपरिणदेहि बारह चोद्दस-भागा फोसिदा। तेणोघमिदि जुज्जदे।

सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी ओघं।

—षट्० खण्ड० १। ४। सू ९३। पु ४। पृष्ठ० २६७

टीका—जेणेदेसिं वट्टमाणपरूवणा खेतोघपरूवणाए तुल्ला, तेणोघं होदि। अदीदपरूवणा वि फोसणोघेण तुल्ला। तं जहा - सत्थाणसत्थाणपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्ज-गुणो फोसिदो। विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियपरिणदेहि अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा। असंजदसम्मादिट्ठिस्स उववादो णत्थि। सम्मा-मिच्छादिट्ठिस्स मारणंतिय-उववादो णत्थि। तेणेत्थ वि ओघत्तमेदेसिं जुज्जदे।

वैक्रियिक काययोगियों में मिथ्यादृष्टि जीवों ने लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है।

चूंकि यह सूत्र वर्तमान काल में संबद्ध है। अतः इसकी व्याख्या करने पर जिस प्रकार से क्षेत्रानुयोगद्वार में वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादृष्टि आदि जीवों के प्रतिबद्ध सूत्र का व्याख्यान किया है, उसी प्रकार यहाँ पर भी करना चाहिए।

वैक्रियिक काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों ने तीनों कालों की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह और कुछ कम तेरह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं।

स्वस्थान-स्वस्थानपदपरिणत वैक्रियिक काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों ने सामान्य लोकादि तीन लोकों का असंख्यातवां भाग, तिर्यग् लोक का संख्यातवां भाग और मनुष्य लोक से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घातपदपरिणत उक्त जीवों ने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं। यहाँ पर उपपाद पद नहीं होता है। (क्योंकि मिश्रयोग और कार्मण काययोग के सिवाय अन्य योगों के साथ उपपाद पद का सहानवस्थान लक्षण विरोध है) मारणान्तिक समुद्घातपदपरिणत उक्त जीवों ने (कुछ कम) तेरह बटे चौदह ($\frac{१३}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं, जो कि मेरुतल से नीचे छह राजु और सात राजु जानना चाहिए। घनाकार लोक को एक रूप के आठ बटे तेरह ($\frac{८}{१३}$) भाग से कम सत्ताइस ($२६\frac{५}{१३}$) रूपों से खंडित (विभक्त) करने पर एक खंड प्रमाण क्षेत्र का स्पर्श करते हैं, ऐसा अर्थ कहा गया समझना चाहिए।

वैक्रियिक काययोगी सासादन सम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शन-क्षेत्र ओघ स्पर्शन के समान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस सूत्र की वर्तमानस्पर्शनप्ररूपणा के समान है। स्वस्थान-स्वस्थान पद-परिणत वैक्रियिक काययोगी सासादन सम्यग्दृष्टि जीवों ने सामान्य लोकादि तीन लोकों का असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग और अढाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यहाँ पर तिर्यग्लोक के संख्यातवें भागप्ररूपणा पूर्व के समान ही करना चाहिए। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घात— इन पदों से परिणत वैक्रियिक काययोगी जीवों ने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं। इनके उपपाद नहीं होता है। मारणान्तिक समुद्घात पद से परिणत उक्त जीवों ने बारह बटे चौदह ($\frac{१२}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं। अतः सूत्र में दिया गया 'ओघ' पद युक्ति संगत है।

वैक्रिय काययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शन ओघ के समान है।

चूंकि इन दोनों गुणस्थानवर्ती जीवों की वर्तमानकालिक स्पर्शन-प्ररूपणा क्षेत्र संबंधी ओघ प्ररूपणा के तुल्य है, अतः उनकी स्पर्शन-प्ररूपणा ओघ के तुल्य होती है। अतीतकालिक स्पर्शन-प्ररूपणा भी ओघ-प्ररूपणा के समान है। वह इस प्रकार से हैं— स्वस्थान-स्वस्थान पद-परिणत वैक्रियिक काययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत सम्यग्-मिथ्यादृष्टि जीवों ने सामान्य लोकादि तीन लोकों का असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग और अढाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक पद परिणत उक्त जीवों ने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं। वैक्रियिक काययोगी असंयत सम्यग्दृष्टि जीवों के उपपाद पद नहीं होता है। वैक्रियिक काययोगी सम्यग्मिथ्यदृष्टि जीवों के मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद—ये दो पद नहीं होते हैं। अतः यहाँ पर भी ओघपना बन जाता है।

०६ वैक्रियमिश्र काययोगी की क्षेत्र-स्पर्शना

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मा-दिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।

—षट्० खण्ड० १। ४। सू ९४। पु ४। पृष्ठ० २६८

टीका—एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगो। सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-उववादपरिणदवेउव्वियमिस्सकायजोगिमिच्छादिट्ठीहि अदीदकाले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्ज-गुणो फोसिदो। विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियमारणंतियपदाणि णत्थि। सासण-सम्मादिट्ठिस्स वि एवं चेव वत्तव्वं, वाणवेंतरजोदिसियदेवाणमसंखेज्जावासेसु तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमोट्ठहिय ट्ठिदे सासणाणमुप्पत्तिदंसणादो असंजद-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्माइट्ठीहि सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-उववादपरिणदेहि चउण्हं लोगाणम संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो, वाणवेंतर-जोदिसिय-भवणवासिएसु एदेसिमुववादाभावा ; सम्मादिट्ठिउववादपाओग्गसोधम्मादिउव-रिमविमाणाणं तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागे चेव अवट्ठाणादो ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवों में मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयत-सम्यग्दृष्टि जीवों ने लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ।

अस्तु इस सूत्र की वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्र के समान है । स्वस्थान-स्वस्थान, वेदना, कषाय और उपपादपदपरिणत वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों ने अतीतकाल में सामान्यलोकादि तीन लोकों का असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग और अढाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । वैक्रियिकमिश्र-काययोगी जीवों के विहारवत्स्वस्थान, वैक्रियिक और मारणान्तिक समुद्घात—ये पद नहीं होते हैं । सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थान की स्पर्शनप्ररूपणा इसी प्रकार से कहना चाहिए ।

तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग को व्याप्त करके स्थित वाणव्यंतर और ज्योतिष्क देवों के असंख्यात आवासों में सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों की उत्पति देखी जाती है ।

स्वस्थान-स्वस्थान, वेदना, कषाय और उपपादपरिणत वैक्रियिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों ने सामान्य लोकादि चार लोकों का असंख्यातवां भाग और अढाई-द्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है क्योंकि वाणव्यंतर, ज्योतिष्क और भवनवासी देवों में इनका, अर्थात् वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवों का उपपाद नहीं होता है । सम्यग्दृष्टि जीवों के उपपाद के प्रायोग्य सौधर्मादि उपरिम विमानों का, तिर्यग्लोक के असंख्यातवें भाग में ही अवस्थान देखा जाता है ।

०७ आहारक काययोगी तथा आहारकमिश्र काययोगी की क्षेत्र-स्पर्शना

आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदेहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।

—षट्० खण्ड० १ । ४ । सू ९५ । पु ४ । पृष्ठ० २६९

टीका—एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणपरुवणा खेत्तभंगा । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि आहारकायजोगिपमत्तसंजदेहि तीदे काले चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो माणुसखेत्तस्सं संखेज्जदिभागो फोसिदो । उववाद-वेउव्वियं णत्थि । मारणंतियपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो । आहारमिस्सकायजोगिपमत्तसंजदेहि सत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्ज-दिभागो फोसिदो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवों में प्रमत्तसंयतों ने लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है।

इस सूत्र की वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्र प्ररूपणा के समान है। स्वस्थान-स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना व कषाय समुद्घात परिणत आहारककाययोगी प्रमत्त संयत जीवों ने अतीतकाल में सामान्यलोकादि चार लोकों का असंख्यातवां भाग और मनुष्य क्षेत्र का संख्यातवां भाग स्पर्श किया है। आहारककाययोगियों में उपपाद और वैक्रियिक-पद नहीं होते हैं। मारणान्तिकपदपरिणत आहारककाययोगी जीवों में सामान्यलोकादि चार लोकों का असंख्यातवां भाग और मनुष्य क्षेत्र से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। स्वस्थान, वेदना और कषाय समुद्घात —इन पदों से परिणत आहारकमिश्रकाययोगी प्रमत्त-संयतों ने सामान्यलोकादि चार लोकों का असंख्यातवां भाग और मनुष्य क्षेत्र का संख्यातवां भाग स्पर्श किया है।

'०८ कार्मण काययोगी की क्षेत्र-स्पर्शना

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं।

—षट्० खण्ड० १। ४। सू ९६। पु। ४ पृष्ठ० २६९

टीका—सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-उववादपरिणदेहि मिच्छादिट्ठीहि तिसु वि कालेसु जेण सव्वलोगो फोसिदो, तेण सुत्ते ओघमिदि वुत्तं। एत्थ विहारव-दिसत्थाणवेउव्विय-मारणंतियपदाणि णत्थि।

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।

—षट्० खण्ड० १। ४। सू ९७। पु ४। पृष्ठ० २७०

टीका—एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगा।

एक्कारह चोद्दसभागा देसूणा।

—षट्० खण्ड० १। ४। सू ९८। पु ४। पृष्ठ० २७०

टीका—एत्थ उववादवदिरित्तसेसपदाणि णत्थि, कम्मइयकायजोगविव-क्खादो। उववादे वट्टमाणा सासण हेट्ठा पंच, उवरि छ रज्जुओ फुसंति त्ति एक्कारह चोद्दसभागा फोसिदखेत्तं होदि।

असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।

—षट्० खण्ड० १। ४। सू ९९। पु ४। पृष्ठ० २७०

टीका—एदस्स परुवणा खेत्तभंगो, वट्टमाणकालपडिबद्धत्तादो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छ चोद्दसभागा देसूणा।

—षट्० खण्ड० १ । ४ । सू १०० । पु ४ । पृष्ठ० २७० । १

टीका—एत्थ वि उववादपदमेक्कं चेव। तिरिक्खासंजदसम्माइट्ठिणो जेणुवरि छ रज्जुओ गंतूणुप्पज्जंति, तेण फोसणखेत्तपरुवणं छ-चोद्दसभागमेत्तं होदि। हेट्ठा फोसणं पंचरज्जुपमाणं ण लब्भदे, णेरइयासंजदसम्मादिट्ठीणं तिरिक्खेसुववादाभावा।

सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जा भागा सव्वलोगो वा।

—षट्० खण्ड० १ । ४ । सू १०१ । पु ४ । पृष्ठ० २७१

टीका—पदरगदकेवलीहि लोगस्स असंखेज्जा भागा फोसिदा, लोगपेरंत-ट्ठिदवादवलएसु अपविट्ठजीवपदेसत्तादो। लोगपूरणे सव्वलोगो फोसिदो, वादव-लएसु वि पविट्ठजीवपदेसत्तादो।

कार्मणकाययोगी जीवों में मिथ्यादृष्टि जीवों की स्पर्शनप्ररूपणा ओघ के समान है।

अस्तु स्वस्थान-स्वस्थान, वेदना, कषाय और उपपादपदपरिणत कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों ने तीनों ही कालों में चूंकि सर्वलोक स्पर्श किया है। इसलिए सूत्र में 'ओघ' ऐसा पद कहा है। यहां, अर्थात् कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टियों के, विहार-वत्स्वस्थान, वैक्रियिक और मारणान्तिक समुद्घात, इतने पद नहीं होते हैं।

कार्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टियों ने लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है।

चूंकि इस सूत्र की वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा ओघ के समान है।

कार्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों ने तीनों कालों की अपेक्षा कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं।

यहाँ पर उपपादपद को छोड़कर शेष पद नहीं है, क्योंकि कार्मणकाययोग की विवक्षा की गई है। उपपादपद में वर्तमान सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मेरु के मूल भाग से नीचे पांच राजू और ऊपर अच्युतकल्प तक छह राजू प्रमाण क्षेत्र का स्पर्शन करते हैं, अतः ग्यारह बटे चौदह ($\frac{११}{१४}$) भाग प्रमाण स्पर्श किया हुआ क्षेत्र हो जाता है।

कार्मणकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों ने लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्तु वर्तमानकाल से प्रतिसंबद्ध होने से इस सूत्र की स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणा के समान है।

कार्मणकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों ने तीनों कालों की अपेक्षा से कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं।

यहाँ पर भी केवल उपपादपद ही होता है। तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि जीव चूंकि मेरुतल से ऊपर छह राजु जा करके उत्पन्न होते हैं। अतः स्पर्शन क्षेत्र की प्ररूपणा छह बटे चौदह ($\frac{६}{१४}$) भाग प्रमाण होती है। मेरुतल से नीचे पांच राजु प्रमाण स्पर्शन क्षेत्र नहीं पाया जाता है, क्योंकि नारकी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का तिर्यंचों में उपपाद नहीं होता है।

कार्मणकाययोगी सयोगि-केवलियों ने लोक का असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक स्पर्श किया है।

अस्तु प्रतरसमुद्घात को प्राप्त केवलियों ने लोक के असंख्यात बहुभाग स्पर्श किये हैं क्योंकि लोकपर्यन्तस्थित वातवलयों में केवली भगवान् के आत्मप्रदेश प्रतरसमुद्घात में प्रवेश नहीं करते हैं। लोकपूरण समुद्घात में सर्वलोक स्पर्श किया है। क्योंकि लोक के चारों ओर व्याप्त वातवलयों में भी केवली भगवान् के आत्मप्रदेश प्रविष्ट हो जाते हैं।

·३७ सयोगी जीव का क्षेत्र-स्पर्श

·०१ मनोयोगी और वचनयोगी का क्षेत्र-स्पर्श

जोगाणुवादेण पंचमणजोगी-पंचवचिजोगी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?

—षट्० खण्ड० २। ७। सू ९९। पु ७। पृष्ठ० ४११

टीका—सुगमं।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।

—षट्० खण्ड० २। ७। सू १००। पु ७। पृष्ठ० ४११

टीका—एसो वट्टमाणणिद्देसो। तेणेत्थ खेत्तवण्णणा कायव्वा।

अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।

—षट्० खण्ड० २। ७। सू १०१। पु ७। पृष्ठ० ४११। २

टीका—एत्थ ताव वासद्दत्थो वुच्चदे-सत्थाणेण अप्पिदजीवेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठाइज्जादो असंखेज्ज-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणो फोसिदो। एसो वासद्दत्थो। विहारवदिसत्थाणेण अट्ठचोद्दसभागा देसूणा फोसिदा। कुदो? अट्ठरज्जुबाहल्ललोगणालीए मण-वचिजोगीणं विहारुव-लंभादो।

समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं?

—षट्० खण्ड० २। ७। सू १०२। पु ७। पृष्ठ० ४१२

टीका—सुगममेदं।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।

—षट्० खण्ड० २। ७। सू १०३। पु ७। पृष्ठ० ४१२

टीका—एत्थ खेत्तवण्णणा कायव्वा, वट्टमाणप्पणादो।

अट्ठचोद्दसभागा देसूणा सव्वलोगो वा।

—षट्० खण्ड० २। ७। सू १०४। पु ७। पृष्ठ० ४१२

टीका—आहार-तेजइयपदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुस-खेत्तस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो। एसो वासद्दत्थो। वेयण-कसायवेउव्विएहि अट्ठचोद्दसभागा देसूणा फोसिदा, अट्ठरज्जुआयदलोगणालीए सव्वत्थ तीदे काले वेयण-कसाय-विउव्वणाणमुवलंभादो। मारणंतिएण सव्वलोगो।

उववादो णत्थि।

—षट्० खण्ड० २। ७। सू १०५। पु ७। पृष्ठ० ४१३

टीका—तत्थ मण-वचिजोगाणमभावादो।

योगमार्गनानुसार पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीव स्वस्थान पदों से लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं।

अस्तु यह कथन वर्तमानकाल की अपेक्षा है। अतः यहाँ क्षेत्र-प्ररूपणा करनी चाहिए।

अथवा उक्त जीव स्वस्थान पदों में कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श करते हैं। (१०१)

यहाँ प्रथम वा शब्द से सूचित अर्थ रहते हैं—स्वस्थान की अपेक्षा प्रकृत जीवों द्वारा तीन लोक का असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग और अढाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। यह वा शब्द से सूचित अर्थ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विहारवत्स्वस्थान की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट है, क्योंकि, मनोयोगी और वचनयोगी जीवों का विहार आठ राजु बाहल्ययुक्त लोकनाली में पाया जाता है।

उपर्युक्त जीवों द्वारा समुद्घात की अपेक्षा लोक का असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है। (१०३)

अस्तु यहाँ क्षेत्र प्ररूपणा करनी चाहिए, क्योंकि वर्तमानकाल की प्रधानता है।

अथवा उन्हीं जीवों द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग या सर्वलोक स्पृष्ट है। (१०४)

आहारकसमुद्घात और तैजससमुद्घात पदों की अपेक्षा चार लोकों का असंख्यातवां भाग और मनुष्य क्षेत्र का संख्यातवां भाग स्पृष्ट है। यह वा शब्द से सूचित अर्थ है। वेदना समुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदों से कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट है, क्योंकि आठ राजु आयत लोकनाली से सर्वत्र अतीतकाल की अपेक्षा वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घात पाये जाते हैं। मारणान्तिकसमुद्घात की अपेक्षा सर्वलोक स्पृष्ट है।

पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवों के उपपादपद नहीं होता। (१०५)

क्योंकि, उपपादपद में मनोयोग-वचनयोग का अभाव है।

०२ काययोगी का क्षेत्र-स्पर्श

०४ औदारिकमिश्र काययोगी का क्षेत्र-स्पर्श

कायजोगि-ओरालियमिस्सकायजोगी सत्थाण-समुग्घादउववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं।

—षट्० खण्ड० २। ७। सू १०६। पु ७। पृष्ठ० ४१३

टीका—सुगमं।

सव्वलोगो।

—षट्० खण्ड० २। ७। सू १०७। पु ७। पृष्ठ० ४१३। ४

टीका—एदस्स अत्थो—सत्थाण-वेयण-कसाय-मारणंतिय-उववादेहि वट्टमाणादीदेसु सव्वलोगो फोसिदो। कुदो? सव्वत्थ गमणागमणावट्ठाणं पडि विरोहाभावादो। विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियपदेहि वट्टमाणं खेत्तं। अदीदेण अट्ठचोद्दसभागा देसूणा फोसिदा। णवरि वेउव्वियपदेण तिण्हं लोगाणं संखेज्जदि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भागो। तेजाहारपदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो, फोसिदो। एत्थ णासद्देण विणा कधमेसो अत्थो एत्थ वक्खाणिज्जदि ? ण एस दोसो, एदस्स सुत्तस्स देसामासियत्तादो। विहारवदिसत्थाणवेउव्विय-तेजाहार-पदाणि ओरालियमिस्से णत्थि।

काययोगी और औदारिकमिश्र काययोगी जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदों से सर्वलोक स्पर्श करते हैं।

व्याख्या—स्वस्थान-स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिक-समुद्घात और उपपाद पदों से वर्तमान और अतीतकालों में उक्त जीवों में सर्वलोक का स्पर्श किया है, क्योंकि उन जीवों के सर्वत्र गमना-गमन और अवस्थान में कोई विरोध नहीं है। विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घात पदों से वर्तमानकाल की अपेक्षा स्पर्शन का निरूपण क्षेत्र-प्ररूपणा के समान है। अतीतकाल की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भागों का स्पर्श किया है। विशेष इतना है कि वैक्रियिकपद की अपेक्षा तीन लोकों के संख्यातवें भाग का स्पर्श किया है।

तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात पदों में चार लोकों के असंख्यातवें भाग व मानुषक्षेत्र के संख्यातवें भाग का स्पर्श किया है।

विहारवत्स्वस्थान, वैक्रियिकसमुद्घात, तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घातपद औदारिकमिश्रयोग में नहीं होते हैं।

•०३ औदारिक काययोगी का क्षेत्र-स्पर्श

ओरालियकायजोगी सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?

—षट्० खण्ड० २। ७। सू १०८। पु ७। पृष्ठ० ४१४

टीका—सुगमं।

सव्वलोगो।

—षट्० खण्ड० २। ७। सू १०९। पु ७। पृष्ठ० ४१४

टीका—सत्थाणसत्थाण-वेयण-कसाय-मारणंतिएहि वट्टमाणातीदेसु सव्व-लोगो फोसिदो विहारवदिसत्थाणेण-वट्टमाणं खेत्तं। अदीदेण तिण्हं लोगाणम संखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। वेउव्वियपदेण वट्टमाणं खेत्तं। अदीदेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-भागो, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो फोसिदो। एदं सुत्तं-देसामासियं सव्वमेदं वक्खाणं सुत्तारूढं कायव्वं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उववादं णत्थि ।

षट्० खण्ड० २ । ७ । सू ११० । पु ७ । पृष्ठ० ४१५

टीका—उववादकाले ओरालियकायजोगस्स अभावादो ।

औदारिककाययोगी जीव स्वस्थान और समुद्घात की अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श करते हैं ।

अस्तु स्वस्थान-स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और मारणान्तिक-समुद्घात पदों से उक्त जीवों ने सर्वलोक स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान से वर्तमानकाल की अपेक्षा स्पर्शन का निरूपण क्षेत्र के समान है । अतीतकाल की अपेक्षा तीन लोकों का असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग और अढाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र का स्पर्श किया है । वैक्रियिकपद से वर्तमानकाल की प्ररूपणा क्षेत्र-प्ररूपणा के समान है । अतीतकाल की अपेक्षा तीनों लोकों के असंख्यातवें भाग तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोक से असंख्यातगुणे क्षेत्र का स्पर्श किया है ।

इस सूत्र से देशामर्शक करके यह सब सूत्रविहित व्याख्यान करना चाहिए ।

औदारिककाययोग में उपपाद नहीं होता है । क्योंकि उपपादकाल में औदारिक-काययोग का अभाव रहता है ।

०५ वैक्रिय काययोगी का क्षेत्र-स्पर्श

वेउव्वियकायजोगी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?

—षट्० खण्ड० २ । ७ । सू १११ । पु ७ । पृष्ठ० ४१५

टीका—सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।

—षट्० खण्ड० २ । ७ । सू ११२ । पु ७ । पृष्ठ० ४१५

टीका—एदस्स अत्थो—तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कुदो ? वट्टमाणप्पणादो ।

अट्ठचोद्दसभागा वेसूणा ।

—षट्० खण्ड० २ । ७ । सू ११३ । पु ७ । पृष्ठ० ४१५

टीका—वेउव्वियकायजोगीहि सत्थाणेहि तीदे काले तिण्हं लोगाणम-संखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फोसिदो। विहारवदिसत्थाणेण अट्ठचोद्दसभागा फोसिदा, अट्ठरज्जुबाहल्ललोग-णालीए वेउव्वियकायजोगेण देवाणं विहारुवलंभादो।

समुग्घादेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ?

—षट्० खण्ड० २। ७। सू ११४। पु ७। पृष्ठ० ४१६

टीका—सुगमं।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।

—षट्० खण्ड० २। ७। सू ११५। पु ७। पृष्ठ० ४१६

टीका—एत्थ खेत्तवण्णणा, वट्टमाणप्पणादो।

अट्ठ-तेरह चोद्दसभागा देसूणा।

—षट्० खण्ड० २। ७। सू ११६। पु। ७ पृष्ठ० ४१६

टीका—वेयण-कसाय-वेउव्वियपदेहि अट्ठचोद्दसभागा फोसिदा। मारणं-तिएण तेरह चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा। कुदो ? मेरुमूलादो उवरि सत्त हेट्ठा छरज्जुआयामलोगणालिमावूरिय वेउव्वियकायजोगेण तीदे कयमारणंतिय जीवाणमुवलंभादो।

उववादं णत्थि।

—षट्० खण्ड० २। ७। सू १९७। पु ७। पृष्ठ० ४१६

वैक्रियिककाययोगी जीव स्वस्थान पदों से लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं।

अस्तु उक्त जीवों ने स्वस्थान पदों से तीन लोकों के असंख्यातवें भाग, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग, और अढाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र का स्पर्श किया है। क्योंकि, वर्तमानकाल की प्रधानता है।

अतीतकाल की अपेक्षा वैक्रियिककाययोगी जीव कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श करते हैं।

अस्तु वैक्रियिककाययोगी जीवों ने स्वस्थान पदों से अतीतकाल की अपेक्षा तीन लोकों के असंख्यातवें भाग, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग और अढाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र को स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थान की अपेक्षा आठ बटे चौदह भागों का स्पर्श किया है, क्योंकि आठ राजु बाहल्यवाली लोकनाली में वैक्रियिककाययोग से देवों का विहार पाया जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैक्रियकाययोगी जीव समुद्घात की अपेक्षा लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं।

अस्तु यहाँ पर क्षेत्रप्ररूपणा करनी चाहिए, क्योंकि वर्तमानकाल की प्रधानता है।

उक्त जीव अतीतकाल की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह और नेरह बटे चौदह भाग स्पर्श करते हैं।

अस्तु अतीतकाल की अपेक्षा वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिक-समुद्घात पदों से उक्त जीवों ने आठ बटे चौदह भागों का स्पर्श किया है। मारणान्तिक-समुद्घात से कुछ कम तेरह बटे चौदह भागों का स्पर्श किया है। क्योंकि, मेरुमूल से ऊपर सात और नीचे छह राजु आयामवाली लोकनाली से पूर्ण कर वैक्रियिककाययोग के साथ अतीतकाल में मारणान्तिकसमुद्घात को प्राप्त जीव पाये जाते हैं।

वैक्रियिककाययोगी जीवों में उपपादपद नहीं होता है।

क्योंकि उपपादपद में वैक्रियिककाययोग का अभाव है।

०६ वैक्रियमिश्र काययोगी का क्षेत्र-स्पर्श

वेउव्वियमिस्सकायजोगी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?

—षट्० खण्ड० २। ७। सू ११८। पु ७। पृष्ठ० ४१७

टीका—सुगमं।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।

—षट्० खण्ड० २। ७। सू ११९। पु ७। पृष्ठ० ४१७

टीका—एत्थ वट्टमाणं खेत्तं। अदीदेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। विहारव-दिसत्थाणं णत्थि।

समुग्घाद-उववादं णत्थि।

—षट्० खण्ड० २। ७। सू १२०। पु ७। पृष्ठ० ४१७। ८

टीका—होदु णाम मारणंतिय-उववादाणमभावो, एदेसिं दोण्हं वेउव्विय-मिस्सकायजोगेण सह विरोहादो। वेउव्वियस्स वि तत्थ अभावो होदु णाम, अपज्जत्तकाले तदसंभवादो। ण पुण वेयण-कसायाणं तत्थ असंभवो, णेरइएसु अपज्जत्तकाले चेव ताणमुवलंभादो। एत्थ परिहारो वुच्चदे। तं जहा-होदु णाम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेसिं संभवो, किंतु तत्थ सत्थाणखेत्तादो अहियं खेत्तं ण लब्भदि त्ति तेसिं पडिसेहो कदो। किमिदि ण लब्भदे ? जीवपदेसाणं तत्थ सरीरतिगुणविप्फुज्जणाभावादो।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीव स्वस्थान पदों से लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं।

अस्तु यहाँ वर्तमानकाल की अपेक्षा स्पर्शन का निरूपण क्षेत्र-प्ररूपणा के समान है। अतीतकाल की अपेक्षा तीन लोकों का असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग और अढाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श करते हैं।

विहारवत्स्वस्थान उनके नहीं होता है।

शंका—वैक्रियमिश्रकाययोगियों के मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदों का अभाव भले ही हो, क्योंकि, इनका वैक्रियिकमिश्रकाययोग के साथ विरोध है। इसी प्रकार वैक्रियिकसमुद्घात का भी उनके अभाव रहा आवे, क्योंकि, अपर्याप्तकाल में वैक्रियिक-समुद्घात का होना असंभव है। किन्तु वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पदों की उनमें असंभावना नहीं है, क्योंकि नारकियों के ये दोनों समुद्घात अपर्याप्तकाल में ही पाये जाते हैं। जीवस्थान स्पर्शनानुगम के सूत्र ९४ की टीका में धवलाकार ने यहाँ उपपादपद भी स्वीकार किया है।

समाधान—नारकियों के अपर्याप्तकाल में वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पदों की संभावना रही जावे, किन्तु उनमें स्वस्थान क्षेत्र में अधिक क्षेत्र नहीं पाया जाता, इसी कारण उनका प्रतिषेध किया गया है।

शंका—वहाँ स्वस्थान क्षेत्र से अधिक क्षेत्र वहाँ क्यों नहीं पाया जाता है ?

समाधान—क्योंकि, उनमें जीव प्रदेशों के शरीर से तिगुणे विसर्पण का अभाव है।

०७ आहारक काययोगी का क्षेत्र-स्पर्श

आहारकायजोगी सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?

—षट्० खण्ड० २। ७। सू १२१। पु ७। पृष्ठ० ४१८

टीका - सुगमं।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।

—षट्० खण्ड० २। ७। सू १२२। पु ७। पृष्ठ० ४१८

टीका—एत्थ वट्टमाणस्स खेत्तभंगो। अदीदेण सत्थाण-सत्थाण-विहारव-दिसत्थाण-वेयण-कसायपदेहि चदुण्णं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संखेज्जदिभागो फोसिदो। मारणंतिएण चदुण्णं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो।

उववादं णत्थि।

—षट्० खण्ड० २। ७। सू १२३। पु ७। पृष्ठ० ४१९

टीका—कुदो ? अच्चंताभावेण ओसारिदत्तादो।

आहारककाययोगी जीव स्वस्थान और समुद्घात पदों से लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं।

अस्तु यहाँ वर्तमानकाल की अपेक्षा स्पर्शन का निरूपण क्षेत्र प्ररूपणा के समान है। अतीतकाल की अपेक्षा स्वस्थान-स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषाय-समुद्घात पदों से आहारककाययोगी जीवों ने चार लोकों के असंख्यातवें भाग और मानुष-क्षेत्र के संख्यातवें भाग का स्पर्श किया है। मारणान्तिकसमुद्घात से चार लोकों के असंख्यातवें भाग और मानुषक्षेत्र से असंख्यातगुणे क्षेत्र का स्पर्श किया है।

आहारककाययोगी जीवों के उपपादपद नहीं होता क्योंकि वह अत्यन्ताभाव से निराकृत है।

·०८ आहारकमिश्र काययोगी का क्षत्र-स्पर्श

आहारमिस्सकायजोगी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?

—षट्० खण्ड० २। ७। सू १२४। पु ७। पृष्ठ० ४१९

टीका—सुगमं।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।

—षट्० खण्ड० २। ७। सू १२५। पु ७। पृष्ठ० ४१९

टीका—एत्थ वट्टमाणस्स खेत्तभंगो। अदीदेण चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-भागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो। विहारवदिसत्थाणं णत्थि।

समुग्घाद-उववादं णत्थि।

—षट्० खण्ड० २। ७। सू १२६। पु ७। पृष्ठ० ४१९

टीका—कुदो ? अच्चंताभावेण ओसारिदत्तादो।

आहारकमिश्रकाययोगी जीव स्वस्थानों पदों से लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्तु यहाँ वर्तमानकाल की अपेक्षा स्पर्शन का निरूपण क्षेत्र प्ररूपणा के समान है। अतीतकाल की अपेक्षा चार लोकों के असंख्यातवें भाग और मानुषक्षेत्र के संख्यातवें भाग का स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थान उनके नहीं होता है।

आहारकमिश्रकाययोगी जीवों के समुद्घात और उपपादपद नहीं होते हैं। क्योंकि वे अत्यन्ताभाव से निराकृत है।

·०९ कार्मण काययोगो का क्षेत्र-स्पर्श

कम्मइयकायजोगीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?

—षट्० खण्ड० २। ७। सू १२७। पु ७। पृष्ठ० ४१९। २०

टीका —सुगमं।

सव्वलोगो।

षट्० खण्ड० २। ७। सू १२८। पु ७। पृष्ठ० ४२०

टीका—एदं पि सुगमं।

कार्मणकाययोगी जीवों द्वारा सर्वलोक स्पृष्ट है।

·३८ सयोगी जीव कितने क्षेत्र में

·०२ मनोयोगी और वचनयोगी कितने क्षेत्र में

जोगाणुवादेण पंचमणजोगी पंचवचिजोगी सत्थाणेण समुग्घायेण केवडिखेत्ते ?

—षट्० खण्ड० २। ६। सू ५२। पु ७। पृष्ठ० ३४०

टीका—एत्थ सत्थाणे दो वि सत्थाणाणि अत्थि, समुग्घादे वेयण-कसाय-वेउव्विय-तेजाहार-मारणंतियसमुग्घादा अत्थि, उट्ठाविदउत्तरसरीराणं मारणंतियगदाणं पि मण-वचिजोगसंभवस्स विरोहाभावादो। उववादो णत्थि, तत्थ कायजोगं मोत्तूणण्णजोगाभावादो।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे।

—षट्० खण्ड० २। ६। सू ५३। पु ७। पृष्ठ० ३४०। १

टीका—एदस्सत्थो वुच्चदे। तं जहा—सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदा एदे दस वि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे ; तेजाहारसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जस्स संखेज्जदिभागे ; मारणंतियसमुग्घा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे अच्छंति। उववादं णत्थि, मणजोग-वचिजोगाणं विवक्खादो।

योगमार्गणानुसार पांच मनोयोगी और पांच वचनयोगी जीव स्वस्थान व समुद्घात की अपेक्षा कितने क्षेत्र में रहते हैं ?

यहाँ स्वस्थान में दोनों स्वस्थान और समुद्घात में वेदनासमुदघात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, तैजससमुद्घात, आहारकसमुद्घात एवं मारणान्तिकसमुद्घात हैं। क्योंकि, उत्तर शरीर को उत्पन्न करनेवाले मारणान्तिकसमुद्घात प्राप्त जीवों के भी मनोयोग व वचनयोग होने में कोई विरोध नहीं है। मनोयोगी व वचनयोगी जीवों के उपपादपद नहीं है क्योंकि उनमें काययोग को छोड़कर अन्य योगों का अभाव है।

पांच मनोयोगी व पांच वचनयोगी जीव स्वस्थान व समुद्घात की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।

अस्तु स्वस्थान-स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात को प्राप्त ये दश ही जीव तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में और अढाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। तैजससमुद्घात व आहारकसमुद्घात को प्राप्त उक्त जीव चार लोकों के असंख्यातवें भाग और अढाईद्वीप के संख्यातवें भाग में रहते हैं। मारणान्तिकसमुद्घात को प्राप्त उक्त जीव तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में तथा मनुष्य तथा तिर्यग्लोक की अपेक्षा असख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं।

उपपादपद नहीं है, क्योंकि मनोयोग व वचनयोग की यहाँ विवधा है।

·०२ काययोगी कितने क्षेत्र में

·०४ औदारिकमिश्र काययोगी कितने क्षेत्र में

कायजोगि-ओरालियमिस्सकायजोगी सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?

—षट्० खण्ड० २। ६। सू ५४। पु ७। पृष्ठ० ३४१

टीका—सुगममेदं।

सव्वलोए।

—षट्० खण्ड० २। ६। सू ५५। पु ७। पृष्ठ० ३४१। २

टीका—एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे। तं जहा—सत्थाण-वेयण-कसाय-मारणंतियउववादेहि सव्वलोगे। कुदो ? आणंतियादो। विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियपदेहि कायजोगिणो तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। कुदो ? जगपदररस असंखेज्ददि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भागमेत्ततसरासिस्स गहणादो। तेजाहारपदेहि कायजोगिणो चदुण्हं लोगाणमसंज्जदिभागे, अड्ढाइज्जस्स संखेज्जदिभागे। दंड-कवाड-पदर-लोगपूरणेहि काय-जोगिणो ओघभंगो।

काययोगी और औदारिकमिश्रकाययोगी जीव स्वस्थान, समुद्घात व उपपादपद से सर्वलोक में रहते हैं।

अस्तु - स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदों से काययोगी व औदारिकमिश्रकाययोगी सर्वलोक में रहते हैं। क्योंकि वे अनन्त हैं। विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घात पदों से काययोगी जीव तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग और अढाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं, क्योंकि जगप्रतर के असंख्यातवें भाग मात्र त्रसराशि का यहाँ ग्रहण है। तैजस-समुद्घात और आहारकसमुद्घात पदों से काययोगी जीव चार लोकों के असंख्यावें भाग में और अढाईद्वीप के संख्यातवें भाग में रहते हैं। दंड, कपाट, प्रतर और लोकपूरणसमुद्घात की अपेक्षा काययोगियों के क्षेत्र का निरूपण ओघ के समान है।

नोट—अपने-अपने उत्पन्न होने के ग्रामदिकों के सीमा के भीतर परिभ्रमण करने से स्वस्थान-स्वस्थान और इससे बाह्य प्रदेश में घूमने को विहारवत्स्वस्थान कहते हैं।

·०३ औदारिककाय योगी कितने क्षेत्र में

ओरालियकायजोगी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ?

—षट्० खण्ड० २। ६। सू ५६। पु ७। पृष्ठ० ३४२

टीक—सुगमं।

सव्वलोए।

—षट्० खण्ड० २। ६। सू ५७। पु ७। पृष्ठ० ३४२। ३

टीका एदस्सत्थो वुच्चदे-सत्थाण-वेयण-कसाय-मारणंतियेहि सव्वलोगे। कुदो ? सव्वत्थावट्ठाणाविरोहिजीवाणमोरालियकायजोगीणं मारणंतियादो। विहारपदेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। कुदो ? तसणालिं मोत्तूणण्णत्थ विहाराभावादो। वेउव्विय-तेजा-दंडसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। णवरि तेजासमुग्घादगदा माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे। कवाड-पदर-लोगवूरणाहारपदाणि णत्थि, ओरालियकायजोगेण तेसिं विरोहादो।

उववादं णत्थि।

—षट्० खण्ड० २। ६। सू ५८। पु ७। पृष्ठ० ३४३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टीका— ओरालियकायजोगेण सह एदस्स विरोहादो।

औदारिककाययोगी जीव स्वस्थान व समुद्घात की अपेक्षा सर्वलोक में रहते हैं।

अस्तु स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात की अपेक्षा उक्त जीव सर्वलोक में रहते हैं, क्योंकि सर्वत्र अवस्थान के अविरोधी औदारिककाययोगी जीवों के मारणान्तिकसमुद्घात होता है। विहारपद की अपेक्षा तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में और अढाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं, क्योंकि त्रसनालि को छोड़कर उक्त जीवों का अन्यत्र विहार नहीं है। वैक्रियिकसमुद्घात, तैजससमुद्घात और दंडसमुद्घात को प्राप्त उक्त जीव चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और अढाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। विशेष इतना है कि तैजससमुद्घात को प्राप्त उक्त जीव मानुष क्षेत्र के संख्यातवें भाग में रहते हैं। कपाटसमुद्घात, प्रतरसमुद्घात, लोकपूरणसमुद्घात और आहारकसमुद्घात पद नहीं है, क्योंकि औदारिककाययोग के साथ उनका विरोध है।

औदारिककाययोगी जीवों के उपपादपद नहीं होता, क्योंकि औदारिककाययोग के साथ इसका विरोध है।

०५ वैक्रिय काययोगी कितने क्षेत्र में

वेउव्वियकायजोगी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ?

—षट्० खण्ड० २। ६। सू ५९। पु ७। पृष्ठ० ३४३

टीका—सुगमं।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे।

—षट्० खण्ड० २। ६। सू ६०। पु ७। पृष्ठ० ३४३

टीका—एदस्सत्थो वुच्चदे—सत्थाणसत्थाण-विहारवदि-सत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्वियपदेहि वेउव्वियकायजोगिणो तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। कुदो ? पहाणीकयजोइसियरासित्तादो। मारणंतियसमुग्घादेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णरतिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे। एत्थ ओवट्टणं जाणिय कायव्वं।

उववादो णत्थि।

—षट्० खण्ड० २। ६। सू ६१। पु ७। पृष्ठ० ३४३। ४

टीका—वेउव्वियकायजोगेण उववादस्स विरोहादो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैक्रियकाययोगी स्वस्थान और समुद्घात से लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।

अस्तु स्वस्थान-स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदों से वैक्रियिककाययोगी जीव तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में और अढाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। क्योंकि यहाँ ज्योतिषी राशि की प्रधानता है। मारणान्तिकसमुद्घात की अपेक्षा तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोक की अपेक्षा असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। यहाँ अपवर्तन जानकर करना चाहिए।

वैक्रियिककाययोगियों के उपपादपद नहीं होता क्योंकि, वैक्रियिककाययोग के साथ उपपादपद का विरोध है।

·०६ वैक्रियमिश्र काययोगी कितने क्षेत्र में

वेउव्वियमिस्सकायजोगी सत्थाणेण केवडिखेत्ते ?

—षट्० खण्ड० २। ६। सू ६२। पु ७। पृष्ठ० ३४४

टीका—सुगमं।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे।

—षट्० खण्ड० २। ६। सू ६३। पु ७। पृष्ठ० ३४४

टीका—एदस्स अत्थो—तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे। कुदो ? देवरासिस्स संखेज्जदिभागमेत्तवेउव्वियमिस्सकायजोगिदव्वुलंभादो।

समुग्घाद-उववादा णत्थि।

—षट्० खण्ड० २। ६। सू ६४। पु ७। पृष्ठ० ३४४

टीका—वेउव्वियमिस्सेण सह एदेसिं विरोहादो। होदु मारणंतिय-उववादेहि सह विरोहो, ण वेयण-कसायसमुग्घादेहि। तम्हा वेउव्वियमिस्सम्मि समुग्घादो णत्थि त्ति ण घडदे ? एत्थ परिहारो वुच्चदे—सत्थाणखेत्तादो वाचय-दुवारेण लोगस्स असंखेज्जदिभागेण वेयणकसाय-वेउव्विय-विहारवदिसत्थाण-तेजाहारखेत्ताणि अपुधभूदत्तादो तत्थेव लीणाणि त्ति एदाणि एत्थ खुद्दाबंधे ण परिग्गहिदाणि। तदो मारणंतियमेक्कं चेव केवलिसमुग्घादेण सहिदं एत्थ समुग्घा-दणिद्देसेण घेप्पदि। सो च समुग्घादो एत्थ णत्थि, तेणेसो ण दोसो त्ति। अधवा वेयण-कसाय-वेउव्विय-तेजाहाराणं पि एत्थ खुद्दाबंधे अत्थि समुग्घादववएसो, किंतु ण ते पहाणं, मारणंतियखेत्तादो तेसिमहियखेत्ताभावादो। तदो पहाणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मारणंतियपदं जत्थ अत्थि, तत्थ समुग्घादो वि अस्थि। जत्थ तं णत्थि ण तत्थ समुग्घादो त्ति वुच्चदि। तदो दोहि पयारेहि 'समुग्घादो णत्थि' त्ति ण विरुज्झदे।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी स्वस्थान की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।

अस्तु वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीव स्वस्थान से तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, अढाईद्वीप से असंख्यातगुणे और तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में रहते हैं, क्योंकि देवराशि के संख्यातवें भाग मात्र वैक्रियिकमिश्रकाययोगी द्रव्य पाया जाता है।

समुद्घात व उपपादपद नहीं है। क्योंकि वैक्रियिकमिश्रकाययोग के साथ इनका विरोध है।

शंका—वैक्रियिकमिश्रकाययोग का मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदों के साथ भले ही विरोध हो, किन्तु वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात के साथ कोई विरोध नहीं है। अतः वैक्रियिकमिश्रकाययोग में समुद्घात नहीं है—यह वचन घटित नहीं होता।

समाधान—स्वस्थान क्षेत्र से कथन की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग से वेदना-समुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, विहारवत्स्वस्थान, तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात के क्षेत्र अभिन्न होने से उसी में लीन है। अतः ये यहाँ 'क्षुद्रकबंध' में नहीं ग्रहण किये गये हैं। इसी कारण केवलिसमुद्घात सहित एक मारणान्तिकसमुद्घात ही यहाँ समुद्घात-निर्देश से ग्रहण किया जाता है। और वह समुद्घात यहाँ है नहीं, अतः यह कोई दोष नहीं। अथवा वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, तैजस-समुद्घात और आहारकसमुद्घात को भी यहाँ 'क्षुद्रकबंध' में समुद्घात संज्ञा प्राप्त है किन्तु वे प्रधान नहीं है, क्योंकि मारणान्तिकक्षेत्र की अपेक्षा उनके अधिक क्षेत्र का अभाव है। अतः जहाँ मारणान्तिकपद है वहाँ समुद्घात भी है, किन्तु जहाँ वह नहीं है वहाँ "समुद्घात भी नहीं है" यह वचन विरोध को भी प्राप्त नहीं होता।

०७ आहारक-काययोगी कितने क्षेत्र में

आहारकायजोगी वेउव्वियकायजोगिभंगो।

—षट्० खण्ड० २। ६। सू ६५। पु ७। पृष्ठ० ३४५

टीका—एसो दव्वट्ठियणिद्देसो। पज्जवट्ठियणयं पडुच्च भण्णमाणे अत्थि तदो विसेसो। तं जहा—सत्थाणविहारवदिसत्थाणपरिणदा चदुण्हं लोगाणम-संखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे। मारणंतियसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे त्ति।

आहारककाययोगियों के क्षेत्र का निरूपण वैक्रियिककाययोगियों के क्षेत्र के समान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्तु यह द्रव्यार्थिकनय से अपेक्षा निर्देश है। लेकिन पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा निरूपण करने पर वैक्रियिककाययोगियों के क्षेत्र से यहाँ विशेषता है। यथा—स्वस्थान और विहारवत्स्वस्थान क्षेत्र से परिणत आहारककाययोगी जीव चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और मानुष क्षेत्र से संख्यातवें भाग में रहते हैं। मारणान्तिकसमुद्घात से प्राप्त आहारककाययोगी जीव चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और अढाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं।

·०८ आहारकमिश्र काययोगी कितने क्षेत्र में

आहारमिस्सकायजोगी केवडिखेत्ते।

—षट्० खण्ड० २। ६। सू ६६। पु ७। पृष्ठ० ३४६

टीका—एसो वि दव्वट्ठियणिद्देसो, लोगस्स असंखेज्जदिभागत्तणेण दोण्हं खेत्ताणं समाणत्तं पेक्खिय पवुत्तीदो। पज्जवट्ठियणयं पडुच्च भेदो अत्थि। तं जहा—आहारमिस्सकायजोगी चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे त्ति।

आहारकमिश्रकाययोगियों का क्षेत्र वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों के समान है।

अस्तु—यह भी द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा निर्देश है। क्योंकि, लोक के असंख्यातवें भागत्व से दोनों क्षेत्रों की समानता की अपेक्षा कर इसकी प्रवृत्ति हुई है। पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा भेद है। वह इस प्रकार है—आहारकमिश्रकाययोगी जीव चार लोकों के असंख्यातवें भाग में व मानुषक्षेत्र के संख्यातवें भाग में रहते हैं।

·०९ कार्मण काययोगी कितने क्षेत्र में

कम्मइयकायजोगी केवडिखेत्ते।

—षट्० खण्ड० २। ६। सू ६७। पु ७। पृष्ठ० ३४६

टीका—सुगमं।

सव्वलोगे।

—षट्० खण्ड० २। ६। सू ६८। पु ७। पृष्ठ० ३४६

टीका—एदं देसामासियसुत्तं ण होदि, वुत्तत्थं मोत्तूणेदेण सूइदत्थाभावादो। कधं कम्मइयकायजोगिरासी सव्वलोए? ण, तस्स अणंतस्स सव्वजीवरासिस्स असंखेज्जदिभागत्तणेण तदविरोहादो।

कार्मणकाययोगी जीव सर्वलोक में रहते हैं। अस्तु यह देशामर्शक सूत्र नहीं है, क्योंकि उक्त अर्थ को छोड़कर इसके द्वारा सूचित अर्थ का अभाव है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शंका—कार्मणकाययोगी जीवराशि सर्वलोक में कैसे रहती है।

समाधान—नहीं, क्योंकि, कार्मणकाययोगी राशि के अनन्त सर्वजीवराशि के असंख्यातवें भाग होने से उसमें कोई विरोध नहीं है।

आत्मप्रवृत्तेस्संकोचविकोचो योगः, मनोवाक्कायावष्टंभबलेन जीवप्रदेश-परिस्पन्दो योग इति यावत्।

—षट्० खण्ड० २, १, ३। सू २। पु ७। पृष्ठ० ६, ७। टीका

आत्मा की प्रवृत्ति से उत्पन्न संकोच-विकोच का नाम योग है। अर्थात् मन, वचन और काय के अवलम्बन से जीव प्रदेशों के परिस्पन्दन होने को योग कहते हैं।

·३९ सयोगी जीवों की काल स्थिति

·०२ पंच मनोयोगी-पंच वचनयोगी की कालस्थिति

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदा पमत्तसंजदा अप्पमत्तसंजदा सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू १६२। पु ४। पृष्ठ० ४०९

टीका—कुदो ? मणजोग-वचिजोगेहि परिणमणकालादो तदुवक्कमणकालं-तरस्स थोवत्तादो।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू १६३। पु ४। पृष्ठ० ४०९। १२

टीका—एदस्स सुत्तस्स अत्थणिच्छयसमुप्पायणट्ठं मिच्छादिट्ठिआदिगुणट्ठा-णाणि अस्सिदूण एगसमयपरूवणा कीरदे। एत्थ ताव जोगपरावत्ति-गुणपरावत्ति-मरण-वाघादेहि मिच्छत्तगुणट्ठाणस्स एगसमओ परूविज्जदे। तं जधा-एक्को सासणो सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदो पमत्तसंजदो वा मणजोगेण अच्छिदो। एगसमओ मणजोगद्धाए अत्थि त्ति मिच्छत्तं गदो। एगसमयं मणजोगेण सह मिच्छत्तं दिट्ठं। विदियसमए मिच्छादिट्ठी चेव, किंतु वचिजोगी कायजोगी वा जादो। एवं जोगपरावत्तीए पंचविहा एयसमयपरूवणा कदा। कधं समयभेदो ? सासणादिगुणट्ठाणपच्छाकधत्तेण। गुणपरावत्तीए एगसमओ वुच्चदे। तंजहा एक्को मिच्छादिट्ठी वचिजोगेण कायजोगेण वा अच्छिदो। तस्स वचिजोगद्धासु खीणासु मणजोगो आगदो। मणजोगेण सह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एगसमये मिच्छत्तं दिट्ठं। विदियसमए वि मणजोगी चेव। किंतु सम्मामिच्छत्तं वा असंजमेण सह सम्मत्तं वा संजमासंजमं वा अपमत्तभावेण संजमं वा पडिवण्णो। एवं गुणपरावत्तीए चउव्विहा एगसमयपरूवणा कदा। कधमेत्थ समयभेदो? पडिवज्जमाणगुणभेएण। पुव्विल्लपंचसु समएसु संपहिलद्धचदुसमए पक्खित्ते णव भंगा होंति (९)। एक्को मिच्छादिट्ठी वचिजोगेण कायजोगेण वा अच्छिदो। तेसिं खएण मणजोगो आगदो। एगसमयं मणजोगेण सह मिच्छत्तं दिट्ठं। विदियसमए मदो। जदि तिरिक्खेसु वा मणुसेसु वा उप्पण्णो, तो कम्मइयकायजोगी ओरालियमिस्सकायजोगी वा। अध देव-णेरइएसु जइ उववण्णो तो कम्मइयकायजोगी वेउव्वियमिस्सकायजोगी वा जादो। एवं मरणेण लद्धएगभंगे पुव्विल्लणवभंगेसु पक्खित्ते दस भंगा होंति (१०)। वाघादेण एक्को मिच्छादिट्ठी वचिजोगेण कायजोगेण वा अच्छिदो। तेसिं वचि-कायजोगाणं खएण तस्स मणजोगो आगदो। एगसमयं मणजोगेण मिच्छत्तं दिट्ठं। विदियसमए वाघादिदो कायजोगी जादो। लद्धो एगसमओ। एदं पुव्विल्लदसभंगेसु पक्खित्ते एक्कारस भंगा (११)। एत्थ उववुज्जंती गाहा—

गुण-जोगपरावत्ती वाघादो मरणमिदि हु चत्तारि।
जोगेसु होंति ण वरं पच्छिल्लदुगुणका जोगे॥३९॥

एदम्हि गुणट्ठाणे ट्ठिदजीवा इमं गुणट्ठाणं पडिवज्जंति त्ति णादूण गुणपडिवण्णा वि इमं गुणट्ठाणं गच्छंति, ण गच्छंति त्ति चिंतिय असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्तसंजदाणं च चउव्विहा एगसमयपरुवणा परुविदव्वा। एवमप्पमत्तसंजदाण। णवरि वाघादेण विणा तिविधा एगसमयपरुवणा कादव्वा। किमट्ठं वाघादो णत्थि? अप्पमाद-वाघादाणं सहअणवट्ठाणलक्खणविरोहा। सजोगिकेवलिस्स एगसमयपरुवणा कीरदे। तं जधा—एक्को खीणकसाओ मणजोगेण अच्छिदो मणजोगद्धाए एगो समओ अत्थि त्ति सजोगी जादो। एगसमयं मणजोगेण दिट्ठो सजोगिकेवली विदियसमए वचिजोगी वा जादो। एवं चदुसु मणजोगेसु पंचसु वचिजोगेसु पुव्वुत्तगुणट्ठाणाणं एगसमयपरुवणा कादव्वा।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

षट्० खण्ड० १। ५। सू १६४। पु ४। पृष्ठ० ४१२

टीका—तं जधा—मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदो पमत्तसंजदो (अप्पमत्तसंजदो) सजोगिकेवली वा अणप्पिदजोगे ट्ठिदो अद्धाक्खएण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्पिदजोगं गदो। तत्थ तप्पाओग्गुक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिय अणप्पिदजोगं गदो।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू १६५। पु ४। पृष्ठ० ४१२। ३

टीका—कुदो? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगो समओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो; एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण छ आवलियाओ; इच्चेदेहि पंचमण-वचिजोगसासणाणं ओघसासणेहिंतो भेदाभावा। एत्थ वि जोग-गुणपरावत्ति-मरणवाघादेहि समयाविरोहेण एगसमयपरुवणा कायव्वा।

सम्मामिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू १६६। पु ४। पृष्ठ० ४१३

टीका—उदाहरणं—सत्तट्ठ जणा बहुगा वा मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदा पमत्तसंजदा वा अप्पिदमण-वचिजोगेसु ट्ठिदा अप्पिदजोगद्धाए एगसमओ अत्थि त्ति सम्मामिच्छत्तं गदा। एगसमयमप्पिदजोगेण दिट्ठा, विदियसमए सव्वे अणप्पिदजोगं गदा। एवं मरणेण विणा जोग-गुणपरावत्ति-वाघादेहि एगसमयपरुवणा चिंतिय वत्तव्वा।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू १६७। पु ४। पृष्ठ० ४१३

टीका—कुदो? अप्पिदजोगेण सहिदसम्मामिच्छादिट्ठीणं पवाहस्स अच्छिण्णरूवस्स पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागायामस्सुवलंभा।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू १६८। पु ४। पृष्ठ० ४१४

टीका—एत्थ वि मरणेण विणा गुण-जोगपरावत्ति-वाघादे अस्सिदूण एगसमयपरुवणा जाणिय वत्तव्वा।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू १६९। पु ४। पृष्ठ० ४१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टीका—उदाहरणं—एक्को सम्मामिच्छादिट्ठी अणप्पिदजोगे ट्ठिदो अप्पिद-जोगं पडिवण्णो। तत्थ तप्पाओग्गुक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिय अणप्पिदजोगं गदो। लद्धमंतोमुहुत्तं।

चदुण्हमुवसमा चदुण्हं खवगा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू १७०। पु ४। पृष्ठ० ४१४

टीका—उवसामगाणं वाघादेण विणा जोग-गुणपरावत्तिमरणेहि णाणाजीवे अस्सिदूण एगसमयपरूवणा कादव्वा। खवगाणं मरण-वाघादेहि विणा जोग-गुणपरावत्तीओ दो चेव अस्सिदूण एगसमयपरूवणा परूवेदव्वा।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू १७१। पु ४। पृष्ठ० ४१५

टीका—तं जधा—चत्तारि उवसामगा चत्तारि खवगा च अणप्पिदजोगे ट्ठिदा अद्धाक्खएण अप्पिदजोगं गदा। तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो वि अणप्पिद-जोगं पडिवण्णा। लद्धमंतोमुहुत्तं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू १७२। पु ४। पृष्ठ० ४१५

टीका—एत्थ एगसमयपरूवणा खवगुवसामगाणं दोहि तीहि पयारेहि जाणिय वत्तव्वा।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू १७३। पु ४। पृष्ठ० ४१५

टीका—एत्थ अंतोमुहुत्तपरूवणा जाणिय वत्तव्वा। एत्थ एगसमय-विय्यपरूवणट्ठं गाहा—

एक्कारस छ सत्त य एक्कारस दस य णव य अट्ठ वा।
पण पंच पंच तिण्णि य दु दु दु दु एगो य समयगणा॥४१॥

११, ६, ७, ११, १०, ९, ८, ५, ५, ५, ३, २, २, २, २, १।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योगमार्गणा के अनुवाद से पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवों में मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत और सयोगिकेवली नाना जीवों का अपेक्षा सर्वकाल रहते हैं ॥ १६२ ॥

क्योंकि मनोयोग और वचनयोग के द्वारा होने वाले परिणमनकाल से उनके उपक्रमणकाल का अन्तर अल्प पाया जाता है।

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्यकाल एक समय है।

इस सूत्र के अर्थ निश्चय के समुत्पादनार्थ मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानों को आश्रय करके एक समय की प्ररूपणा की जाती है—उनमें से पहले योगपरिवर्तन, गुणस्थान परिवर्तन मरण और व्यख्यात इन चारों के द्वारा मिथ्यात्व गुणस्थान का एक समय प्ररूपण किया जाता है। वह इस प्रकार है—सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत अथवा प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती कोई एक जीव मनोयोग के साथ विद्यमान था। मनोयोग के काल में एक समय अवशिष्ट रहने पर वह मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ वहाँ पर एक समय मात्र मनोयोग के साथ मिथ्यात्व दिखाई दिया। द्वितीय समय में भी वह जीव मिथ्यादृष्टि ही रहा, किन्तु मनोयोग से वह वचनयोगी या काययोगी हो गया। इस प्रकार योगपरिवर्तन के साथ पांच प्रकार से एक समय की प्ररूपणा की गई।

प्रश्न है कि यहाँ पर समय में भेद कैसे हुआ ?

उत्तर—सासादनादि गुणस्थानों को पीछे करने से, अर्थात् उसमें पुनः वापस आने से समय भेद हो जाता है।

अब गुणस्थान परिवर्तन के द्वारा एक समय की प्ररूपणा करते हैं, यथा—कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव वचनयोग से अथवा काययोग से विद्यमान था। उसके वचनयोग अथवा काययोग का काल क्षीण होने पर मनोयोग आ गया और मनोयोग के साथ एक समय में मिथ्यात्व दृष्टिगोचर हुआ। पश्चात् द्वितीय समय में भी वह जीव यद्यपि मनोयोगी ही है, किन्तु सम्यग्मिथ्यात्व को, अथवा असंयम के साथ सम्यक्त्व को, अथवा संयमासंयम को, अथवा अप्रमत्तभाव के साथ संयम को प्राप्त हुआ। इस प्रकार से गुणस्थान के परिवर्तन के द्वारा चार प्रकार से एक समय की प्ररूपणा की गई।

प्रश्न है कि यहाँ पर समय-भेद कैसे हुआ ? समाधान यह है कि आगे प्राप्त होने वाले गुणस्थान के भेद से समय में भेद हुआ।

अस्तु पूर्वोक्त योग परिवर्तन संबंधी पांच समयों में साम्प्रतिकलब्ध गुणस्थान संबंधी चार समयों को प्रक्षिप्त करने पर नौ (९) भंग होते हैं। कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव वचनयोग से अथवा काययोग से विद्यमान था। पुनःयोग संबंधीकाल के क्षय हो जाने पर उसके मनोयोग आगया। तब एक समय मनोयोग के साथ मिथ्यात्व दिखाई दिया और दूसरे समय में मरा। सो यदि वह तिर्यंचों में या मनुष्यों में उत्पन्न हुआ तो कार्मणकाययोगी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथवा औदारिकमिश्रकाययोगी हो गया। अथवा, यदि देव या नारकियों में उत्पन्न हुआ तो कार्मणकाययोगी, अथवा वैक्रियिकमिश्रकाययोगी हो गया। इस प्रकार मरण से प्राप्त एक भंग को पूर्वोक्त नौ भंगों में प्रक्षिप्त करने पर दस भंग हो जाते हैं (१०)। अब व्याघात से लब्ध होने वाले एक भंग की प्ररूपणा करते हैं—कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव वचनयोग से अथवा काययोग से विद्यमान था। सो उन वचनयोग अथवा काययोग के क्षय हो जाने पर उसके मनोयोग आ गया तब एक समय मनोयोग के साथ मिथ्यादृष्टि हुआ और द्वितीय समय में वह व्याघात को प्राप्त होता हुआ काययोगी हो गया। इस प्रकार से एक समय लब्ध हुआ। पूर्वोक्त दस भंगों में इस एक भंग के प्रक्षिप्त करने पर ग्यारह भंग होते हैं (११)। इस विषय में उपयुक्त गाथा इस प्रकार है—

गुणस्थानपरिवर्तन, योगपरिवर्तन, व्याघात और मरण ये चारों बातें योगों में अर्थात् तीन योग के होने पर होती है। किन्तु सयोगिकेवली के पीछले दो, अर्थात् मरण और व्याघात तथा गुणस्थानपरिवर्तन नहीं होते हैं।

अस्तु इस विवक्षित गुणस्थान में विद्यमान जीव इस अविवक्षित गुणस्थान को प्राप्त होते हैं या नहीं—ऐसा जान करके, गुणस्थान को प्राप्त जीव भी इस विवक्षित गुणस्थान को जाते हैं अथवा नहीं ऐसा चिन्तवन करके, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और प्रमत्तसंयतों की चार प्रकार से एक समय की प्ररूपणा करनी चाहिए। इसी प्रकार से अप्रमत्तसंयतों की भी प्ररूपणा होती है, किन्तु विशेष बात यह है कि उनके व्याघात के बिना तीन प्रकार से एक समय की प्ररूपणा करनी चाहिए।

अस्तु अप्रमाद और व्याघात इन दोनों का सहानवस्थान लक्षण विरोध है अतः अप्रमत्तसंयत के इस कारण से व्याघात नहीं है।

अब सयोगिकेवली के एक समय की प्ररूपणा की जाती है, यथा—एक क्षीण-कषायवीतरागछद्मस्थ जीव मनोयोग के साथ विद्यमान था। जब मनोयोग के काल में एक समय अवशिष्ट रहा, तब वह सयोगिकेवली हो गया और एक समय मनोयोग के साथ दृष्टिगोचर हुआ। वह सयोगिकेवली द्वितीय समय में वचनयोगी हो गया। इस प्रकार चारों मनोयोगों में और पांच वचनयोगों में पूर्वोक्त गुणस्थानों भी एक समय संबंधी प्ररूपणा करनी चाहिए।

उक्त पांच मनोयोगी तथा पांचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, (अप्रमत्तसंयत) और सयोगिकेवली का उत्कृष्टकाल अंतर्मुहूर्त है।

जैसे अविवक्षित योग में विद्यमान मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत (अप्रमत्तसंयत) और सयोगिकेवली उस योग संबंधीकाल के क्षय हो जाने से विवक्षित योग को प्राप्त हुए। वहाँ पर तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल तक रह करके पुनः अविवक्षित योग को चले गये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी सासादनसम्यग्दृष्टियों का काल ओघ के समान है।

क्योंकि, नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय, उत्कर्ष से पल्योपम का असंख्यातवां भाग, एक जीव की अपेक्षा जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से छह आवलियां, इस रूप से पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी सासादनसम्यग्दृष्टियों के काल का ओघ संबंधी सासादन के काल से कोई भेद नहीं है। यहाँ पर भी योगपरावर्तन, गुणस्थान-परावर्तन मरण और व्याघात के द्वारा आगम के अविरोध से एक समय की प्ररूपणा करनी चाहिए।

पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय होते हैं।

उदाहरण—विवक्षित मनोयोग अथवा वचनयोग में स्थित सात, आठ जन, अथवा बहुत से मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत अथवा प्रमत्तसंयत जीव उस विवक्षित योग के काल में एक समय अवशिष्ट रह जाने पर सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हुए और एक समय मात्र विवक्षित योग के साथ दृष्टिगोचर हुए। द्वितीय समय में सभी के सभी अविवक्षित योग को चले गये। इस प्रकार मरण के बिना शेष योगपरावर्तन, गुणस्थान-परावर्तन और व्याघात, इन तीनों की अपेक्षा एक समय की प्ररूपणा चिन्तन करके करना चाहिए।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का उत्कृष्टकाल पल्योपम के असंख्यातवें भाग हैं।

क्योंकि, विवक्षिय योग से सहित सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का अविच्छिन्न रूप प्रवाह पल्योपम के असंख्यातवें भाग लम्बे काल तक पाया जाता है।

एक जीव की अपेक्षा उक्त सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का जघन्यकाल एक समय है।

यहाँ पर भी मरण के बिना गुणस्थानपरावर्तन, योगपरावर्तन और व्याघात इन तीनों का आश्रय करके एक समय की प्ररूपणा जान करके करना चाहिए।

उदाहरण—अविवक्षित योग में विद्यमान कोई एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव विवक्षित योग को प्राप्त हुआ। वहाँ पर अपने योग के प्रायोग्य उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्तकाल तक रह करके अविवक्षित योग को चला गया। इस प्रकार से एक अंतर्मुहूर्तकाल प्राप्त हो गया।

पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी चारों उपशामक और क्षपक नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय होते हैं।

उपशामक जीवों के व्याघात के बिना योगपरिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन और मरण के द्वारा नाना जीवों का आश्रय करके एक समय की प्ररूपणा करना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षपक जीवों की मरण और व्याघात के बिना योगपरिवर्तन और गुणस्थानपरिवर्तन इन दोनों का आश्रय लेकर ही एक समय की प्ररूपणा करना चाहिए।

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल अंतर्मुहूर्त है।

वह इस प्रकार है—अविवक्षित योग में स्थित चारों उपशामक और क्षपक जीव उस योग के कालक्षय से विवक्षित योग को प्राप्त हुए। वहाँ पर अंतर्मुहूर्त तक रह करके पुनरपि अविवक्षित योग को प्राप्त हो गए। इस प्रकार से अंतर्मुहूर्तकाल प्राप्त हो गया।

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल अंतर्मुहूर्त है।

अस्तु यहाँ अंतर्मुहूर्त की प्ररूपणा जान करके करना चाहिए। यहाँ पर एक समय संबंधी विकल्पों में प्ररूपण करने के लिए यह गाथा है—

मिथ्यादृष्टादि गुणस्थानों में क्रमशः ग्यारह, छः, सात, ग्यारह, दस, नौ, आठ, पांच, पांच, पांच, तीन, दो, दो, दो, और एक, इतने एक समय संबंधी प्ररूपणा के विकल्प होते हैं—११, ६, ७, ११, १०, ९, ८, ५, ५, ५, ३, २, २, २, १।

·०२ काययोगीजीवों की काल स्थिति

कायजोगीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू १७४। पु ४। पृष्ठ० ४१५। ६

टीका—कुदो ? सव्वद्धासु कायजोगिमिच्छादिट्ठीणं विरहाभावा।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू १७५। पु ४। पृष्ठ० ४१६

टीका—तं जधा—एगो सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदो पमत्तसंजदो वा कायजोगद्धाए अच्छिदो। तिस्से एगसमयावसेसे मिच्छादिट्ठी जादो। कायजोगेण एगसमयं मिच्छत्तं दिट्ठं। विदियसमए अण्णजोगं गदो। अधवा मणवचिजोगेसु अच्छिदस्स मिच्छादिट्ठिस्स तेसिमद्धाक्खएण कायजोगो आगदो। एगसमयं कायजोगेण सह मिच्छत्तं दिट्ठं। विदियसमए सम्मामिच्छत्तं वा असंजमेण सह सम्मत्तं वा संजमासंजमं अप्पमत्तभावेण संजमं वा पडिवण्णो। लद्धो एगसमओ। एत्थ मरण-वाघादेहि एगसमओ णत्थि। कुदो ? मुदे वाघादिदे वि कायजोगं मोत्तूण अण्णजोगाभावा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टं ।

—षट्० खण्ड० १ । ५ । सू १७६ । पु ४ । पृष्ठ० ४१६ । ७

टीका—तं जधा—मिच्छादिट्ठी मण-वचिजोगेसु अच्छिदो अद्धाखएण कायजोगी जादो, सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिदूण एइंदिएसु उप्पण्णो । तत्थ अणंतकालमसंखेज्ज पोग्गलपरियट्टं कायजोगेण सह परियट्टिदूण आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्टेसुप्पण्णेसु तसेसु आगंतूण सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिय वचिजोगी जादो । लद्धो कायजोगस्स उक्कस्सकालो ।

काययोगिमों में मिथ्यादृष्टि जीव नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ।

क्योंकि, सभी कालों में काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों के विरह का अभाव है ।

एक जीव की अपेक्षा काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों का जघन्यकाल एक समय है ।

जैसे—एक सासादनसम्यग्दृष्टि अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि, अथवा संयतासंयत, अथवा प्रमत्तसंयत जीव काययोग के काल में विद्यमान था । उस योग के काल में एक समय अवशेष रहने पर वह मिथ्यादृष्टि हो गया । तब काययोग के साथ एक समय मिथ्यात्वदृष्टिगोचर हुआ । पुनः द्वितीय समय में अन्य योग को चला गया । अथवा, मनोयोग और वचनयोग में विद्यमान मिथ्यादृष्टि जीव के उन योगों के काल के क्षय से काययोग आ गया । तब एक समय काययोग के साथ मिथ्यात्वदृष्टिगोचर हुआ । पुनः द्वितीय समय में सम्यग्मिथ्यात्व को, अथवा असंयम के साथ सम्यक्त्व को, अथवा संयमासंयम को अथवा अप्रमत्त भाव के साथ संयम को प्राप्त हुआ । इस प्रकार एक समय लब्ध हो गया । यहाँ पर मरण और व्याघात की अपेक्षा एक समय नहीं है, क्योंकि मरण होने पर अथवा व्याघात होने पर भी काययोग को छोड़कर अन्य योग का अभाव है ।

एक जीव की अपेक्षा काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों का उत्कृष्टकाल अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है ।

जैसे—मनोयोग अथवा वचनयोग में विद्यमान एक मिथ्यादृष्टि जीव, उस योग के काल-क्षय हो जाने पर काययोगी हो गया । वहाँ पर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल तक रह करके एकेन्द्रियों में उत्पन्न हुआ । वहाँ पर अनन्तकाल प्रमाण असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन काययोग के साथ परिवर्तन करके आवली के असंख्यातवें भाग मात्र पुद्गलपरिवर्तनों के शेष रहने पर त्रस जीवों में आकर और सर्वोत्कृष्ट अंतर्मुहूर्तकाल रह करके वचनयोगी हो गया । इस प्रकार से काययोग का उत्कृष्टकाल प्राप्त हुआ ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति मणजोगिभंगो ।

—षट्० खण्ड० १ । ५ । सू १७७ । पु ४ । पृष्ठ० ४१६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टीका—एदं सुत्तं सुगमं, मणजोगे णिरुद्धे पवंचेण परुविदत्तादो। णवरि मरण-वाघादा सम्मामिच्छादिट्ठिअसंजदसम्मादिट्ठीणं णत्थि। सासणसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्तसंजदाणं वाघादेण एगसमओ णत्थि, मरणेण पुण अत्थि।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक काययोगियों का काल मनोयोगियों के समान है।

यह सूत्र सुगम है। क्योंकि, मनोयोग के निरुद्ध करने पर पहले प्रपंच से (विस्तार से) प्ररूपण किया जा चुका है। विशेष बात यह है कि काययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टियों के मरण और व्याघात नहीं होते हैं। तथा काययोगी सासादन-सम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और प्रमत्तसंयतों के व्याघात की अपेक्षा एक समय नहीं होता है, किन्तु मरण की अपेक्षा एक समय होता है।

०३ औदारिककाय योगी जीवों की काल स्थिति

ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।

षट्० खण्ड० १। ५। सू १७८। पु ४। पृष्ठ० ४१७

टीका—कुदो? ओरालियकायजोगिमिच्छादिट्ठिसंताणस्स सव्वद्धासु वोच्छेदाभावा।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू १७९। पु ४। पृष्ठ० ४१८

टीका—एत्थ मरण-गुण-जोगपरावत्तोहि एगसमयो परुवेदव्वो। वाघादेणं एगसमओ ण लब्भदि, तस्स कायजोगाविणाभावित्तादो।

उक्कस्सेण वावीसं वाससहस्साणि देसूणाणि।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू १८०। पु ४। पृष्ठ० १४८

टीका—तं जधा—एगो तिरिक्खो मणुस्सो देवो वा वावीससहस्सवासाउट्ठिदिएसु एइंदिएसु उववण्णो। सव्वजहण्णेण अंतोमुहुत्तकालेण पज्जत्तिं गदो। ओरालियअपज्जत्तकालेणूणवावीसवाससहस्साणि ओरालियकायजोगेण अच्छिय अण्णजोगं गदो। एवं देसूणवावीसवाससहस्साणि जादाणि। अधवा देवो ण उप्पादेदव्वो, तस्स जहण्णअपज्जत्तकालाणुवलंभा।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति मणजोगिभंगो।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू १८१। पु ४। पृष्ठ० ४१८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टीका—एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो, पुव्वं परूविदत्तादो। णवरि वाघादेण एत्थ एगसमयपरुवणा परुवेदव्वा।

औदारिककाययोगियों में मिथ्यादृष्टि जीव नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं। क्योंकि औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों की परंपरा के सभी कालों में विच्छेद का अभाव है।

एक जीव की अपेक्षा औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टियों का जघन्यकाल एक समय है।

यहाँ पर मरण, गुणस्थानपरावर्तन और योगपरावर्तन की अपेक्षा एक समय की प्ररूपणा करनी चाहिए। किन्तु यहाँ व्याघात की अपेक्षा एक समय नहीं पाया जाता है, क्योंकि वह काययोग का अविनाभावी है।

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है।

जैसे—एक तिर्यंच, मनुष्य अथवा देव, बाईस हजार वर्ष की आयुस्थिति वाले एकेन्द्रियों में उत्पन्न हुआ। सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्तकाल से पर्याप्तपने को प्राप्त हुआ। पुनः इस औदारिकशरीर के अपर्याप्तकाल से कम बाईस हजार वर्ष औदारिककाययोग के साथ रह करके पुनः अन्य योग को प्राप्त हुआ। इस प्रकार से कुछ कम बाईस हजार वर्ष हो जाते हैं। अथवा, यहाँ पर देव नहीं उत्पन्न कराना चाहिए। क्योंकि, देवों से जाकर एकेन्द्रियों में उत्पन्न होने वाले जीव के जघन्य अपर्याप्तकाल नहीं पाया जाता है।

सासादनसम्यग्दृष्टि से लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक औदारिककाययोगियों का काल मनोयोगियों के काल के समान है।

अस्तु—विशेष बात यह है कि यहाँ पर व्याघात की अपेक्षा एक समय की प्ररूपणा करना चाहिए।

०४ औदारिकमिश्र काययोगी जीवों की काल स्थिति

ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू १८२। पु ४। पृष्ठ० ४१९

टीका—ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठिसंताणवोच्छेदस्स सव्वद्धासु अभावा।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं तिसमऊणं।

—षट० खण्ड० १। ५। सू १८३। पु ४। पृष्ठ० ४१९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टीका—तं जहा—एगो एइंदिओ सुहुमवाउकारएसु अधोलोगंते ट्ठिएसु खुद्दाभवग्गहणाउट्ठिदिएसु तिण्णि विग्गहे काऊण उववण्णो। तत्थ तिसमऊण-खुद्दाभवग्गहणमपज्जत्तो होदूण जोविय मदो, विग्गहं कादूण कम्मइयकायजोगी जादो। एवं तिसमऊणखुद्दाभवग्गहणमोरालियमिस्सजहण्णकालो जादो।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू १८४। पु ४। पृष्ठ० ४१९

टीका—तं जधा—अपज्जत्तएसु उववज्जिय संखेज्जाणि भवग्गहणाणि तत्थ परियट्टिय पुणो पज्जत्तएसु उववज्जिय ओरालियकायजोगी जादो। एदाओ संखेज्जभवग्गहणद्धाओ मिलिदाओ वि मुहुत्तस्संतो चेव होंति।

सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू १८५। पु ४। पृष्ठ० ४२०

टीका—तं जधा—सत्तट्ठ जणा बहुगा वा सासणा सगद्धाए एगसमओ अत्थि त्ति ओरालियमिस्सकायजोगिणो जादा। एगसमयमच्छिदूण विदियसमए मिच्छत्तं गदा। लद्धो ओरालियमिस्सेण सासणाणमेगसमओ।

उक्कसेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू १८६। पु ४। पृष्ठ० ४२०

टीका—तं जधा—सत्तट्ठ जणा बहुआ वा सासणा ओरालियमिस्सकाय-जोगिणो जादा। सासणगुणेण अंतोमुहुत्तमच्छिय ते मिच्छत्तं गदा। तस्समए चेय अण्णे सासणा ओरालियमिस्सकायजोगिणो जादा। एवमेक्कदो—तिण्णि आदि कादूण जाव उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तवारं सासणा ओरालियमिस्सकायजोगं पडिवज्जावेदव्वा। तदो णियमा अंतरं होदि। एवमेस कालो मेलाविदो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो होदि।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू १८७। पु ४। पृष्ठ० ४२०। १

टीका—तं जधा—एक्को सासणो एगद्धाए एगसमओ अत्थि त्ति ओरालिय-मिस्सकायजोगी जादो। विदियसमए मिच्छत्तं गदो। लद्धो एगसमओ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्कस्सेण छ आवलियाओ समऊणाओ।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू १८८। पु ४। पृष्ठ० ४२१

टीका—तं जधा—देवो वा णेरइओ वा उवसमसम्मादिट्ठी उवसमसम्मत्त-द्धाए छ आवलियाओ अत्थि त्ति सासणं गदो। एगसमयमच्छिय कालं करिय तिरिक्ख-मणुस्सेसु उजुगदीए उववज्जिय ओरालियमिस्सकायजोगी जादो। समऊण-छ-आवलियाओ अच्छिय मिच्छत्तं गदो।

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू १८९। पु ४। पृष्ठ० ४२१

टीका—तं जधा—सत्तट्ठ जणा बहुआ ता असंजदसम्मादिट्ठिणो णेरइया ओरालियमिस्सकायजोगिणो जादा। सव्वलहुं पज्जत्तिं गदा, बहुसागरोवमाणि पुव्वं दुक्खेण सह ट्ठिदत्तादो।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

षट्० खण्ड० १। ५। सू १९०। पु ४। पृष्ठ० ४२१ २।

टीका—तं जधा—देव-णेरइया मणुस्सा सत्तट्ठ जणा बहुआ वा सम्मादि-ट्ठिणो ओरालियमिस्सकायजोगिणो जादा। ते पज्जत्तिं गदा। तस्समए चेव अण्णे असंजदसम्मादिट्ठिणो ओरालियमिस्सकायजोगिणो जादा। एवमेक्क-दो-तिण्णि जावुक्कस्सेण संखेज्जवारा त्ति। एदाहि संखेज्जसलागाहि एगमपज्जत्तद्धं गुणिदे एगमुहुत्तस्स अंतो चेव जेण होदि, तेण अंतोमुहुत्तमिदि वुत्तं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू १९१। पु ७। पृष्ठ० ४२२

टीका—तं जधा—एक्को सम्मादिट्ठी वात्तीस सागरोवमाणि दुक्खेक्करसो होदूण जोविदो। छट्ठीदो उव्वट्टिय मणुसेसु उप्पण्णो। विग्गहगदीए तस्स सम्मत्त-माहप्पेण उववज्जिदपुण्णपोग्गलस्स ओरालियणामकम्मोदएण सुअंध-सुरस-सुवण्ण-सुहपासपरमाणुपोग्गलबहुला आगच्छंति, तस्स जोगबहुत्तदंसणादो। एदस्स जहण्णिया ओरालियमिस्सकायजोगस्स अद्धा होदि।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू १९२। पु ७। पृष्ठ० ४२२। ३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टीका—एदं कस्स होदि ? सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवस्स तेत्तीस सागरोवमाणि सुहलालियस्स पमुट्ठदुक्खस्स माणुसगब्भे गूह-मुत्तंत-पित्त-खरिस-वस-सेंभ-लोहि सुक्कामाट्ठिदे अइदुग्गंधे दूरसे दुव्वण्णे दुप्पासे चमारकुंडोपमे उप्पण्णस्स, तत्थ मंदो जोगो होदित्ति आइरियपरंपरागदुवदेसा। मंदजोगेण थोवे पोग्गले गेण्हंतस्स ओरालियमिस्सद्धा दीहा होदि त्ति उत्तं होदि। अधवा जोगो एत्थ महल्लो चेव होदु, जोगवसेण बहुआ पोग्गला आगच्छंतु, तो वि एदस्स दीहा अपज्जत्तद्धा होदि, विलिसाए दूसियस्स लहुं पज्जत्तिसमाणणे असामत्थियादो।

सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू १९३। पु ४। पृष्ठ० ४२३

टीका—एसो एगसमजो कस्स होदि ? सत्तट्ठजणाणं दंडादो कवाडं गंतूण तत्थ एगसमयमच्छिय रुजगं गदाणं, रुजगादो कवाडं गंतूण एगसमयमच्छिय दंडं गदकेवलीणं वा।

उक्कस्सेण संखेज्जसमयं।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू १९४। पु ४। पृष्ठ० ४२४

टीका—एदे संखेज्जसमया कम्हि होंति ? कवाडे चडण-ओयरणकिरिया-वाददंड-पदर-पज्जायपरिणदसंखेज्जकेवलीहि संखेज्जसमयपंतीए ट्ठिदेहि अधि-उत्तेहि।

एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू १९५। पु ४। पृष्ठ० ४२४

टीका—एसो कम्हि होदि ? कवाडगदकेवलिम्हि चडणोदरण-किरिया-वाददंड-पदरपज्जयपरिणदकेवलीहिंतो आगदम्हि। बहुआ समया किण्ण होंति ? ण, कवाडम्हि एगसमयं मोत्तूण बहुसमयमच्छणाभावा। कधमेक्कस्सेव जहण्णुक्क स्सववएसो ? ण एस दोसो, कणिट्ठो वि जेट्ठो वि एसो चेव मम पुत्तो त्ति लोगे ववहारुवलंभा।

औदारिकमिश्र काययोगियों में मिथ्यादृष्टि जीव नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्योंकि, औदारिकमिश्रकाययोगियों में मिथ्यादृष्टियों की परम्परा के विच्छेद का सर्व कालों में अभाव है ।

एक जीव की अपेक्षा औदारिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों का जघन्य काल तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है । १८३

जैसे एकेन्द्रिय जीव अधोलोक में स्थित और क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण आयुस्थिति वाले सूक्ष्म-वायुकायिकों में तीन विग्रह करके उत्पन्न हुआ । वहाँ पर तीन समय कम क्षुद्र-भवग्रहणकाल तक लब्ध्यपर्याप्त हो, जीवित रह कर मरा । पुनः विग्रह करके कार्मण-काययोगी हो गया । इस प्रकार से तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण औदारिकमिश्र काययोगी का जघन्य काल सिद्ध हुआ ।

उक्त जीवों का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । १८४

जैसे—कोई एक जीव लब्ध्यपर्याप्तकों में उत्पन्न होकर संख्यात भवग्रहणप्रमाण उनमें परिवर्तन करके पुनः पर्याप्तकों में उत्पन्न होकर औदारिककाययोगी हो गया । इन सब संख्यात भवों के ग्रहण करने का काल मिल करके भी मुहूर्त के अंतगर्त ही रहता है, अधिक नहीं होता है ।

औदारिकमिश्र काययोगी सासादन सम्यग्दृष्टि जीव नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय होते हैं । १८५

जैसे—सात, आठ जन अथवा बहुत से सासादन सम्यग्दृष्टि, अपने योग के काल में एक समय कम अवशेष रहने पर औदारिकमिश्रकाययोगी हो गये । उसमें एक समय रह करके द्वितीय समय में मिथ्यात्व को प्राप्त हुए । इस प्रकार से औदारिकमिश्रकाययोग के साथ सासादन सम्यग्दृष्टियों का एक समय लब्ध हुआ ।

उक्त जीवों की उत्कृष्ट काल पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण है । १८६

जैसे—सात, आठ जन, अथवा बहुत से सासादन सम्यग्दृष्टि जीव औदारिकमिश्र-काययोगी हुए । सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान के साथ अंतर्मुहूर्त काल रह करके पीछे वे मिथ्यात्व को प्राप्त हुए । उसी समय में ही अन्य दूसरे सासादन सम्यग्दृष्टि जीव औदारिकमिश्रकाययोगी हुए । इस प्रकार से एक, दो, तीन को आदि करके उत्कर्ष से पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र वार सासादन सम्यग्दृष्टि जीव औदारिकमिश्रकाययोग को प्राप्त करना चाहिए । इसके पश्चात् नियम से अन्तर हो जाता है । इस प्रकार से यह सब मिलाया गया काल पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र होता है ।

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्यकाल एक समय है । १८७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैसे—एक सासादनसम्यग्दृष्टि जीव अपने काल में एक समय अवशिष्ट रहने पर औदारिकमिश्रकाययोगी हो गया और द्वितीय समय में मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। इस प्रकार एक समय प्राप्त हो गया।

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल एक समय कम छह आवली प्रमाण है। १८८

जैसे—कोई एक देव अथवा नारकी उपशमसम्यग्दृष्टि जीव, उपशमसम्यक्त्व के काल में छह आवलीकाल के शेष रहने पर सासादनगुणस्थान को प्राप्त हुआ। वहाँ एक समय रह करके मरण कर तिर्यंच और मनुष्यों में ऋजुगति से उत्पन्न होकर औदारिकमिश्रकाययोगी हो गया। वहाँ पर एक समय कम छह आवली तक रहकर के मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ।

औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से अंतर्मुहूर्तकाल तक होते हैं। १८९।

जैसे—सात, आठ, जन, अथवा बहुत से असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीव औदारिकमिश्रकाययोगी हुए। और बहुत से सागरोपमकाल तक पहले दुःखों के साथ रहे हुए होने से सर्वलघुकाल से पर्याप्तियों को प्राप्त हुए।

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल अंतर्मुहूर्त है। १९०।

जैसे—देव, नारकी, अथवा मनुष्य सात, आठ, जन, अथवा बहुत से सम्यग्दृष्टि जीव, औदारिकमिश्रकाययोगी हुए। वे सब पर्याप्तपने को प्राप्त हुए। उसी समय में ही अन्य असंयतसम्यग्दृष्टि जीव औदारिकमिश्रकाययोगी हुए। इस प्रकार एक, दो, तीन इत्यादि क्रम से उत्कृष्ट संख्यात वार तक अन्य-अन्य असंयतसम्यग्दृष्टि जीव मिश्रकाययोगी होते गये। इन संख्यात शलाकाओं में से एक अपर्याप्तकाल से गुणा करने पर वह सब काल चूंकि एक मुहूर्त के अन्तर्गत ही होता है, अतः सूत्रकार ने अंतर्मुहूर्तकाल कहा है।

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्यकाल अंतर्मुहूर्त है। १९१।

जैसे—छट्ठे पृथ्वी का कोई एक सम्यग्दृष्टि नारकी बाईस सागर तक दुःखों से एक रस अर्थात् अत्यन्त पीड़ित होकर जीता रहा। पुनः छट्ठी पृथ्वी से निकलकर मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। विग्रहगति में, सम्यक्त्व के महात्म्य से उदय में आये हैं, पुण्यप्रकृति के पुद्गलपरमाणु जिसके ऐसे उस जीव के औदारिकनामकर्म के उदय से सुगन्धित, सुरस, सुवर्ण और शुभ स्पर्श वाले पुद्गलपरमाणु बहुलता से आते हैं, क्योंकि उस समय उसके योग की बहुलता देखी जाती है। ऐसे जीव के औदारिकमिश्रकाययोग का जघन्यकाल होता है।

एक जीव की अपेक्षा औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टियों का उत्कृष्टकाल अंतर्मुहूर्त है। १९२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न है कि यह उत्कृष्टकाल किस जीव के होता है ?

समाधान—यह है कि तेंतीस सागरोपमकाल तक सुख से ललित-पालित हुए तथा दुःखों से रहित सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देव के विष्टा, मूत्र, आंतड़ी, पित्त, खरिस (कफ) चर्बी, नासिकामल, लोहू, शुक्र और आम से व्याप्त, अतिदुर्गन्धित, कुत्सित रस, दुर्वर्ण और दुष्ट स्पर्श वाले चमार के कुण्ड के सदृश मनुष्य के गर्भ में उत्पन्न हुए जीव के औदारिक-मिश्रकाययोग का उत्कृष्टकाल होता है, क्योंकि उसके विग्रहगति में तथा उसके पश्चात् भी मंदयोग होता है, इस प्रकार आचार्य-परम्परागत उपदेश है, मंदयोग से अल्पपुद्गलों को ग्रहण करने वाले जीव से औदारिकमिश्रकाययोग का काल दीर्घ होता है, यह अर्थ कहा गया है। अथवा, यहाँ पर चाहे योगकाल का बड़ा ही रहा आवे, और योग के वश से पुद्गल भी बहुत से आते रहें, तो भी उक्त प्रकार के जीव के अपर्याप्तकाल बड़ा ही होता है, क्योंकि विलास से दूषित जीव के शीघ्रतापूर्वक पर्याप्तियों को सम्पूर्ण करने में असामर्थ्य है।

औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय होते हैं। १९३।

प्रश्न है कि यह एक समय किसके होता है ?

समाधान यह है कि दंड समुद्घात से कपाट समुद्घात को प्राप्त होकर और वहाँ एक समय रहकर प्रतरसमुद्घात को प्राप्त हुए सात-आठ केवलियों के यह एक समय होता है। अथवा, रूचकसमुद्घात से कपाटसमुद्घात को प्राप्त होकर और एक समय रह करके दंड समुद्घात को प्राप्त होने वाले केवलियों के यह एक समय होता है।

औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवलीजिनों का उत्कृष्टकाल संख्यात समय है। १९४।

शंका—ये संख्यात समय किसमें होते हैं ?

समाधान—कपाटसमुद्घात की आरोहण और अवतरणरूप क्रिया में लगे हुए दंड-समुद्घात और प्रतरसमुद्घातरूप पर्याय से परिणत संख्यात समयों की पंक्ति में स्थित, ऐसे संख्यात केवलियों के द्वारा अधिकृत अवस्था में उक्त संख्यात समय पाये जाते हैं।

एक जीव की अपेक्षा औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवलीजिनों का जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। १९५।

प्रश्न है कि यह एक समय कहाँ होता है ?

समाधान—आरोहण और अवतरणरूप क्रिया में व्यापृत, ऐसे दंडसमुद्घात और प्रतरसमुद्घात रूप पर्याय से क्रमशः परिणत हो उक्त समुद्घात केवली अवस्था से आये हुए कपाटसमुद्घातगत केवली को यह एक समय पाया जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्योंकि, कपाटसमुद्घात में एक समय को छोड़कर बहुत समय रहने का अभाव है अतः उक्त प्रकार के जीवों के बहुत समय नहीं पाये जाते हैं।

शंका—ये फिर एक ही समय के जघन्य और उत्कृष्ट का व्यपदेश कैसे हुआ।

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि कनिष्ट भी है और ज्येष्ठ भी है। 'यही हमारा पुत्र है' इस प्रकार का लोक में व्यवहार पाया जाता है अतः एक में भी जघन्य और उत्कृष्ट का व्यपदेश हो सकता है।

योग की स्थिति

(योगकालः) औदारिकमिश्रस्य अन्तर्मुहूर्तः।

—गोजी० गा० ६७१। टीका

औदारिकमिश्रकाययोग का काल अन्तर्मुहूर्त है।

·०५ वैक्रिय काययोगी जीवों की कालस्थिति

वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू १९६। पु ४। पृष्ठ० ४२५

टीका—कुदो ? सव्वद्धासु वेउव्वियकायजोगिमिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिसंताणवोच्छेदाभावा।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू १९७। पु ४। पृष्ठ० ४२५

टीका—तं जधा—एगो मिच्छादिट्ठी मण-वचिजोगेसु अच्छिदो अद्धाखएण वेउव्वियकायजोगी जादो। एगसमयं वेउव्वियकाय जोगेण दिट्ठो। विदियसमए मदो अण्णजोगं गदो। मरणेण विणा सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी वा जादो। अधवा सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी वा वेउव्वियकायजोगद्धाए एगो समओ अत्थि त्ति मिच्छादिट्ठी जादो। विदियसमए अण्णजोगं गदो। वाघादेण एगसमओ णत्थि, विरुद्धकायजोगादो। एवमसंजदसम्मादिट्ठिस्स वि एगसमयपरुवणा तीहि पयारेहि कायव्वा।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू १९८। पु ४। पृष्ठ० ४२५। ६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टीका—मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणो देवा णेरइया वा मण-वचि-जोगेसु ट्ठिदा कायजोगिणो जादा। सव्वुक्कस्समंतो-मुहुत्तमच्छिय अण्णजोगिणो जादा। लद्धमंतोमुहुत्तं।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू १९९। पु ४। पृष्ठ० ४२६

टीका—णाणाजीवंपडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण छ आवलियाओ, इच्चेदेहि ओघसासणादो भेदाभावा।

सम्मामिच्छादिट्ठीणं मणजोगिभंगो।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू २००। पु ४। पृष्ठ० ४२६

टीका—णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एयसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगो समओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्त-मिच्चेएण मणजोगिसम्मामिच्छादिट्ठीहिंतो वेउव्वियकायजोगिसम्मामिच्छादिट्ठीणं विसेसाभावा।

वैक्रियिककाययोगियों में मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं। १९६।

क्योंकि, सभी कालों में वैक्रियिककाययोगवाले मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों की परम्परा के विच्छेद का अभाव है।

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्यकाल एक समय है। १९७।

जैसे कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव मनोयोग अथवा वचनयोग में विद्यमान था। वह उस योग के काल के क्षय हो जाने से वैक्रियिककाययोगी हो गया। तब वह एक समय वैक्रियिककाययोग के साथ दृष्टिगोचर हुआ। द्वितीय समय में मरा और अन्य योग को प्राप्त हो गया। अथवा मरण के बिना सम्यग्मिथ्यादृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि हो गया। अथवा सासादनसम्यग्दृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि कोई जीव वैक्रियिककाययोग के काल में एक समय अवशेष रहने पर, मिथ्यादृष्टि हो गया और द्वितीय समय में अन्य योग को प्राप्त हुआ। इस प्रकार से एक समय लब्ध होता है। यहाँ पर व्याघात की अपेक्षा एक समय नहीं पाया जाता है, क्योंकि काययोग की अपेक्षा कथन हो रहा है (व्याघात जो मनोयोग और वचनयोग में पाया जाता है)। इसी प्रकार असंयत-सम्यग्दृष्टि जीव के भी एक समय की प्ररूपणा तीन प्रकार से करनी चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल अंतर्मुहूर्त है। १९८।

जैसे—मनोयोग और वचनयोग में स्थित मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि कोई देव और नारकी जीव वैक्रियिककाययोगी हुए और उसमें सर्वोत्कृष्ट अंतर्मुहूर्तकाल रह करके अन्य योग वाले हो गये। इस प्रकार से उत्कृष्टकालरूप अंतर्मुहूर्त प्राप्त हो गया।

वैक्रियिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का काल ओघ के समान है। १९९।

अस्तु नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय, उत्कर्ष से पल्योपम का असंख्यातवां भाग, तथा एक जीव की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कर्ष से छह आवली, इस रूप में ओघवर्णित सासादनगुणस्थान के काल से इसमें कोई भेद नहीं है।

वैक्रियिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का काल मनोयोगियों के समान है। २००।

नाना जीवों की अपेक्षा जघन्यकाल एक समय तथा उत्कृष्टकाल पल्योपम का असंख्यातवां भाग है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से अंतर्मुहूर्त है। इस प्रकार से मनोयोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों से वैक्रियिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टियों के काल में कोई विशेषता नहीं है।

·०६ वैक्रियमिश्रकाययोगी जीवों की काल स्थिति

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू २०१। पु ४। पृष्ठ० ४२६। ७

टीका—एत्थ ताव मिच्छादिट्ठिस्स जहण्णकालो वुच्चदे-सत्तट्ठ जणा बहुआ वा दव्वलिंगिणो उवरिमगेवज्जेसु उववण्णा सव्वलहुमंतोमुहुत्तेण पज्जत्तिं गदा। संपहि सम्मादिट्ठीणं वुच्चदेसंखेज्जा संजदा सव्वट्ठदेवेसु दो विग्गहं कादूण पज्जत्तिं गदा। किमट्ठं दो विग्गहे करावेदा? बहुपोग्गलग्गहणट्ठं। तं पि किमट्ठं? थोवकालेण पज्जत्तिसमाणट्ठं। मिच्छादिट्ठी दो विग्गहे किण्ण करावेदो? ण, तत्थ वि पडिसेहाभावा।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू २०२। पु ४। पृष्ठ० ४२७। ८

टीका—सत्तट्ठ जणा उक्कस्सेण असंखेज्जसेढिमेत्ता वा मिच्छादिट्ठिणो देवणेरइएसु उववज्जिय वेउव्वियमिस्सकायजोगिणो जादा, अंतोमुहुत्तेण पज्जत्तिं गदा। तस्समए चेव अण्णे मिच्छादिट्ठिणो वेउव्वियमिस्सकायजोगिणो जादा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवमेक्क-दो-तिण्णि उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताओ सलागाओ लब्भंति। एदाहि वेउव्वियमिस्सद्धं गुणिदे पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तो वेउव्वियमिस्सकालो होदि। असंजदसम्मादिट्ठीणं पि एवं चेव वत्तव्वं। णवरि एदे एगसमएण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तो उक्कस्सेण उप्पज्जंति, रासीदो वेउव्वियमिस्सकालो असंखेज्जगुणो। तं कधं णव्वदे? आइरियपरंपरागदुवदेसादो। देवलोए उप्पज्जमाणसम्मादिट्ठीहिंतो देव-णेरइएसु उप्पज्जमाणमिच्छादिट्ठी असंखेज्जसेढिगुणिदमेत्ता होंति त्ति कालो वि तावदिगुणो किण्ण होदि त्ति वुते, ण होदि, उयहत्थ वेउव्वियमिस्सद्धासलागाणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तुवदेसा।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू २०३। पु ४। पृष्ठ० ४२८

टीका—तं जधा—एक्कोदव्वलिंगी उवरिमगेवेज्जेसु दो विग्गहे कादूण उववण्णो, सव्वलहुमंतोमुहुत्तेण पज्जत्ति गदो। सम्मादिट्ठी एक्को संजदो सव्वट्ठदेवेसु दो विग्गहे कादूण उववण्णो, सव्वलहुमंतोमुहुत्तेण पज्जत्ति गदो।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू २०४। पु ४। पृष्ठ० ४२९

टीका—तं जधा—एक्को तिरिक्खो मणुस्सो वा मिच्छादिट्ठी सत्तमपुढविणेरइएसु उववण्णो सव्वचिरेण अंतोमुहुत्तेण पज्जत्ति गदो। सम्मादिट्ठिस्स-एक्को बद्धणिरयाउओ सम्मत्तं पडिवज्जिय दंसणमोहणीयं खविय पढमपुढविणेरइएसु उववज्जिय सव्वचिरेण अंतोमुहुत्तेण पज्जत्ति गदो। दोण्हं जहण्णकालेहिंतो उक्कस्सकालादो वि संखेज्जगुणा। कधमेदं णव्वदे? गुरुवदेसादो।

सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू २०५। पु ४। पृष्ठ० ४२९

टीका—तं जधा—सत्तट्ठ जणा बहुआ वा सासणसम्मादिट्ठिणो सगद्धाए एगो समओ अत्थि त्ति देवेसु उववण्णा। विदियसमए सव्वे मिच्छत्तं गदा। लद्धो एगसमओ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू २०६। पु ४। पृष्ठ० ४२९। ३०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टीका—तं जहा—सत्तट्ठ जणा जावुक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्ज-दिभागमेत्ता वा एक्क-वे-तिण्णि समए आदिं कादूण जाव उक्कसेण समऊण-छ-आवलियाओ सासणद्धा अत्थि त्ति देवेसु उववण्णा। ते सव्वे कमेण मिच्छत्तं गदा। तस्समए चेव पुव्वं व सासणा देवेसुववणा। एवं णिरंतरं णाणाजीवे अस्सिदूण सासणद्धा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता सगरासीदो असंखेज्ज-गुणा जादा त्ति।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू २०७। पु ४। पृष्ठ० ४३०

टीका—तं जधा—एक्को सासणो सगद्धाए एगसमओ अत्थि त्ति देवे-सुववण्णो, विदियसमए मिच्छत्तं गदो। लद्धो एगसमओ।

उक्कस्सेण छ आवलियाओ समऊणाओ।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू २०८। पु ४। पृष्ठ० ४३०

टीका—तं जधा—एक्को तिरिक्खो मणुस्सो वा उवसमसम्मत्तद्धाए छ आवलियाओ अत्थि त्ति आसाणं गंतूण एगसमयमच्छिय उजुगदीए देवेसुववज्जिय समऊण-छ-आवलियाओ आसाणेणच्छिय मिच्छत्तं गदो।

वैक्रियमिश्रकाययोगी जीवों में मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक रहते हैं ? । २०१ ।

नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्तकाल तक होते हैं।

अस्तु यहाँ पर पहले मिथ्यादृष्टि का जघन्यकाल कहते हैं। सात, आठ, अथवा बहुत से द्रव्यलिंगी जीव उपरिम ग्रैवेयकों में उत्पन्न हुए और सर्वलघु अंतर्मुहूर्तकाल से पर्याप्तपने को प्राप्त हुए। अब सम्यग्दृष्टि का जघन्यकाल कहते हैं। संख्यात संयत दो विग्रह करके सर्वार्थसिद्धविमानवासी देवों में पर्याप्तियों की पूर्णता को प्राप्त हुए।

बहुत सी पुद्गलवर्गणाओं के ग्रहण कराने के लिए दो विग्रह कराये गए हैं।

अल्पकाल के द्वारा पर्याप्तियों के सम्पन्न करने के लिए बहुत से पुद्गलों का ग्रहण आवश्यक है।

शंका—मिथ्यादृष्टि जीव के दो विग्रह क्यों नहीं कराये गये हैं।

समाधान—नहीं, क्योंकि, उनमें भी प्रतिषेध का अभाव है। अर्थात् मिथ्यादृष्टि जीव भी दो विग्रह कर सकते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का उत्कृष्टकाल पल्योपम के असंख्यातवें भाग है। २०२।

अस्तु सात-आठ जन, अथवा उत्कर्ष से असंख्यातश्रेणि मात्र मिथ्यादृष्टि जीव देव, अथवा नारकियों में उत्पन्न होकर वैक्रियिकमिश्रकाययोगी हुए और अन्तर्मुहूर्त से पर्याप्तियों की पूर्णता को प्राप्त हुए। उसी समय में ही अन्य मिथ्यादृष्टि जीव वैक्रियिकमिश्रकाययोगी हुए। इस प्रकार से एक, दो, तीन आदि लेकर पल्योपम के असंख्यातवें भाग-मात्र वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों की शलाकाएं पाई जाती है। इससे वैक्रियिकमिश्रकाययोग के काल को गुणा करने पर पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण वैक्रियमिश्रकाययोग का काल होता है।

असंयतसम्यग्दृष्टियों का काल भी इसी प्रकार से जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि ये असंयतसम्यग्दृष्टि जीव एक समय में पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र उत्कृष्ट रूप से उत्पन्न होते हैं, क्योंकि इस उत्पन्न होने वाली राशि से वैक्रियिकमिश्रकाययोग का काल असंख्यातगुणा है।

शंका—यह कैसे माना जाता है।

समाधान—आचार्यपरम्परागत उपदेश से जाना जाता है कि एक समय में उत्पन्न होने वाली असंयतसम्यग्दृष्टि राशि से उक्त काल असंख्यातगुणा है।

अस्तु (देव व नारकी) दोनों ही स्थानों पर अर्थात् मिथ्यादृष्टि और असंयत-सम्यग्दृष्टि वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों में, वैक्रियिकमिश्र काल की शलाकाओं के पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र होने का उपदेश है।

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है। २०३।

अस्तु—एक द्रव्यलिंगी साधु उपरिम ग्रैवेयकों में दो विग्रह करके उत्पन्न हुआ और सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त के द्वारा पर्याप्तपने को प्राप्त हुआ। एक सम्यग्दृष्टि भावलिंगी संयत सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवों में दो विग्रह करके उत्पन्न हुआ और सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तकाल से पर्याप्तियों की पूर्णता को प्राप्त हुआ।

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। २०४।

अस्तु—कोई एक तिर्यंच अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव सातवीं पृथ्वी के नारकियों में उत्पन्न हुआ और सबसे बड़े अन्तर्मुहूर्तकाल से पर्याप्तियों की पूर्णता को प्राप्त हुआ। अब असंयतसम्यग्दृष्टि की कालप्ररूपणा कहते हैं—कोई एक बद्धनरकायुष्क जीव सम्यक्त्व को प्राप्त होकर दर्शन मोहनीय का क्षपण करके और प्रथम पृथ्वी के नारकियों में उत्पन्न होकर सबसे बड़े अन्तर्मुहूर्तकाल में पर्याप्तियों की पूर्णता को प्राप्त हुआ। दोनों के जघन्य-कालों से दोनों ही उत्कृष्टकाल संख्यातगुणे हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीव—नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय तक होते हैं। २०५।

जैसे—सात-आठ जन, अथवा बहुत से सासादनसम्यग्दृष्टि जीव अपने गुणस्थान के काल में एक समय अवशेष रहने पर देवों में उत्पन्न हुए और द्वितीय समय में सबके सब मिथ्यात्व को प्राप्त हुए। इस प्रकार एक समय प्राप्त हो गया।

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। २०६।

जैसे—सात-आठ जन, अथवा उत्कर्ष से पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र जीव, एक, दो अथवा तीन समय को आदि देकर उत्कर्ष से एक समय कम छह आवली प्रमाण सासादनकाल के अवशेष रहने पर वे सबके सब देवों में उत्पन्न हुए। पुनः वे सब क्रम से मिथ्यात्व को प्राप्त हुए। उसी समय में ही पूर्व के समान अन्य सासादनसम्यग्दृष्टि जीव देवों में उत्पन्न हुए। इस प्रकार निरन्तर नाना जीवों का आश्रय करके सासादनगुणस्थान का काल पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र और अपनी राशि से असंख्यातगुणा हो जाता है।

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्यकाल एक समय है। २०७।

जैसे—कोई एक सासादनसम्यग्दृष्टि जीव अपने गुणस्थान के काल में एक समय अवशिष्ट रहने पर देवों में उत्पन्न हुआ और द्वितीय समय में ही मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। इस प्रकार से एक समय प्रमाणकाल उपलब्ध हो गया।

वैक्रियमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि का उत्कृष्टकाल एक समय कम छह आवली प्रमाण है। २०८।

अस्तु—जैसे कोई एक तिर्यंच अथवा उपशम सम्यक्त्व के काल में छह आवलियां अवशिष्ट रहने पर सासादनगुणस्थान को प्राप्त होकर और एक समय वहाँ रहकर ऋजु-गति से देवों में उत्पन्न होकर एक समय कम छह आवली प्रमाणकाल तक सासादनगुणस्थान के साथ रहकर मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ।

·०७ आहारककाययोगी जीवों की कालस्थिति

आहारकायजोगीसु पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू २०९। पु ४। पृष्ठ० ४३१

टीका—तं जहा—सत्तट्ठ जणा पमत्तसंजदा मणजोगेण वचिजोगेण वा अच्छिदा सगद्धाए खीणाए आहारकायजोगिणो जादा। विदियसमए मुदा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूलसरीरं वा पविट्ठा। लद्धो एगसमओ। एत्थ वाघाद-गुणपरावत्तीहि एगो-समओ ण लब्भादे।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

—षट० खण्ड० १। ५। सू २१०। पु ४। पृष्ठ० ४३१

टीका—तं जहा—आहरसरीरमुट्ठावित्तिदपमत्तसंजदा मण-वचि-जोगिट्ठिदा आहारकायजोगिणो जादा। जाधे ते जोगंतरं गदा, ताधे चेव अण्णे आहारकाय-जोगं पडिवण्णा। एवमेगादि एगुत्तरवड्ढीए संखेज्जसलागाओ लब्भंति। एदाहि एगं कायजोगद्धं गुणिदे आहारकायजोगद्धा उक्कस्सिया अंतोमुहुत्तपमाणा होदि।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू २११। पु ४। पृष्ठ० ४३१। २

टीका—तं जधा—एक्कोपमत्तसंजदो मणजोगे वचिजोगे वा अच्छिदो आहारकायजोगं गदो। विदियसमए मदो, मूलसरीरं वा पविट्ठो।

उक्कसेण अंतोमुहुत्तं।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू २१२। पु ४। पृष्ठ० ४३२

टीका—तं जधा—मणजोगे वचिजोगे वा ट्ठिदपमत्तसंजदो आहारकायजोगं गदो, सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तमाच्छिय अणजोगं गदो।

आहारककाययोगियों में प्रमत्तसंयत—नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय होते हैं। २०९।

अस्तु—जैसे सात-आठ प्रमत्तसंयत मनोयोग अथवा वचनयोग के साथ वर्तमान में थे। वे अपने योगकाल के क्षीण हो जाने पर आहारककाययोगी हुए। द्वितीय समय में मरे अथवा मूल औदारिकशरीर में प्रविष्ट हुए। इस प्रकार से एक समय का काल उपलब्ध हो गया। यहाँ व्याघात अथवा गुणस्थानपरिवर्तन के द्वारा एक समय प्राप्त नहीं होता है।

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। २१०।

अस्तु—जैसे आहारकशरीर को उत्पन्न करने वाले, मनोयोग अथवा वचनयोग में विद्यमान प्रमत्तसंयत जीव आहारककाययोगी हुए। जब वे किसी दूसरे योग को प्राप्त हुए उसी समय में ही अन्य प्रमत्तसंयत आहारककाययोग को प्राप्त हुए। इस प्रकार एक को आदि लेकर एकोत्तर वृद्धि से संख्यात शलाकाएँ प्राप्त होती है। इन शलाकाओं से एक काययोग के काल को गुणा करने पर उत्कृष्ट आहारककाययोग का काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक जीव की अपेक्षा आहारककाययोगी जीवों का जघन्यकाल एक समय है। २११।

अस्तु—जैसे मनोयोग या वचनयोग में विद्यमान कोई एक प्रमत्तसंयत जीव आहारककाययोग को प्राप्त हुआ और द्वितीय समय में मरा, अथवा मूल शरीर में प्रविष्ट हो गया।

उक्त जीवों या उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।

अस्तु—जैसे मनोयोग अथवा वचनयोग में विद्यमान कोई एक प्रमत्तसंयत जीव आहारककाययोग को प्राप्त हुआ। वहाँ पर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल रह करके अन्य योग को प्राप्त हुआ।

·०८ आहारकमिश्रकाययोगी जीवों की कालस्थिति

आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुतं।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू २१३। पु ४। पृष्ठ० ४३२

टीका—तं जधा—सत्तट्ठ जणा पमत्तसंजदा दिट्ठमग्गा आहारमिस्सजोगिणो जादा, सव्वलहुमंतोमुहुत्तेण पज्जतिं गदा। एवं जहण्णकालो परूविदो।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू २१४। पु ४। पृष्ठ० ४३२। ३

टीका—तं जधा—सत्तट्ठ जणा पमत्तसंजदा दिट्ठमग्गा वा आहारमिस्स-कायजोगिणो जादा, अंतोमुहुत्तेण पज्जतिं गदा। तस्समए चेव अण्णे आहार-मिस्सकायजोगिणो जादा। एवमेक्क-दो-तिण्णि जा संखेज्जसलासा जादा त्ति कादव्वं। पुणो एदाहि सलागाहि आहारमिस्सकायजोगद्धं गुणिदे आहारमिस्स-कायजोगस्स उक्कस्सकालो अंतोमुहुत्तमेत्तो होदि।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू २१५। पु ४। पृष्ठ० ४३३

टीका—तं जधा—एक्का पमत्तसंजदो पुव्वमणेगवारमुट्ठाविदआहारसरीरो आहारमिस्सकायजोगी जादो, सव्वलहुमंतोमुहुत्तेण पज्जतिं गदो। लद्धो जहण्णकालो।

उक्सेण अंतोमुहुत्तं।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू २१६। पु ४। पृष्ठ० ४३३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टीका—तं जधा—एक्को पमत्तसंजदो अदिट्ठमग्गो आहारमिस्सो जादो। सव्वचिरेण अंतोमुहुत्तेण जहण्णकालादो संखेज्जगुणेण पज्जत्तिं गदो।

आहारकमिश्रकाययोगियों में प्रमत्तसंयत जीव—नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्तकाल होते हैं। २१३।

अस्तु—जैसे—देखा है कि मार्ग को जिन्होंने ऐसे सात-आठ प्रमत्तसंयत जीव आहारकमिश्रकाययोगी हुए और सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त से पर्याप्तपने को प्राप्त हुए। इस प्रकार जघन्यकाल कहा है।

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।

अस्तु—जैसे—देखा है मार्ग को जिन्होंने ऐसे, अथवा अदृष्टमार्गी सात-आठ प्रमत्तसंयत जीव आहारकमिश्रकाययोगी हुए और अन्तर्मुहूर्त से पर्याप्तियों की पूर्णता को प्राप्त हुए। उसी समय में ही अन्य भी प्रमत्तसंयत जीव आहारकमिश्रकाययोगी हुए। इस प्रकार से एक, दो, तीन से आदि लेकर जब तक संख्यात शलाकाएं पूरी न हों, तब तक संख्या बढ़ाते जाना चाहिए। पुनः इन शलाकाओं से आहारकमिश्रकाययोग के काल से गुणा करने पर आहारकमिश्रकाययोग का अन्तर्मुहूर्तप्रमाण उत्कृष्टकाल होता है।

एक जीव की अपेक्षा आहारकमिश्रकाययोगी जीवों का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है। २१५।

अस्तु—जैसे पूर्व में जिसने अनेक बार आहारकशरीर को उत्पन्न किया है—ऐसा कोई प्रमत्तसंयत जीव आहारकमिश्रकाययोगी हुआ और सबसे लघु अन्तर्मुहूर्त से पर्याप्तपने को प्राप्त हुआ। इस प्रकार से जघन्यकाल प्राप्त हो गया।

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।

अस्तु—जैसे—नहीं देखा है मार्ग से जिसने ऐसा कोई एक प्रमत्तसंयत जीव आहारकमिश्रकाययोगी भी हुआ, और जघन्यकाल से संख्यातगुणे सबसे बड़े अन्तर्मुहूर्त द्वारा पर्याप्तियों की पूर्णता को प्राप्त हुआ।

•०७ आहारककाययोग की स्थिति

•०८ आहारकमिश्रकाययोग की स्थिति

आहारककाययोग्यः संज्ञिपर्याप्तषष्ठगुणस्थाने जघन्योत्कृष्टेन अन्तर्मुहूर्तकाले एव भवति।

तन्मिश्रयोगः इतरस्मिन् संज्ञ्यपर्याप्तषष्ठगुणस्थाने खलु जघन्योत्कृष्टेन तावत्काले एव भवति।

—गोजी० गा० ६८३। टीका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१—आहारककाययोग संज्ञीपर्याप्त छट्ठे गुणस्थान में जघन्य-उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल में ही होता है।

२—आहारकमिश्रकाययोग संज्ञिअपर्याप्त अवस्था में छट्ठे गुणस्थान में जघन्य-उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्तकाल में ही होता है।

नोट—वैक्रियमिश्रकाययोग की स्थिति जघन्य-उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल की है। वैक्रियकाययोग की स्थिति उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त न्यून ३३ सागर की है।

·०९ कार्मणकाययोगी जीवों की कालस्थिति

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू २१७। पु ४। पृष्ठ० ४३३

टीका—कुदो ? विग्गहगदीए वट्टमाणजीवाणं सव्वद्धासु विरहभावादो।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू २१८। पु ४। पृष्ठ० ४३३। ४

टीका—तं जहा—एगो मिच्छादिट्ठी विग्गहगदिणामकम्मवसेण एगविग्गहे मारणंतियं गदो। पुणो अंतोमुहुत्तेण छिण्णाउओ होदूण बद्धाउवसेण उप्पण्ण-पढमसमए कम्मइयकायजोगी जादो। विदियसमए ओरालियमिस्सं वेउव्विय-मिस्सं वा गदो। लद्धो एगसमओ।

उक्कस्सेण तिण्णि समया।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू २१९। पु ४। पृष्ठ० ४३४। ५

टीक—तं जधा—एगो सुहुमेइंदियो अहो सुहुमवाउकाइएसु तिण्णि विग्गहं मारणंतियं गदो। अंतोमुहुत्तेण छिण्णाउओ होदूण उप्पण्णपढमसमयप्पहुडि तिसु विग्गहेसु तिण्णि समयं कम्मइयजोगी होदूण चउत्थसमए ओरालियमिस्सं गदो। सुहुमेइंदियाणं सुहुमेइंदिएसु उपज्जमाणाणं तिण्णि विग्गहा होंति त्ति णियमो कधं णव्वदे ? णत्थि एत्थ णियमो, किंतु संभवं पडुच्च सुहुमेइंदियग्गहणं कदं। बादरेइंदिया सुहुमेइंदिया तसकाया वा सुहुमेइंदिएसु उववज्जमाणा तिण्णि विग्गहे करेंति त्ति एस णियमो घेत्तव्वो, आइरियपरंपरागदत्तादो। तिण्णि-विग्गहाकरणदिसा वुच्चदे-बम्हलोगुद्देसे वामदिसालोगपेरंतादोतिरिच्छेण दक्खिणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिण्णि रज्जुमेत्तं गंतूण तदो साद्धदसरज्जुणि अधो कंडुज्जुवं गंतूण तदो संमुहं चदुरज्जुमेत्तं आगंतूण कोणदिसाठिदलोगपेरंतसुहुमवाउकाइएसु उपज्जमाणस्स तिण्णि विग्गहा होंति ।

कार्मणकाययोगियों में मिथ्यादृष्टि जीव नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं । २१७ ।

क्योंकि, सभी कालों में विग्रहगति में विद्यमान जीवों के विरह का अभाव है ।

एक जीव की अपेक्षा उक्त जीवों का जघन्यकाल एक समय है । २१८ ।

अस्तु—जैसे—एक मिथ्यादृष्टि जीव, विग्रहगति-नामकर्म के वश से एक विग्रह वाले मारणान्तिकसमुद्घात को प्राप्त हुआ । पुनः अन्तर्मुहूर्त से छिन्नायुष्क होकर बांधी हुई आयु के वश से उत्पन्न होने के प्रथम समय में कार्मणकाययोगी हुआ । पुनः द्वितीय समय में औदारिकमिश्रकाययोग को, अथवा वैक्रियिकमिश्रकाययोग को प्राप्त हुआ । इस प्रकार से एक समय उपलब्ध हुआ ।

एक जीव की अपेक्षा कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों का उत्कृष्टकाल तीन समय है । २१९ ।

अस्तु—जैसे—एक सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव अधस्तन सूक्ष्म वायुकायियों में तीन विग्रह वाले मारणान्तिकसमुद्घात को प्राप्त हुआ । पुनः अन्तर्मुहूर्त से छिन्नायुष्क होकर उत्पन्न होने के प्रथम समय से लगाकर तीन विग्रहों में तीन समय तक कार्मणकाययोगी होकर चौथे समय में औदारिकमिश्रकाययोग को प्राप्त हो गया ।

शंका—सूक्ष्मएकेन्द्रियों में उत्पन्न होने वाले सूक्ष्मएकेन्द्रिय जीव के तीन विग्रह होते हैं, यह नियम कैसे बना ।

समाधान—यद्यपि इस विषय में कोई नियम नहीं है, तो भी संभावना की अपेक्षा यहाँ पर सूक्ष्मएकेन्द्रियों का ग्रहण किया है । अतः सूक्ष्मएकेन्द्रियों में उत्पन्न होने वाले बादरएकेन्द्रिय या सूक्ष्मएकेन्द्रिय अथवा त्रसकायिक जीव ही तीन विग्रह करते हैं । यह नियम ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, यही उपदेश आचार्य परम्परा से आया हुआ है ।

अब तीन विग्रह करने की दिशा को कहते हैं—ब्रह्मलोकवर्ती प्रदेश पर वामदिशा सम्बन्धी लोक के पर्यन्त भाग से तिरछे दक्षिण की ओर तीन राजुप्रमाण जाकर पुनः साढे दस राजु नीचे की ओर बाण के समान सीधी गति से जाकर पश्चात् सामने की ओर चार राजुप्रमाण आकर कोणवर्ती दिशा में स्थित लोक के अन्तवर्ती सूक्ष्मवायुकायिकों में समुत्पन्न होने वाले जीव के तीन विग्रह होते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।

—षट्० खण्ड० १ । ५ । सू २२० । पु ४ । पृष्ठ० ४३५

टीका—तं जधा—सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी एगविग्गहं कादूणुप्पण्णपढमसमए एगसमओ कम्मइयकायजोगेण लब्भदि ।

उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

—षट्० खण्ड० १ । ५ । सू २२१ । पु ४ । पृष्ठ० ४३५

टीका—तं जधा—सासणसम्मादिट्ठी-असंजदसम्मादिट्ठिणो दोण्णि विग्गहं कादूण बद्धाउवसेणुप्पज्जिय दोण्णि समए अच्छिय ओरालियमिस्सं वेउव्वियमिस्सं वा गदा । तस्समए चेव अण्ण कम्मइयकायजोगिणो जादा । एवमेगं कंडयं कादूण एरिसाणी आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तं कंडयाणि होंति । एदाणं सलागाहि दोण्णि समए गुणिदे आवलियाए असंखेज्जभागमेत्तो कम्मइयकायजोगस्स उक्कस्सकालो होदि ।

एग जीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।

—षट्० खण्ड० १ । ५ । सू २२२ । पु ४ । पृष्ठ० ४३६

टीका—सुगममेदं सुत्तं ।

उक्कस्सेण वे समयं ।

—षट्० खण्ड० १ । ५ । सू २२३ । पु ४ । पृष्ठ० ४३६

टीका—कुदो ? एदेसिं सुहुमेइंदिएसु उप्पत्तीए अभावा, वड्ढि-हाणिकमेण ट्ठिदलोगंते उप्पत्तीए अभावादो च ।

सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण तिण्णि समयं ।

—षट्० खण्ड० १ । ५ । सू २२४ । पु ४ । पृष्ठ० ४३६

टीका—तं जहा—सत्तट्ठ जणा वा सजोगिणो समगं कवाडं गदा पदर-लोगपूरणं गंतूण भूओ पदरं गंतूण तिण्णि समयं कम्मइयकायजोगिणो होदूण कवाडं गदा ।

उक्कस्सेण संखेज्जसमयं ।

—षट्० खण्ड० १ । ५ । सू २२५ । पु ४ । पृष्ठ० ४३६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टीका—कुदो ? तिण्णि समइयं कंडयं काऊण संखेज्जकंडयाणमुवलंभा।

एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण तिण्णि समयं।

—षट्० खण्ड० १। ५। सू २२६। पु ४। पृष्ठ० ४३६। ७

टीका—कुदो ? पदरादो लोगपूरणादो वा कवाडस्स गमणाभावा।

कार्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव—नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय होते हैं। २२०।

अस्तु—जैसे—कोई सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव एक विग्रह करके उत्पन्न होने के प्रथम समय में एक समय कार्मणकाययोग के साथ पाया जाता है।

उक्त जीवों का उत्कृष्टकाल आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। २२१।

जैसे पूर्व पर्याय को छोड़ने के पश्चात् कितने ही सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव बांधी हुई आयु के वश से उत्पन्न होकर विग्रहगति में दो विग्रह करके, दो समय रहकर, पुनः औदारिकमिश्रकाययोग को अथवा वैक्रियिकमिश्रकाययोग को प्राप्त हुए। उसी समय में ही दूसरे जीव भी कार्मणकाययोगी हुए। इस प्रकार इसे एक कांडक करके, इस प्रकार के अन्य-अन्य आवली के असंख्यातवें भाग मात्र कांडक होते हैं। इन कांड को भी शलाकाओं से दोनों समयों को गुणा करने पर आवली का असंख्यातवां भाग कार्मणकाययोग का उत्कृष्टकाल होता है।

(योगकालः) कार्मणस्य त्रिसमयाः।

—गोजी० गा० ६७१। टीका

कार्मणयोग का काल तीन समय है।

योग की स्थिति

स कार्मणकाययोगः एकद्वित्रिसमयविशिष्टविग्रहगतिकालेषु केवलिसमुद्घातसम्बन्धिप्रतरद्वयलोकपूरणे समयत्रये च प्रवर्तते शेषकाले नास्तीति विभागः तु शब्देन सूच्यते ? अनेन शेषयोगानामव्याघातविषये अन्तर्मुहूर्तकालो व्याघातविषये एकसमयादि यथासंभवान्तर्मुहूर्तपर्यन्तकालश्च एकजीवं प्रतिभणितो भवति। नानाजीवापेक्षया × × × सर्वकाल इति विशेषो ज्ञातव्यः।

—गोजी० गा० २४१। टीका

वह कार्मणकाययोग एक-दो या तीन समय वाली विग्रहगति के काल में और केवलिसमुद्घात संबंधी दो प्रतर और लोकपूरण के तीन समयों में होता है, शेषकाल में नहीं होता है। यह विभाग 'तु' शब्द से सूचित होता है। इससे शेष योग यदि कोई व्याघात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं हो तो अन्तर्मुहूर्तकाल तक और यदि व्याघात हो तो एक समय से लेकर यथासंभव अन्तर्मुहूर्तकाल पर्यन्त एक जीव की अपेक्षा होते हैं। नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल योग की काल स्थिति है।

योग की कालस्थिति

औदारिककाययोग की कालस्थिति

औदारिकमिश्रकाययोग की कालस्थिति

कार्मणकाययोग की कालस्थिति

समयत्तयसंखावलिसंखगुणावलिसमासहिदरासी।

—गोजी० गा० २६५। पूर्वार्ध

कार्मणकाययोग का काल तीन समय होता है, क्योंकि विग्रहगति में अनाहारक तीन समयों में कार्मणकाययोग ही संभव है। औदारिकमिश्रकाययोग काल संख्यात आवलिमात्र होता है क्योंकि अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अपर्याप्तकाल ही औदारिकमिश्र का काल है। औदारिक-काययोग का काल उससे संख्यातगुणा है क्योंकि उन दोनों कालों में से हीन सब काल ही औदारिककाययोग का काल है।

·४० सयोगिजीव की सयोगीत्व की अपेक्षा स्थिति

·०१ मनोयोगी और वचनयोगी की कालस्थिति

·०२ काययोगी की कालस्थिति

·०३ औदारिककाययोगी की कालस्थिति

·०४ औदारिकमिश्रकाययोगी की कालस्थिति

·०५ वैक्रियकाययोगी की कालस्थिति

·०६ कार्मणकाययोगी की कालस्थिति

जोगाणुवादेण पंचमणजोगी पंचवचिजोगी कायजोगी ओरालियकायजोगी ओरालियमिस्सकायजोगी वेउव्वियकायजोगी कम्मइयकायजोगी केवचिरं कालादो होंति।

—षट्० खण्ड० २। ८। सू १६। पु ७। पृष्ठ० ४६८

टीका—सुगमं।

सव्वद्धा।

—षट्० खण्ड० २। ८। सू १७। पु ७। पृष्ठ० ४६८। ९

टीका—मणजोगि-वचिजोगीणमद्धा जहण्णेण एगसमओ, उक्कसेण अंतो-मुहुत्तं। मणुसअपज्जत्ताणं पुण जहण्णओ उक्कस्सओ अंतोमुहुत्तगेत्तो चेव। जदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवंविहमणुसअपज्जत्ताणं संताणो सांतरो होज्ज तो मण-वचिजोगीणं संताणो सांतरो किण्ण हवे, विसेसाभावादो। ण दव्वपमाणकओ विसेसो, देवाणं संखेज्ज-भागमेत्तदव्वुलक्खिय-वेउव्वियमिस्सकायजोगिसंताणस्स वि सव्वद्धप्पसंगादो। एत्थ परिहारो वुच्चदे। तं जहा—ण दव्वबहुत्तं संताणाविच्छेदस्स कारणं, संखेज्जमणुसपज्जत्ताणं संताणस्स वि वोच्छेदप्पसंगादो। ण सगद्धाथोवत्तं संताण-वोच्छेदस्स कारणं, वेउव्वियमिस्सद्धादो संखेज्जगुणहीणद्ध ुवलक्खियमणजोग-संताणस्स वि सांतरत्तप्पसंगादो। किंतु जस्स गुणट्ठाणस्स मग्गणट्ठाणस्स वा एगजीवावट्ठाणकालादो पवेसंतरकालो बहुगो होदि तस्सण्णयवोच्छेदो। जस्स पुण कयावि ण बहुओ तस्स ण संताणस्स वोच्छेदो त्ति घेत्तव्वं। मणजोगिवचि-जोगीणं पुण एगसमयो सुट्ठु पविरलो त्ति एत्थ जहण्णकालत्तणेण ण गहिदो।

योगमार्गणानुसार पांच मनोयोगी, पांच वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियकाययोगी और कार्मणकाययोगी जीव सर्वकाल में रहते हैं।

अस्तु—शंका—मनोयोगी और वचनयोगियों का काल जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है। परन्तु मनुष्य अपर्याप्तों का काल जघन्य और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त मात्र ही है। यदि इस प्रकार के मनुष्य अपर्याप्तों की संतान सान्तर है तो मनोयोगी और वचनयोगियों की सान्तर संतान क्यों नहीं होगी, क्योंकि उनमें कोई विशेषता नहीं है। यदि द्रव्यंप्रमाणकृत विशेषता मानी जाय तो वह भी नहीं बनती, क्योंकि देवों के संख्यातवें भाग मात्र द्रव्य से उपलक्षित वैक्रियमिश्रकाययोगी जीवों की संतान के भी सर्वकाल रहने की प्रसंग होगा।

समाधान—द्रव्य की अधिकता संतान के अविच्छेद का कारण नहीं है, क्योंकि ऐसा होने पर संख्यात मनुष्य पर्याप्त जीवों की संतान के भी व्यवच्छेद का प्रसंग होगा। अपने काल की अल्पता भी संतानव्युच्छेद का कारण नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर वैक्रिय-मिश्रकाल में संख्यातगुणेहीन काल से उपलक्षित मनोयोगिसंतान के भी सान्तरता का प्रसंग आयेगा। किन्तु जिस गुणस्थान अथवा मार्गणास्थान के एक जीव के अवस्थानकाल से प्रवेशान्तरकाल बहुत होता है। उसकी संतान का व्युच्छेद होता है। जिसका वह काल कदापि बहुत नहीं है। उसकी संतान का व्युच्छेद नहीं होता, ऐसा ग्रहण करना चाहिए। परन्तु मनोयोगी व वचनयोगियों का एक समय बहुत ही कम पाया जाता है। इस कारण यहाँ जघन्यकाल रूप से यह नहीं ग्रहण किया गया।

०६ वैक्रियमिश्रकाययोगी की कालस्थिति

वेउव्वियमिस्सकायजोगी केवचिरं कालादो होंति।

—षट्० खण्ड० २। ८। सू १८। पु ७। पृष्ठ० ४६९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टीका— सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।

—षट्० खण्ड० २ । ८ । सू १९ । पु ७ । पृष्ठ० ४६९

टीका— कुदो ? ओरालियकायजोगट्ठिदतिरिक्ख-मणुस्साणं बे विग्गहे कादूण देवेसुप्पज्जिय सव्वजहण्णेण कालेण पज्जत्तीओ समाणिय अंतोमुहुत्तमेत्त-जहण्णकालुवलंभादो ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।

—षट्० खण्ड० २ । ८ । सू २० । पु ७ । पृष्ठ० ४७०

टीका— मणुसअपज्जत्ताणं जधा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तो संताणकालो परूविदो तधा एत्थ वि परूवेदव्वो ।

वैक्रियमिश्रकाययोगियों का काल जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है ।

अस्तु, क्योंकि औदारिककाययोग में स्थित तिर्यंच और मनुष्यों का दो विग्रह करके देवों में उत्पन्न होकर और सर्वजघन्यकाल से पर्याप्तियों को पूर्ण कर बहुत ही कम अन्तर्मुहूर्त मात्र जघन्यकाल पाया जाता है ।

वैक्रियमिश्रकाययोगियों का काल उत्कर्ष से पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण है ।

अस्तु जिस प्रमाण मनुष्य अपर्याप्तों के पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र संतान-काल का निरूपण किया जा चुका है, उसी प्रकार यहाँ भी निरूपण करना चाहिए ।

·०७ आहारककाययोगी की कालस्थिति

आहारककायजोगी केवचिरं कालादो होंति ।

—षट्० खण्ड० २ । ८ । सू २१ । पु ७ । पृष्ठ० ४७०

टीका—सुगमं ।

जहण्णेण एगसमयं ।

—षट्० खण्ड० २ । ८ । सू २२ । पु ७ । पृष्ठ० ४७०

टीका—कुदो ? मणजोग-वचिजोगेहिंतो आहारकायजोगं गंतूण बिदिय-समए कालं करिय जोगंतरं गयस्स एगसमयकालुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

—षट्० खण्ड० २ । ८ । सू २३ । पु ७ । पृष्ठ० ४७० । ७१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टीका— एत्थ आहारककायजोगीणं दुचरिमसमओ जाव आहारकाय-जोगप्पवेसस्स अंतरं करिय पुणो उवरिमसमए अण्णे जीवे पवेसियव्वा। एवं संखेज्जवारसलागासु उप्पण्णासु तदो णियमा अंतरं होदि। एवं संखेज्जंतोमुहुत्त-समासो वि अंतोमुहुत्तमेत्तो चेव। कधं णव्वदे ? उक्कस्सकालो अंतोमुहुत्तमेत्तो त्ति सुत्तवयणादो।

आहारककाययोगी जीव जघन्य से एक समय तक रहते हैं। क्योंकि मनोयोग और वचनयोग से आहारककाययोग को प्राप्त होकर व द्वितीय समय में मरण कर योगान्तर को प्राप्त होने पर एक समय काल पाया जाता है।

आहारककाययोगी जीव उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त तक रहते हैं। यहाँ आहारकाय-योगियों के द्विचरम समय तक आहारककाययोग में प्रवेश का अंतर करके पुनः उपरिम समय में अन्य जीवों का प्रवेश कराना चाहिए। इस प्रकार संख्यातवार शलाकाओं में उत्पन्न होने पर तत्पश्चात् नियम में अन्तर होता है। इस प्रकार संख्यात अन्तर्मुहूर्तों का जोड़ भी अन्तर्मुहूर्त मात्र ही होता है।

·०८ आहारकमिश्रकाययोगी की कालस्थिति

आहारमिस्सकायजोगी केवचिरं कालादो होंति।

—षट्० खण्ड० २। ८। सू २४। पु ७। पृष्ठ० ४७१

टीका—सुगमं।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।

—षट्० खण्ड० २। ८। सू २५। पु ७। पृष्ठ० ४७१

टीका—कुदो ? आहारमिस्सकायजोगचरस्स आहारमिस्सकायजोगं गंतूण सुट्ठु जहण्णेण कालेण पज्जत्तीओ समाणिदस्स जहण्णकालुवलंभादो।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

—षट्० खण्ड० २। ८। सू २६। पु ७। पृष्ठ० ४७१

टीका—एत्थ वि पुव्वं व संखेज्जंतोमुहुत्ताणं संकलणा कायव्वा।

आहारकमिश्रकाययोगी जीव जघन्य से अन्तर्मुहूर्त तक रहते हैं।

क्योंकि, आहारकमिश्रकाययोग में जाने वाले जीव के आहारकमिश्रकाययोग को प्राप्त होकर अतिशय जघन्यकाल से पर्याप्तियों को पूर्ण कर लेने पर जघन्यकाल पाया जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आहारकमिश्रकाययोगी जीव उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त तक रहते हैं।

अस्तु—यहाँ पर भी पूर्व के समान संख्यात अन्तर्मुहूर्तों का संकलन करना चाहिए।

·४१ योगी और कालप्ररूपणा

·०१ मनोयोगी और वचनयोगी की कालस्थिति

जोगाणुवादेण पंचमणजोगी पंचवचिजोगी केवचिरं कालादो होदि ?

—षट्० खण्ड० २। २। सू ९६। पु ७। पृष्ठ० १५१

टीका—'जोगिणो' इदि वयणादो बहुवयणणिद्देसो किण्ण कदो ? ण, पंचण्हं पि एयत्ताविणाभावेण एयवयणुववत्तीदो। सेसं सुगमं।

जहण्णेण एगसमओ।

—षट्० खण्ड० २। २। सू ९७। पु ७। पृष्ठ० १५१

टीका—मणजोगस्स ताव एगसमयपरूवणा कीरदे। तं जहा—एगो काय-जोगेण अच्छिदो कायजोगद्धाए खएण मणजोगे आगदो, तेणेगसमयमच्छिय बिदियसमये मरिय कायजोगी जादो। लद्धो मणजोगस्स एगसमओ। अधवा कायजोगद्धाखएण मणजोगे आगदे बिदियसमए वाघादिदस्स पुणरवि कायजोगो चेव आगदो। लद्धो बिदियपयारेण एगसमओ। एवं सेसाणं चदुण्हं मणजोगाणं पंचण्हं वचिजोगाणं च एगसमयपरूवणा दोहि पयारेहि णादूण कायव्वा।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

—षट्० खण्ड० २। २। सू ९८। पु ७। पृष्ठ० १५२

टीका—अणप्पिदजोगादो अप्पिदजोगं गंतूण उक्कस्सेण तत्थ अंतोमुहुत्ता-वट्ठाणं पडि विरोहाभावादो।

योगमार्गणानुसार जीव पांच मनोयोगी और पांच वचनयोगी कितने काल तक रहते हैं। "जोगिणो" इस प्रकार के वचन से यहां बहुवचन का निर्देश नहीं किया। क्योंकि पांचों के ही एकत्व के साथ अविनाभाव होने से यहाँ एकवचन उचित है।

कम से कम एक समय तक जीव पांच मनोयोगी और पांच वचनयोगी रहते हैं।

अस्तु—प्रथमतः मनोयोग के एक समय की प्ररूपणा की जाती है। वह इस प्रकार है—एक जीव काययोग में स्थित था, वह काययोगकाल के क्षय से मनोयोग में आया, उसके साथ एक समय रहकर व द्वितीय समय में मरकर काययोगी हो गया। इस प्रकार मनोयोग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का जघन्यकाल एक समय प्राप्त हो जाता है। अथवा काययोगकाल के क्षय से मनोयोग के प्राप्त होने पर द्वितीय समय में व्याघात को प्राप्त हुए उसको फिर भी काययोग ही प्राप्त हुआ। इस तरह द्वितीय प्रकार से एक समय प्राप्त होता है।

इसी प्रकार शेष चार मनोयोगों और पांच वचनयोगों के भी एक समय की प्ररूपणा दोनों प्रकारों से जानकर करना चाहिए।

अधिक से अधिक अन्तर्मुहूर्तकाल तक जीव पांच मनोयोगी और पांच वचनयोगी रहते हैं।

क्योंकि, अविवक्षित योग से विवक्षित योग को प्राप्त होकर उत्कर्ष से यहाँ अंतर्मुहूर्त तक अवस्थान होने में कोई विरोध नहीं है।

०२ काययोगी की कालस्थिति

कायजोगी केवचिरं कालादो होदि ?

—षट्० खण्ड० २। २। सू ९९। पु ७। पृष्ठ० १५२

टीका—किमट्ठमेत्थ एगवयणणिद्देसो कदो ? ण एस दोसो, एगजीवं मोत्तूण बहूहि जीवेहि एत्थ पओजणाभावादो।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।

—षट्० खण्ड० २। २। सू १००। पु ७। पृष्ठ० १५२

टीका—अणप्पिदजोगादो कायजोगं गदस्स जहण्णकालस्स वि अंतोमुहुत्तपमाणं मोत्तूण एगसमयादिपमाणाणुवलंभादो।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।

—षट्० खण्ड० २। २। सू १०१। पु ७। पृष्ठ० १५२

टीका—अणप्पिदजोगादो कायजोगं गंतूण तत्थ सुट्ठु दीहद्धमच्छिय कालं करिय एइंदियेसु उप्पण्णस्स आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्टाणि परियट्टिदस्स कायजोगुक्कस्सकालुवलंभादो।

जीव काययोगी कितने काल तक रहता है। यहाँ एकवचन के निर्देश करने में कोई दोष नहीं है, क्योंकि एक जीव को छोड़कर यहाँ बहुत जीवों से प्रयोजन नहीं है।

कम से कम अन्तर्मुहूर्त तक जीव काययोगी रहता है। क्योंकि अविवक्षित योग से काययोग को प्राप्त हुए जीव के जघन्यकाल का प्रमाण अन्तर्मुहूर्त को छोड़कर एक समयादि रूप नहीं पाया जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अधिक से अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्तकाल तक जीव काययोगी रहता है।

क्योंकि, अविवक्षित योग से काययोग को प्राप्त होकर और वहाँ अतिशय दीर्घकाल तक रहकर काल को करके एकेन्द्रियों में उत्पन्न हुए जीव के आवली के असंख्यातवें भाग मात्र पुद्गलपरिवर्तन भ्रमण करते हुए काययोग का काल पाया जाता है।

·०३ औदारिककाययोगी और कालस्थिति

ओरालियकायजोगी केवचिरं कालादो होदि ?

—षट्० खण्ड० २। २। सू १०२। पु ७। पृष्ठ० १५३

टीका—सुगमं।

जहण्णेण एगसमओ।

—षट्० खण्ड० २। २। सू १०३। पु ७। पृष्ठ० १५३

टीका—मणजोगेण वचिजोगेण वा अच्छिय तेसिमद्धाखएण ओरालिकाय-जोगंगदबिदियसमए कालं कादूण जोगंतरं गदस्स एगसमयदंसणादो।

उक्कस्सेण बावीसं वाससहस्साणि देसूणाणि।

—षट्० खण्ड० २। २। सू १०४। पु ७। पृष्ठ० १५३

टीका—बावीसवाससहस्साउअपुढवीकाइएसु उप्पज्जिय सव्वजहण्णण कालेण ओरालियमिस्सद्धं गमिय पज्जत्तिगदपढमसमयप्पहुडि जाव अंतोमुहुत्तूण-बावीसवाससहस्साणि ताव ओरालियकायजोगुवलंभादो।

औदारिककाययोगी जीव कम से कम एक समय तक रहता है।

क्योंकि, मनोयोग अथवा वचनयोग के साथ रहकर उनके काल-क्षय से औदारिक-काययोग को प्राप्त होने के द्वितीय समय में मरकर योगान्तर को प्राप्त हुए जीव के एक समय देखा जाता है।

अधिक से अधिक बाईस हजार वर्षों तक जीव औदारिककाययोगी रहता है। क्योंकि बाईस हजार वर्ष की आयु वाले पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होकर सर्वजघन्यकाल से औदारिकमिश्रकाल को बिताकर पर्याप्ति को प्राप्त होने के प्रथम समय से लेकर अन्तर्मुहूर्त कम बाईस हजार वर्ष तक औदारिककाययोग पाया जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

•०४ औदारिकमिश्रकाययोगी और कालस्थिति

•०५ वैक्रियकाययोगी और कालस्थिति

•०७ आहारककाययोगी और कालस्थिति

ओरालियमिस्सकायजोगी वेउव्वियकायजोगी आहारककायजोगी केवचिरं कालादो होदि ?

—षट्० खण्ड० २ । २ । सू १०५ । पु ७ पृष्ठ० १५३ । ४

जहण्णेण एगसमओ ।

—षट्० खण्ड० २ । २ । सू १०६ । पु ७ । पृष्ठ० १५३ । ४

टीका—ओरालिमकायजोगाविणाभाविदंडादो कवाडं गदसजोगिजिणम्हि ओरालियमिस्सस्स एगसमओ लब्भदे, तत्थ ओरालियमिस्सेण विणा अण्णजोगाभावादो। मण-वचिजोगेहिंतो वेउव्वियजोगंगदबिंदियसमए मदस्स एगसमओ वेउव्वियकायजोगस्स उवलब्भदे, मुदपढमसमए कम्मइय-ओरालियवेउव्वियमिस्सकायजोगे मोत्तूण वेउव्वियकायजोगाणुवलंभादो। मण-वचिजोगेहिंतो आहारकायजोगंगदबिंदियसमए मुदस्स मूलसरीरं पविट्ठस्स वा आहारकायजोगस्स एगसमओ लब्भदे, मुदाणं मूलसरीरपविट्ठाणं च पढमसमए आहारकायजोगाणुवलंभादो।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

—षट्० खण्ड० २ । २ । सू १०७ । पु ७ पृष्ठ० १५४ । ५

टीका—मणजोगादो वचिजोगादो वा वेउव्विय-आहारकायजोगं गंतूण सव्वुक्कस्सं अंतोमुहुत्तमच्छिय अण्णजोगं गदस्स अंतोमुहुत्तमेत्तकालुवलंभादो, अणप्पिदजोगादोओरालियमिस्सजोगं गंतूणसव्वुक्कस्सकालमच्छियअण्णजोगगदस्स ओरालियमिस्सस्स अंतोमुहुत्तमेत्तुक्कस्सकालुवलंभादो। सुहुमेइंदियअपज्जत्तएसु बादरेइंदियअपज्जत्तएसु च सत्तट्ठभवग्गहणाणि णिरंतरमुप्पण्णस्स बहुओ कालो किण्ण लब्भदे ? ण, ताओ सव्वाओ ट्ठिदीओ एक्कदो कदे वि अंतोमुहुत्तमेत्तकालुवलंभादो।

जीव औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी और आहारककाययोगी कितने काल तक रहता है।

अस्तु—कम से कम एक समय तक जीव औदारिकमिश्रकाययोगी आदि रहता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

औदारिककाययोगी के अविनाभावी दंडसमुद्घात से कपाटसमुद्घात को प्राप्त हुए सयोगी केवली जिनमें औदारिकमिश्र का एक समय पाया जाता है, क्योंकि, उस अवस्था में औदारिकमिश्र के बिना अन्य योग पाया नहीं जाता।

मनोयोग या वचनयोग से वैक्रियिककाययोग को प्राप्त होने के द्वितीय समय में मृत्यु को प्राप्त हुए जीव के वैक्रियिककाययोग एक समय पाया जाता है। क्योंकि मर जाने के प्रथम समय में कार्मणकाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग, और वैक्रियिकमिश्रकाययोग को छोड़कर वैक्रियिककाययोग नहीं पाया जाता है।

मनोयोग अथवा वचनयोग से आहारककाययोग को प्राप्त होने के द्वितीय समय में मृत्यु को प्राप्त हुए या मूल शरीर में प्रविष्ट हुए जीव के आहारककाययोग का एक समय पाया जाता है। क्योंकि, मृत्यु को प्राप्त या मूल शरीर में प्रविष्ट हुए जीवों के प्रथम समय में आहारककाययोग नहीं पाया जाता है।

अधिक से अधिक अन्तर्मुहूर्तकाल तक जीव औदारिकमिश्रकाययोगी आदि रहता है।

क्योंकि मनोयोग अथवा वचनयोग से वैक्रियिक या आहारककाययोग को प्राप्त होकर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहकर अन्य योग को प्राप्त हुए जीव के अन्तर्मुहूर्तमात्र काल पाया जाता है। तथा अविवक्षित योग से औदारिकमिश्रयोग को प्राप्त होकर व सर्वोत्कृष्टकाल तक रहकर अन्य योग को प्राप्त हुए जीव के औदारिकमिश्र का अन्तर्मुहूर्त मात्र उत्कृष्टकाल पाया जाता है।

शंका—सूक्ष्मएकेन्द्रिय अपर्याप्तों में और बादरएकेन्द्रिय अपर्याप्तों में सात-आठ भव ग्रहण तक निरन्तर उत्पन्न हुए जीव के बहुत काल क्यों नहीं पाया जाता ?

समाधान—नहीं पाया जाता, क्योंकि, उन सब स्थितियों का इकट्ठा करने पर भी अन्तर्मुहूर्तमात्र काल पाया जाता है।

·०६ वैक्रियमिश्रकाययोगी और कालस्थिति

·०८ आहारकमिश्रकाययोगी और कालस्थिति

वेउव्वियमिस्सकायजोगी आहारमिस्सकायजोगी केवचिरं कालादो होदि ?

—षट्० खण्ड० २। २। सू १०८। पु ७। पृष्ठ० १५५

टीका—सुगमं।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।

—षट्० खण्ड० २। २। सू १०९। पु ७। पृष्ठ० १५५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टीका—एगसमओ किण्ण लब्भदे ? ण, एत्थ मरणजोगपरावत्तीणमसंभवादो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

—षट्० खण्ड० २ । २ । सू ११० । पु ७ । पृष्ठ० १५५

टीका—सुगमं ।

जीव वैक्रियमिश्रकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी कम से कम अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहता है । प्रश्न है कि यहाँ एक समय मात्र जघन्यकाल क्यों नहीं पाया जाता है ।

समाधान—नहीं पाया जाता, क्योंकि यहाँ मरण और योगपरावृत्ति का होना असंभव है ।

अधिक से अधिक अन्तर्मुहूर्तकाल तक जीव वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी रहता है ।

०९ कार्मणकाययोगी और कालस्थिति

कम्मइयकायजोगी केवचिरं कालादो होदि ?

—षट्० खण्ड० २ । २ । सू १११ । पु ७ । पृष्ठ० १५५ । ६

टीका—सुगमं ।

जहण्णेण एगसमओ ।

—षट्० खण्ड० २ । २ । सू ११२ । पु ७ । पृष्ठ० १५६

टीका—एगविग्गहं कादूण उप्पण्णस्स तदुवलंभादो ।

उक्कस्सेण तिण्णि समया ।

—षट्० खण्ड० २ । २ । सू ११३ । पु ७ । पृष्ठ० १५६

टीका—तिण्हं समयाणमुवरि विग्गहाणुवलंभादो ।

कार्मणकाययोगी—कम से कम एक समय तक रहता है, क्योंकि, एक विग्रह (मोड़ा) करके उत्पन्न हुए जीव के सूत्रोक्तकाल पाया जाता है ।

अधिक से अधिक तीन समय तक जीव कार्मणकाययोगी रहता है । क्योंकि तीन समयों के ऊपर विग्रह पाये नहीं जाते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काययोग की स्थिति

·३ औदारिककाययोग की स्थिति

·४ औदारिकमिश्रकाययोग की स्थिति

·९ कार्मणकाययोग की स्थिति

तद्यथा—योगकालः कार्मणस्य त्रिसमयाः। औदारिकमिश्रस्य अन्तर्मुहूर्तः। औदारिकस्य ततः संख्यातगुणः। मिलित्वा त्रिसमयाधिकसंख्यातगुणितान्तर्मुहूर्तः। × × ×। प्रक्षेपयोगोद्धृतमिश्रपिण्डः प्रक्षेपकानांगुणको भवेदिति।

—गोजी० गा० ६७१। टीका

१—कार्मणकाययोग का काल तीन समय है।

२—औदारिकमिश्रकाययोग का काल अन्तर्मुहूर्त है।

३—औदारिककाययोग का काल उससे संख्यातगुणा है। सब मिलाने पर तीन समय अधिक संख्यातगुणित अन्तर्मुहूर्तकाल होता है। करणसूत्र में कहा है—प्रक्षेप को मिलाकर मिले हुए पिंड से भाग देने पर जो प्रमाण आवे उसे प्रक्षेप से गुणा करने पर अपना-अपना प्रमाण होता है। सो उक्त तीनों योगों के कालों को मिलाने पर तीन समय अधिक संख्यात अन्तर्मुहूर्तकाल हुआ।

काययोग की स्थिति

तज्जोगो सामण्णंकालो संखाहदो तिजोगमिदं।

—गोजी० गा० २६३। पूर्वार्ध

टीका—तेषां चतुर्णां वाग्योगकालानां योगः-युतिः सामान्यवाग्योगकालो भवति। × × × अस्मात् काययोगकालः संख्यातगुणः।

चारों वचनयोगों के काल का योग सामान्य वचनयोग का काल है। इससे संख्यातगुणा काययोग का काल है।

·१० अयोगी जीव में

सुगममजोगीणं।

—षट्० खण्ड० १। १। सु २। पृष्ठ० ६७२

अयोगी गुणस्थान योग रहित होता है।

नोट—अयोगी—चौदहवें गुणस्थान की अपेक्षा पांच ह्रस्व अक्षर (अ, इ, उ, ऋ, ऌ) मात्र स्थिति होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·११ कालानुगमती से संचित योगी जीवों का कालस्थिति

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंजवचिजोगितिण्णिपदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। कायजोगिसु कदि-णोकदिअवत्तव्वसंचिदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। ओरालियकायजोगीसु कदिसंचिदा केवचिर कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण बावीसवस्ससहस्साणि देसूणाणि। ओरालियमिस्सकायजोगीसु कदि-णोकदिअवत्तव्वसंचिदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। वेउव्वियकायजोगीणं मणजोगिभंगो। वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु-तिण्णिपदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो एगमंतोमुहुत्तं ; पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तुवक्कमणवारसलागाहि पदुप्पण्ण समुप्पत्तीदो। एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। आहारकायजोगीसु तिण्णिपदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणेगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। आहारमिस्सकायजोगीसु तिण्णिपदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणेगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। कम्मइयकायजोगीसु-कदि-णोकदि-अवत्तव्वसंचिदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण तिण्णिसमया।

—षट्० खण्ड० ४। १। सू ६६। पु ९। पृष्ठ० २९८। ९९

योग मार्गणानुसार पांच मनोयोगी और पांच वचनयोगी तीन पद वाले कितने काल तक रहते हैं ? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल रहते हैं। एक जीव की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहते हैं। काययोगियों में कृति, नोकृति और अवक्तव्य संचित जीव कितने काल तक रहते हैं। एक जीव की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से असंख्यात पुद्गल-परिवर्तन-प्रमाण अनन्तकाल तक रहते हैं। औदारिककाययोगियों में कृतिसचित कितने काल तक रहते हैं ? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल रहते हैं। एक जीव की अपेक्षा जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से कुछ कम बाईस हजार वर्ष तक रहते हैं।

औदारिकमिश्रकाययोगियों में कृति, नोकृति व अवक्तव्य संचित जीव कितने काल तक रहते हैं ? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल रहते हैं। एक जीव की अपेक्षा जघन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से एक समय और उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहते हैं। वैक्रियकाययोगियों की प्ररूपणा मनोयोगियों के समान है। वैक्रियमिश्रकाययोगियों में तीन पद वाले कितने काल तक रहते हैं। नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से पल्योपम के असख्यातवें भाग मात्र अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहते हैं। क्योंकि पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र उपक्रमण वार शलाकाओं से उत्पन्न होने पर यह काल प्राप्त होता है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य व उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहते हैं।

आहारककाययोगियों में तीनों पद वाले कितने काल तक रहते हैं? नाना व एक जीव की अपेक्षा जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहते हैं। आहारकमिश्रकाययोगियों में तीनों पद वाले कितने काल तक रहते हैं? नाना व एक जीव की अपेक्षा जघन्य व उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहते हैं। कार्मणकाययोगियों में कृति, नोकृति व अवक्तव्य संचित काल कितने काल तक रहते हैं। नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल रहते हैं। एक जीव की अपेक्षा जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट तीन समय तक रहते हैं।

१२ करणकृति अनुगम में कालानुगम से संचित जीव की कृतिरूपस्थिति

पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु ओरालिय-वेउव्वियपरिसादणकदी ओरालिय-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसंघादणपरिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। आहारदोपदाणमोघो।

कायजोगीसु ओरालियसंघादण-परिसादणकदीए वेउव्वियपरिसादण-संघादणपरिसादणकदीणं तिरिक्खभंगो। ओरालियसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण बावीसवाससहस्साणि समऊणाणि। वेउव्वियसंघादणकदी ओघो। आहारसंघादणकदी ओघो। सेसदोपदाणं मणजोगिभंगो। तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा।

ओरालियकायजोगीसु ओरालियसंघादण-परिसादणकदी तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण बावीसवाससहस्साणि देसूणाणि। वेउव्वियसंघादणकदी णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो। एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ। वेउव्वियपरिसादण-संघादणपरि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। आहारपरिसादणकदीए मणजोगिभंगो।

ओरालियमिस्सकायजोगीसु ओरालियसंघादणकदी ओघो। ओरालिय-संघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं समऊणं। तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादण-कदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

वेउव्वियकायजोगीसु वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए मणजोगिभंगो। वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु वेउव्वियसंघादणकदीए देवभंगो। वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

आहारकायजोगीसु ओरालियपरिसादणकदी आहार-तेजा-कम्मइय-संघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतो-मुहुत्तं। आहारमिस्सकायजोगीसु ओरालियपरिसादणकदी आहार-तेजा-कम्मइय-संघादण-परिसादणकदी-णाणाजीवं पडुच्च एगजीवं जहण्णुक्कस्सेण अन्तोमुहुत्तं। आहारसंघादणकदी ओघो।

कम्मइयकायजोगीसु ओरालियपरिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण तिण्णि समया, उक्कस्सेण संखेज्जा समया। एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कसेण तिण्णि समया। तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण तिण्णि समया।

—षट्० खण्ड० ४। १। सू ७१। पु ९। पृष्ठ० ३९२। ९५

पांच मनोयोगी और पांच वचनयोगी जीवों में औदारिक व वैक्रियशरीर की परि-शातनकृति तथा औदारिक, वैक्रियिक, तैजस और कार्मणशरीर की संघातन परिशातनकृति नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है। आहारकशरीर के दो पदों की प्ररूपणा ओघ के समान है।

काययोगियों में औदारिकशरीर की संघातन-परिशातनकृति तथा वैक्रियशरीर की परिशातन व संघातन-परिशातन कृतियों की प्ररूपणा तिर्यंचों के समान है। इनमें औदारिकशरीर भी संघातन-परिशातनकृति का नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक जीव की अपेक्षा जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट एक समय कम बाईस हजार वर्ष-काल है। वैक्रियशरीर की संघातनकृति की प्ररूपणा ओघ के समान है। आहारकशरीर की संघातनकृति की प्ररूपणा ओघ के समान है। इसके शेष दो पदों की प्ररूपणा मनोयोगियों के समान है।

तैजस व कार्मणशरीर की संघातन-परिशातनकृति नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल है। एक जीव की अपेक्षा जघन्यतः अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असंख्यात पुद्गलपरावर्तन प्रमाण अनन्तकाल है।

औदारिककाययोगियों में औदारिकशरीर की संघातन-परिशातनकृति तथा तैजस व कार्मणशरीर की संघातन-परिशातनकृति का नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट कुछ कम बाईस हजार वर्ष काल है। वैक्रियिकशरीर की संघातनकृति का नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट आवली का असंख्यातवां भाग काल है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य व उत्कृष्ट से एक समय काल है। वैक्रियिकशरीर की परिशातन व संघातन-परिशातनकृति का नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्तकाल है।

औदारिकमिश्रकाययोगियों में औदारिकशरीर की संघातनकृति की प्ररूपणा ओघ के समान है। औदारिकशरीर की संघातन-परिशातनकृति का नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य से एक समय, उत्कृष्ट से एक समय कम अन्तर्मुहूर्तकाल है। तैजस व कार्मणशरीर की संघातन-परिशातनकृति का नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्तकाल है।

वैक्रियिककाययोगियो में वैक्रियिक, तैजस और कार्मणशरीर संबंधी संघातन-परिशातनकृति की प्ररूपणा मनोयोगियों के समान है।

वैक्रियमिश्रकाययोगियों में वैक्रियिकशरीर की संघातनकृति की प्ररूपणा देवों के समान है। वैक्रियिक, तैजस व कार्मणशरीर की संघातन-परिशातनकृति का नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाणकाल है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य व उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्तकाल है।

आहारककाययोगियों में औदारिकशरीर की परिशातनकृति तथा आहारक, तैजस और कार्मणशरीर की संघातन-परिशातनकृति का नाना जीवों की अपेक्षा और एक जीव की अपेक्षा जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्तकाल है। आहारकमिश्र-काययोगियों में औदारिकशरीर की परिशातनकृति तथा आहारक, तैजस व कार्मणशरीर की संघातन-परिशातनकृति का नाना जीवों की व एक जीव की अपेक्षा जघन्य व उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्तकाल है। आहारकशरीर की संघातनकृति की प्ररूपणा ओघ के समान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कार्मणकाययोगियों में औदारिक शरीर की परिशातन कृति का नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से तीन समय और उत्कर्ष से संख्यात समय काल है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य व उत्कर्ष से तीन समय काल है। तैजस व कार्मणशरीर की संघातन-परिशातनकृति का नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से तीन समय काल है।

योग की स्थिति

अंतोमुहुत्तमेत्ता चउमणजोगा कमेण संखगुणा।
तज्जोगो सामण्णं चउवचिजोगा तदो दु संखगुणा॥

—गोजी० गा० २६२

टीका—सत्यासत्योभयानुभयख्याः चत्वारो मनोयोगाः अन्तर्मुहूर्त मात्राः प्रत्येकमन्तर्मुहूर्तकालवृतयः तथापि क्रमेण संख्येयगुणा भवन्ति—एषां कालानां युति सामान्यं सामान्यमनोयोगकालो भवति २-८५। अयमप्यन्तमुहूर्तमात्र एव। अ २। ६४, उ २। १६, अ २। ४, स २। १

सत्य, असत्य, उभय और अनुभय नामक चारों मनोयोगों में से प्रत्येक का काल अन्तर्मुहूर्त है तथापि क्रम से संख्यातगुणा है अर्थात् सत्य मनोयोग का काल सबसे स्तोक अन्तर्मुहूर्त है। उससे संख्यातगुणा अन्तर्मुहूर्त असत्य मनोयोग का काल है। उससे संख्यातगुणा अन्तर्मुहूर्त उभय मनोयोग का काल है। उससे संख्यातगुणा अन्तर्मुहूर्त अनुभय मनोयोग का काल है। इन चारों योगों के काल का जोड़ सामान्य मनोयोग का काल है। वह भी अन्तर्मुहूर्त मात्र ही है।

नोट—संदृष्टि के रूप में सत्य मनोयोग का काल १ है तो असत्य मनोयोग का काल ४ है, उभय मनोयोग का काल १६ है और अनुभय का ६४। इन सबका जोड़ ८५ होता है।

·४२ सयोगी जीव का सयोगी की अपेक्षा अन्तरकाल

·०१ पंचमनोगी तथा पंच वचन योगी में काल का अंतर

·०२ काययोगी में काल का अंतर

·०३ औदारिककाय योगी में काल का अंतर

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु कायजोगि-ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजद-सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।

—षट्० खण्ड० १। ६। सू १५३। पु ५। पृष्ठ० ८७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टीका—कुदो ? अप्पिदजोगसहिदअप्पिदगुणट्ठाणाणं सव्वकालं संभवादो। कधमेगजीवमासेज्ज अंतराभावो ? ण ताव जोगंतरगमणेणंतरं संभवदि, मग्गणाए विणासापत्ती दो। ण च अण्णगुणगमणेण अंतरं संभवदि, गुणंतरं गदस्स जीवस्य जोगंतरगमणेण विणा पुणो आगमणा भावादो। तम्हा एगजीवस्स वि णत्थि चेव अंतरं।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।

—षट्० खण्ड० १। ६। सू १५४। पु ५। पृष्ठ० ८८

टीका—सुगममेदं।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।

—षट्० खण्ड० १। ६। सू १५५। पु ५। पृष्ठ० ८८

टीका—कुदो ? दोण्हं रासीणं सांतरत्तादो वि अहियमंतरं किण्ण होदि ? सहावदो।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।

—षट्० खण्ड० १। ६। सू १५६। पु ५। पृष्ठ० ८८

टीका—कुदो ? गुण-जोगंतरगमणेहि तदसंभवा।

चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं।

—षट्० खण्ड० १। ६। सू १५७। पु ५। पृष्ठ० ८८

टीका—कुदो ? जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण वासपुधत्तमिच्चेएहि ओघादो भेदाभावा।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।

—षट्० खण्ड० १। ६। सू १५८। पु ५। पृष्ठ० ८९

टीका—जोग-गुणंतरगमणेण तदसंभवा। एगजोगपरिणमकालादो गुण-कालो संखेज्जगुणो त्ति कधं णव्वदे ? एगजीवस्स अंतराभावपदुप्पायणसुत्तादो।

चदुण्हं खवाणमोघं।

—षट्० खण्ड० १। ६। सू १५९। पु ५। पृष्ठ० ८९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टीका—णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं, उक्कस्सेण छम्मासं ; एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरमिच्चेदेहि भेदाभावा।

·०४ औदारिकमिश्र काययोगी का काल का अंतर

ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।

—षट्० खण्ड० १। ६। सू १६०। पु ५। पृष्ठ० ८९

टीका—तम्हि जोग-गुणंतरसंकंतीए अभावादो।

सासणसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं।

—षट्० खण्ड० १। ६। सू १६१। पु ५। पृष्ठ० ८९। ९०

टीका—कुदो ? जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ; इच्चेदेहि ओघादो भेदाभावा।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।

—षट्० खण्ड० १। ६। सू १६२। पु ५। पृष्ठ० ९०

टीका—कुदो ? तत्थ जोगंतरगमणाभावा। गुणंतरं गदस्स वि पडिणियत्तिय सासणगुणेण तम्हि चेव जोगे परिणमणाभावा।

असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।

—षट्० खण्ड० १। ६। सू १६३। पु ५। पृष्ठ० ९०

टीका—कुदो ? देव-णेरइय-मणुसअसंजदसम्मादिट्ठीणं मणुसेसु उप्पत्तीए विणा मणुसअसंजदसम्मादिट्ठीणं तिरिक्खेसु उप्पत्तीए विणा एगसमयं असंजदसम्मादिट्ठिविरहिदओरालियमिस्सकायजोगस्स संभवादो।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं।

—षट्० खण्ड० १। ६। सू १६४। पु ५। पृष्ठ० ९०

टीका—तिरिक्ख-मणुस्सेसु वासपुधत्तमेत्तकालमसंजदसम्मादिट्ठीणमुववादाभावा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।

—षट्० खण्ड० १ । ६ । सू १६५ । पु ५ । पृष्ठ० ९० । ९१

टीका तम्हि तस्स गुण-जोगंतरसंकंतीए अभावा ।

सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।

—षट्० खण्ड० १ । ६ । सू १६६ । पु ५ । पृष्ठ० ९१

टीका कुदो ? कवाडपज्जायविरहिदकेवलीणमेगसमओवलंभा ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।

—षट्० खण्ड० १ । ६ । सू १६७ । पु ५ । पृष्ठ० ९१

टीका—कवाडपज्जाएण विणा केवलीणं वासपुधत्तच्छणसंभवादो ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।

—षट्० खण्ड० १ । ६ । सू १६८ । पु ५ । पृष्ठ० ९१

टीका—कुदो ? जोगंतरमगतूण ओरालियमिस्सकायजोगे चेव ट्ठिदस्स अंतरासंभवा ।

·०५ वैक्रियकाययोगी का काल का अन्तर

वेउव्वियकायजोगीसु चदुट्ठाणीणं मणजोगिभंगो ।

—षट्० खण्ड० १ । ६ । सू १६९ । पु ५ । पृष्ठ० ९१

टीका—कुदो ? णाणेगजीवं पडुच्च अंतराभ वेण साधम्मादो ।

·०९ कार्मणकाययोगी का काल का अन्तर

कम्मइकायजोगीसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठिअसंजदसम्मादिट्ठि-सजोगिकेवलीणं ओरालियमिस्सभंगो ।

—षट्० खण्ड० १ । ६ । सू १७७ । पु ५ । पृष्ठ० ९३ । ९४

टीका—मिच्छादिट्ठीणं णाणेगजीवं पडुच्च अंतराभावेण ; सासण-सम्मादिट्ठीणं णाणाजीवगयएयसमय पलिदोवमासंखेज्जदिभागंतरेहि, एगजीवगय-अंतराभावेण ; असंजदसम्मादिट्ठीणं णाणाजीवगयएयसमयमास पुधत्तंतरेहि, एगजीवगयअंतराभावेण ; सजोगिकेवलि-णाणाजीवगयएयसमय-वासपुधत्तेहि, एगजीवगयअंतराभावेण च दोण्हं समाणत्तुवलंभा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·०१ मनोयोगी और वचनयोगी का अन्तरकाल

·०२ काययोगी का अन्तरकाल

·०३ औदारिककाययोगी का अन्तरकाल

·०४ औदारिकमिश्रकाययोगी का अन्तरकाल

·०५ वैक्रियकाययोगी का अन्तरकाल

·०९ कार्मणकाययोगी का अन्तरकाल

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-कायजोगि-ओरालियकायजोगि-ओरालियमिस्सकायजोगि-वेउव्वियकायजोगि-कम्मइयकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि।

—षट्० खण्ड० २। ९। सू २१। पु ७। पृष्ठ० ४८४

टीका—सुगमं।

णत्थि अंतरं।

—षट्० खण्ड० २। ९। सू २२। पु ७। पृष्ठ० ४८४

टीका—सुगमं।

णिरंतरं।

—षट्० खण्ड० २। ९। सू २३। पु ७। पृष्ठ० ४८४

टीका—सुगमं।

योगमार्गणा के अनुसार पांच मनोयोगी, पांच वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी और कार्मणकाययोगी जीवों का अन्तर नहीं होता है।

अस्तु—वे जीव राशियां निरन्तर हैं।

·०६ वैक्रियमिश्रकाययोगी का काल का अन्तर

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।

—षट्० खण्ड० १। ६। सू १७०। पु ५। पृष्ठ० ९१। ९२

टीका—तं जहा—वेउव्वियमिस्सकायजोगिमिच्छादिट्ठिणो सव्वे वेउव्वियकायजोगं गदा। एगसमयं वेउव्वियमिस्सकायजोगो मिच्छादिट्ठीहि विरहिदो दिट्ठो। विदियसमए सत्तट्ठ जणा वेउव्वियमिस्सकायजोगे दिट्ठा लद्धमेगसमयमंतरं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्कस्सेण बारस मुहुत्तं ।

—षट्० खण्ड० १ । ६ । सू १७१ । पु ५ । पृष्ठ० ९२

टीका—तं जधा—वेउव्वियमिस्समिच्छादिट्ठीसु सव्वेसु वेउव्वियकायजोगं गदेसु बारसमुहुत्तमेत्तमंतरिय पुणो सत्तट्ठजणेसु वेउव्वियमिस्सकायजोगं पडिवण्णेसु बारहमुहुत्तंतर होदि ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।

—षट्० खण्ड० १ । ६ । सू १७२ । पु ५ । पृष्ठ० ९२

टीका—तत्थ जोग-गुणतरगमणाभावा ।

सासणासम्मादिट्ठी-असंजदसम्मादिट्ठीणं ओरालियमिस्सभंगो ।

—षट्० खण्ड० १ । ६ । सू १७३ । पु ५ । पृष्ठ० ९२ । ३

टीका—कुदो ? सासणसम्मादिट्ठीणं णाणाजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण एगसमयं, पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो तेहि, एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरंतेण; असंजदसम्मादिट्ठीणं णाणाजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सगयएगसमयमासपुधत्तंतरेण, एगजीवं पडुच्च अंतराभावेण च तदो भेदाभावा ।

·०६ वैक्रियमिश्रकाययोगी का अन्तरकाल

वेउव्वियमिस्सकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?

—षट्० खण्ड० २ । ९ । सू २४ । पु ७ । पृष्ठ० ४८५

टीका—सुगमं ।

जहण्णेण एगसमयं ।

—षट्० खण्ड० २ । ९ । सू २५ । पु ७ । पृष्ठ० ४८५

टीका—कुदो ? वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु सव्वेसु पज्जत्तीओ समाणिदेसु एगसमयमंतरिदूण बिदियसमए देवेसु णेरइएसु वेउव्वियमिस्सकायजोगीणमंतरं एगसमयं होदि ।

उक्कस्सेण बारसमुहुत्तं ।

—षट्० खण्ड० २ । ९ । सू २६ । पु ७ पृष्ठ० ४८५

टीका—देवेसु णेरइएसु वा अणुप्पज्जमाणा जीवा जदि सुट्ठु बहुअं कालमच्छंति तो बारस मुहुत्ताणि चेव । कधमेदं णव्वदे ? जिणवयणविणिग्गयवयणादो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों का अन्तर जघन्य एक समय होता है। क्योंकि, सब वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों के पर्याप्तियों के पूर्ण कर लेने पर एक समय का अन्तर होकर द्वितीय समय में देवों व नारकियों में उत्पन्न होने पर वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों का अन्तर एक समय होता है।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों का अन्तर उत्कृष्ट बारह मुहूर्त होता है। क्योंकि देव अथवा नारकियों में न उत्पन्न होने वाले जीव यदि बहुत अधिक काल तक रहते हैं तो बारह मुहूर्त तक ही होते हैं।

अस्तु—यह जिन भगवान के मुख से निकले हुए वचनों से जाना जाता है।

·०७ आहारककाययोगी का काल का अन्तर

·०८ आहारकमिश्रकाययोगी का काल का अन्तर

आहारककायजोगीसु आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेणं एगसमयं।

—षट्० खण्ड० १। ६। सू १७४। पु ५। पृष्ठ० ९३

टीका—सुगममेदं।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं।

—षट्० खण्ड० १। ६। सू १७५। पु ५। पृष्ठ० ९३

टीका—एदं पि सुगममेव।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।

—षट्० खण्ड० १। ६। सू १७६। पु ५। पृष्ठ० ९३

टीका—तम्हि जोग-गुणंतरग्गहणाभावा।

·०७ आहारककाययोगी का अन्तरकाल

·०८ आहारकमिश्रकाययोगी का अन्तरकाल

आहारककायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?

—षट्० खण्ड० २। ९। सू २७। पु ७। पृष्ठ० ४८५

टीका—सुगमं।

जहण्णेण एगसमयं।

—षट्० खण्ड० २। ९। सू २८। पु ७। पृष्ठ० ४८६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टीका—कुदो ? आहार-आहारमिस्सजोगेहि विणा तिहुवणजीवाणमेग-समयमुवलंभादो ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।

—षट्० खण्ड० २ । ९ । सू २९ । पु ७ । पृष्ठ० ४८६

टीका—कुदो ? दोहि वि जोगेहि विणा सव्वपमत्तसंजदाणं वासपुधत्ता-वट्ठाणदंसणादो ।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवों का अन्तर जघन्य एक समय होता है । क्योंकि, आहारक और आहारकमिश्रकाययोगियों के बिना तीनों लोकों के जीव एक समय पाये जाते हैं ।

उपर्युक्त जीवों का अन्तर उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व प्रमाण होता है । क्योंकि, उक्त दोनों ही योगों के बिना समस्त प्रमत्तसंयतों का वर्षपृथक्त्वकाल तक अवस्थान देखा जाता है ।

योग का अन्तरकाल

उवसम सुहुमाहारे वेगुव्वियमिस्सणर अपज्जते ।
सासणसम्मे मिस्से सांतरगा मग्गणाअट्ठ ॥

सत्तदिणा चउम्मासा वासपुधत्तं च बारसमुहुत्ता ।
पल्लासंखं तिण्हं वरमवरं एगसमओ दु ॥

—गोजी० गा० १४३, १४४

टीका—× × × तच्च उत्कृष्टेन औपशमिकसम्यग्दृष्टीनां सप्त दीनानि । तदनन्तरं कश्चित्स्यादेवेत्यर्थः × × × आहारकतन्मिश्रकाययोगिना वर्षपृथक्त्वं । त्रिकादुपरि नवकादधः पृथक्त्वमित्यागमसंज्ञा । वैक्रियमिश्रकाययोगिणां द्वादश-मुहुर्ताः । × × × । तासां जघन्येनान्तरं एकसमय एव ज्ञातव्यः ।

आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगवालों का उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । तीन से ऊपर और नौ से नीचे की संख्या को आगम में पृथक्त्व संज्ञा है । वैक्रियिक-मिश्रकाययोगियों का अन्तर बारह मुहूर्त है । इनका जघन्य अन्तर एक समय ही जानना चाहिए ।

विशेष—सत्यादि चार मनोयोग और चार वचनयोग, वैक्रियिककाययोग, औदारिक-काययोग, औदारिकमिश्रकाययोग व कार्मणकाययोग का अन्तर नहीं है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·१० अंतरानुगम से संचित योगी जीवों का अन्तरकाल

पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीणं णेरइयभंगो। कायजोगीणमेइंदियभंगो। णवरि जहण्णमंतरं एगसमओ। ओरालियकायजोगि-ओरालियमिस्सकाय-जोगीणं कदिसंचिदाणं एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण तेत्तीस-सागरोवमाणि सादिरेयाणि। वेउव्वियकायजोगीणं एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टा। वेउव्वियमिस्स-कायजोगीणं अंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण बारसमुहुत्ताणि। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण दसवास-सहस्साणि सादिरेयाणि, उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीणं तिण्णिपदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि। णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण वासपुधत्तं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं। कम्मइयकायजोगीणं कदिसंचिदाणं अंतरं केवचिरं कालादो होदि? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं तिसमऊणं, उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदि-भागो असंखेज्जाओ ओसप्पिणीउस्सप्पिणीओ।

—षट्० खण्ड० ४। १। सू ६६। पु ९। पृष्ठ० ३१२

पांच मनोयोगी और पांच वचनयोगी जीवों की प्ररूपणा नारकियों के समान है। विशेषता इतनी है कि इनका जघन्य अन्तर एक समय होता है।

औदारिककाययोगी और औदारिकमिश्रकाययोगी कृति संचित जीवों का अन्तर एक जीव की अपेक्षा जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट से तेतीस सागरोपम से कुछ अधिक है।

वैक्रियकाययोगियों का अन्तर एक जीव की अपेक्षा जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्तकाल है।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों का अन्तरकाल कितने काल तक होता है। नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से बारह मुहूर्त प्रमाण अन्तर होता है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य से दस हजार वर्षों से कुछ अधिक और उत्कर्ष से असंख्यात पुद्गल-परिवर्तन प्रमाण अनन्तकाल तक होता है।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी तीनों पद वालों का अन्तर कितने काल तक होता है। नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से वर्ष-पृथक्त्व प्रमाण उक्त जीवों का अन्तर होता है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य से अन्त-र्मुहूर्त और उत्कर्ष से कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कार्मणकाययोगी कृत संचितों का अन्तर कितने काल तक होता है ? एक जीव की अपेक्षा जघन्य से तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहण और उत्कृष्ट से अंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र असंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल तक होता है।

नोट—तीन पद—कृति, नोकृति और अवक्तव्य है।

·४३ सयोगीजीव और भाव

·०१ पंच मनोयोगी तथा पंच वचनयोगी का भाव

·०२ काययोगी का भाव

·०३ औदारिक काययोगी का भाव

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगिकायजोगि-ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ओघं।

—षट्० खण्ड० १। ७। सू ३२। पु ५। पृष्ठ० २१८

टीका—सुगममेदं।

·०४ औदारिकमिश्र काययोगी का भाव

ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठिसासणसम्मादिट्ठीणं ओघं।

—षट्० खण्ड० १। ७। सू ३३। पु ५। पृष्ठ० २१८

टीका—एदं पि सुगमं।

असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, खइओ वा खओवसमिओ वा भावो।

—षट्० खण्ड० १। ७। सू ३४। पु ५। पृष्ठ० २१८। ९

टीका—कुदो ? खइय-वेदगसम्मादिट्ठीणं देव-णेरइयमणुसाणं तिरिक्ख-मणुसेसु उप्पज्जमाणाणमुवलंभा। ओवसमिओ भावो एत्थ किण्ण परुविदो ? ण, चउग्गइउवसमसम्मादिट्ठीणं मरणाभावादो ओरालियमिस्सुम्हि उवसमसम्मत्तस्स-वलंभाभावा। उवसमसेढिं चढंत-ओअरंतसंजदाणमुवसमसम्मत्तेण मरणं अत्थि त्ति चे सच्चमत्थि, किंतु ण ते उवसमसम्मत्तेण ओरालियमिस्सकायजोगिणो होंति, देवगदिं मोत्तूण तेसिमण्णत्थ उप्पत्तीए अभावा।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो।

—षट्० खण्ड० १। ७। सू ३५। पु ५। पृष्ठ० २१९

टीका—सुगममेदं।

सजोगिकेवलि त्ति को भावो, खइओ भावो।

—षट्० खण्ड० १। ७। सू ३६। पु ५। पृष्ठ० २१९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टीका—एदं पि सुगमं ।

·०५ वैक्रिय काययोगी का भाव

वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ओघभंगो ।

—षट्० खण्ड० १ । ७ । सू ३७ । पु ५ । पृष्ठ० २१९ । २२०

टीका—एदं पि सुगमं ।

·०६ वैक्रियमिश्र काययोगी का भाव

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ।

—षट्० खण्ड० १ । ७ । सू ३८ । पु ५ । पृष्ठ० २२०

टीका—कुदो ? मिच्छादिट्ठीणमोदइएण, सासणसम्मादिट्ठीणं, पारिणामिएण, असंजदसम्मादिट्ठीण ओवसमिय-खइय-खओवसमियभावेहि ओघमिच्छादिट्ठिआदीहि साधम्मुवलंभा ।

·०७ आहारक काययोगी का भाव

·०८ आहारकमिश्र काययोगी का भाव

आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदा त्ति को भावो, खओवसमिओ भावो ।

—षट्० खण्ड० १ । ७ । सू ३९ । पु ५ । पृष्ठ० २२० । २२१

टीका—कुदो ? चारित्तावरणचदुसंजलण-सत्तणोकसायाणमुदए संते वि पमादाणुविद्धसंजमुवलंभा । कधमेत्थ खओवसमो । पत्तोदयएक्कारसचारित्तमोहणीयपयडिदेसघादिफद्दयाणमुवसमसण्णा, णिरवसेसेण चारित्तघायणसत्तीए तत्थुवसमुवलंभा । तेसिं चेव सव्वघादिफद्दयाणं खयसण्णा, णट्ठोदयभावत्तादो । तेहि दोहिं मि उप्पण्णो संजमो खओवसमिओ । अधवा एक्कारसकाम्माणमुदयस्सेव खओवसमसण्णा । कुदो ? चारित्तघायणसत्तीए अभावस्सेव तव्ववएसादो । तेण उप्पण्ण इदि खओवसमिओ पमादाणुविद्धसंजमो ।

·०८ कार्मण काययोगी का भाव

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी सजोगिकेवली ओघं ।

—षट्० खण्ड० १ । ७ । सू ४० । पु ५ । पृष्ठ० २२१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टीका—कुदो ? मिच्छादिट्ठीणमोदइएण, सासणाणं पारिणामिएण, कम्मइयकायजोगिअसंजदसम्मादिट्ठीणं ओवसमिय-खइय-खओवसमियभावेहि, सजोगिकेवलीणं खइएण भावेण ओघम्मि गदगुणट्ठाणेहि साधम्मुवलंभा।

·१० सयोगी और भाव

× × ×। सजोगो त्ति को भावो ? अणादिपारिणामिओ भावो। णोवसमिओ, मोहणीए अणुवसंते वि जोगुवलंभा। ण खइओ, अण्णप्पसरूवस्स कम्माणं खएणुप्पत्तिविरोहा। ण घादिकम्मोदयजणिओ, णट्ठे वि घादिकम्मोदए केवलिम्हि जोगुवलंभा। णो अघादिकम्मोदयजणिदो वि, संते वि अघादिकम्मोदए अजोगिम्हि जोगाणुवलंभा। ण सरीरणामकम्मोदयजणिदो वि, पोग्गलविवाइयाणं जीवपरिफद्दणहेउत्तविरोहा। कम्मइयसरीरं ण पोग्गलविवाई, तदो पोग्गलाणं वण्ण-रस-गंध-फास-संठाणागमणादीणमणुवलंभा। तदुप्पाइदो जोगो होदु चे ण, कम्मइयसरीरं पि पोग्गलविवाई चेव, सव्वकम्माणमासयत्तादो। कम्मइओदयविणट्ठसमए चेव जोगविणासदंसणादो कम्मइयसरीरजणिदो जोगो चे ण, अघाइकम्मोदयविणासाणंतरं विणस्संतभवियत्तस्स पारिणामियस्स ओदइयत्तप्पसंगा। तदो सिद्धं जोगस्स पारिणामियत्तं। अधवा ओदइओ जोगो, सरीणामकम्मोदयविणासाणंतरं जोगविणासुवलंभा। ण च भवियत्तेण विउवचारो, कम्मसंबंध विरोहिणो तस्स कम्मजणिदत्तविरोहा।

—षट्० खण्ड० १, ७। सू ४८ टीका। पु ५। पृष्ठ० २२५। २६

जोगमग्गणा वि ओदइया, णामकम्मस्स उदीरणोदयजणिदत्तादो।

—षट्० खण्ड० ४, १। सू ६६। टीका। पु ९। पृष्ठ० ३१६

'सयोग' यह कौन सा भाव है ? अनादि पारिणामिक भाव है, क्योंकि योग औपशमिक भाव तो नहीं है, क्योंकि मोहनीय कर्म के उपशम नहीं होने पर भी योग प्राप्त होता है। वह क्षायिक भाव भी नहीं है, क्योंकि आत्मस्वरूप से रहित कर्मों के क्षय से योग की उत्पत्ति मानने में विरोध आता है। योग घातिकर्मोदयजनित भी नहीं है, क्योंकि घातिकर्मोदय के नष्ट हो जाने पर भी सयोगिकेवली में योग का सद्भाव रहता है। योग अघातिकर्मोदयजनित भी नहीं है, क्योंकि अघातिकर्मोदय के सद्भाव में भी अयोगिकेवली में योग नहीं रहता है। योग शरीर नामकर्मोदयजनित भी नहीं है, क्योंकि पुद्गलविपाकी प्रकृतियों को जीव-परिस्पन्द का कारण मानने में विरोध आता है।

यद्यपि कार्मणशरीर पुद्गलविपाकी नहीं है, क्योंकि उससे पुद्गलों के वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श और संस्थान आदि का आगमनादि नहीं होता है ; फिर भी योग को कार्मण-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शरीर से उत्पन्न होने वाला नहीं मानना चाहिए ; क्योंकि सभी कर्मों का आश्रय होने के कारण कार्मणशरीर भी पुद्गलविपाकी ही है।

यद्यपि कार्मणशरीर के उदय विनष्ट होते समय में ही योग का विनाश देखा जाता है तथापि योग को कार्मणशरीरजनित नहीं मानना चाहिए ; क्योंकि अघातिकर्मोदय के विनाश होने के अनन्तर ही विनष्ट होने वाला पारिणामिक भव्यत्व भाव है उसको भी औदयिक स्वीकार करने का प्रसंग उपस्थित हो जायगा।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर योग की पारिणामिकता सिद्ध हुई। अथवा योग औदयिक भाव है, क्योंकि शरीरनामकर्मोदय के विनष्ट होने के पश्चात् ही योग का विनाश देखा जाता है। ऐसा मानने पर भव्यत्व भाव के साथ व्यभिचार भी नहीं आता है, क्योंकि कर्म सम्बन्ध के विरोधी पारिणामिक भाव की कर्म से उत्पत्ति मानने में विरोध आता है।

·११ भावानुगम से संचित योगी जीवों के भाव

·१ जोगमग्गणा वि ओदइया, णामकम्मस्स उदीरणोदयजणिदत्तादो।

—षट्० सू ४। १। ६६। पु ९। पृष्ठ० ३१६

योगमार्गणा भी औदयिक है, क्योंकि वह नामकर्म की उदीरणा व उदय से उत्पन्न होती है।

·२ लेस्साभग्गणा ओदइया, कसायाणुविद्धजोगं मोत्तूण लेस्साभावादो।

—षट्० सू ४। १। ६६। पु ९। पृष्ठ० ३१७

लेश्या मार्गणा औदयिक है, क्योंकि कषायानुविद्ध योग को छोड़कर लेश्या का अभाव है, अर्थात् कषायानुरंजित योगप्रवृत्ति को लेश्या कहते हैं। अतः वह औदयिक है।

·४४ सयोगी जीव का भागाभाग

·०१ मनोयोगी और वचनयोगी का भागाभाग

·०५ वक्रिय काययोगी का भागाभाग

·०६ वैक्रियमिश्र काययोगी का भागाभाग

·०७ आहारक काययोगी का भागाभाग

·०८ आहारकमिश्र काययोगी का भागाभाग

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-वेउव्वियकायजोगि-वेउव्विय-मिस्सकायजोगि-आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?

— षट्० खण्ड० २। १०। सू ३५। पु ७। पृष्ठ० ५०७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टीका—सुगमं ।

अणंतो भागो ।

—षट्० खण्ड० २ । १० । सू ३६ । पु ७ । पृष्ठ० ५०७

टीका—कुदो ? एदेहि सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे अणंतरूवोवलंभादो ।

योगमार्गणा के अनुसार पांच मनोयोगी, पांच वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीव सर्व जीवों के अनन्तवें भाग प्रमाण है। क्योंकि इनका सर्वजीवराशि में भाग देने पर अनन्तरूप प्राप्त होते हैं ।

·०२ काययोगी का भागाभाग

कायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?

—षट्० खण्ड० २ । १० । सू ३७ । पु ७ । पृष्ठ० ५०७

टीका—सुगमं ।

अणंता भागा ।

—षट्० खण्ड० २ । ११ । सू ३८ । पु ७ । पृष्ठ० ५०७ । ८

टीका—कुदो ? अप्पिददव्ववदिरित्तसव्वदव्वेहि सव्वजीवरासिमवहिरिज्जमाणे लद्धअणंत्तसलागाओ विरलिय सव्वजीवरासिं समखंडं करिय दिण्णे तत्थेगरूवधरिदं मोत्तूण सेसबहुभागेसु समुदिदेसु कायजोगिदव्वपमाणुवलंभादो ।

काययोगी जीव सब जीवों के अनन्त बहुभाग प्रमाण है। क्योंकि विवक्षित द्रव्य से भिन्न सब द्रव्यों द्वारा सर्व राशि को अपहृत करने पर प्राप्त हुई अनन्त शलाकाओं का विरलन कर व सर्व जीव राशि को समखण्ड करके देने पर उसमें एक रूप धरित को छोड़कर शेष समुदित बहुभागों में काययोगी द्रव्य का प्रमाण पाया जाता है ।

·०३ औदारिक काययोगी का भागाभाग

ओरालियकायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?

—षट्० खण्ड० २ । १० । सू ३९ । पु ७ । पृष्ठ० ५०८

टीका—सुगमं ।

संखेज्जा भागा ।

—षट्० खण्ड० २ । १० । सू ४० । पु ७ । पृष्ठ० ५०८

टीका—कुदो ? अणप्पिदसव्वदव्वेण सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे संखेज्जरूवाणमुवलंभादो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

औदारिक काययोगी जीव सर्व जीवों के संख्यात बहुभाग प्रमाण हैं। क्योंकि, अविवक्षित सर्व द्रव्य का जीव राशि में भाग देने पर संख्यात रूप उपलब्ध होते हैं।

·०४ औदारिकमिश्र काययोगी का भागाभाग

ओरालियमिस्सकायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?

—षट्० खण्ड० २। १०। सू ४१। पु ७। पृष्ठ० ५०८

टीका—सुगमं।

संखेज्जदिभागो।

—षट्० खण्ड० २। १०। सू ४२। पु ७। पृष्ठ० ५०८। ९

टीका—कुदो ? अप्पिददव्वेण सव्वरासिम्हि भागे हिदे संखेज्जरूवाणमुवलंभालो।

औदारिकमिश्रकाययोगी जीव सब जीवों के संख्यातवें भाग प्रमाण है। क्योंकि विवक्षित द्रव्य का सर्व जीवराशि में भाग देने पर संख्यात रूप उपलब्ध होते हैं।

·०९ कार्मण काययोगी का भागाभाग

कम्मइयकायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?

—षट्० खण्ड० २। १०। सू ४३। पु ७। पृष्ठ० ५०९

टीका—सुगमं।

असंखेज्जदिभागो।

—षट्० खण्ड० २। १०। सू ४४। पु ७। पृष्ठ० ५०९

टीका—कुदो ? अप्पिददव्वेण सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे असंखेज्जरूवोवलंभालो।

कार्मण काययोगी जीव सब जीवों के असंख्यातवें भाग-प्रमाण हैं। क्योंकि, विवक्षित द्रव्य का सर्व जीव राशि में भाग देने पर असंख्यात रूप उपलब्ध होते हैं।

·४५ सयोगी जीवों के भागाभाग रूप द्रव्य प्रमाण

भागाभागं वत्तइस्सामो। सव्वजीवरासिं संखेज्जखंडे कए तत्थ बहुखंडा ओरालियकायजोगरासीओ सेसमसंखेज्जखंडे कए बहुखंडा ओरालियमिस्सकायजोगरासी होदि। सेसमणंतखंडे कए बहुखंडा कम्मइयकायमिच्छाइट्ठिरासी होदि। सेसमंणंतखंडे कए बहुखंडा सिद्धा होंति। सेसमसंखेज्जखंडे कए बहुखंडा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असच्चमोसवचिजोगिमिच्छाइट्ठिणो होंति। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा वेउव्वियकायजोगिमिच्छाइट्ठिणो होंति। सेसमसंखेज्जखंडे कए बहुखंडा सच्चमोसवचिजोगिमिच्छाइट्ठिणो होंति। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा मोसवचिजोगिमिच्छाइट्ठिणो होंति। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा सच्चवचिजोगिमिच्छाइट्ठिणो होंति। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा असच्चमोसमणमिच्छाइट्ठी होंति। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा सच्चमोसमणमिच्छाइट्ठी होंति। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा मोसमणमिच्छाइट्ठिणो होंति। सेसं संखेज्जखडे कए बहुखंडा सच्चमणमिच्छाइट्ठी होंति। सेसमसंखेज्जखंडे कए बहुखंडा वेउव्वियमिस्सकायजोगिमिच्छाइट्ठिणो होंति। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा वेउव्वियकायजोगिअसंजदसम्माइट्ठिरासी होदि। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा असच्चमोसवचिजोगिअसंजदसम्माइट्ठिरासी होदि। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा सच्चमोसवचिजोगिअसंजदसम्माइट्ठिरासी होदि। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा मोसवचिजोगिअसंजदसम्माइट्ठिरासी होदि। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा सच्चवचिजोगिअसंजदसम्माइट्ठिरासी होदि। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा असच्चमोसमणजोगिअसंजदसम्माइट्ठिरासी होदि। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा सच्चमोसमणजोगिअसंजदसम्माइट्ठिरासी होदि। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा मोसमणजोगिअसंजदसम्माइट्ठिरासी होदि। सेसमसंखेज्जखंडे कए बहुखंडा सच्चमणजोगिअसंजदसम्माइट्ठिरासी होदि। सेसं संखेज्जखंडे कदे बहुखंडा वेउव्वियकायजोगिसम्मामिच्छाइट्ठिरासी होदि। सेसं संखेज्जखंडे कदे बहुखंडा असच्चमोसवचिजोगिसम्मामिच्छाइट्ठिरासी होदि। सेसं संखेज्जखंडे कदे बहुखंडा सच्चमोसवचिजोगिसम्मामिच्छाइट्ठिरासी होदि। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा मोसवचिजोगिसम्मामिच्छाइट्ठिरासी होदि। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा सच्चवचिजोगिसम्मामिच्छाइट्ठिरासी होदि। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा असच्चमोसमणजोगिसम्मामिच्छाइट्ठिरासी होदि। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा सच्चमोसमणजोगिसम्मामिच्छाइट्ठिरासी होदि। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा मोसमणजोगिसम्मामिच्छाइट्ठिरासी होदि। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा सच्चमणजोगिसम्मामिच्छाइट्ठिरासी होदि। ओघसासणरासीदो ओघसम्मामिच्छाइट्ठिरासी संखेज्जगुणो त्ति सुत्तसिद्धो। संपहि ओघसम्मामिच्छाइट्ठिरासिस्स संखेज्जदिभागो सच्चमणजोगिसम्मामिच्छाइट्ठिरासी कधं ओघसासणरासीदो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संखेज्जगुणो होदि त्ति उत्त वुच्चदे-जोगद्धागुणगारदो सम्मामिच्छाइट्ठिरासि पडि-सासणसम्माइट्ठिरासिस्स गुणगारो बहुगो, तेण सच्चमणजोगिसम्मामिच्छाइट्ठि-रासी सेसस्स संखेज्जभागो। तं कधं णव्वदे सुत्तेण विणा? णत्थि सुत्तं वक्खाणं वा, किंतु आइरियवयणमेव केवलमत्थि। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा वेउव्वियकायजोगिसासणसम्माइट्ठिरासी होदि। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा असच्चमोसवचिजोगिसासणसम्माइट्ठिरासी होदि। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा सच्चमोसवचिजोगिसासणसम्माइट्ठिरासी होदि। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा मोसवचिजोगिसासणसम्माइट्ठिरासी होदि। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा सच्चवचिजोगिसासणसम्माइट्ठिरासी होदि। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा असच्चमोसमणजोगिसासणसम्माइट्ठिरासी होदि। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा सच्चमोसमणजोगिसासणसम्माइट्ठिरासी होदि। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा मोसमणजोगिसासणसम्माइट्ठी होंति। सेसमसंखेज्जखंडे कए बहुभागा सच्चमण-जोगिसासणसम्माइट्ठी होंति। सेसमसंखेज्जखंडे कए तत्थ बहुखंडा ओरालिय-कायजोगिअसंजदसम्माइट्ठिरासी होदि। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा ओरालिय-कायजोगिसम्मामिच्छाइट्ठिरासी हुदि। सेसमसंखेज्जखंडे कए बहुखंडा ओरालिय-सासणसम्माइट्ठिरासी होदि। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा ओरालियकाय-जोगिसंजदासंजदरासी होदि। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा असच्चमोसव-चिजोगिसंजदासंजदरासी होदि। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा सच्चमोसवचि-जोगिसंजदासंजदरासी होदि। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा मोसवचिजोगि-संजदासंजदरासी होदि। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा सच्चवचिजोगिसंजदा-संजदरासी होदि। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा असच्चमोसमणजोगि संजदा-संजदरासी होदि। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा सच्चमोसमणजोगिसंजदा-संजदरासी होदि। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा मोसमणजोगिसंजदासंजदरासी होदि। सेसं संखेज्जखंडे कए बहुखंडा सच्चमणजोगिसंजदासंजदरासी होदि। सुत्तेण विणा वेउव्वियमिस्सकायजोगिअसंजदासम्माइट्ठिरासीतिरिक्खसम्मामिच्छा-इट्ठिप्पहुडि तीहिं विरासीहिंतो असंखेज्जगुणहीणो त्ति कधं णव्वदे? आइरिय-वयणादो। आइरियवयणमणेयंतमिदि चे, होदु णाम, णत्थि मज्झेत्थ मज्झेत्थ अग्गहो। सेसमसंखेज्जखंडे कए बहुखंडा वेउव्वियमिस्सकायजोगिअसंजदसम्मा-इट्ठीरासी होदि।

सेसमसंखेज्जखंडे कए बहुखंडा कम्मइयकायजोगिसी होदि। असंजद-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्माइट्ठिरासी होदि। सेसमसंखेज्जखंडे कए बहुखंडा कम्मइयकायजोगिअसंजद-सम्माइट्ठिरासी होदि। सेसमसंखेज्जखंडे कए बहुखंडा ओरालियमिस्सकायसासणसम्माइट्ठिरासी होदि। सेसमसंखेज्जखंडे कए बहुखंडा वेउव्वियमिस्सकायजोगिसासणा होंति। सेसमसंखेज्जखंडे कए बहुखंडा कम्मइयकायजोगिसासणसम्माइट्ठिरासी होदि। सेसं जाणिऊण णेयव्वं।

—षट्० खण्ड० १, २। सू १२३। टीका। पु ३। पृष्ठ० ४०४ से ४०८

अब भागाभाग को बतलाते हैं—सर्व जीव-राशि के संख्यात खण्ड करने पर उनमें से बहुभागप्रमाण औदारिककाययोगी जीव-राशि है। शेष एक भाग के असंख्यात खण्ड करने पर बहुभागप्रमाण औदारिकमिश्रकाययोगी जीव-राशि है। शेष एक भाग के अनन्त खण्ड करने पर बहुभागप्रमाण कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि राशि है। शेष एक भाग के अनन्त खण्ड करने पर बहुभागप्रमाण सिद्ध जीव है। शेष एक भाग के असंख्यात खण्ड करने पर बहुभाग अनुभय वचनयोगी मिथ्यादृष्टि है। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव है। शेष एक भाग के असंख्यात खण्ड करने पर उनमें से बहुभाग उभय वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीव है। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग मृषा वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीव है। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग सत्यवचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीव है। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग अनुभय मनोयोगी मिथ्यादृष्टि जीव है। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग उभय मनोयोगी मिथ्यादृष्टि जीव है। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग मृषा मनोयोगी मिथ्यादृष्टि जीव है। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग सत्य मनोयोगी मिथ्यादृष्टि जीव है। शेष एक भाग के असंख्यात खण्ड करने पर बहुभाग वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव है।

शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग वैक्रियिककाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीव है। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग अनुभय वचनयोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीव-राशि है। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग उभयवचनयोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीव राशि है। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर मृषा वचनयोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीव राशि है। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग सत्य वचनयोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीव राशि है। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग अनुभयमनोयोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीव राशि है। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग उभय मनोयोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीव राशि है। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग मृषा-मनोयोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीव राशि है। शेष एक भाग के असंख्यात खण्ड करने पर बहुभाग सत्य मनोयोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीव राशि है।

शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग वैक्रियिककाययोगी सम्यग्दृष्टि जीव-राशि है। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग अनुभय वचनयोगी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव-राशि है। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर उभय वचन-योगी सम्यग्दृष्टि जीव-राशि है। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग मृषावचनयोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव राशि है। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग सत्यवचनयोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव राशि है। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग उभय मनोयोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव राशि है। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग मृषामनोयोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव राशि है। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग सत्यमनोयोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव राशि है।

ओघ सासादनसम्यग्दृष्टि जीव राशि से ओघ सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव राशि संख्यात-गुणी है—यह सूत्र सिद्ध है। अब ओघ सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव राशि के संख्यातवें भाग प्रमाण सत्यमनोयोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव राशि ओघ सासादनसम्यग्दृष्टि जीव राशि से संख्यातगुणी कैसे हैं। आगे इसी विषय के पूछने पर कहते हैं—योगकाल के गुणकार से सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव राशि की अपेक्षा सासादनसम्यग्दृष्टि जीव राशि का गुणकार बहुत है, अतः सत्यमनोयोगी, सम्यग्दृष्टि जीव राशि भागाभाग में मृषा मनोयोगी सम्यग्दृष्टि का प्रमाण आने के अनन्तर जो एक भाग शेष रहता है, उसका संख्यातवां भाग है।

यद्यपि इस विषय में सूत्र या व्याख्यान नहीं पाया जाता है, किन्तु आचार्यों के वचन ही केवल पाये जाते हैं, जिससे यह कथन जाना जाता है।

सत्यमनोयोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव राशि के अनन्तर जो एक भाग शेष रहे उसके संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग वैक्रियिक काययोगी सासादन सम्यग्दृष्टि जीव राशि है। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग अनुभय वचनयोगी सासादन सम्यग्दृष्टि जीव राशि है। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग उभय वचनयोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीव राशि है। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग मृषा वचनयोगी सासादन-सम्यग्दृष्टि जीव राशि है। शेष एक भाग करने पर बहुभाग सत्य मनोयोगी सासादन सम्यग्दृष्टि जीव राशि है। शेष एक भाग करने पर उनमें से बहुभाग औदारिक काययोगी असंयत सम्यग्दृष्टि जीव राशि है। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग औदारिक काययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव राशि है। शेष एक भाग के असंख्यात खण्ड करने पर बहुभाग औदारिक काययोगी सासादन सम्यग्दृष्टि जीव राशि है।

शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग औदारिक काययोगी संयतासयत जीव राशि है। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग अनुभय वचनयोगी संयतासंयत जीव राशि है। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग उभय वचनयोगी संयतासंयत जीव राशि है। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग मृषा वचनयोगी संयतासंयत जीव राशि है। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग सत्य वचनयोगी संयतासंयत जीव राशि है। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करने पर बहुभाग अनुभय मनोयोगी संयतासंयत जीव राशि है। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग उभय मनोयोगी संयतासंयत जीव राशि है। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग मृषा मनोयोगी संयतासंयत जीव राशि है। शेष एक भाग के संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग सत्य मनोयोगी संयतासंयत जीव राशि है।

सूत्र के विना वैक्रियिकमिश्र काययोगी असंयत सम्यग्दृष्टि जीव राशि तिर्यंच सम्यग्-मिथ्यादृष्टि जीव राशि से लेकर तीन राशियों से असंख्यातगुणी हीन है—यह कथन आचार्यों के वचन से जाना जाता है।

चूंकि आचार्यों के वचनों में अनेकान्त है।

सत्य मनोयोगी संयतासंयत राशि के अनन्तर जो एक भाग शेष रहे उसके असंख्यात खण्ड करने पर बहुभाग वैक्रियमिश्र काययोगी असंयत सम्यग्दृष्टि जीव राशि है। शेष एक भाग के असंख्यात खण्ड करने पर बहुभाग कार्मणकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीव राशि है। शेष एक भाग के असंख्यात खण्ड करने पर बहुभाग औदारिकमिश्र काययोगी सासादन सम्यग्दृष्टि जीव राशि है। शेष एक भाग के असंख्यात खण्ड करने पर बहुभाग वैक्रियिकमिश्रकाययोगी सासादन सम्यग्दृष्टि जीव है। शेष एक भाग के असंख्यात खण्ड करने पर बहुभाग कार्मण काययोगी सासादन सम्यग्दृष्टि जीव राशि है। शेष कथन समझकर ले जाना चाहिए।

·४६ सयोगी जीवों का द्रव्य (संख्या) प्रमाण—

·०१ पांच मनोयोगी तथा तीन वचनयोगियों का द्रव्य प्रमाण—

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-तिण्णिवचिजोगीसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ? देवाणं संखेज्जदि भागो।

—षट्० खण्ड० १। २। सू १०३। पु ३। पृष्ठ० ३८६

टीका—एत्थ तिण्हं चेव वचिजोगाणं संगहो किमट्ठो कदो ? णं एस दोसो। कुदो ? वचिजोग-असच्चमोसवचिजोगेहि सह एदेसिं तिण्हं वचिजोगाणं दव्वालावं पडि समाणत्ताभावादो। सामण्णालावाणमेगजोगो भवदि, ण भिण्णालावाणं। देवाणं जाणि दव्व-काल-खेत्त-पमाणाणि पुव्वं परूविदाणि तेसिं संखेज्जदिभागो एदेसिमट्ठण्हं रासीणं पमाणं होदि। कुदो ? जदो एदे अट्ठ वि जोगा सण्णीणं चेव भवंति, णो असण्णीणं, तत्थ पडिसिद्धत्तादो। सण्णीसु वि पहाणा देवा चेव, सेसगदिसण्णीणं देवाणं संखेज्जदिभागत्तादो। तत्थ वि देवेसु पहाणो कायजोगरासी, मण-वचिजोगरासीदो संखेज्जगुणत्तादो। तं पि कधं जाणिज्जदे ? जोगद्धप्पा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहुगादो। तं जहा—'सव्वत्थोवा मणजोगद्धा। वचिजोगद्धा संखेज्जगुणा। कायजोगद्धा संखेज्जगुणा त्ति।' पुणो एदेसिमद्धाणं समासं काऊण तेण तिण्हं जोवाणं सण्णिरासिमोवट्टिय अप्पप्पणो अद्धाहि पुध पुध गुणिदे मण-वचि-काय जोगरासीओ हवंति। तदो ट्ठिदमेदं एदे अट्ठ वि मिच्छाइट्ठिरासीओ देवाणं संखेज्जदिभागो त्ति।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ओघं।

—षट्० खण्ड० १। २। सू १०४। पु ३। पृष्ठ० ३८७

टीका—पलिदोवमस्स असंखेज्जदि भागत्तं पडि ओघजीवेहि सह एदेसिं समाणत्तमत्थि त्ति ओघमिदि उत्तं। पज्जवट्ठियणए पुण अवलंबिज्जमाणे तेहिंतो एदेसिं अत्थि महंतो भेदो। कुदो? एदेसिमोघरासिस्स संखेज्जदि-भागत्तादो। तं पि कधं णव्वदे? पुव्वुत्तद्धप्पाबहुगादो। सेसं सुगमं।

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति दव्वपमाणेण केवडिया, संखेज्जा।

—षट्० सू १। २। सू १०५। पु ३। पृष्ठ० ३८७

टीका—एत्थ ओघरासिणा संखेज्जत्तं पडि एदेसिं रासीणं समाणत्ते संते किमट्ठमोघमिदि ण परुविदं सुत्ते? ण, एत्थ अवलंबिदपज्जवट्ठियणयत्तादो। सो वि एत्थ किमट्ठमवलंबिज्जदे? जोगद्धप्पाबहुगमस्सिऊण रासिविसेसपदुप्पायणट्ठं। कधं जोगद्धप्पाबहुगमिदि वुत्ते वुच्चदे—'सव्वत्थोवा सच्चमणजोगद्धा। मोसमण-जोगद्धा संखेज्जगुणा। सच्चमोसमणजोगद्धा संखेज्जगुणा। असच्चमोसमण-जोगद्धा संखेज्जगुणा। मणजोगद्धा विसेसाहिया। सच्चवचिजोगद्धा संखेज्जगुणा। मोसवचिजोगद्धा संखेज्जगुणा। सच्चमोसवचिजोगद्धा संखेज्जगुणा। असच्च-मोसवचिजोगद्धा संखेज्जगुणा। वचिजोगद्धा विसेसाहिया। कायजोगद्धा संखेज्ज-गुणा त्ति'।

योगमार्गणा के अनुवाद से पांचों मनोयोगियों और तीन वचनयोगियों में मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा देवों के संख्यातवें भाग हैं।

यहाँ वचनयोगियों और अनुभय वचनयोगियों के साथ इन तीन वचनयोगियों की द्रव्यालाप के साथ समानता नहीं पाई जाती है। समान्यालापों का ही एक योग ही होता है, भिन्नालापों का नहीं। अतः यहां तीन ही वचनयोगियों का संग्रह किया गया है। देवों का द्रव्य, क्षेत्र व काल की अपेक्षा जो प्रमाण पहले कह आये हैं। (देव असंख्यात है) उसके संख्यातवें भाग इन आठ राशियों का प्रमाण है। क्योंकि ये आठों योग संज्ञी जीवों के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही होते हैं। असंज्ञी जीवों के नहीं। क्योंकि असंज्ञियों में ये आठों योग प्रतिषिद्ध है। संज्ञियों में भी प्रधान देव ही है, क्योंकि शेष तीन गति के संज्ञी जीव देवों के संख्यातवें भाग ही है। यहाँ देवों में भी प्रधान काययोगियों की राशि है, क्योंकि काययोगियों का प्रमाण मनोयोगियों व वचनयोगियों से संख्यातगुणा है।

योगकाल के अल्पबहुत्व से यह जाना जाता है। वह इस प्रकार है—मनोयोग का काल सबसे स्तोक है, वचनयोग का काल उससे संख्यातगुणा है। काययोग का काल वचनयोग के काल से संख्यातगुणा है। अनन्तर इन कालों का जोड़ करके जो फल हो उससे तीन योगों की संज्ञी जीव-राशि को अपवर्तित करके जो लब्ध आवे उसे अपने-अपने काल से पृथक्-पृथक् गुणित करने पर मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी जीव-राशि होती है। इसलिये यह निश्चित हुआ ये आठ ही मिथ्यादृष्टि जीव राशियां देवों के संख्यातवें भाग है।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में पूर्वोक्त आठ योग वाले जीवों का प्रमाण सामान्य प्ररूपणा के समान पल्योपम के असंख्यातवें भाग है।

पल्योपम के असंख्यातवें भाग के प्रति ओघ जीवों के साथ इन आठ जीव-राशियों की समानता है। अतः सूत्र में 'ओघ' ऐसा कहा है। परन्तु पर्यायार्थिक नय का अवलम्बन करने पर तो सासादनादि संयतासंयतान्त, गुणस्थानप्रतिपन्न ओघ-प्ररूपणा से गुणस्थान-प्रतिपन्न इन आठ राशियों में महान भेद है, क्योंकि ये राशियां ओघ-राशि के संख्यातवें भाग है।

पूर्वोक्त योगकाल के अल्पबहुत्व से यह जाना जाता है।

प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में पूर्वोक्त आठ जीवराशियाँ द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा संख्यात है।

योगकाल का आश्रय लेकर राशि-विशेष का प्रतिपादन करने के लिए यहाँ पर पर्यायार्थिकनय का अवलम्बन लिया गया है।

योगकाल के आश्रय से अल्पबहुत्व :—

१—सत्यमनोयोग का काल सबसे स्तोक है।

२—मृषामनोयोग का काल उससे संख्यातगुणा है।

३—उभय मनोयोग का काल मृषामनोयोग के काल से संख्यातगुणा है।

४—अनुभय मनोयोग का काल उभय मनोयोग के काल से संख्यातगुणा है।

५—इससे मनोयोग का काल विशेष-अधिक है।

६—सत्यवचनयोग का काल मनोयोग के काल से संख्यातगुणा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७—मृषावचनयोग का काल उससे संख्यातगुणा है।

८—उभय वचनयोग का काल उससे संख्यातगुणा है।

९—अनुभय वचनयोग का काल उससे संख्यातगुणा है।

१०—वचनयोग का काल उससे विशेषाधिक है।

११—काययोग का काल उससे संख्यातगुणा है।

·०२ वचनयोगी तथा असत्यमृषा (अनुभय) वचनयोगियों का द्रव्य प्रमाण

वचिजोगि-असच्चमोसवचिजोगीसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया, असंखेज्जा।

—षट्० सू १। २। सू १०६। पु ३। पृष्ठ० ३८८

टीका—एत्थ मिच्छाइट्ठी इदि एगवयणणिद्दिसो, केवडिया इति बहुवयणणिद्दिसो; कधमेदाणं भिण्णाहियरणाणमेयट्ठपउत्ती? ण, एयाणेयाणमण्णोण्णाजहवुत्तीणमेयट्ठत्ताविरोहा। सेसं सुगमं। असंखेज्जा इदि सामण्णेण णवविहस्सासंखेज्जस्स गहणे पसत्ते अणिच्छिदासंखेज्जपडिसेहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।

—षट्० खण्ड० १। २। सू १०७। पु ३। पृष्ठ० ३८९

टीका—एदं सुत्तमइसुगमं। अणिच्छिदासंखेज्जासंखेज्जवियप्पपडिसेहणिमित्तमुत्तरसुत्तावदारो भवदि—

खेत्तेण वचिजोगि-असच्चमोसवचिजोगीसु मिच्छाइट्ठीहि पदरमवहिरदि अंगुलस्स संखेज्जदिभागवग्गपडिभागेण।

—षट्० खण्ड० १। २। सू १०८। पु ३। पृष्ठ० ३८९

टीका—वचिजोगो असच्चमोसवचिजोगो च वीइंदियप्पहुडीणमुवरिमाणं जीवसमासाणं भासापज्जत्तीए पज्जत्तयाण भवदि, तेण वि-ति-चउरिंदिय-असण्णिपंचिंदियपज्जत्तरासीओ एगट्ठं करिय वचिजोग-कायजोगद्धासमासेण खंडिय एगखंडे वचिजोगद्धाए गुणिय पंचिंदियअसच्चमोसवचिजोगरासिं पक्खित्ते अणच्चमोसवचिजोगरासी होदि। एत्थ सच्चादिसेसवचिजोगरासिं पक्खित्ते वचिजोगरासी होदि। अद्धासमासस्स आवलियाए गुणगारत्तेण दुविदसखेज्जरुवेहिंतो पदरंगुलस्स हेट्ठा भागहारत्तेण दुविदसखेज्जरुवाणि जेण संखेज्जगुणाणि तेण पदरंगुलस्स संखेज्जादिभागो भागहारो भवदि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वचनयोगियों और असत्यमृषा अर्थात् अनुभय वचनयोगियों में मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्य प्रमाण की अपेक्षा असंख्यात है।

'असंख्यात है' इस प्रकार सामान्य वचन देने से नौ प्रकार के असंख्यातों का ग्रहण प्राप्त होता है।

काल की अपेक्षा वचनयोगी और अनुभय वचनयोगी जीव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियों के द्वारा अपहृत होते हैं।

क्षेत्र की अपेक्षा वचनयोगियों और अनुभय वचनयोगियों में मिथ्यादृष्टि जीवों के द्वारा अंगुल के संख्यातवें भाग के वर्ग रूप प्रतिभाग से जगप्रतर अपहृत होता है।

द्वीन्द्रिय से लेकर ऊपर के जीव समासों में भाषापर्याप्ति से प्राप्त हुए जीवों के वचनयोग और अनुभय वचनयोग पाया जाता है अतः द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय व असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव राशि को एकत्रित करके और उसे वचनयोग और काययोग के काल के जोड़ रूप प्रमाण से खण्डित करके जो एक भाग लब्ध आवे उसे वचनयोग के काल से गुणित करके जो प्रमाण हो उसमें पंचेन्द्रिय अनुभय वचनयोगी राशि के मिला देने पर अनुभय वचनयोगी जीव राशि होती है। इसमें सत्य-वचनयोगी जीव राशि आदि शेष वचनयोगी जीव राशियों के मिला देने पर वचनयोगी जीव-राशि होती है।

यहाँ पर अद्धासमास के लिए आवली के गुणकार रूप से स्थापित संख्यात से प्रतरांगुल के नीचे भागहार रूप से स्थापित संख्यात चूंकि संख्यात गुणा है अतः प्रकृत में प्रतरांगुल का संख्यातवां भाग भागहार है।

सेसाणं मणिजोगिभंगो।

—षट्० खण्ड० १। २। सू १०९। पु ३। पृष्ठ० ३९०

टीका—जधा मणजोगरासी ओघसासणादीणं संखेज्जदिभागो, तहा वचिजोगि-असच्चमोसवचिजोगीसु सासणादओ ओघसासणादीणं संखेज्जदिभागो। सेसं सुगमं।

संपहि अप्पाबहुगबलेण पुव्विल्लसुत्तेसु वुत्तरासीणमवहारकाला परुविज्जंते। तं जहा संखेज्जरुवेहि सूचिअंगुले भागे हिदे लद्धे वग्गिदे वचिजोगि-अवहारकालो होदि। तम्हि संखेज्जरुवेहि खंडिय लद्धं तम्हि चेव पक्खित्ते असच्चमोसवचिजोगिअवहारकालो होदि। तम्हि संखेज्जरूवेहि गुणिदे वेउव्विय-कायजोगिअवहारकालो होदि। तम्हि संखेज्जरुवेहि गुणिदे सच्चमोस-वचिजोगिअवहारकालो होदि। तम्हि संखेज्जरुवेहि गुणिदे मोसवचिजोगि-अवहारकालो होदि। तम्हि संखेज्जरुवेहि गुणिदे सच्चवचिजोगि अवहारकालो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होदि। तम्हि संखेज्जरुवेहि गुणिदे मणजोगिअवहारकालो होदि। तं हि संखेज्जरुवेहि खंडिय लद्धं तम्हि चेव पक्खित्ते असच्चमोसमणजोगिअवहारकालो होदि। तम्हि संखेज्जरुवेहि गुणिदे सच्चमोसमणजोगिअवहारकालो होदि। तम्हि सखेज्जरुवेहि गुणिदे मोसमणजोगिअवहारकालो होदि। तम्हि संखेज्ज-रुवेहि गुणिदे सच्चमोसमणजोगिअवहारकालो होदि। तम्हि संखेज्जरुवेहि गुणिदे वेउव्वियमिस्सअवहारकालो होदि। किं कारणं ? जेण अंतोमुहुत्तमेत्त वेउव्विय मिस्सुवक्कमणकालादो संखेज्जवस्सा उवदेवाणमुवक्कमणकालो संखेज्जगुणो तेण देवाणं संखेज्जदिभागो वेउव्वियमिस्सरासी होदि। होंतो वि सच्चमणरासिस्स संखेज्जदिभागो। कुदो ? सच्चमणजोगद्धोवट्टिदसयलद्धासमासअंतोमुहुत्तमेत्त-द्धाए आवलियगुणगारसंखेज्जरुवेहिंतो वेउव्वियमिस्सद्धोवट्टिदसंखेज्जवस्सेसु संखे-ज्जगुणरुवोवलंभादो।

सासादन सम्यग्दृष्टि आदि शेष गुणस्थानवर्ती वचनयोगी और अनुभय वचनयोगी जीव सासादन सम्यग्दृष्टि आदि मनोयोगि-राशि के समान है।

जिस प्रकार मनोयोगी जीव-राशि ओघसासादनसम्यग्दृष्टि आदि के संख्यातवें भाग है, उसी प्रकार वचनयोगियों और अनुभय वचनयोगियों में सासादनसम्यग्दृष्टि आदि जीव-राशि ओघ सासादनसम्यग्दृष्टि आदि के संख्यातवें भाग है। शेष कथन सुगम है।

अब अल्पबहुत्व के बल से पूर्वोक्त सूत्रों में कथित राशियों के अपहार काल कहे जाते हैं—

यथा—संख्यात से सूच्यंगुल के भाजित करने पर जो लब्ध आवे उसके वर्गित करने पर वचनयोगियों का अवहारकाल होता है। इससे संख्यात् से खंडित करके जो लब्ध आवे उसे इसी वचनयोगियों के अवहारकाल में मिला देने पर अनुभय वचनयोगियों का अवहार-काल होता है। इसे संख्यात से गुणित करने पर वैक्रियिक काययोगियों का अवहार काल होता है। इसे संख्यात से गुणित करने पर उभय वचनयोगियों का अवहारकाल होता है। इसे संख्यात से गुणित करने पर मृषा-वचनयोगियों का अवहारकाल होता है। इसे संख्यात से गुणित करने पर सत्यवचनयोगियों का अवहारकाल होता है। इसे संख्यात से गुणित करने पर मनोयोगियों का अवहारकाल होता है। इसे संख्यात से खंडित करने पर जो लब्ध आवे उसे इसी मनोयोगियों के अवहारकाल में मिला देने पर अनुभय मनोयोगियों का अवहारकाल होता है। इसे संख्यात से गुणित करने पर उभय मनोयोगियों की अवहारकाल होता है। इसे संख्यात से गुणित करने पर मृषा मनोयोगियों का अवहार काल होता है। इसे संख्यात से गुणित करने पर सत्य मनोयोगियों का अवहारकाल होता है। इसे संख्यात से गुणित करने पर वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों का अवहारकाल होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संपहि ओघअसंदसम्माइट्ठिअवहारकालं संखेज्जरुवेहि खंडिय लद्धं तम्हि चेव पक्खित्ते कायजोगिअसंजद-सम्माइट्ठिअवहारकालो होदि। तम्हि आवलियाए असंखेज्जदिभाएण भागे हिदे लद्धं तम्हि चेव पक्खित्ते वेउव्वियअसंजदसम्माइट्ठि-अवहारकालो होदि। तम्हि संखेज्जरुवेहि गुणिदे वचिजोगिअसंजदसम्माइट्ठि-अवहारकालो होदि। तं हि संखेज्जरुवेहि खंडिय लद्धं तम्हि चेव पक्खित्ते असच्चमोसवचिजोगिअसंजदसम्माइट्ठिअवहारकालो होदि। तम्हि संखेज्जरुवेहि गुणिदे सच्चमोसवचिजोगिअसंजदसम्माइट्ठिअवहारकालो होदि। तम्हि संखेज्जरुवेहि गुणिदे मोसवचिजोगिअसंजदसम्माइट्ठिअवहारकालो होदि। तम्हि संखेज्जरुवेहि गुणिदे सच्चवचिजोगिअसंजदसम्माइट्ठिअवहारकालो होदि। तम्हि संखेज्जरुवेहि गुणिदे मणजोगिअवहारकालो होदि। तं हि संखेज्जरुवेहि खंडिय लद्धं तम्हि चेव पक्खित्ते असच्चमोसमणजोगिअवहारकालो होदि। (तम्हि संखेज्जरुवेहि गुणिदे सच्चमोसमणजोगिअवहारकालो होदि।) तम्हि संखेज्जरुवेहि गुणिदे मोसमणजोगिअवहारकालो होदि। तम्हि संखेज्ज-रुवेहि गुणिदे सच्चमणजोगिअवहारकालो होदि। तम्हि आवलियाए असंखेज्जदि-भाएण गुणिदे ओरालियकायजोगिअसंजदसम्माइट्ठिअवहारकालो होदि। तम्हि आवलियाए असंखेज्जदिभाएण गुणिदे वेउव्वियमिस्सकायजोगिअसंजदसम्माइट्ठि-अवहारकालो होदि। तम्हि आवलियाए असंखेज्जदिभाएण गुणिदे कम्मइय-कायजोगिअसंजदसम्माइट्ठिअवहारकालो होदि। एवं सम्मामिच्छाइट्ठिस्स। णवरि वेउव्वियमिस्सं कम्मइयं च छोडुिय वत्तव्वं। ओघसासणसमाइट्ठिअवहार-कालं संखेज्जरुवेहि खंडिय लद्धं तम्हि चेव पक्खित्ते कायजोगिसासणसम्माइट्ठि-अवहारकालो होदि। तं हि आवलियाए असंखेज्जदिभाएण खंडिय लद्धं तम्हि चेव पक्खित्ते वेउव्वियकायजोगिसासणसम्माइट्ठि अवहारकालो होदि। तम्हि संखेज्जरुवेहि गुणिदे वचिजोगिसासणसम्माइट्ठिअवहारकालो होदि। तम्हि संखेज्जरुवेहि भागे हिदे लद्धं तम्हि चेव पक्खित्ते असच्चमोसवचिजोगिसासण-सम्माइट्ठिअवहारकालो होदि। तम्हि संखेज्जरुवेहि गुणिदे सच्चमोसवचिजोगि-अवहारकालो होदि। एवं मोसवचिजोगि-सच्चवचिजोगिअवहारकालाणं जहा-कमेण संखेज्जरुवेहि गुणेयव्वं। तम्हि संखेज्जरुवेहि गुणिदे मणजोगिसासण-सम्माइट्ठिअवहारकालो होदि। तं हि संखेज्जरुवेहि खंडिय लद्धं तम्हि चेव पक्खित्ते असच्चमोसमणजोगिसासणसम्माइट्ठिअवहारकालो होदि। तदो सच्च-मोसमणजोगि-मोसमणजोगि-सच्चमणाणं जहाकमेण संखेज्जरुवेहिं गुणिज्जदि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तम्हि आवलियाए असंखेज्जदिभाएण गुणिदे ओरालिकायजोगिसासणसम्माइट्ठि-अवहारकालो होदि। तम्हि आवलियाए असंखेज्जदिभाएण गुणिदे ओरालिय-मिस्ससासणसम्माइट्ठिअवहारकालो होदि। तम्हि आवलियाए असंखेज्जदिभाएण गुणिदे वेउव्वियमिस्सजोगिसासणसम्माइट्ठिअवहारकालो होदि। तम्हि आवलियाए असंखेज्जदिभाएण गुणिदे कम्मइयसासणसम्माइट्ठिअवहारकालो होदि। एवं संजदासंजदाणं। णवरि ओघावहारकालसखेज्जरुवेहि खंडिय लद्धं तम्हि चेव पक्खित्ते ओरालियकायजोगिसंजदासंजदाणं अवहारकालो होदि। तम्हि संखेज्जरुवेहिं गुणिदे वचिजोगिसंजदासंजदअवहारकालो होदि। सेसं पुव्वं व वत्तव्वं। पमत्तादीणं वुच्चदे। मणजोग-वचिजोग-कायजोगद्धाणं सामासेण अप्पप्पणो रासिम्हि भागे हिदे लद्धं तिप्पडिरासिं काऊण पुणो अप्पप्पणो अद्धाहि गुणिदे एक्केक्कम्हि गुणट्ठाणे मण-वचि-कायजोगरासीओ हवंति। पुणो सच्चमोस-असच्चमोसमणजोगद्धाणं समासेण मणजोगरासिं खंडिय लद्धं च दुप्पडिरासिं काऊण अप्पप्पणो अद्धाहिगुणिदे सच्चमोसअसच्च-मोसमणजोगरासीओ हवंति। एवं वचिजोगरासिस्स वि वत्तव्वं।

—षट्० खण्ड० १। २। सू १०९। पु ३। पृष्ठ० ३९० टीका

·०१ मनोयोगी और वचनयोगी का द्रव्य प्रमाण

·०२ वचनयोगी और असत्यमृषा वचनयोगी का द्रव्य प्रमाण

जोगाणुवादेण पंचमणजोगी तिण्णिवचिजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ?

—षट्० खण्ड० २। ५। सू ८४। पु ७। पृष्ठ० २७६

टीका—सुगमं।

देवाणं संखेज्जदिभागो।

—षट्० खण्ड० २। ५। सू ८५। पु ७। पृष्ठ० २७७

टीका—देवाणमवहारकाले बेछप्पण्णंगुलसदवग्गे तप्पाओग्गसंखेज्जरुवेहि गुणिदे एदेसिमवहारकाला होंति। एदेहि जगपदरम्हि भागे हिदे पुव्वुत्तट्ठरासीओ होंति। सेसं सुगमं।

वचिजोगि-असच्चमोसवचिजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ?

—षट्० खण्ड० २। ५। सू ८६ टीका। पु ७। पृष्ठ० २७७

टीका—सुगमं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असंखेज्जा।

—षट्० खण्ड० २। ५। सू ८७। पु ७। पृष्ठ० २७७

टीका—एदेण संखेज्जाणंताणं पडिसेहो कदो। कुदो? उभयसत्ति-संजुत्तत्तादो। असंखेज्जं पि तिविहं। तत्थेदम्हि एदेसिमवट्ठाणमिदि जाणाव-णट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।

—षट्० खण्ड० २। ५। सू ८८। पु ७। पृष्ठ० २७७। ८

टीका—एदेण परित्त-जुत्तासंखेज्जाणं जहण्णसंखेज्जासंखेज्जस य पडिसेहो-कदो, एदेसु असंखेज्जासंखेज्जाणं ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीणमभावादो। सेसदोअसंखे-ज्जासंखेज्जेसु एक्कस्सावहारणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

खेत्तेण वचिजोगि-असच्चमोसवचिजोगीहि पदरमवहिरदि अंगुलस्स संखेज्जदिभागवग्गपडिभाएण।

—षट्० खण्ड० २। ५। सू ८९। पु ७। पृष्ठ० २७८

टीका—एदेण उक्कस्सअसंखेज्जासंखेज्जस्स पडिसेहो कदो, तस्स पदरस्स असंखेज्जदिभागत्तविरोहादो। संखेज्जरूवेहि ओवट्टिदपदरंगुलेण जगपदरे भागे हिदे दो वि रासीओ आगच्छंति। सेसं सुगमं।

योगमार्गणानुसार पांच मनोयोगी और सत्य, असत्य व उभय— ये तीन वचनयोगी द्रव्यप्रमाण से देवों से संख्यातवें भाग प्रमाण है।

अस्तु दोसो छप्पन सूच्यंगुलों के वर्गरूप देवों के अवहारकाल को तत्प्रायोग्य संख्यात् रूपों से गुणित करने पर इनके अवहारकाल होते हैं। इनके जगप्रतर के भाजित करने पर पूर्वोक्त आठ राशियां होती है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

वचनयोगी और असत्यमृषा अर्थात् अनुभय वचनयोगी द्रव्य प्रमाण से असंख्यात है।

अस्तु इस सूत्र के द्वारा संख्यात व अनन्त का प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, वह सूत्र संख्यात व अनन्त के प्रतिषेध तथा असंख्यात के विधान रूप उभय शक्ति से संयुक्त है। असंख्यात के तीन प्रकार है। उनमें से इस असंख्यात में इनका अवस्थान है, इसके ज्ञाप-नार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं।

वचनयोगी और असत्यमृषा वचनयोगी काल की अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अव-सर्पिणी-उत्सर्पिणियों से अपहृत होते हैं।

अस्तु इस सूत्र के द्वारा परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात और जघन्य असंख्यातासंख्यात का प्रतिषेध किया गया है; क्योंकि इनमें असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियों का अभाव है। शेष दो असंख्यातासंख्यातों में से एक के अवधारणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षेत्र की अपेक्षा वचनयोगी और असत्यमृषा वचनयोगियों द्वारा सूच्यंगुल के संख्यातवें भाग वर्गरूप प्रतिभाग से जगप्रतर अपहृत होता है।

अस्तु इस सूत्र के द्वारा उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात का प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि उससे जगप्रतर के असंख्यातवें भागपने का विरोध है। संख्यातरूपों से अपवर्तित प्रतरांगुल का जगप्रतर में भाग देने पर दोनों ही राशियां आती है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

०३ काययोगी तथा औदारिक काययोगी का द्रव्य प्रमाण—

कायजोगि-ओरालियकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी मूलोघं।

—षट्० खण्ड० १। २। सू ११०। पु ३। पृष्ठ० ३६५

टीका—एदे दो वि रासीओ अणंता। अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण। खेत्तेण अणंताणंता लोगा इदि वुत्तं होदि। सेसं सुगमं।

सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति जहा मणजोगिभंगो।

—षट्० खण्ड० १। २। सू १११। पु ३। पृष्ठ० ३९५

टीका—एदं सुत्तं सुगमं। एत्थ धुवरासिविहाणं वुच्चदे। तं जहा-सगुणपडिवण्णमणजोगि-वचिजोगिरासिं सिद्ध-अजोगिरासिं च कायजोगिभजिदं-एदेसिं वग्गं च सव्वजीवरासिम्हि पक्खित्ते कायजोगिधुवरासि होदि। तं पडिरासिं काऊण तत्थेक्करासिम्हि संखेज्जरुवेहि भागे हिदे लद्धं तम्हि चेव पक्खित्ते ओरालियकायजोगिधुवरासि होदि। सासणादीणं सग-सगअवहारकाले संखेज्जरुवेहि खंडिय लद्धं तम्हि चेव पक्खित्ते कायजोगिसासणादिगुणपडिवण्णाणं अवहारकाला भवंति। एदे अवहारकाले आवलियाए असंखेज्जदिभाएण गुणिदे ओरालियकायजोगिसासणादीणमवहारकाला भवंति। कुदो? तिरिक्ख-मणुस्स-गुणपडिवण्णरासीणं देवगुणपडिवण्णरासिस्स असंखेज्जदिभागत्तादो। संजदा-संजदाणं पुण कायजोगिअवहारकालो चेव ओरालियकायजोगिअवहारकालो होदि, तत्थ तव्वदिरित्तकायजोगाभावादो।

काययोगियों और औदारिककाययोगियों में मिथ्यादृष्टि जीव सामान्य प्ररुपणा के समान है।

उपर्युक्त ये दोनों राशियां भी अनंत है। काल की अपेक्षा काययोगी और औदारिक काययोगी मिथ्यादृष्टि जीव अनंतानंत अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियों के द्वारा अपहृत नहीं होते हैं और क्षेत्र की अपेक्षा अनंतानंत लोक-प्रमाण है। यह इस कथन का तात्पर्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर सयोगी केवली गुणस्थान तक काययोगी और औदारिक काययोगी जीव मनोयोगियों के समान है।

यह सुत्र सुगम है। अब यहाँ पर ध्रुवराशि की विधि का कथन करते हैं। वह इस प्रकार है—गुणस्थान-प्रतिपन्न मनोयोगराशि, वचनयोगराशि, सिद्धराशि और अयोगराशि को तथा इन चारों राशियों के वर्ग में काययोगराशि का भाग देने पर जो उपलब्ध हो उसे सर्व राशि में मिला देने पर काययोगियों की ध्रुव-राशि होती है। अनन्तर इसकी प्रतिराशि करके उनमें से एक राशि में संख्यात का भाग देने पर जो उपलब्ध हो उसे उसी ध्रुवराशि में मिला देने पर औदारिककाययोगियों की ध्रुवराशि होती है।

सासादान आदि गुणस्थानों के अपने-अपने अवहारकाल को संख्यात से खंडित करके जो लब्ध हो उसे उसी सामान्य अवहारकाल में मिला देने पर काययोगी सासादान-सम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थान प्रतिपन्न जीवों के अवहारकाल होते हैं। इन अवहारकालों को आवली के असंख्यातवें भाग से गुणित करने पर औदारिक काययोगी सासादान सम्यग्-दृष्टि आदि जीवों के अवहारकाल होते हैं, क्योंकि गुणस्थान प्रतिपन्न तिर्यंच और मनुष्य राशियां गुणस्थान प्रतिपन्न देवराशि के असंख्यातवें भागमात्र है। औदारिक काययोग की अपेक्षा संयतासंयतों का अवहारकाल ही औदारिक-काययोगियों का अवहारकाल है, क्योंकि संयतासंयत गुणस्थान में औदारिक काययोग को छोड़ कर और दुसरा कोई काययोग नहीं पाया जाता है।

·०४ औदारिकमिश्रकाययोगी का द्रव्य प्रमाण—

ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी मूलोघं।

—षट्० खण्ड० १। २। सू ११२। पु ३। पृष्ठ० ३९६

टीका—एदं पि सुत्तं सुगमं। एत्थ धुवरासी उच्चदे। ओरालिकायजोगि-धुवरासिं पुव्वं परूविदं संखेज्जरुवेहिं गुणिदे ओरालियमिस्सकायजोगधुवरासी होदि। कुदो? सुहुमेइंदियअपज्जत्तरासीए पज्जत्तरासिस्स संखेज्जदिभागत्तादो? तं जहा—तिरिक्ख-मणुस-अपज्जत्तद्धादो पज्जत्तद्धा संखेज्जगुणा। ताणमद्धाणं समासेण तिरिक्खरासिं खंडिय लद्धमपज्जत्तद्धाए गुणिदे ओरालियमिस्सरासी होदि। तमद्धाए गुणगारेण गुणिदे ओरालियकायजोगरासी हवदि। तेण ओरालियकायजोगरासीदो ओरालियमिस्सकायजोगरासी संखेज्जगुणहीणो।

सासणसम्माइट्ठी ओघं।

—षट्० सू १। २। सू ११३। पु ३। पृष्ठ० ३९७

टीका—सासणसम्माइट्ठिणो देव-णेरइया जेण तिरिक्ख-मणुस्सेसु उववज्ज-माणा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता लब्भंति तेण एदेसिं पमाणपरूवणाए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओघभंगो हवदि। एदेसिमवहारकालो वुच्चदे। तं जहा—ओरालियकायजोगि-सासणसम्माइट्ठिअवहारकालमावलियाए असंखेज्जदिभाएण गुणिदे ओरालिय-मिस्सकायजोगिसासणसम्माइट्ठिअवहारकालो होदि। कुदो? देव-णेरइएहिंतो तिरिक्खमणुस्सेसु उप्पज्जमाणरासिणो पुव्वट्ठिदरासिस्स असंखेज्जदिभागत्तादो।

असंजदसम्माइट्ठी सजोगिकेवली दव्वपमाणेण केवडिया, संखेज्जा।

—षट्० खण्ड० १। २। सू ११४। पु ३। पृष्ठ० ३९७

टीका—देव-णेरइयसम्माइट्ठिणो मणुसेसु उव्वज्जमाणा संखेज्जा चेव लब्भंति, मणुसपज्जत्तरासिस्स अण्णहा असंखेज्जत्तप्पसंगा। ओरालियमिस्सकाय-जोगम्हि सुत्ताविरुद्धेण आइरिओवएसेण सजोगिकेवलिणो चत्तालीसं हवंति। तं जहा—कवाडे आरुहंता बीस २०, ओदरंता वीसेत्ति २०।

औदारिकमिश्रकाययोगियों में मिथ्यादृष्टि जीव ओघ प्ररुपणा के समान है।

यह सूत्र भी सुगम है। अब यहाँ ध्रुव राशि का कथन करते हैं—पहले जो औदारिककाययोगियों की ध्रुव राशि कह आये हैं उसे संख्यात से गुणित करने पर औदारिकमिश्रकाययोगियों की ध्रुव राशि होती है। क्योंकि सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त राशि पर्याप्त राशि के संख्यातवें भाग है। उसका स्पष्टीकरण इसप्रकार है—तिर्यंच और मनुष्यों के अपर्याप्तकाल से पर्याप्तकाल संख्यातगुणा है। पुनः उन कालों के जोड़ से तिर्यंच राशि को खंडित करके जो प्राप्त हो उसे अपर्याप्तकाल से गुणित कर देने पर औदारिकमिश्रकाययोगी राशि होती है। इन औदारिकमिश्रकाययोगी जीव राशि को औदारिक काययोग के काल के गुणकार से गुणित कर देने पर औदारिककाययोग राशि होती है। अतः औदारिक काययोगी जीव राशि से औदारिकमिश्र काययोगी जीव राशि संख्यातगुणी हीन है, यह सिद्ध हुआ।

औदारिकमिश्रकाययोगी सासादन-सम्यग्दृष्टि जीव सामान्य प्ररुपणा के समान है।

चूंकि तिर्यंच और मनुष्यों में उत्पन्न होते हुए सासादन सम्यग्दृष्टि देव और नारकी पल्योपम के असंख्यातवें भाग पाये जाते हैं। इसलिये औदारिकमिश्रकाययोगी सासादन सम्यग्दृष्टियों के प्रमाण की प्ररुपणा सामान्य प्ररुपणा के समान होती है। अब इनका अवहारकाल कहते हैं। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

औदारिक काययोगी सासादन सम्यग्दृष्टियों के अवहारकाल को आवली के असंख्यातवें भाग से गुणित करने पर औदारिकमिश्रकाययोगी सासादन सम्यग्दृष्टियों का अवहारकाल होता है। क्योंकि देव और नारकियों में से तिर्यंच और मनुष्यों में उत्पन्न होने वाली राशियां पहले स्थित राशि के असंख्यातवें भागमात्र होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगी केवली औदारिकमिश्र काययोगी जीव संख्यात है। ११४।

सम्यग्दृष्टि देव और नारकी जीव मनुष्यों में उत्पन्न होते हुए संख्यात ही पाये जाते हैं। यदि ऐसा न माना जाय तो मनुष्य पर्याप्त राशि को असंख्यातवें पने का प्रसंग आ जाता है।

सूत्र के अविरुद्ध आचार्यों के उपदेशानुसार औदारिकमिश्रकाययोग में सयोगी केवली जीव चालीस होते हैं। यथा—कपाट समुद्घात में आरोहण करने वाले औदारिकमिश्र-काययोगी बील और उतरते हुए बीस होते हैं।

०८ कार्मणकाययोगी का द्रव्य प्रमाण

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया, मूलोघं।

—षट्० खण्ड० १। २। सू १२१। पु ३। पृष्ठ० ४०२

टीका—जदो सव्वजीवरासी गंगापवाहो व्व णिरंतरं विग्गहं काऊणुप्पज्जदि, तेण कम्मइयरासिस्स मूलोघपरुपवणा ण विरुद्धा। एदस्स सुत्तस्स धुवरासी वुच्चदे। कायजोगिधुवरासिमंतोमुहुत्तेण गुणिदे कम्मइयजोगिधुवरासी होदि। तं जहा—संखेज्जावलिमेत्तअंतोमुहुत्तकालेण जदि सव्वजीवरासिस्स संचओ होदि, तो तिण्हं समयाणं केत्तियं संचयं लभामो त्ति पमाणेण इच्छागुणिदफलमोवट्टिय अंतोमुहुत्तोवट्टिय सव्वजीवरासी आगच्छदि।

सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया, ओघं।

—षट्० खण्ड० १। २। सू १२२। पु ३। पृष्ठ० ४०३

टीका—जेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता तिरिक्खअसंजदसम्माइट्ठिणो विग्गहं काऊण देवेसुप्पज्जमाणा लब्भंति, देव-तिरिक्खसासणसम्माइट्ठिणो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता तिरिक्ख-देवेसु विग्गहं करिय उववज्जमाणा लब्भंति, तेण एदेसिं पमाणपरुवणा ओघपरुवणाए तुल्ला। एदेसिमवहारकालुप्पत्ती वुच्चदे। असंजदसम्मादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठिवेउव्वियमिस्सअवहारकाले आवलियाए असंखेज्जदिभाएण गुणिदे कम्मइयकायजोगिअसंजदसम्मादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठिअवहारकाला भवंति। कुदो? विग्गहं करिय मरमाणरासीए देवेसु उववज्जमाणरासिस्स असंखेज्जदिभागत्तादो।

सजोगिकेवली दव्वपमाणेण केवडिया, संखेज्जा।

—षट्० खण्ड० १। २। सू १२३। पु ३। पृष्ठ० ४०४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टीका—एत्थ पुव्वाइरिओवएसेण सट्ठी जीवा हवंति। कुदो ? पदरे वीस, लोगपूरणे वीस, पुणरवि ओदरमाणा पदरे वीस चेव भवंति त्ति।

कार्मणकाययोगियों में मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्य-प्रमाण की अपेक्षा ओघप्ररूणा के समान है।

ओघेण मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया, अणंता।

—षट्० खण्ड० १। २। २। पु ३। पृष्ठ० १०

ओघ से मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्य-प्रमाण की अपेक्षा अनंत है।

चूंकि सर्व जीवराशि गंगानदी के प्रवाह के समान निरंतर विग्रह करके उत्पन्न होती है, इसलिए कार्मण-कायराशि की प्ररूपणा मूलोघ प्ररूपणा के समान होती है। विरुद्ध नहीं।

अस्तु कार्मणकाययोगियों के प्रमाण की ध्रुवराशि कहते हैं—काययोगियों की ध्रुवराशियों को अन्तर्मुहूर्त से गुणित करने पर कार्मणकाययोगियों की ध्रुवराशि होती है। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—संख्यात आवलीयात्र अन्तर्मुहूर्तकाल के द्वारा यदि सर्व जीवराशि का संचय होता है, तो तीन समय में कितना समय प्राप्त होगा, इस प्रकार इच्छा राशि से फलराशि को गुणित करके जो प्राप्त हो उसे प्रमाणराशि से भाजित करने पर अन्तर्मुहूर्तकाल से भाजित सर्व जीवराशि आती है।

सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्यग्दृष्टि कार्मणकाययोगी जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा सामान्य प्ररूपणा के समान पल्योपम के असंख्यातवें भाग हैं।

चूंकि पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण तिर्यंच असंयत सम्यग्दृष्टि जीव विग्रह करके देवों में उत्पन्न होते हुए पाये जाते हैं। तथा पल्योपम के असंख्यातवें भाग-प्रमाण देव सासादन सम्यग्दृष्टि जीव, और उतने ही तिर्यंच सासादन जीव क्रम से तिर्यंच और देवों में विग्रह करके उत्पन्न होते हुए पाये जाते हैं, इसलिये सासादन सम्यग्दृष्टि और असंयत सम्यग्दृष्टि कार्मणकाययोगियों की प्ररूपणा सामान्य प्ररूपणा के तुल्य है। अब इनके अवहारकाल की उत्पत्ति को कहते हैं—असंयतसम्यग्दृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टि वैक्रियिकमिश्र अवहारकाल को आवली के असंख्यातवें भाग से गुणित करने पर क्रम से कार्मण काययोगी असंयत सम्यगदृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टि जीवों के अवहारकाल होते हैं, क्योंकि विग्रह करके मरने वाली राशि देवों में उत्पन्न होने वाली राशि के असंख्यातवें भाग मात्र पाई जाती है।

·०२ काययोगी का द्रव्य प्रमाण

·०३ औदारिक काययोगी तथा औदारिकमिश्र काययोगी का द्रव्य-प्रमाण

·०९ कार्मण काययोगी का द्रव्य-प्रमाण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कायजोगि-ओरालियकायजोगि-ओरालियमिस्सकायजोगि-कम्मइयकाय-जोगी दव्वपमाणेण केवडिया ?

—षट्० खण्ड० २ । ५ । सू ९० । पु ७ । पृष्ठ० २७८

टीका—सुगमं ।

अणंता ।

—षट्० खण्ड० २ । ५ । सू ९१ टीका । पु ७ । पृष्ठ० २७८

टीका—एदेण संखेज्जासंखेज्जाणं पडिसेहो कदो । अणंतं पि तिविहं । तत्थ एदम्हि अणंते एदाओ रासीओ ट्ठिदाओ त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण ।

—षट्० खण्ड० २ । ५ । सू ९२ । पु ७ । पृष्ठ० २७९

टीका—एदेण परित्त-जुत्ताणंताणं जहण्णअणंताणंतस्स य पडिसेहो कदो, तेसु अणंताणंताणमोसप्पिणि-उस्सप्पिणीणमभावादो । संपहि दोसु अणंताणंतेसु एक्कस्स पडिसेहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

खेत्तेण अणंताणंता लोगा ।

—षट्० खण्ड० २ । ५ । सू ९३ । पु ७ पृष्ठ० २७९

टीका—एदेण उक्कस्साणंताणंतस्स पडिसेहो कदो, लोगवयणण्णहाणुव-वत्तीदो । सेसं सुगमं ।

काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी और कार्मणकाययोगी द्रव्य-प्रमाण से अनन्त हैं ।

अस्तु—इस सूत्र के द्वारा संख्यात व असंख्यात का प्रतिषेध किया गया है । अनन्त के भी तीन प्रकार है । उनमें से इस अनन्त में ये जीव-राशियां स्थित हैं ; इसके ज्ञापनार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं ।

उपर्युक्त जीव—काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी और कार्मणकाययोगी जीव काल की अपेक्षा अनन्तानन्त अवसर्पिणी उत्सर्पिणियों से अपहृत नहीं होते हैं । ९२

अस्तु—इस सूत्र के द्वारा परीतानन्त, युक्तानन्त और जघन्य अनन्त का प्रतिषेध किया गया है । क्योंकि, उनमें अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियां का अभाव है । अब दो अनन्तानन्तों में से एक के प्रतिषेधार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपर्युक्त जीव क्षेत्र की अपेक्षा अनन्तानन्त लोक-प्रमाण है।

अस्तु—इस सूत्र के द्वारा उत्कृष्ट अनन्तानन्त का प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि अन्यथा लोकनिर्देश की उपपत्ति नहीं बनती। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

काययोगी जीव की संख्या
कार्मण काययोगी की संख्या
औदारिकमिश्र काययोग की संख्या
औदारिक काययोग की संख्या

कम्मोरालियमिस्सय ओरालद्धासु संचिद अणंता।
कम्मोरालियमिस्सय ओरालियजोगिणो जीदा॥

गोजी० गा० २६४

कार्मणकाययोग, औदारिकमिश्र काययोग, औदारिककाययोग के आगे कहे कालों में संचित हुए कार्मणकाययोगी औदारिकमिश्र काययोगी और औदारिककाययोगी जीव प्रत्येक अनन्तानन्त है।

·०५ वैक्रियकाययोगी का द्रव्य प्रमाण

वेउव्विकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया, देवाणं संखेज्जदि-भागूणो।

—षट्० खण्ड० १। २। सू ११५। पु ३। पृष्ठ० ३९८

टीका—एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे। देवाणं जो रासी अप्पप्पणो संखेज्जदिभाएण परिहीणो वेउव्वियकायजोगिमिच्छाइट्ठीणं पमाणं होदि। कुदो? देव-णेरइयरासिमेगट्ठं करिय मण-वचिकायजोगद्धासमासेण खंडिय लद्धं तिप्पडि-रासिं काऊण अप्पप्पणो अद्धाहि गुणिदे सग-सगरासीओ हवंति। जेण मण-वचिजोगरासीओ देवाणं संखेज्जदिभागो हवंति, तेण वेउव्वियकायजोगिमिच्छा-इट्ठिरासिपमाणं संखेज्जदिभागपरिहीणदेवरासिणा समाणं भवदि।

एत्थ अवहारकालो उच्चदे। देव णेरइयमिच्छाइट्ठिरासिसमासम्मि मण-वचि-वेउव्वियमिस्सकाय-कम्मइयकायजोगिदेव-णेरइयमिच्छाइट्ठिरासिसमासेण भागे हिदे संखेज्जरुवाणि लब्भंति। तेहि रुवूणेहि संखेज्जपदरंगुलमेत्तं देव-णेर-इयसमासअवहारकालं खंडिय लद्धं तम्हि चेव पक्खित्ते वेउव्वियकायजोगिमिच्छा-इट्ठिअवहारकालो होदि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया, ओघं ।

—षट्० खण्ड० १ । २ । सू ११६ । पु ३ । पृष्ठ० ३९९

टीका—देवगुणपडिवण्णाणं रासिपमाणं अप्पप्पणो संखेज्जदिभाएण ऊणं वेउव्वियकायजोगिगुणपडिवण्णरासिपमाणं होदि । तं जहा—देव-णेरइयगुण-पडिवण्णरासिम्हि अप्पप्पणो मण-वचि-वेउव्वियमिस्स-कम्मइयरासीहि भागे हिदे तत्थ लद्धसंखेज्जरूवेहि रूवूणेहि देवणेरइयसमासअवहारकालं खंडिय लद्धं तम्हि चेव पक्खित्ते वेउव्वियकायजोगिगुणपडिवण्णाणमवहारकाला भवंति ।

वैक्रियिक काययोगियों में मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्य प्रमाण की अपेक्षा देवों के संख्यातवें भाग कम है । ११५

अस्तु अपनी अपनी राशि के संख्यातवें भाग से न्यून देवों की जो राशि है उतना वैक्रियिक काययोगी मिथ्यादृष्टियों का प्रमाण है, क्योंकि देव और नारकियों की राशि को एकत्रित करके मनोयोग, वचनयोग और काययोग के काल के जोड़ से खंडित करके जो प्राप्त हो उसकी तीन राशियां करके अपने-अपने काल से गुणित करने पर अपनी राशियों का प्रमाण होता है । चूंकि मनोयोगी जीव राशि और वचनयोगी जीव राणि दोनों के संख्यातवें भाग में है, इसलिए वैक्रियिक काययोगी मिथ्यादृष्टि राशि का प्रमाण संख्यातवें भाग कम देव राशि के समान होता है ।

अवहारकाल का कथन—देव मिथ्यादृष्टि और नारक मिथ्यादृष्टि का जितना योग हो, उसे मनोयोगी, वचनयोगी, वैक्रियिकमिश्र काययोगी और कार्मण काययोगी देव और नारकी मिथ्यादृष्टि राशि के योग से भाजित करने पर संख्यात प्राप्त होते हैं । एक कम उस संख्यात से संख्यात प्रतरांगुल मात्र देव और नारकियों के जोड़ रूप अवहारकाल को खंडित करके जो प्राप्त हो उसे उन्हीं दोनों के जोड़ रूप अवहारकाल में मिला देने पर वैक्रियिक काययोगी मिथ्यादृष्टियों का अवहारकाल होता है ।

सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत सम्यग्दृष्टि वैक्रियिक काय-योगी जीव द्रव्य प्रमाण की अपेक्षा ओघप्ररूपणा के समान है ।

गुणस्थान—प्रतिपन्न देवों की राशि का जो प्रमाण है, अपनी-अपनी उस राशियों से संख्यात भाग न्यून करने पर वैक्रियकाययोगी गुणस्थान प्रतिपन्न अपनी-अपनी राशि का प्रमाण होता है । वह इस प्रकार है—गुणस्थान—प्रतिपन्न देव और नारक राशि में से अपनी अपनी मनोयोगी, वचनयोगी, वैक्रियमिश्र काययोगी और कार्मणकाययोगी जीवों की राशियाँ का भाग देने पर वहाँ जो संख्यात प्राप्त हो उसमें से एक कम करके शेष से देव और नारकियों के योग रूप व्यवहारकाल को खंडित करके जो प्राप्त हो उसे उसी देव और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नारकियों के मिले हुए अवहारकाल में मिला देने पर वैक्रियकायोगी गुणस्थान प्रतिपन्न जीवों के अवहारकाल होते हैं।

·०६ वैक्रियमिश्रकाययोगी का द्रव्य प्रमाण

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छाइट्ठीदव्वपमाणेण केवडिया, देवाणं संखेज्जदिभागो।

—षट्० खण्ड० १। २। सू ११७। पु ३। पृष्ठ० ४००

टीका—एदस्स सुत्तस्स वक्खाणं वुच्चदे। संखेज्जवस्साउअब्भंतर-आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तउवक्कमणकालेण जदि देवरासिसंचओ लब्भदि, तो एदम्हादो संखेज्जगुणहीण-वेउव्वियमिस्सउवक्कमणकालम्हि केत्तियमेत्तरासि-संचयं लभामो त्ति इच्छारासिणा पमाणरासिम्हि भागे हिदे तत्थ लद्धसंखेज्जरूवेहि देवरासिम्हि भागे हिदे तत्थेगभागो वेउव्वियमिस्सकायजोगिमिच्छाइट्ठिपमाणं होदि। सेसं सुगमं।

सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया, ओघं।

—षट्० खण्ड० १। २। सू ११८। पु ३। पृष्ठ० ४०१

टीका—तिरिक्ख-मणुससासण-असंजदसम्माइट्ठिणो जेण देवेसुप्पज्जमाणा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता लब्भंति तेणेदेसिं पमाणपरुवणा ओघं, ओघेण समाणा त्ति वुत्तं होदि। एदेसिमवहारकालुप्पत्ती वुच्चदे। तं जहा—ओरालि-यमिस्ससासणसम्माइट्ठिअवहारकालमावलियाए असंखेज्जदिभाएण गुणिदे वेउव्वि-यमिस्सकायजोगिसासणसम्माइट्ठिअवहारकालो होदि। ओरालियकायजोगि-अवहारकालमावलियाए असंखेज्जदिभाएण गुणिदे वेउव्वियमिस्सकायजोगि-असंजदसम्माइट्ठिअवहारकालो होदि। किं कारणं? तिरिक्खाणमसंखेज्जदि-भागस्स देवेसुप्पत्तीदो। केण कारेणण वेउव्वियमिस्सकायजोगिसासणेहिंतो ओरालियमिस्सकायजोगिसासणसम्माइट्ठिणो असंखेज्जगुणा? ण एस दोसो, कुदो? देवेसुप्पज्जमाणतिरिक्खसासणेहिंतो तिरिक्खेसुप्पज्जमाणदेवसासणाणम-संखेज्जगुणत्तादो।

वैक्रियमिश्रकाययोगियों में मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा देवों के संख्यातवें भाग हैं। १२७

अस्तु संख्यात वर्ष की आयु के भीतर आवली के असंख्यातवें भाग उपक्रमकाल से यदि देवराशि का संचय प्राप्त होता है तो इससे संख्यातगुणे हीन वैक्रियमिश्र उपक्रमण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काल के भीतर कितनामात्र राशि का संचय प्राप्त होगा, इस प्रकार त्रैराशिक करके इच्छा-राशि से प्रमाणराशि के भाजित करने पर वह जो संख्यात प्राप्त होगें उससे देव राशि के भाजित करने पर वहाँ तक भाग प्रमाण वैक्रियिकमिश्र काययोगी मिथ्यादृष्टियों का प्रमाण प्राप्त होगा।

नोट—उत्पत्ति को उपक्रमण कहते हैं और इस सहित काल को सोपक्रम-काल कहते हैं।

सासादन सम्यग्दृष्टि और असंयत सम्यग्दृष्टि वैक्रियिकमिश्र काययोगी जीव द्रव्य प्रमाण की अपेक्षा ओघप्ररूपणा के समान है।

चूंकि सासादन सम्यग्दृष्टि और असंयत सम्यग्दृष्टि तिर्यंच और मनुष्य देवों में उत्पन्न होते हुए पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण पाये जाते हैं। इसलिए इनके प्रमाण की प्ररूपणा ओघ अर्थात् ओघप्ररूपणा के तुल्य होती है। यह इसका अभिप्राय है। अब इनके अवहारकाल की उत्पत्ति का कथन करते हैं, यथा—औदारिकमिश्र काययोगी सासादन सम्यग्दृष्टियों के अवहारकाल को आवली के असंख्यातवें भाग से गुणित करने पर वैक्रियिक-मिश्र काययोगी सासादन सम्यग्दृष्टियों का अवहारकाल होता है। असंयत सम्यग्दृष्टि औदारिक काययोगियों के अवहारकाल को असंख्यातवें भाग से गुणित करने पर वैक्रियिकमिश्र काययोगी असंयत सम्यग्दृष्टियों का अवहारकाल होता है। क्योंकि तिर्यंचों के असंख्यातवें भाग प्रमाण राशि देवों में उत्पन्न होती है।

प्रश्न है—वैक्रियमिश्र काययोगी सासादन सम्यग्दृष्टियों से औदारिकमिश्र काययोगी सासादन सम्यग्दृष्टि जीव असंख्यात किस कारण से है।

उत्तर—क्योंकि देवों में उत्पन्न होने वाले तिर्यंच सासादन सम्यग्दृष्टियों से तिर्यंचों में उत्पन्न होने वाले देव सासादन सम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणे पाये जाते हैं।

·०५ वैक्रिय काययोगी का द्रव्य प्रमाण

·०६ वैक्रियमिश्र काययोगी का द्रव्य प्रमाण

वेउव्वियकायजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ?

—षट्० खण्ड० २। ५। सू ९४। पु ७। पृष्ठ० २७९

टीका—सुगमं।

देवाणं संखेज्जदिभागूणो।

—षट्० खण्ड० २। ५। सू ९५। पु ७। पृष्ठ० २७९

टीका—देवेसु पंचमण-पंचवचि-वेउव्वियमिस्सकायजोगिरासिओ देवाणं संखेज्जदिभागमेत्ताओ देवरासीदो अवणिदे अवसेसं वेउव्वियकायजोगिपमाणं होदि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेउव्वियमिस्सकायजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ?

—षट्० खण्ड० २ । ५ । सू ९६ । पु ७ । पृष्ठ० २८०

टीका—सुगमं ।

देवाणं संखेज्जदिभागो ।

—षट्० खण्ड० २ । ५ । सू ९७ । पु ७ । पृष्ठ० २८०

टीका—देवरासिं संखेज्जवाससहस्सुवक्कमणकालसंचिदसंखेज्जखंडे कदे एगखंडं वेउव्वियमिस्सरासिपमाणं होदि ।

वैक्रियकाययोगी द्रव्य प्रमाण से देवों के संख्यातवें भाग से कम है ।

अस्तु देवों में पांच मनोयोगी, पांच वचनयोगी और वैक्रियमिश्र काययोगी—इन देवों से संख्यातवें भाग मात्र राशियों को देव राशियों में से घटा देने पर अवशेष वैक्रियिक काययोगियों का प्रमाण होता है ।

वैक्रियमिश्र काययोगी द्रव्य प्रमाण से देवों के संख्यातवें भाग मात्र है ।

अस्तु—संख्यातवर्षसहस्र में होने वाले उपक्रमणकालों में संचित देव राशि के संख्यात खंड करने पर उनमें से एक खंड वैक्रियमिश्र काययोगी राशि का प्रमाण होता है । (देखो—जीव स्थान द्रव्य प्रमाणानुगम पृ० ४०० का विशेषार्थ) ।

·०७ आहारक तथा आहारकमिश्र काययोगी का द्रव्य प्रमाण

आहारकायजोगीसु पमत्तसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया, चदुवण्णं ।

—षट्० सू १ । २ । सू ११९ । पु ३ । पृष्ठ० ४०१

टीका—आहारसरीरमण्णगुणट्ठाणसु णत्थि त्ति जाणावणट्ठं पमत्तगहणं कदं । सेसं सुट्ठु सुगमं ।

आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया, संखेज्जा ।

—षट्० खण्ड० १ । २ । सू १२० । पु ३ । पृष्ठ० ४०२

टीका—एत्थ आइरियपरंपरागदोवएसेण आहारमिस्सकायजोगे सत्तावीस २७ जीवा हवंति । अहवा आहारमिस्सकायजोगे जिणदिट्ठभावा संखेज्जजीवा हवंति, ण सत्तावीसं, सुत्ते संखेज्जणिद्देसण्णहाणुववत्तीदो मिस्सकायजोगेहिंतो आहारकायजोगीणं संखेज्जगुणत्तादो च । ण च दोण्हमेत्थ गहणं, अजहण्णअणुक्कस्ससंखेज्जस्स सव्वगहणादो, सव्वअपज्जत्तद्धाहिंतो पज्जत्तद्धाणं जहण्णाणं पि संखेज्जगुणत्तदंसणादो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आहारककाययोगियों में प्रमत्त संयत जीव द्रव्य प्रमाण की अपेक्षा चौवन है।

चूंकि प्रमत्त संयत गुणस्थान को छोड़कर दूसरे गुणस्थान में आहारक शरीर नहीं पाया जाता है। इसका ज्ञात कराने के लिए प्रमत्तसंयत पद का ग्रहण किया है।

आहारकमिश्रकाययोगियों में प्रमत्तसंयत जीव द्रव्य प्रमाण की अपेक्षा संख्यात है।

यहाँ पर आचार्य परंपरा से आये हुए उपदेशानुसार आहारकमिश्रकाययोग में सत्तावीस जीव होते हैं। अथवा, आहारकमिश्रकाययोग में जिनदेवने जितनी संख्या देखी हो, उतने संख्यात जीव होते हैं, सत्तावीस नहीं, क्योंकि सूत्र में संख्यात यह निर्देश अन्यथा बन नहीं सकता है। तथा मिश्रयोगियों में आहारककाययोगी जीव संख्यात गुणे हैं, इससे भी प्रतीत होता है कि आहारकमिश्र काययोगी जीव संख्यात है, सत्तावीस नहीं। कदाचित् कहा जाय कि दो भी तो संख्यात है। परन्तु दो यह संख्या संख्यात होते हुए भी उसका यहाँ ग्रहण नहीं किया गया है, क्योंकि सबके द्वारा अजघन्यानुत्कृष्ट रूप संख्यात का ही ग्रहण किया है। अथवा सर्व अपर्याप्त-काल से जघन्य पर्याप्त-काल भी संख्यातगुणा है, इससे भी यही प्रतीत होता है कि आहारकमिश्र काययोगी सत्तावीस नहीं लेना चाहिए।

·०७ आहारक काययोगी का द्रव्य प्रमाण

·०८ आहारकमिश्र काययोगी का द्रव्य प्रमाण

आहारकायजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ?

—षट्० खण्ड० २। ५। सू ९८। पु ७। पृष्ठ० २८०

टीका—सुगमं।

चदुवण्णं।

—षट्० खण्ड० २। ५। सू ९९। पु ७। पृष्ठ० २८०

टीका—एदं पि सुगमं।

आहारमिस्सकायजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ?

—षट्० खण्ड० २। ५। सू १००। पु ७। पृष्ठ० २८०

टीका—सुगमं।

संखेज्जा।

—षट्० खण्ड० २। ५। सू १०१। पु ७। पृष्ठ० २८०। ८१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टीका—संखेज्जा त्ति वयणेण असंखेज्जाणंताणं पडिसेहो कदो। संखेज्जं जदि वि अणेयपयारं तो वि चदुवण्णब्भंतरे चेव ते होंति, णो बहिद्धा, आहारमिस्सकालम्मि तिजोगावरुद्धपज्जत्ताहारसरीरकालादो संखेज्जगुणहीणम्मि संचिदाणं जीवाणं चदुवण्णसंखाविरोहादो। आइरियपरंपरागदउवदेसेण पुण सत्तावीस जीवा होंति।

आहारककाययोगी द्रव्य प्रमाण से चौपन है।

आहारकमिश्र काययोगी द्रव्य प्रमाण से संख्यात है।

अस्तु—'संख्यात है।' इस वचन से असंख्यात और अनन्त का प्रतिषेध किया है। यद्यपि संख्यात के भी अनेक प्रकार है, तथापि वे चौपन के भीतर ही होते हैं, बाहर नहीं, क्योंकि तीन योगों से अवरुद्ध पर्याप्त आहारक शरीरकाल से संख्यातगुणे हीन आहारकमिश्रकाल में संचित जीवों के चौपन संख्या का विरोध है। किन्तु आचार्य परम्परागत सत्ताइस जीव होते हैं। (देखो जीवस्थान द्रव्यप्रमाणानुगम सूत्र १२० की टीका।

४७ योग और कर्मबंधन

जोगाणुवादेण मणजोगी वचिजोगी कायजोगी णाम कधं भवदि ?

—षट्० खण्ड० २। १। सू ३२। पु ७ पृष्ठ० ७४

टीका—किमोदइओ किं खओवसमिओ किं पारिणामिओ किं खइओ किमुवसमिओ त्ति ? ण ताव खइओ, संसारिजीवेसु सव्वकम्माणं उदएण वट्टमाणेसु जोगाभावप्पसंगादो, सिद्धेसु सव्वकम्मोदयविरहिदेसु जोगस्स अत्थित्तप्पसंगादो च। ण पारिणामिओ, खइयम्मि वुत्तासेसदोसप्पसंगादो। णोवसमिओ ओवसमियभावेण मुक्कमिच्छाइट्ठिगुणम्मि जोगाभावप्पसंगादो। ण घादिकम्मोदयसमुब्भूदो, केवलिम्हि खीणघादिकम्मोदए जोगाभावप्पसंगादो। णाघादिकम्मोदयसमुब्भूदो, अजोगिम्हि वि जोगस्स सत्तप्पसंगादो। ण घादिकम्माणं खओवसमजणिदो, केवलिम्हि जोगाभावप्पसंगा। णाघादिकम्मक्खओवसमजणिदो, तत्थ सव्व-देसघादिफद्दयाभावादो खओवसमाभावा। एदं सव्वं बुद्धिम्हि काऊण मण-वचि-कायजोगी कधं होदि त्ति वुत्तं।

खओवसमियाए लद्धीए।

—षट्० खण्ड० २। १। सू ३३। पु ७ पृष्ठ० ७५

टीका—जोगो णाम जीवपदेसाणं परिप्फंदो संकोच-विकोचलक्खणो। सो च कम्माणं उदयजणिदो, कम्मोदयविरहिदसिद्धेसु तदणुवलंभा। अजोगि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केवलिम्हि जोगाभावा जोगो ओदइओ ण होदि त्ति वोत्तुं ण जुत्तं, तत्थ सरीर-णामकम्मोदयाभावा। ण च सरीरणामकम्मोदएण जायमाणो जोगो तेण विणा होदि, अइप्पसंगादो। एवमोदइयस्स जोगस्स कधं खओवसमियत्तं उच्चदे? ण, सरीरणामकम्मोदएण सरीरपाओग्गपोग्गलेसु बहुसु संचयं गच्छमाणेसु विरियंत राइयस्स सव्वघादिफद्दयाणमुदयाभावेण तेसिं संतोवसमेण देसघादिफद्दयाण समुब्भवादो लद्धखओवसमववएसं विरियं वड्ढदि, तं विरियं पप्प जेण जीवपदेसाणं संकोच-विकोचो वड्ढदि तेण जोगो खओवसमिओ त्ति वुत्तो। विरियंतराइय-खओवसमजणिदबलवड्ढिहाणीहिंतो जदि जीवपदेसपरिप्फंदस्स वड्ढि-हाणीओ होंति तो खीणंतराइयम्मि सिद्धे जोगबहुत्तं पसज्जदे? ण, खओवसमियबलादो खइयस्स बलस्स पुधत्तदंसणादो। ण च खओवसमियबलवड्ढि-हाणीहिंतो वड्ढि-हाणीणं गच्छमाणो जीवपदेसपरिपफंदो खइयबलादो वड्ढि-हाणीणं गच्छदि, अइप्पसंगादो। जदि जोगो वीरियंतराइयखओवसमजणिदो तो सजोगिम्हि जोगाभावो पसज्जदे? ण, उवयारेण खओवसमियं भावं पत्तस्स ओदइयस्स जोगस्स तत्थाभावविरोहादो।

सो च जोगो तिविहो मणजोगो वचिजोगो कायजोगो त्ति। मणवग्गणादो णिप्फण्णदव्वमणमवलंबिय जो जीवस्स संकोच-विकोचो सो मणजोगो। भासाव-ग्गणापोग्गलखंधे अवलंबिय जो जीवपदेसाणं संकोच-विकोचो सो वचिजोगो णाम। जो चउव्विह सरीराणि अवलंबिय जीवपदेसाणं संकोच-विकोचो सो कायजोगो णाम। दो वा तिण्णि वा जोगा जुगवं किण्ण होंति? ण, तेसिं णिसिद्धाकमवुत्तीदो। तेसिमक्कमेण वुत्ती वुवलंभदे चे? ण, इंदियविसयमइ-क्कंतजीवपदेसपरिप्फंदस्स इंदिएहि उवलंभविरोहादो। ण जीवे चलंते जीव-पदेसाणं संकोच-विकोचणियमो, सिज्झंतपढमसमए एत्तो लोअग्गं गच्छंतम्मि जीवपदेसाणं संकोच-विकोचाणुवलंभा।

कधं मणोजो खओवसमिओ? वुच्चदे। वीरियंतराइयस्स सव्वघादि-फद्दयाणं संतोवसमेण देसघादिफद्दयाणमुदएण णोइंदियावरणस्स सव्वघादिफद्द-याणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण देसघादिफद्दयाणमुदयक्खएण मणपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स जेण मणजोगो समुप्पज्जदि तेणेसो खओवसमिओ। वीरियंतराइयस्स सव्वघादिफद्दयाणं संतोवसमेण देसघादिफद्दयाणमुदएण जिब्भिंदियावरणस्स-सव्वघादिफद्दयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण देसघादिफद्दयाणमुदएण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भासापज्जत्तीए पज्जत्तयदस्य सरणामकम्मोदइल्लस्स वचिजोगस्सुवलंभा खओवसमिओ वचिजोगो। वीरियंतराइयस्स सव्वघादिफद्दयाणं संतोवसमेण देसघादिफद्दयाणमुदएण कायजोगुवलंभादो खओवसमिओ कायजोगो।

अजोगी णाम कधं भवदि ?

—षट्० खण्ड० २। १। सू ३४। पु ७ पृष्ठ० ७८

धीका—एत्थ णय-णिक्खेवेहि अजोगित्तस्स पुव्वं व चालणा कायव्वा।

खइयाए लद्धीए।

—षट्० खण्ड० २। १ सू ३५। पु ७। पृष्ठ० ७८

टीका—जोगकारणसरीरादिकम्माणं णिम्मूलखएणुप्पण्णत्तादो खइया लद्धी अजोगस्स।

योगमार्गणानुसार जीव मनोयोगी, वचनयोगी और वचनयोगी कैसे कहते हैं।

शंका—क्या योग औदयिक भाव है, कि क्षायोपशमिक, कि परिणामिक, कि क्षायिक, कि औपशमिक ?

योग क्षायिक तो हो नहीं सकता ? क्योंकि वैसा मानने में तो सर्वकर्मों के उदय सहित संसारी जीवों के वर्तमान रहते हुए भी योग के अभाव का प्रसंग आजायेगा। तथा सर्व कर्मोदय से रहित सिद्धों के योग के अस्तित्व का प्रसंग आ जायेगा। योग पारिणामिक भाव भी नहीं हो सकता, क्योंकि ऐसा मानने पर भी क्षायिक मानने से उत्पन्न होने वाले समस्त दोषों का प्रसंग आ जायेगा। योग औपशमिक भी नहीं है, क्योंकि औपशमिक भाव से रहित मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में योग के अभाव का प्रसंग आ जायेगा। योग घातिकर्मों के उदय से उत्पन्न भी नहीं है, क्योंकि सयोगिकेवली में घातिकर्मों के उदय-क्षीण होने के साथ ही योग के अभाव का प्रसंग आ जायेगा। योग अघातिकर्मों के उदय से उत्पन्न भी नहीं है, क्योंकि वैसा मानने से अयोगिकेवली में भी योग की सत्ता का प्रसंग आ जायेगा। योग घातिकर्मों के क्षयोपशम से उत्पन्न भी नहीं है, क्योंकि इससे भी सयोगिकेवली में योग के अभाव का प्रसंग आ जायेगा। योग अघातिकर्मों के क्षयोपशम से भी उत्पन्न नहीं है, क्योंकि अघातिकर्मों में सर्वघाती और देशघाती दोनों प्रकार के स्पर्धकों का अभाव होने से क्षयोपशम का भी अभाव है। यह सब मन में विचार कर पूछा गया है कि जीव मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी कैसे होता है।

क्षायोपशमिक लब्धि से जीव मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी होता है। ३३५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शंका—जीव प्रदेशों के संकोच और विकोच अर्थात् विस्तार रूप परिस्पंदन को योग कहते हैं। यह परिस्पन्द कर्मों के उदय से उत्पन्न होता है, क्योंकि कर्मोदय से रहित सिद्धों के वह नहीं पाया जाता। अयोगिकेवली में योग के अभाव से यह कहना उचित नहीं है कि योग औदयिक नहीं होता, क्योंकि अयोगिकेवली के यदि योग नहीं होता तो शरीर नामकर्म का उदय भी तो नहीं होता। शरीर नामकर्म के उदय से उत्पन्न होने वाला योग उस कर्मोदय के बिना नहीं हो सकता, क्योंकि वैसा मानने से अतिप्रसंग दोष उत्पन्न होगा। इस प्रकार जब योग औदयिक होता है तो उसे क्षायोपशमिक क्यों कहते हैं ?

समाधान—ऐसा नहीं, क्योंकि जब शरीर नामकर्म के उदय से शरीर बनने के योग्य बहुत से पुद्गलों का संचय होता है और वीर्यान्तराय कर्म के सर्वघाती स्पर्धकों के उदयाभाव से व उन्हीं स्पर्धकों के सत्त्वोपशम से तथा देशघाती स्पर्धकों के उदय से उत्पन्न होने के कारण क्षायोपशमिक कहलानेवाला वीर्य (बल) बढ़ता है, तब उस वीर्य को पाकर चूंकि जीवप्रदेशों का संकोच-विकोच बढ़ता है, अतः योग को क्षायोपशमिक कहा गया है।

शंका—यदि वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से उत्पन्न हुए बल की वृद्धि और हानि से जीव प्रदेशों के परिस्पन्द की वृद्धि और हानि होती है तब तो जिसके अन्तराय कर्म का क्षीण हो गया है ऐसे सिद्ध जीव में योग की बहुलता का प्रसंग आता है।

समाधान—नहीं आता, क्योंकि क्षायोपशमिक बल से क्षायिक बल भिन्न देखा जाता है। क्षायोपशमिक बल की वृद्धि-हानि से वृद्धि-हानि को प्राप्त होनेवाला जीवप्रदेशों का परिस्पन्द क्षायिक बल से वृद्धि-हानि को प्राप्त नहीं होता, क्योंकि ऐसा मानने से तो अतिप्रसंग दोष आ जायेगा।

शंका—यदि योग वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होता है, तो सयोगिकेवली में योग के अभाव का प्रसंग आता है ?

समाधान – नहीं आता, क्योंकि योग में क्षायोपशमिक भाव तो उपचार से माना गया है। असल में तो योग औदयिक भाव ही है और औदयिक योग का सयोगिकेवली में अभाव मानने में विरोध आता है।

वह योग तीन प्रकार का है—मनोयोग, वचनयोग और काययोग। मनोवर्गणा से निष्पन्न हुए द्रव्यमन के अवलम्बन से जो जीवका संकोच-विकोच होता है वह मनोयोग है। भाषावर्गणा सम्बन्धी पुद्गल स्कंधों के अवलम्बन से जो जीवप्रदेशों का संकोच-विकोच होता है वह वचनयोग है। जो चतुर्विध शरीरों के अवलम्बन से जीवप्रदेशों का संकोच-विकोच होता है वह काययोग है।

शंका—दो या तीन योग एक साथ क्यों नहीं होते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाधान— नहीं होते, क्योंकि उनकी एक साथ वृत्ति का निषेध किया गया है।

शंका—अनेक योगों की एक साथ वृत्ति पायी तो जाती है।

समाधान—नहीं पायी जाती है, क्योंकि इन्द्रियों के विषय से परे जो जीवप्रदेशों का परिस्पन्द होता है उसका इन्द्रियों द्वारा ज्ञान मान लेनेमें विरोध आता है। जीवों के चलते समय जीव प्रदेशों के संकोच-विकोच का नियम नहीं है, क्योंकि, सिद्ध होने के प्रथम समय में जब जीव यहाँ से, अर्थात् मध्य लोक से, लोक के अग्रभाग को जाता है तब उसके जीव प्रदेशों में संकोच-विकोच नहीं पाया जाता है।

शंका—मनोयोग क्षायोपशमिक कैसे हैं।

समाधान—बतलाते हैं, चूंकि वीर्यान्तरायकर्म के सर्वघाति स्पर्धकों के सत्त्वोपशम से व देशघाति स्पर्धकों के उदय से, नोइन्द्रियावरण कर्म के सर्वघाति स्पर्धकों के उदय-क्षय से व उन्हीं स्पर्धकों के उदय-क्षय से व उन्हीं स्पर्धकों के सत्त्वोपशम से तथा देशघाति स्पर्धकों के उदय से मनपर्याप्ति पूरी करनेवाले जीव के मनोयोग उत्पन्न होता है, अतः उन्हें क्षायोपशमिक भाव कहते हैं।

उसी प्रकार, वीर्यान्तराय कर्म के सर्वघाती स्पर्धकों के सत्त्वोपशम से व देशघाती स्पर्धकों के उदय से, जिह्वेन्द्रियावरण कर्म के सर्वघाती स्पर्धकों के उदय-क्षय से व उन्हीं के सत्त्वोपशम से तथा देशघाती स्पर्धकों के उदय से भाषापर्याप्ति पूर्ण करने वाले स्वरनाम-कर्मोदय सहित जीव के वचनयोग पाया जाता है।

वीर्यान्तरायकर्म के सर्वघाती स्पर्धकों के सत्त्वोपशम से व देशघाती स्पर्धकों के उदय से काययोग पाया जाता है। अतः काययोग भी क्षायोपशमिक है।

जीव अयोगी कैसे होता है ? । ३४।

यहाँ भी नयों और निक्षेपों के द्वारा अयोगित्व की पूर्ववत् चालना करना चाहिए।

क्षायिक लब्धि से जीव अयोगी होता है। ३५।

योग के कारणभूत शरीरादिक कर्मों के निर्मूल क्षय से उत्पन्न होने के कारण अयोग की लब्धि क्षायिक है।

४८ योगी और बंधकत्व

जोगाणुवादेण मणजोगि-वचिजोगि-कायजोगिणो बंधा।

—षट्० खण्ड० २। १। सू १४। पु ७। पृष्ठ० १७

टीका—एदं पि सुगमं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अजोगी अबंधा ।

—षट्० खण्ड० २ । १ । सू १५ । पु ७ । पृष्ठ० १८

टीका—जोगो णाम किं ? मण-वयण-कायपोग्गलालंबणेण जीवपदेसाणं परिप्फंदो । जदि एवं तो णत्थि अजोगिणो, सरीरयस्स जीवदव्वस्स अकिरियत्त-विरोहादो । ण एस दोसो, अट्ठकम्मेसु खीणेसु जा उड्ढगमणुवलंबिया किरिया सा जीवस्स साहाविया, कम्मोदएण विणा पउत्तत्तादो । सट्ठिददेसमछंडिय छद्दित्ता वा जीवदव्वस्स सावयवेहि परिप्फंदो अजोगो णाम, तस्स कम्मक्खयत्तादो । तेण सकिरिया वि सिद्धा अजोगिणो, जीवपदेसाणमट्टहिदजलपदेसाणं व उव्वत्तण-परियत्तणकिरियाभावादो । तदो ते अबंधा त्ति भणिदा ।

योग मार्गणानुसार मनयोगी, वचनयोगी और काययोगी बन्धक हैं । अयोगी जीव अबन्धक है ।

अस्तु—मन, वचन और काय सम्बन्धी पुद्गलों के आलम्बन से जो जीवप्रदेशों का परिस्पदन होता है वही योग है ।

प्रश्न यह है कि—यदि ऐसा है तो शरीरी जीव अयोगी हो ही नहीं सकते क्योंकि शरीरगत जीव द्रव्य को अक्रिय मानने में विरोध आता है ?

इसका समाधान यह है—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि आठों कर्मों के क्षीण हो जाने पर जो ऊर्ध्वगमनोपलम्बी क्रिया होती है, वह जीव का स्वाभाविक गुण है, क्योंकि वह कर्मोदय के बिना प्रवृत्त होती हैं । स्वस्थित प्रदेश को न छोड़ते हुए अथवा छोड़कर जो जीव द्रव्य का अपने अवयवों द्वारा परिस्पन्द होता है वह अयोग है । क्योंकि वह कर्म-क्षय से उत्पन्न होता है । अतः सक्रिय होते हुए भी शरीरी जीव अयोगी जीव सिद्ध होते हैं, क्योंकि उनके जीवप्रदेशों के तप्तायमान जलप्रदेशों के सदृश उद्वर्तन और परिवर्तन रूप क्रिया का अभाव है । अतः अयोगियों को अबन्धक कहा है ।

·४८.१ आयुषकर्म के बंधन के समय जघन्य योग होता है

जदा जदा आउअं बंधदि तदा तदा तप्पाओग्गेण जहण्णएण जोगेण बंधदि ॥१०॥

टीका—अपज्जत-पज्जत्तुववादेयंताणुवड्ढिजोगाणं परिहरणट्ठमाउअबंधपा-ओग्गजहण्णपरिणामजोग्गहणट्ठं च तप्पाओग्गजहण्णजोगग्गहणं कदं । कम्मट्ठिदि-पढमसमयप्पहुडि जाव तिस्से चरिमसमओ त्ति ताव गुणिदकम्मंसियपाओग्गाणं जोगट्ठाणाणं पंतीए देसादिणियमेणावट्ठिदाए खग्गधारासरिसीए जहण्णुक्कस्स-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जोगा अत्थि। तत्थ आउअबंधपाओग्गजहण्णजोगेहि चेव आउअं बंधदि त्ति उत्तं होदि।

—षट्० खण्ड० ४। २। ४ सू १०। पु १०। पृष्ठ० ३८। ९

जब-जब जीव आयु को बांधता है तब-तब उसके योग्य जघन्य योग से बांधता है।

अपर्याप्त व पर्याप्त भव सम्बन्धी उपपात और एकांतानुवृद्धि योगों का निषेध करने के लिए तथा आयुबंध के योग्य जघन्य परिणाम योग का ग्रहण करने के लिए उसके योग्य जघन्य योग का ग्रहण किया है। कर्मस्थिति के प्रथम समय से लेकर उसके अन्तिम समय तक गुणितकर्मांशिक जीव के योग्य योगस्थानों की देशादि के नियम से खड्गधारा के समान एक पंक्ति में अवस्थित जघन्य और उत्कृष्ट दोनों प्रकार के योग पाये जाते हैं। उनमें से आयुबंध के योग्य जघन्य योगों से ही आयु को बांधता है। यह उक्त अर्थ का तात्पर्य है।

·४९ योग और कृति—नोकृति, अवक्तव्यकृति

·१ × × × मणुसअपज्जत्त-वेउव्वियमिस्सहारदुग - सुहुमसांपराइयसुद्धि-संजदउवसमसासणसम्माइट्ठिसम्मामिच्छादिट्ठिजीवा सियाकदी, तिप्पहुडिउवरिम-संखाए कदाचिदुवलंभादो। सिया णोकदी, एदेसुअट्ठसु कदाचि एगस्सेव जीवस्स दंसणादो। सिया वत्तव्व कदी, कदाचि दोण्णं चेवुपलंभादो।

—षट्० सू ४। १। सू ६६। पु ९। पृष्ठ० २७७

मनुष्य अपर्याप्त, वैक्रियमिश्रकाययोग, आहारकद्विक (आहारककाययोग, आहारक-मिश्रकाययोग) सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव कथंचित् कृति है, क्योंकि ये तीन आदि उपरिम संख्या में कभी नहीं पाये जाते हैं। कथंचित् वे नोकृति है, क्योंकि इन आठ स्थानों में कभी एक ही जीव देखा जाता है। कथंचित् अवक्तव्यकृति है, क्योंकि कभी वहां दो ही जीव पाये जाते हैं।

× × × आहारदुग-विउव्वियमिस × × × कदिणोकदि अवक्तव्य संचिदा सिया अत्थि सिया णत्थि।

—षट्० सू ४। १। सू ६६। पु ९। पृष्ठ० २८१

आहारद्विक (आहारककाययोग, आहारकमिश्रकाययोग) वैक्रियमिश्रकाययोगी जीव कृति, नोकृति व अवक्तव्य संचित् कथंचित् हैं और कथंचित नहीं है।

·२ प्रथम-अप्रथम अपेक्षा योगी जीव और कृति

औदारिक काययोगी

औदारिकमिश्र काययोगी

कार्मण काययोगी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी—ये प्रथम और अप्रथम समय में नियम से कृति है। क्योंकि इनमें सर्वकाल केवल एक ही जीवों का अभाव है।

× × × ओरालिय कायजोगि-ओरालियमिस्सकायजोगि-कम्मइयकाय-जोगि × × × पढमा पढमा समएसु णियमा कदो। एदेसु एग-दोजीवाणं केवलाणं सव्वकालं पवेसामावादो।

—षट्० खण्ड० ४। २। सू ६६। टीका। पु ९ पृष्ठ० २७९

·३ चरम-अचरमानुगम की अपेक्षा योगी जीव और कृति

× × × एवं जहा पढमाणुगमो परुविदो तदा परुवेदव्वो × × ×

—षट्० खण्ड० ४। १। सू ६६। टीका। पु ९। पृष्ठ० २८०

जिस प्रकार—योगी जीवों की गणनकृति का प्रथम-अप्रथम अनुगम की अपेक्षा वर्णन किया गया उसी प्रकार चरमाचरम अनुगम की अपेक्षा करना चाहिए।

·४ संचयानुगम में द्रव्यानुगम की अपेक्षा योगी-जीव और कृति

मणुस-मणुस अपज्जत्त एसु कदि-णोकदि-अवत्तव्व-संचिदा केत्तिया? असंखेज्जा। × × × एवं × × × पंचमणजोगि - पचवचिजोगि - वेउव्वियदुगित्थि × × × वत्तव्वं, भेदाभावादो।

मणुसपज्जत्त × × × आहारदुग्ग × × × कदि - णकदि - अवत्तव्वसंचिदा केत्तिया? संखेज्जा।

× × × काययोगि (सु) × × × कदि-णोकदि-अवत्तव्व-संचिदा कत्तिया? अणंता।

× × × ओरालिय कायजोगि-ओरालियमिस्सकायजोगि-कम्मइयकाय-जोगि (सु) × × × कदि-संचिदा केत्तिया? अणंता। अंतरेण विणा गंगापवम्हो व्व अणंतजीवप्पवेसादो।

—षट्० खण्ड० ४। १। सू ६६। टीका। पु ९। पृष्ठ० २८४। ५

मनुष्य व मनुष्य अपर्याप्तों में कृति, नोकृति और अवक्तव्य संचित जीव असंख्यात है। इसी प्रकार पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, वैक्रियिकद्विक-जीवों में कहना चाहिए, क्योंकि इनके कोई विशेषता नहीं है।

मनुष्य पर्याप्त, आहारकद्विक में कृति, नोकृति व अवक्तव्य संचित संख्यात है, क्योंकि ये राशियाँ संख्यात है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काययोगी जीवों में कृति, नोकृति व अवक्तव्य संचित अनन्त है।

औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी जीवों में कृति संचित जीव अनन्त है। क्योंकि, इनमें अन्तर के बिना गंगाप्रवाह के समान अनन्त जीवों का प्रवेश है।

·५ संचयानुगम-सत्परुपणा की अपेक्षा योगी जीव और कृति

तत्थ संतपरूपणवदाए अत्थि णिरयगदीए णेरइया कदि-नोकदि-अवत्तव्व संचिदा। × × × एवं × × × पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-कायजोगि-वेउव्विय-कायजोगि × × × वत्तव्वं। एदेसु सांतरूवक्कमणदंसणादो।

× × × आहारदुग्ग-वेउव्वियमिस्स × कदि-णोकदि-अवत्तव्वसंचिदा सिया अत्थि सिया णत्थि।

× × × अवसेसासु मग्गणास्सु (ओरालिय-कायजोगि-ओरालियमिस्स कायजोगि-कम्मइयकायजोगि) अत्थि कतिसंचिदा, णोकदि-अवत्तव्वेहि एदेसु पवेसाभावादो। × × ×

—षट्० खण्ड० ४। १ सू ६६। टीका। पु ९। पृष्ठ० २८१

उनमें सत्प्ररुणा की अपेक्षा नरकगति में नारकी जीव कृति, नोकृति और अवक्तव्य संचित है। इसी प्रकार पाँच मनोयोगी, पांच वचनयोगी, काययोगी, वैक्रियिककाययोगी जीवों में कहना चाहिए। क्योंकि इनमें सान्तर उपक्रमण देखा जाता है।

आहारद्विक-आहारक-आहारकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीव कृति, नोकृति व अवक्तव्य कथंचित् है और कथंचित् नहीं है।

शेष मार्गणाओं में (औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी) जीव कृति संचित है क्योंकि इनमें नोकृति संचित और अवक्तव्य संचितों के प्रवेश का अभाव है।

·६ करणानुगम से संचित योगी जीवों में करणकृति

पंचमणजोगीसु पंचवचिजोगीसु अत्थि ओरालियवेउव्विय-आहारपरिसादणकदी संघादण-परिसादणकदी [च। संघादणकदी] किण्ण उत्ता? ण संघादणकदीए कायजोगं मोत्तूण अण्णजोगाभावादो। तेजा-कम्मइयाणं संघादण-परिसादणकदी अत्थि। कायजोगीणमोघभंगो। णवरि तेजा-कम्मइयपरिसादणं णत्थि, अजोगिं मोत्तूण अण्णत्थ तस्साभावादो। ओरालिकायजोगीसु अत्थि ओरालियसरीरपरिसादणकदी संघादण-परिसादणकदी वेउव्वियतिण्णिपदा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आहारपरिसादणकदी तेजाकम्मइयसंघादण-परिसादणकदी च। ओरालियमिस्स-कायजोगीणं तसअपज्जतभंगो। वेउव्वियकायजोगीसु अत्थि वेउव्विय-तेजा-कम्मइय-संघादण-परिसादणकदी। वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु अत्थि वेउव्विय-संघादणकदी संघादण-परिसादणकदी तेजा-कम्मइयसंघादणपरिसादणकदी च। आहारकायजोगीसु अत्थि ओरालियपरिसादणकदी आहार-तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी च। एवं आहारमिस्सकायजोगीसु। णवरि आहारसंघादण पि अत्थि। कम्मइयकायजोगीसु अत्थि ओरालियपरिसादणकदी, लोगमावूरिद-केवलीसु तदुवलंभादो। तेजा-कम्मइयसघादण-परिसादणकदी च अत्थि।

—षट्० खण्ड० ४। १। सू ७१। पु ९। पृष्ठ० ३५६। ७

पाँच मनोयोगियों और पाँच वचनयोगियों में औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीर की परिशातन कृति और संघातन-परिशातनकृति होती है। इनके उक्त शरीरों की संघातनकृति क्यों नहीं कही है? क्योंकि संघातनकृति में काययोग को छोड़कर दूसरा योग नहीं होता है।

पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगियों में तैजस और कार्मण शरीर की संघातन-कृति होती है।

काययोगियों की प्ररूपणा ओघ के समान है। विशेष इतना है कि उनमें तैजस और कार्मण शरीर की परिशातन कृति नहीं होती, क्योंकि अयोगी केवली को छोड़कर अन्य मार्गणाओं में इस कृति का अभाव है। औदारिककाययोगियों में औदारिकशरीर की परिशातन कृति व संघातन-परिशातन कृति, वैक्रियशरीर के तीनों पद, आहारक शरीर की परिशातनकृति, तथा तैजस और कार्मणशरीर की संघातन-परिशातनकृति होती है। औदारिकमिश्रकाययोगियों की प्ररूपणा त्रस अपर्याप्तों के समान है।

वैक्रियिककाययोगियों में वैक्रियशरीर की तथा तैजस व कार्मण शरीर की संघातन-परिशातन कृति होती है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों में वैक्रियशरीर की संघातनकृति व संघातन-परिशातनकृति तथा तैजस व कार्मणशरीर की संघातन-परिशातन कृति होती है।

आहारककाययोगियों में औदारिक शरीर की परिशातनकृति तथा आहारक, तैजस व कार्मण शरीर की संघातन-परिशातनकृति होती है। इसी प्रकार आहरकमिश्रकाययोगियों में समझना चाहिए। विशेष केवल इतना है कि इनमें आहारक शरीर की संघातनकृति भी होती है।

कार्मणकाययोगियों में औदारिक शरीर की परिशातनकृति होती है, क्योंकि लोकपूरण समुद्घात को प्राप्त हुए केवलियों में उक्त कृति पायी जाती है। उनमें तैजस व कार्मण-शरीर की संघातन-परिशातनकृति भी होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·७ करणकृति अनुगम में स्पर्शानुगम में क्षेत्रानुगम से कृतियुक्त संचित जीव

पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीणं ओरालियसंघादण-परिसादणकदीए लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। एवं वेउव्वियपरिसादणकदीए वि। वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठचोद्दसभागा देसूणा सव्वलोगो वा। आहारदोण्णिपदाणं खेत्तभंगो। कायजोगीणमोघो। णवरि तेजा-कम्मइयपरिसादणं णत्थि। ओरालियकायजोगीसु ओरालिय-तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए सव्वलोगो। ओरालिय परिसादणकदीए वेउव्वियतिण्णिपदाणं तिरिक्खभंगो। आहारपरिसादणकदीए खेत्तभंगो। ओरालियमिस्सकायजोगीसु अप्पणो तिण्णिपदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? सव्व-लोगो। वेउव्वियकायजोगीसु अप्पणो पदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? अट्ठ-तेरह-चोद्दसभागा वा देसूणा। वेउव्वियमिस्सकायजोगीणं खेत्तभंगो। आहारदुगस्स खेत्तभंगो। कम्मइयकायजोगीणं ओरालियपरिसादणकदीए केवलिभंगो। तेजा-कम्मइयसंघादणपरिसादणकदीए केवडियं खेत्तं फोसिदं ? सव्वलोगो।

—षट्० खण्ड० ४। १। सू ७१। पु ९। पृष्ठ० ३७४। ५

पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीवों में औदारिक शरीर की संघातन-परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा लोक का असंख्यातवाँ भाग अथवा सर्वलोक स्पर्श किया गया है। इसी प्रकार वैक्रियिक शरीर की परिशातनकृतियुक्त जीवों की भी प्ररुपणा करना चाहिए। वैक्रियिक, तैजस व कार्मण शरीर की संघातन-परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा लोक का असंख्यातवां भाग, कुछ कम आठ बटे चौदह भाग अथवा सर्व लोक स्पर्श किया गया है। आहारक शरीर के दो पद युक्त जीवों की प्ररुपणा क्षेत्र प्ररुपणा के समान है।

काययोगियों की प्ररुपणा ओघ के समान है। विशेष इतना है कि इनके तैजस और कार्मण शरीर की परिशातनकृति नहीं होती। औदारिक काययोगियों में औदारिक, तैजस व कार्मण शरीर की संघातन-परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा सर्वलोक स्पर्श किया गया है। औदारिक शरीर की परिशातनकृति तथा वैक्रियशरीर के तीनों पद युक्त जीवों की प्ररुपणा तिर्यंचों के समान है। आहारक शरीर की परिशातनकृति युक्त जीवों की प्ररुपणा क्षेत्र प्ररुपणा के समान है। औदारिकमिश्रकाययोगियों में अपने तीनों पद युक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पर्श किया गया हैं। उक्त जीवों द्वारा सर्वलोक स्पर्श किया गया है।

वैक्रियिककाययोगियों में अपने पदों द्वारा कितना स्पर्श किया गया है ? उक्त जीवों द्वारा कुछ कम आठ व तेरह बटे चौदह भाग स्पर्श किये गये हैं। वैक्रियिकमिश्रकाय-योगियों की प्ररुपणा क्षेत्रप्ररुपणा के समान है। आहारक और आहारकमिश्रकाययोगियों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की प्ररुपणा क्षेत्र प्ररुपणा के समान है। कार्मणकाययोगियों में औदारिक शरीर की परिशातन-कृति युक्त जीवों की प्ररुपणा केवलियों के समान है। इनमें तैजस और कार्मण शरीर की संघातन-परिशातन कृति युक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पर्श किया गया है? उक्त जीवों द्वारा सर्वलोक स्पर्श किया गया है।

·८ अंतरानुगमसे करण कृति की अपेक्षा योग

पंचमजोगि-पंचवचिजोगीसु ओरालिय-वेउव्विय-परिसादण-संघादणपरि-संघादणकदीणं तेजा-कम्मइयसंघादण परीसादणकदीए णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरे। आहारपरिसादण-संघादणपरिसादणकदीणं णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण वासपुधत्तं। एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं।

कायजोगीसु ओरालिय-वेउव्वियतिण्णिपदाणं एइंदियभंगो। णवरि वेउव्वियसंघादण-संघादणपरिसादणकदीणं जहण्णेण एगसमओ। आहारतिगस्स णाणाजीवं पडुच्च ओघं। एगजीवं पडुच्च णत्थि अतरं। तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए णत्थि अंतरं।

ओरालियकायजोगीसु ओरालियपरिसादणकदीए वेउव्वियतिण्णिपदाणं णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण तिण्णिवाससहस्साणि देसूणाणि। णवरि वेउव्वियसंघादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। ओरालियसंघादण-परिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। आहारपरिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च ओघं। एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। तेजा-कम्मइयएगपदमोघं।

ओरालियमिस्सकायजोगीसु ओरालियसंघादणकदी णाणाजीवं पडुच्च ओघं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं चदुसमऊणं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं समऊणं। संघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च ओघं। एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ। तेजा-कम्मइयसंघादणपरिसादणकदी ओघं।

वेउव्वियकायजोगीसु सगपदाणं णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। वेउव्विय-मिस्सकायजोगीसु सगपदाणं णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण बारसमुहुत्ता। एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। आहारकायजोगि-आहारमिस्स-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कायजोगीसु सगपदाणं णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण वासपुधत्तं। एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं।

कम्मइयकायजोगीसु ओरालियपरिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण वासपुधत्तं। एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। तेजा-कम्मइयएगपदस्स णत्थि अंतरं।

—षट्० खण्ड० ४। १। सू ७१। पु ९। पृष्ठ० ४१४। ६

पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीवों में औदारिक व वैक्रियशरीर की परिशातन व संघातन-परिशातनकृति तथा तैजस व कार्मण शरीर की संघातन-परिशातन कृति का नाना व एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं होता। आहारक शरीर की परिशातन और संघातन-परिशातनकृति का अन्तर नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट से वर्ष पृथक्त्व काल प्रमाण होता है। एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं होता।

काययोगियों में औदारिक और वैक्रियिक शरीर के तीनों पदों की प्ररुपणा एकेन्द्रियों के समान है। विशेष इतना है कि वैक्रियिकशरीर की संघातन व संघातन-परिशातनकृति का अन्तर जघन्य से एक समय होता है। आहारक शरीर के तीनों पदों की प्ररुपणा नाना जीवों की अपेक्षा ओघ के समान है व एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं होता। तैजस-कार्मण शरीर की संघातन-परिशातनकृति का अन्तर नहीं होता।

औदारिककाययोगियों में औदारिकशरीर की परिशातनकृति तथा वैक्रियशरीर के तीनों पदों का नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं होता। एक जीव की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से कुछ कम तीन हजार वर्ष प्रमाण होता है। विशेष इतना है कि वैक्रियिक शरीर की संघातनकृति का अन्तर नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त कालप्रमाण होता है। औदारिक शरीर की संघातन-परिशातन कृति का नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं होता है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य व उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त कालप्रमाण होता है। आहारक शरीर की परिशातनकृति का अन्तर नाना जीवों की अपेक्षा ओघ के समान है। एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं होता। तैजस और कार्मणशरीर के एक पद अर्थात् संघातन-परिशातनकृति का अन्तर ओघ के समान है।

औदारिकमिश्रकाययोगियों में औदारिकशरीर की संघातनकृति के अन्तर की प्ररुपणा नाना जीवों की अपेक्षा ओघ के समान है। एक जीव की जघन्य से चार समय कम क्षुद्रभवग्रहण-प्रमाण और उत्कर्ष से एक समय कम अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण होता है। औदारिकशरीर की संघातन-परिशातनकृति का अन्तर नाना जीवों की अपेक्षा ओघ के समान है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य व उत्कर्ष से एक समय है। तैजस व कार्मण-शरीर की संघातन-परिशातनकृति के अन्तर की प्ररुपणा ओघ के समान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों में अपने पदों का नाना व एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों में अपने पदों का अन्तर नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से बारह मुहूर्त प्रमाण होता है। एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं होता। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियों में अपने-अपने पदों का अन्तर नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से वर्ष पृथक्त्व कालप्रमाण होता है। एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं होता।

कार्मणकाययोगियों में औदारिकशरीर की परिशातनकृति का अन्तर नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से वर्ष पृथक्त्व कालप्रमाण होता है। एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं होता। तैजस व कार्मणशरीर के एक पद (संघातन-परिशातनकृति) का अन्तर नहीं होता है।

·०९ भावानुगमसे करणकृति की अपेक्षा योग

पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु सव्वत्थोवा ओरालियवेउव्वियपरिसादण-कदी। संघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा, देवाणं संखेज्जभागत्तादो। सव्वत्थोवा आहारपरिसादणकदी। संघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया। सुगमं।

कायजोगीसु ओरालिय-वेउव्विय-आहारतिण्णिपदा ओघं। ओरालिय-कायजोगीसु सव्वत्थोवा ओरालियपरिसादणकदी। संघादण-परिसादणकदी अणंतगुणा। वेउव्वियतिण्णिपदाणं तिरिक्खभंगो। आहारम्मि णत्थि अप्पा-बहुगमेगपदत्तादो। ओरालियमिस्सकायजोगीसु सव्वत्थोवा ओरालियसंघादण-कदी, अपज्जत्तएसु एगसमयसंचिदत्तादो। संघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा, संघादणजीववदिरित्तअसेसापज्जत्तजीवगहणादो।

वेउव्विय-आहारकायजोगीसु णत्थि अप्पाबहुगं, एगपदत्तादो। वेउव्विय-मिस्सकायजोगीसु सव्वत्थोवा वेउव्वियसंघादणकदी। [संघादण] परिसादण-कदी असंखेज्जगुणा। सुगमं। आहारमिस्सकायजोगिसु सव्वत्थोवा आहार-संघादण कदी। संघादण-परिसादणकदी संखेज्जगुणा। सेसपदाणं णत्थि अप्पाबहुगं, एगत्तादो। कम्मइयकायजोगीसु णत्थि अप्पाबहुगं, एगपदत्तादो।

—षट्० खण्ड० ४। १ सू ७१। पु ९। पृष्ठ० ४३३। ४

पांच मनोयोगी और पाँच वचनयोगियों में औदारिक और वैक्रियशरीर की परि-शातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक है। इनसे उनकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं क्योंकि वे देवों के संख्यातवें भाग हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आहारकशरीर की परिशातनकृति युक्त जीव सबसे कम है। इससे उसकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेषाधिक है। कारण सुगम है।

काययोगियों में औदारिक, वैक्रियिक और आहारकशरीर के तीन पदों की प्ररूपणा ओघ के समान है। औदारिककाययोगियों से औदारिकशरीर की परिशातनकृति युक्त जीव सबसे कम है। इनसे उसकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव अनन्तगुणे हैं। वैक्रियशरीर के तीनों पदों की प्ररूपणा तिर्यंचों के समान है। आहारकशरीर के आश्रित अल्पबहुत्व नहीं है। क्योंकि उसका यहाँ एक ही पद है।

औदारिकमिश्रकाययोगियों में औदारिकशरीर की संघातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक है, क्योंकि वे अपर्याप्तों में एक समय मात्र में संचित है। इनसे उसकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे है। क्योंकि इनमें संघातनकृति युक्त जीवों को छोड़कर शेष सब अपर्याप्त जीवों का ग्रहण है।

वैक्रिय और आहारककाययोगियों में अल्पबहुत्व नहीं है क्योंकि वे एक-एक पद से सहित हैं। वैक्रियमिश्रकाययोगियों में वैक्रियशरीर की संघातन युक्त जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे उसकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं। यह सुगम है। आहारक-मिश्रकाययोगियों में आहारकशरीर की संघातनकृति युक्त जीव सबसे कम है। उनसे उसकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे है। शेष पदों के अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि वे एक-एक पद से सहित है। कार्मणकाययोगियों में अल्पबहुत्व नहीं है क्योंकि उनमें एक ही पद है।

१० करणानुगम में संचित योगी जीवों की संघातनादि कृति युक्त कितने क्षेत्र में अवस्थिति

पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु ओरालिय-वेउव्विय-आहारपरिसादणकदी ओरालिय-वेउव्विय-आहारतेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी केवडिखेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे। कायजोगीसु ओघो। णवरि तेजा-कम्मइयपरि-सादणकदी णत्थि। ओरालियकायजोगीसु ओरालिय-तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी केवडिखेत्ते? सव्वलोगे। वेउव्वियतिण्णिपदा ओरालिय-आहारपरिसादणकदी केवडिखेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे। ओरालिय-मिस्सकायजोगीणं सुहुमेइंदियभंगो। वेउव्वियकायजोगीसु अप्पणो दोपदा लोगस्स असंखेज्जदिभागे। वेउव्वियमिस्सकायजोगीणं देवभंगो। आहार-आहारमिस्सतिचत्तारिपदा लोगस्स असंखेज्जदिभागे। कम्मइयकायजोगीसु ओरालियपरिसादणकदी केवलिभंगो। तेजा-कम्मइय-संघादणपरिसादणकदी सव्वलोगे।

—षट्० खण्ड० ४। १। सू ७१। पु ९ पृष्ठ० ३६७। ८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीवों में औदारिक, वैक्रियिक और आहारक परिशातनकृति तथा औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस व कार्मणशरीर की संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं ?

उक्त जीव लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं। कायजोगी जीवों की प्ररुपणा ओघ के समान है। विशेष इतना है कि इनमें तैजस व कार्मणशरीर की परिशातनकृति नहीं होती। औदारिककाययोगी जीवों में औदारिक, तैजस व कार्मणशरीर की संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं।

उक्त जीव सब लोक में रहते हैं। औदारिककाययोगियों में वैक्रियिकशरीर के तीन पद तथा औदारिक व आहारकशरीर की परिशातनकृति युक्त जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं। उक्त जीव लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं। औदारिकमिश्रकाययोगियों की प्ररुपणा सूक्ष्म एकेन्द्रिय के समान है। वैक्रियिककाययोगियों में अपने दो पद युक्त जीव लोक के असंख्मातवें भाग में रहते हैं। वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों की प्ररुपणा देवों के समान है। आहारककाययोगियों में औदारिकशरीर की परिशातनकृति और आहारक, तैजस व कार्मण-शरीर की संघातन-परिशातनकृति, इस प्रकार तीन पद, तथा आहारकमिश्रकाययोगियों में —इन तीन पदों के साथ आहारकशरीर की संघातनकृति, इस प्रकार चार पद युक्त जीव असंख्यातवें भाग में रहते हैं। कार्मणकाययोगियों में औदारिकशरीर की परिशातनकृति युक्त जीवों की प्ररुपणा केवली जीवों के समान है। इनमें तैजस व कार्मणशरीर की संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव सब लोक में रहते हैं।

·११ करणानुगम में संचित योगी जीवों की संघातनकृति आदि कृति करते हुए कितनी संख्या —

पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीणं ओरालिय-वेउव्वियपरिसादण-संघादणपरि-सादणकदी तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी केत्तिया ? असंखेज्जा। आहारदोपदा संखेज्जा। कायजोगी ओघं। णवरि तेजा-कम्मइयपरिसादणं णत्थि। [ओरालियकायजोगीसु] ओरालियसंघादण-[संघादण] परिसादण-कदी तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी केत्तिया ? अणंता। ओरालिय-सादणकदी वेउव्वियतिण्णिपदा असंखेज्जा। आहारपरिसादणकदी संखेज्जा। ओरालियमिस्सकायजोगीणं सुहुमेइंदियभंगो। वेउव्वियकायजोगीसु दोण्णिपदा असंखेज्जा। एवं वेउव्वियमिस्सकायजोगीणं। णवरि संघादणकदी अत्थि। आहारकायजोगी-आहारमिस्सकायजोगीणं तिण्णि-चत्तारिपदा संखेज्जा। कम्मइयकायजोगीणं तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी केत्तिया ? अणंता। ओरालियपरिसादणकदी। संखेज्जा।

—षट्० खण्ड० ४। १। सू ७१। पु ९। पृष्ठ० ३६१। २

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगियों में औदारिक व वैक्रियिकशरीर की परिशातन व संघातन-परिशातनकृति तथा तैजस व कार्मणशरीर की संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव कितने हैं ? असंख्यात है। उक्त जीवों में आहारकशरीर के दो पद अर्थात् परिशातन व संघातन परिशातनकृति युक्त जीव संख्यात हैं ? काययोगियों की प्ररुपणा ओघ के समान है। विशेष इतना है कि इनमें तैजस और कार्मणशरीर की परिशातनकृति नहीं होती। [औदारिक काययोगियों में] औदारिक शरीर की [संघातन व] संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। इनमें औदारिकशरीर की परिशातनकृति व वैक्रियिकशरीर के तीनों पद युक्त जीव असंख्यात है।

आहारकशरीर भी परिशातनकृति युक्त जीव संख्यात है। औदारिकमिश्रकाय-योगियों की प्ररुपणा सूक्ष्म एकेन्द्रियों के समान है। वैक्रियिककाययोगियों में दोनों पद युक्त जीव असंख्यात है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों में कहना चाहिए। विशेषता इतनी है कि इनके संघातनकृति होती है। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाय-योगियों में तीन या चार पद युक्त जीव संख्यात है। कार्मणकाययोगियों में तैजस व कार्मण-शरीर की संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। इनमें औदारिक शरीर की परिशातनकृति युक्त जीव संख्यात हैं।

·४९ उपपातयोग-परिणामयोग-एकान्तानुवृद्धियोग

टीका—उववादजोगो णाम कत्थ होदि ? उप्पण्णपढमसमए चेव। केवडिओ तस्स कालो ? जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ। उप्पण्णबिदियसमयप्पहुडि जाव सरीरपज्जत्तीए अप्पज्जत्तयदचरिमसमओ ताव एगंताणुवड्ढिजोगो होदि। णवरि लद्धिअपज्जत्ताणमाउअबंधपाओग्गकाले सगजोविदतिभागे परिणामजोगो होदि। हेट्ठा एगंताणुवड्ढिजोगो चेव। लद्धिअपज्जत्ताणमाउअबंधकाले चेव परिणामजोगो होदि त्ति के वि भणंति। तण्ण घड़दे, परिणामजोगे ट्ठिदस्स अपत्तुववादजोगस्स एयंताणुवड्ढिजोगेण परिणामविरोहादो। एयंताणुवड्ढिजोग-कालो जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ। पज्जत्तपढमसमयप्पहुडि उवरि सव्वत्थ परिणामजोगो चेव। णिव्वत्तिअपज्जत्ताणं णत्थिपरिणामजोगो। एवं जोग-अप्पाबहुगं समत्तं। संपहि चउण्णमप्पाबहुगाणमेदाओ संदिट्ठीओ × × ×।

एदेसु सुहुमणिगोदादिसण्णिपंचिंदिया त्ति लद्धिअपज्जत्ताणं जहण्णउववाद-जोगा। सो जहण्णउववादजोगो कस्स होदि ? पढमसमयतब्भवत्थस्स विग्गह-गदीए वट्टमाणस्स। सो केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण उक्कस्सेण य एगस-मइओ। बिदियादिसु समएसु एगंताणुवड्ढिजोगपउत्तीदो। सरीरगहीदे जोगो वड्ढदि त्ति विग्गहगदीए सामित्तं दिण जहण्णयं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुहुम-बादराणं णिव्वत्तिपज्जत्तयाणमेदे जहण्णया परिणामजोगा। सो जहण्णपरिणामजोगो तेसिं कत्थ होदि? सरीरपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स पढमसमए चेव होदि। केवचिरं कालादो? जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण चत्तारि समया। तस्सुवरि तेसिं चेव उक्कस्सिया परिणामजोगा। सो कस्स होदि। परंपरपज्जत्तीए पजत्तयदस्स। सो केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण बे समया। तदुवरि सुहुम-बादराणं लद्धिअपज्जत्तयाण-मुक्कस्सया परिणामजोगा। ते कत्थ होंति? आउअबंधपाओग्गपढमसमयादो जाव भवट्ठिदीए चरिसमओ त्ति एत्थुद्देसे होंति। आउअबंधपाओग्गकालो केत्तिओ? सगजोविदतिभागस्स पढमसमयप्पहुडि जाव विस्समणकालअणंतर-हेट्ठिमसमओ त्ति। सो केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण बे समया। बेइंदियादि जाव सण्णिपंचिंदियणिव्वत्तिपज्जत्तओ त्ति एदेसिं जहण्णपरिणामजोगा एदे × × ×। सो कत्थ होदि? पढमसमयपज्जत्तय-दम्मि। सो केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण चत्तारि-समओ होदि।

बीइंदियादि जाव सण्णिपंचिंदियो त्ति एदेसिं णिव्वत्तिअपज्जत्तयाणमेदे उक्कस्सया एगंताणुवड्ढिजोगा। सो एयंताणुवड्ढिजोगो उक्कस्सओ कत्थ घेप्पदि? सरीरपज्जत्तीए पज्जत्तयदो होहदि त्ति ट्ठिदम्मि घेप्पइ। केवचिरं कालादो एयंताणुवड्ढिजोगो होदि? जहण्णुक्कस्सेण एगो समओ। बेइंदियादि जाव सण्णिपंचिंदियणिव्वत्तिपज्जओ त्ति एदेसिमेदे उक्कस्सपरिणामजोगा × × ×। सो कस्स होदि? परंपरपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स। सो केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण बे समया। एसा मूलवीणा णाम।

सुहुमादिसण्णिपंचिंदिओ त्ति लद्धिअपज्जत्ताणं जहण्णया उववादजोगा एदे × × ×। सो कस्स होदि? पढमसमयतब्भवत्थस्स जहण्णजोगस्स। केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण उक्कस्सेण य एगसमओ। सुहुमादिसण्णि-पंचिंदियणिव्वत्तिअपज्जत्ताणं एदे जहण्णया उववादजोगा × × ×।

एदे कस्स होंति? पढमसमयतब्भवत्थस्स विग्गहगईए वट्टमाणस्स। केवचिरं कालादो होंति? जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ।

सुहुम-बादराणं लद्धिअपज्जत्तयाणमेदे जहण्णया एयंताणुवड्ढिजोगा × × ×

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सो कस्स होदि ? बिदियसमयतब्भवत्थस्स जहण्णजोगिस्स। सो केवचिरं-कालादो होदि ? जहण्णेण उक्कस्सेण य एगसमओ भवदि।

सुहुम-बादराणं णिव्वत्तिअपज्जत्तयाणमेदे जहण्णया एयंताणुवड्डि-जोगा × × ×। सो कस्स होदि ? बिदियसमयतब्भवत्थस्स जहण्णजोगिस्स। सो केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ।

—षट्० खण्ड० ४। २। ४। सू १७३। पु १० पृष्ठ० ४२० से ४२५

उत्पन्न होने के प्रथम समय में उपपाद योगस्थान होता है। उसका जघन्य व उत्कृष्टकाल एक समय मात्र है।

उत्पन्न होने के द्वितीय समय से लेकर शरीर पर्याप्ति से अपर्याप्त रहने के अन्तिम समय तक एकान्तानुवृद्धियोग होता है। विशेष इतना है कि लब्ध्यपर्याप्तकों के आयुबंध के योग्यकाल में अपने जीवित के विभाग में परिणामयोग होता है। उससे नीचे एकान्तानु-वृद्धि योग ही होता है।

लब्ध्यपर्याप्तकों के आयुबन्धकाल में ही परिणामयोग होता है ऐसा कितनेक आचार्य कहते हैं। किन्तु यह घटित नहीं होता, क्योंकि इस प्रकार से जो जीव परिणाम योग में स्थित है व उपपादयोग को नहीं प्राप्त हुआ है उसके एकान्तानुवृद्धियोग के साथ परिणाम के होने में विरोध आता है। एकान्तानुवृद्धियोग का काल जघन्य व उत्कृष्ट काल एक समय मात्र है। पर्याप्त होने के प्रथम समय से लेकर आगे सब जगह परिणामयोग ही होता है। निर्वृत्त्यपर्याप्तकों के परिणामयोग नहीं होता। इस प्रकार योग अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

इसमें सूक्ष्म निगोद को आदि लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यन्त लब्ध्यपर्याप्तकों के जघन्य उपपादयोग होते हैं।

अस्तु विग्रहगति में वर्तमान जीव के तद्भवस्थ होने के प्रथम समय में जघन्य उपपादयोग होता है। वह जघन्य व उत्कर्ष से एक समय रहता है, क्योंकि द्वितीयादि समयों में एकान्तानुवृद्धियोग प्रवृत्त होता है।

शरीर ग्रहण कर लेने पर चूंकि योग वृद्धि को प्राप्त होता है, अतः विग्रहगति में जघन्य स्वामित्व दिया गया है। सूक्ष्क व बादर निर्वृत्तिपर्याप्तकों के जघन्य परिणाम योग है।

वह जघन्य परिणामयोग शरीरपर्याप्त से पर्याप्त होने के प्रथम समय में ही होता है।

वह परिणाम योग जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट से चार समय रहता है। उससे आगे उनके ही उत्कृष्ट परिणाम योग होते हैं। वह उत्कृष्ट परिणामयोग परम्परा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के होता है। वह जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट से दो समय होता है। उससे आगे सूक्ष्म और बादर लब्ध्यपर्याप्तकों के उत्कृष्ट परिणाम योग होते हैं। वे आयुबंध के योग्य प्रथम समय से लेकर भवस्थिति के अन्तिम समय तक इस उद्देश में होते हैं।

अपने जीवित के तृतीय भाग के प्रथम समय से लेकर विश्रमणकाल के अनन्तर अधस्तन समय तक आयुबंध के योगकाल माना गया है।

वह जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से दो समय होता है।

द्वीन्द्रिय को आदि लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्ति-पर्याप्तक तक इनके ये जघन्य परिणामयोग होते हैं। (संदृष्टि मूल में देखिये)। वह पर्याप्त होने के प्रथम समय में होता है। वह जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट से चार समय होता है।

द्वीन्द्रिय को आदि लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय तक इन निर्वृत्यपर्याप्तकों के ये उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योग होते हैं।

वह उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धियोग शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त होगा, इस प्रकार स्थित जीव में ग्रहण किया जाता है।

वह एकान्तानुवृद्धियोग जघन्य व उत्कृष्ट से एक समय होता है।

द्वीन्द्रिय को आदि लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्तक तक इनके ये उत्कृष्ट परिणाम योग होते हैं। (संदृष्टि मूल में देखिये)।

वह परम्परा पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के होता है।

वह जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट से दो समय होता है। यह मूलवीणा कहलाती है।

सूक्ष्म से लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय तक लब्ध्यपर्याप्तकों के ये जघन्य उपपादयोग होते हैं। (संदृष्टि मूल में देखिये) वह तद्भवस्थ हुए जघन्य योग वाले जीव के प्रथम समय में होता है। वह जघत्य व उत्कृष्ट से एक समय होता है।

सूक्ष्म को आदि लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय निवृत्तिपर्याप्तकों के ये जघन्य उपपाद योग है। (संदृष्टि मूल में देखिये)।

ये विग्रहगति में वर्तमान जीव के तद्भवस्थ होने के प्रथम समय में होते हैं। वे जघन्य और उत्कर्ष से एक समय होते हैं।

सूक्ष्म व बादर लब्ध्यपर्याप्तकों के जघन्य एकान्तानुवृद्धियोग है (मूल में)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह तद्भवस्थ होने के द्वितीय समय में जघन्य योगवाले के होता है। वह जघन्य व उत्वर्ष से एक समय होता है।

सूक्ष्म व बादर निर्वृत्यपर्याप्तकों के वे जघन्य एकान्तानुवृद्धियोग है। (मूल में) वह तद्भवस्थ होने के द्वितीय समय में वर्तमान जघन्य योगवाले के होता है। वह जघन्य व उत्कृष्ट से एक समय होता है।

·५० समय व संख्या की अपेक्षा सयोगी जीव की उत्पत्ति-मरण-अवस्थिति—

·१ नरक पृथ्वियों में

गमक १—इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढणीए केवतिया निरयावाससय-सहस्सा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तीसं निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता। ते णं भंते ! किं संखेज्ज-वित्थडा ? असखेज्जवित्थडा ? गोयमा ! संखेज्जवित्थडा वि, असंखेज्ज-वित्थडा वि।

इमीसे णं भंते ! रयणप्पयाए पुढवीए तीसाए निरयादाससयसहस्सेसु नरएसु एगसमएणं × × ×। ३५—केवतिया मणजोगी उववज्जंति ? ३६—केव-तिया वयजोगी उववज्जंति ? ३७—केवतिया कायजोगी उववज्जंति × × ×।

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु संखेज्जवित्थडेसु नरएसु एगसमएणं × × × ? मणजोगी न उववज्जंति, एवं वइजोगी वि। जइण्णेण एको वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा काय-जोगी उववज्जंति।

—भग० श० १३। उ १। सू २, ३, ४

गमक १—नरक पृथ्वियाँ सात कही है—यथा—रत्नप्रभा, यावत् अधः सप्तम पृथ्वी।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी में तीस लाख नरकावास कहे गये हैं। वे नरकावास संख्येय-विस्तृत भी है और असंख्येय-विस्तृत भी है।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से संख्येय (योजन) विस्तृत नरकावासों में एक समय में कितने मनोयोगी जीव उत्पन्न होते हैं, कितने वचन योगी जीव उत्पन्न होते हैं, कितने काययोगी जीव उत्पन्न होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हे गौतम ! इस रत्नप्रभा-पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से संख्येय विस्तृत नरकावासों में एक समय में मनोयोगी और वचनयोगी जीव उत्पन्न नहीं होते हैं। जघन्य एक अथवा दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात काययोगी जीव उत्पन्न होते हैं।

नोट—आगम में रत्नप्रभा पृथ्वी में उत्पन्न होने वाले जीवों के विषय में लेश्यादि ३९ प्रश्न किये गये हैं। हमने योग को ही ग्रहण किया है। उत्पत्ति के समय अपर्याप्त होने में मन और वचन, इन दोनों योगों का अभाव है। इसलिये ऐसा कहा गया है कि मनोयोगी और वचन उत्पन्न नहीं होते हैं। चूंकि सभी सयोगी जीवों के काययोग सदैव रहता है। इसलिए ऐसा कहा गया है कि—काययोगी उत्पन्न होते हैं।

गमक १—इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावास-सयसहस्सेसु असंखेज्जवित्थडेसु नरएसु एगसमएणं केवतिया नेरइया उववज्जंति जाव केवतिया अणागारोवउत्ता उववज्जंति ? (केवतिया मणजोगी उवव-ज्जंति ? केवतिया वइजोगी उववज्जंति, केवतिया कायजोगी उववज्जंति)।

गोयमा ! इसीसे रयणप्पयाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु असंखेज्जवित्थडेसु नरएसु एगसमएण जहण्णेण एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं असंखेज्जा नेरइया उववज्जंति ? एवं जहेव संखेज्जवित्थडेसु तिण्णि-गमगा तहा असंखेज्जवित्थडेसु वि तिण्णि गमगा भाणियव्वा, नवरं असंखेज्जा भाणियव्वा, सेसं तं चेव जाव असंखेज्जा अचरिमा पण्णत्ता, नवरं-संखेज्ज-वित्थडेसु असंखेज्जवित्थडेसु वि ओहिनाणी, ओहिदंसणी य संखेज्जा उव्वट्टावेयव्वा, सेसं तं चेव।

—भग० श० १३। उ १ सू ७

गमक १ इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से असंख्यात योजन विस्तारवाले नरकावासों में एक समय में कितने मनोयोगी जीव, कितने वचनयोगी जीव व कितने काययोगी जीव उत्पन्न होते हैं।

हे गौतम ! जिस प्रकार संख्यात योजन विस्तार वाले नरकावासों के विषय में (उत्पाद, उदवर्तन और सत्ता) ये तीन आलाप कहे गये हैं उसी प्रकार असंख्यात योजन वाले नरकावासों के विषय में भी तीन आलापक कहने चाहिए। इनमें विशेषता यह है कि यहां संख्यात के स्थान पर असंख्यात पाठ कहना चाहिए। शेष सब पहले के समान कहना चाहिए।

नोट—असंख्यात योजन विस्तृत नरकावासों में एक समय में मनोयोगी और वचन योगी जीव उत्पन्न नहीं होते हैं। जघन्य एक या दो या तीन अथवा उत्कृष्ट असंख्यात काययोगी उत्पन्न होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गमक २—इसीसे णं भंते ! रयणप्पयाए पुढवीए तीसाए निरयावास-सयसहस्सेसु संखेज्जवित्थडेसु नरएसु एगसमएणं केवतिया नेरइया उववइंति × × ×।

गोयमा ! इसीसे रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरया वाससयसहस्सेसु संखेज्जवित्थडेसु नरएसु एगसमएणं × × × । मणजोगी न उव्वट्टंति, एवं वइजोगी वि। जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा कायजोगी उववट्टंति।

—भग० श० १३ । उ १ । सू ४

गमक २—इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से जो संख्यात योजन विस्तार वाले नरकावास है उनमें से एक समय में कितने मनोयोगी जीव उद्वर्तते (मरण) हैं, कितने वचनयोगी जीव और कितने काययोगी जीव उद्वर्तते हैं ।

हे गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से जो संख्यात योजन विस्तारवाले नरकावास है उनमें से एक समय में मनोयोगी और वचनयोगी जीव नहीं उद्वर्तते हैं । काययोगी जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात उद्वर्तते हैं ।

पाठ ऊपर देखो ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से असंख्यात योजन विस्तारवाले हैं उनमें एक समय में मनोयोगी और वचनयोगी नहीं उद्वर्तते हैं । काययोगी जीव जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट असंख्यात उद्वर्तते हैं ।

नोट—अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी तीर्थंकर आदि ही उद्वर्तते हैं और वे स्वल्प होते हैं । अतः उनके उद्वर्तन के विषय में संख्यात ही कहना चाहिए ।

इनमें विशेषता यह है कि संख्यात योजन और असंख्यात योजन विस्तारवाले नरकावालों में से अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी संख्यात ही उद्वर्तते हैं ।

नोट—उद्वर्तना परभव के प्रथम समय में होती है । नैरयिक जीव असंज्ञी जीवों में उत्पन्न नहीं होते हैं अतः वे असंज्ञी नहीं उद्वर्तते । यही बात चूर्णि में भी कही है ।

असण्णिणो य विब्भंगिणो य, उव्वट्टणाइ वज्जेज्जा ।
दोसु विय चक्खुदंसणी, मणवइ तह इंदियाइं वा ॥

अर्थात् असंज्ञी, विब्भंगज्ञानी, चक्षुदर्शनी, मनोयोगी, वचनयोगी और श्रोत्रेन्द्रियादि पांचों इन्द्रियों के उपयोगवाले जीव नहीं उद्वर्तते । अतः नरक में इनकी उद्वर्तना का निषेध किया गया है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गमक ३—इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावास-सयसहस्सेसु संखेज्जवित्थडेसु नरएसु केवतिया नेरइया पण्णत्ता ? केवतिया काउलेस्सा जाव केवतिया अणागारोवउत्ता पण्णत्ता ? × × × ।

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु संखेज्जवित्थडेसु नरएसु संखेज्जा नेरइया पण्णत्ता ? × × × । संखेज्जा मणजोगी पण्णत्ता । एवं जाव (संखेज्जा वइजोगी पण्णत्ता । संखेज्जा कायजोगी पण्णत्ता) अणागारोवउत्ता ।

भग० श० १३ । उ १ । सू ५

गमक ३—इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से संख्यात योजन विस्तारवाले नरकावासों में संख्यात मनोयोगी होते हैं, संख्यात, वचनयोगी होते हैं व संख्यात काययोगी होते हैं ।

नोट—असंज्ञी जीव कदाचित् होते हैं व कदाचित् नहीं होते हैं । नोइन्द्रिय के उपयोगवाले नारकी असंज्ञी नारकी जीवों की तरह कदाचित् होते हैं व कदाचित् नहीं होते हैं । जो असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय मरकर नरक में नैरयिकपने उत्पन्न होते हैं वे अपर्याप्त अवस्था में कुछ काल तक असंज्ञी होते हैं । ऐसे नैरयिक अल्प होते हैं अतः कहा गया है कि रत्नप्रभा पृथ्वी में असंज्ञी कदाचित् होते हैं और कदाचित् नहीं होते हैं ।

पाठ ऊपर देखो ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से असंख्यात योजन विस्तारवाले हैं उनमें एक समय में असंख्यात मनोयोगी होते हैं, असंख्यात वचनयोगी व असंख्यात काययोगी होते हैं ।

कभी कभी ऐसा होता है कि रत्नप्रभा नारकी में सम्यग्मिथ्यादृष्टिवाला कोई भी नारकी नहीं रहता है परन्तु मिथ्यादृष्टि व सम्यग्दृष्टि नारकी की नियमा है । इसी प्रकार शर्कराप्रभा यावत् तमतमप्रभा नारकी के सम्बन्ध में जानना चाहिए । यद्यपि सातवीं नारकी में सम्यग्दुष्टि जीव न मरते हैं न उत्पन्न होते हैं परन्तु सम्यग्दृष्टि जीव वहाँ नियमतः होते हैं परन्तु सम्मग्मिथ्यादृष्टि जीव कदाचित् होते हैं, कदाचित् न भी होते हैं ।

यद्यपि कृष्णपाक्षिक और शुक्लपाक्षिक में योग तीनों हो सकते हैं । पन्द्रह योगों की विवक्षा से कृष्णपाक्षिक में १३ योग (आहारक-आहारकमिश्रकाययोग बाद) व शुक्ल पाक्षिक में १५ योग होते हैं । कहा है—

"जेसिमावड्ढोपोग्गलपरियट्टो, सेसओ उ संसारो ।
ते सुक्कपक्खिया खलु, अहिगे पुण कण्हपक्खिया ॥"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् जिन जीवों का संसार-परिभ्रमणकाल अर्द्धपुद्गलपरावर्तन से कुछ कम शेष रह गया है, वे 'शुक्लपाक्षिक' कहलाते हैं। इससे अधिककाल तक जिन जीवों का संसार में परिभ्रमण करना शेष रह गया है वे 'कृष्णपाक्षिक' कहलाते हैं।

जिन नारकियों में उत्पन्न हुए अभी एक ही समय हुआ है उन्हें अनन्तरोपपन्नक कहते हैं। और जिनको उत्पन्न हुए दो, तीन आदि समय हो गये हैं उन्हें परंपरोपपन्नक कहते हैं। किसी एक विवक्षित क्षेत्र में प्रथम समय में रहे हुए जीवों को अनन्तरावगाढ़ कहते हैं और विवक्षित क्षेत्र में द्वितीयादि समय में रहे हुए जीवों को परंपरावगाढ़ कहते हैं।

आहार ग्रहण करने में जिन्हें प्रथम समय हुआ है उन्हें अनन्तराहारक और द्वितीयादि समय हुआ है उन्हें परंपराहारक कहते हैं।

जिन जीवों को पर्याप्त हुए प्रथम समय ही हुआ है उन्हें अनन्तर-पर्याप्तक और जिनको पर्याप्त हुए द्वितीयादि समय हो गये हैं उन्हें परंपर-पर्याप्तक कहते हैं।

जिन जीवों का वही अन्तिम नारकभव है अथवा जो नारकभव में अन्तिम समय में रहे हुए हैं उन्हें चरम नैरयिक कहते हैं और इससे विपरीत को 'अचरम' नारकी कहते हैं।

२ सक्करप्पभाए णं भंते ! पुढवीए केवतिया निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पणवीसं निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

तेणं भंते किं सखेज्जवित्थडा ? असंखेज्जवित्थडा ?

एवं जहा रयणप्पभाए तहा सक्करप्पभाए वि, नवरं असण्णी तिसु वि गमएसु न भण्णंति, सेसं तं चेव।

वालुयप्पभाए णं पुच्छा।

गोयमा ! पन्नरस निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता, सेसं जहा सक्करप्पभाए, नाणत्तं लेसासु, जहा पढमसए।

पंकप्पभाए णं पुच्छा।

गोयमा ! दस निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता, एवं जहा सक्करप्पभाए, नवरं-ओहिनाणी, ओहिदंसणी य न उव्वट्टंति, सेसं तं चेव।

धूमप्पभाए णं पुच्छा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा ? तिण्णि निरयावाससयसहस्सा, एवं जहा पंकप्पभाए ॥

तमाए णं भंते ! पुढवीए केवतिया निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता० ?

गोयमा ! एगे पंचूणे निरयावाससयसहस्से पण्णत्ते। सेसं जहा पंकप्पभाए।

अहेसत्तमाए णं भंते ! पुढवीए कति अणुत्तरा महतिमहालया महानिरया पण्णत्ता ?

गोयमा ! पंच अणुत्तरा महतिमहालया महानिरया पण्णत्ता, तंजहा—काले, महाकाले, रोरुए, महारोरुए, अपइट्ठाणे।

ते णं भंते ! किं संखेज्जवित्थडा ? असंखेज्जवित्थडा।

गोयमा ! संखेज्जवित्थडे य असंखेज्जवित्थडा य।

अहेसत्तमाए णं भंते ! पुढवीए पंचसु अणुत्तरेसु महतिमहालएसु महानिरएसु संखेज्जवित्थडेसु नरए एगसमएणं केवतिया नेरइया उववज्जंति ?

एवं जहा पंकप्पभाए, नवरं-तिसु नाणेसु न उववज्जंति, न उव्वट्टंति, पण्णत्तएसु तहेव अत्थि। एवं असंखेज्जवित्थडेसु वि, नवरं असंखेज्जा भाणियत्वा।

—भग० श० १३। उ १। सू ७ से १३

२—शर्कराप्रभा पृथ्वी में पचीस लाख नरकावास कहे हैं।

हे भगवान् ! नरकावास क्या संख्यातयोजन विस्तारवाले हैं या असंख्यातयोजन विस्तारवाले हैं।

हे गौतम ! जिस प्रकार रत्नप्रभा पृथ्वी के विषय में कहा गया है उसी प्रकार शर्कराप्रभा पृथ्वी के विषय में भी कहना चाहिए। परन्तु उत्पाद, उद्वर्तना और सत्ता—इन तीनों ही आलापकों में असंज्ञी नहीं कहना चाहिए। शेष सब कथन पूर्व की तरह कहना चाहिए।

३—बालुकाप्रभा पृथ्वी में पन्द्रह लाख नरकावास कहे गये हैं। शेष सभी कथन शर्कराप्रभा के समान कहना चाहिए। यहाँ लेश्या के विषय में विशेषता है। लेश्या का कथन प्रथम शतक के दूसरे उद्देशक के समान कहना चाहिए। (कापोत-नील लेश्या)।

४—पंकप्रभा पृथ्वी में दस लाख नरकावास कहे हैं। जिस प्रकार शर्करा पृथ्वी के विषय में कहा है उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए। विशेषता यह है कि अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी नहीं उद्वर्तते। शेष सभी कथन पूर्व के समान कहना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५—धूमप्रभा पृथ्वी में तीन लाख नरकावास कहे गये हैं। जिस प्रकार पंकप्रभा के विषय में कहा—उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए।

६—तमःप्रभा पृथ्वी में पाँच कम एक लाख नरकावास कहे गये हैं। शेष सभी वर्णन पंकप्रभा के समान कहना चाहिए।

७—अधःसप्तम पृथ्वी में अनुत्तर और बहुत बड़े पाँच महा नरकावास कहे गये हैं यथा-काल, महाकाल, रौरव, महारौरव और अप्रतिष्ठान।

मध्य का अप्रतिष्ठान नरकावास संख्यातयोजन विस्तार वाला है और शेष चार नरकावास असंख्यातयोजन के विस्तार वाले हैं।

अस्तु अधःसप्तम पृथ्वी के पाँच अनुत्तर और बहुत बड़े यावत् महानरकावासों में से संख्यातयोजन के विस्तार वाले अप्रतिष्ठान नरकावास में एक समय में कितने नैरयिक (मनोयोगी, वचनयोगी, काययोगी) नारकी उत्पन्न होते हैं।

हे गौतम ! जिस प्रकार पंकप्रभा के विषय में कहा, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए। विशेषता यह है कि यहाँ तीन ज्ञान वाले न तो उत्पन्न होते हैं और न उद्वर्तते हैं, परन्तु इन पाँच नरकावासों में रत्नप्रभा आदि के समान तीनों ज्ञान वाले पाये जाते हैं।

जिस प्रकार संख्यातयोजन विस्तारवाले नरकावासों के विषय में कहा, उसी प्रकार असंख्यातयोजन विस्तारवाले नरकावासों के विषय में भी कहना चाहिए। इसमें संख्यात के स्थान पर असंख्यात कहना चाहिए।

नोट—असंज्ञी जीव प्रथम नरक में ही उत्पन्न होते हैं उससे आगे नहीं। इसलिए द्वितीयादि नरकों में उनका उत्पाद, उद्वर्तना और सत्ता, ये तीनों बातें नहीं कहनी चाहिए।

चौथी पंकप्रभा पृथ्वी में कहा गया है कि यहाँ से अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी नहीं उद्वर्तते हैं। इसका कारण यह है कि अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी प्रायः तीर्थंकर ही होते हैं। चौथी नरक से निकले हुए जीव तीर्थंकर नहीं हो सकते और वहाँ से निकलने वाले अन्य जीव भी अवधिज्ञान, अवधिदर्शन लेकर नहीं निकलते।

सातवीं नरक में मतिज्ञानी, श्रुतिज्ञानी और अवधिज्ञानी उत्पन्न नहीं होते, क्योंकि वहाँ मिथ्यात्वी और समकित से पतित जीव ही उत्पन्न होते हैं तथा वहाँ से इन तीनों ज्ञानों में उद्वर्तना भी नहीं होती। यद्यपि सातवीं पृथ्वी में मिथ्यात्वी जीव ही उत्पन्न होते हैं तथापि वहाँ उत्पन्न होने के बाद जीव समकित प्राप्त कर सकता है। समकित प्राप्त कर लेने पर वहाँ मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी पाये जा सकते हैं। अतः सातवीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नरक में इन तीन ज्ञान वाले जीवों का उत्पाद और उद्वर्तना तो नहीं है किन्तु सत्ता है।

३ देवावासों में

गमक १—केवतिया णं भंते ! असुरकुमारावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

गोयमा ! चोसट्ठि असुरकुमारावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

ते णं भंते ! किं संखेज्जवित्थडा ? असंखेज्जवित्थडा ?

गोसमा ! संखेज्जवित्थडा वि, असंखेज्जवित्थडा वि।

चोसट्ठीए णं भंते ! असुरकुमारावाससयसहस्सेसु संखेज्जवित्थडेसु असुरकुमारवासेसु एगसमएण केवतिया असुरकुमारा उववज्जंति, जाव केवतिया तेउलेस्सा उववज्जंति, केवइया कण्हपक्खिया उववज्जंति ? × × × (केवइया मणजोगी उववज्जंति, केवइया वइजोगी उववज्जंति, केवइया कायजोगी उववज्जंति ?)

एवं जहा रयणप्पभाए तहेव पुच्छा, तहेव वागरणं, णवरं दोहि वेएहिं उववज्जंति, णपुंसगवेयगा ण उववज्जंति, सेसं तंचेव।

गमक २—उव्वट्टंता वि तहेव, णवरं असण्णी उव्वट्टंति। ओहिनाणी ओहिदंसणी य णं उव्वट्टंति, सेसं तंचेव।

गमक ३—पण्णत्तएसु तहेव, नवरं संखेज्जगा इत्थिवेदगा पण्णत्ता, एवं पुरिसवेदगा वि, नपुंसगवेदगा नत्थि × × × सेसं तं चेव। तिसु वि गमएसु चत्तारि लेस्साओ भाणियव्वाओ।

एवं असंखेज्जवित्थडेसु वि, नवरं तिसु वि गमएसु असंखेज्जा भाणियव्वा × × ×।

—भग० श० १३। उ २। सू २६, २७

केवतिया णं भंते, नागकुमारावाससयसहस्सा पण्णत्ता ? एवं जाव थणियकुमारा, नवरं-जत्थ जत्तिया भवणा ?

—भग० श० १३। उ २। सू २८

असुरकुमार देवों के चौसठ लाख आवास कहे गये हैं।

असुरकुमार देवों के वे आवास संख्यात योजन विस्तारवाले भी हैं और असंख्यात योजन विस्तारवाले भी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असुरकुमार के चौसठ लाख आवासों में ये संख्यात योजन विस्तारवाले असुरकुमारावासों में एक समय में मनोयोगी और वचनयोगी नहीं उत्पन्न होते हैं। जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात काययोगी जीव उत्पन्न होते हैं (गमक—१)।

उद्वर्तना के विषय में भी उसी प्रकार जानना चाहिए अर्थात् मनोयोगी और वचनयोगी नहीं उद्वर्तते हैं। काययोगी जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात उद्वर्तते हैं (गमक—२)।

सत्ता के विषय में पहले कहे अनुसार ही कहना चाहिए। अर्थात् मनोयोगी, वचनयोगी तथा काययोगी संख्यात होते हैं। (गमक—३)।

इसी प्रकार असंख्येययोजनविस्तृत असुरकुमारावासों में कहना चाहिए। परन्तु इनमें संख्यात के स्थान पर असंख्यात कहना चाहिए। अर्थात् असंख्येय योजन विस्तृत असुरकुमारावासों में एक समय में मनोयोगी व वचनयोगी उत्पन्न नहीं होते हैं। जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट असंख्यात काययोगी उत्पन्न होते हैं। (गमक—१) मनोयोगी व वचनयोगी नहीं उद्वर्तते हैं। काययोगी जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट असंख्यात उद्वर्तते हैं। (गमक—२)।

सत्ता – मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी असंख्यात होते हैं। (गमक—३)।

इसी प्रकार (तीनों गमक) नागकुमार यावत् स्तनितकुमारों तक कहना चाहिए। विशेषता यह है कि जहाँ जितने लाख भवन हो, वहाँ उतने लाख कहने चाहिए।

नोट—कहा है—

जंबूद्दीवसमा खलु भवणा जे हुंति सव्वखुड्डागा।
संखेज्जवित्थडा मज्झिमा उ सेसा असंखेज्जा॥

अर्थात् भवनपति देवों के जो सबसे छोटे आवास (भवन) होते हैं, वे जम्बूद्वीप के समान होते हैं। मध्यम संख्यात योजन के विस्तारवाले होते हैं और शेष अर्थात् बड़े आवास असंख्यात योजन के विस्तारवाले होते हैं। वहाँ से निकले हुए जीव तीर्थंकर तो होते ही नहीं हैं और जो निकलते हैं वे भी अवधिज्ञान-अवधिदर्शन लेकर नहीं निकलते हैं।

असुरकुमार के ६४ लाख, नागकुमारों के ८४ लाख, सुवर्णकुमारों के ७२ लाख, वायुकुमारों के ९६ लाख और द्वीपकुमार, दिशाकुमार, उदधिकुमार, विद्युतकुमार, स्तनित कुमार और अग्निकुमार—इन प्रत्येक युगल के ७६ लाख ७६ लाख भवन होते हैं। कुल ७ करोड़ ७२ लाख भवन हुए।

केवतिया णं भंते ! वाणमंतरावाससयसहस्सा पण्णत्ता ?

गोयमा ! असंखेज्जा वाण मंतरावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से णं भंते ! किं संखेज्जवित्थडा ? असंखेज्जवित्थडा ?

गोयमा ! संखेज्जवित्थडा, नो असंखेज्जवित्थडा ?

संखेज्जेसु णं भंते ! वाणमंतरावाससयसहस्सेसु एगसमएणं केवतिया वाणमंतरा उववज्जंति ?

एवं जहा असुरकुमाराणं संखेज्जवित्थडेसु तिण्णि गमगा तहेव भाणियव्वा। वाणमंतरा वि तिण्णि गमगा।

—भग० श० १३। उ २ सू २९, ३०

वाणमंतर देवों के असंख्यात लाख आवास कहे हैं। वे आवास (नगर) संख्येय योजन विस्तृत है, असंख्येय विस्तृत नहीं है।

वाणव्यंतर देवों के संख्येयविस्तृत आवासों में एक समय में कितने वाणव्यंतर देव उत्पन्न होते हैं।

जिस प्रकार असुरकुमार देवों के संख्येयविस्तृत आवासों के विषय में तीन गमक कहे हैं, उसी प्रकार वाणव्यंतर देवों के विषय में भी तीन गमक कहने चाहिए। अर्थात् एक समय में मनोयोगी व वचनयोगी नहीं उत्पन्न होते हैं। जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात काययोगी उत्पन्न होते हैं। (गमक—१)

मनोयोगी व वचनयोगी नहीं उद्वर्त्तते हैं। काययोगी जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात उद्वर्तते हैं। (गमक—२)

सत्ता – मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी संख्यात होते हैं। (गमक—३)

नोट—कहा है—

जंबूद्वीवसमा खलु उक्कोसेणं हवंति ते णगरा।
खुड्डा खेत्तसमा खलु विदेहसमगा उ मज्झिमगा॥

अर्थात् वाणव्यंतर देवों के सब से छोटे नगर (आवास) भरतक्षेत्र के समान होते हैं। मध्यम महाविदेह के समान होते हैं और सबसे बड़े आवास जंबूद्वीप के समान होते हैं।

केवतिया णं भंते ! जोइसियविमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

गोयमा ! असंखेज्जा जोइसियविमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं जहा वाणयंतराणं तहा जोइसियाणं वि तिण्णि गमगा भाणियव्वा, नवरं-एगा तेउलेस्सा। उववज्जंतेसु पण्णत्तेसु य असण्णी नत्थि, सेसं तं चेव।

भग० श० १३। उ २। सू ३१

ज्योतिषी देवों के असंख्यात लाख विमानावास कहे गये हैं। वे विमानावास संख्येय विस्तृत हैं, असंख्येय विस्तृत नहीं है।

जिस प्रकार वाणव्यंतरदेवों के विषय में कहा—उसी प्रकार ज्योतिषी देवों के विषय में भी तीन गमक (उत्पाद, च्यवन-सत्ता) कहने चाहिए। (गमक १-२-३)। इसमें इतनी विशेषता है कि ज्योतिषियों में केवल एक तेजो लेश्या ही होती है उत्पाद, चवन (उद्वर्तना) और सत्ता में असंज्ञी नहीं होते हैं।

नोट—उनके विमान एक योजन से भी कम विस्तृतवाले होते हैं।

सोहम्मे णं भंते! कप्पे बत्तीसाए विमाणावाससयसहस्सेसु संखेज्ज-वित्थडेसु विमाणेसु एगसमएणं केवइया × × ×। तेउलेस्सा उववज्जंति? × × × एवं जहा जोइसियाणं तिन्नि गमगा तहेव तिन्नि गमगा भाणियव्वा नवरं तिसुवि संखेज्जा भाणियव्वा। × × ×। असंखेज्जवित्थडेसु एवं चेव तिन्नि गमगा, नवरं तिसु वि गमएसु असंखेज्जा भाणियव्वा। × × × एवं जहा सोहम्मे वत्तव्वया भणिया तहा ईसाणेसु वि छ गमगा भाणियव्वा। सणंकुमारे (वि) एवं चेव। × × × एवं जाव सहस्सारे, नाणत्तं विमाणेसु लेस्सासु य, सेसं तं चेव।

—भग० श० १३। उ २। सू ३२, ३३

सौधर्म देवलोक के बत्तीस लाख विमानों में जो संख्यात योजन विस्तार वाले हैं, उनमें उत्पत्ति, च्यवन तथा अवस्थिति के तीन गमक मनोयोग, बचनयोग व काययोग को लेकर ज्योतिषी विमानों की तरह कहने। (गमक १, २, ३)।

सौधर्म देवलोक के बत्तीस लाख विमानों में जो असंख्यात योजन विस्तारवाले हैं उनमें उत्पत्ति, च्यवन तथा अवस्थिति के तीन गमक-मनोयोग, वचनयोग व काययोग को लेकर कहने। इन तीनों गमकों में उत्कृष्ट में असंख्यात कहना।

ईशान कल्पदेवलोक के विमानों के सम्बन्ध में सौधर्म कल्प की तरह तीन संख्यात तथा तीन असंख्यात के, इस प्रकार छः गमक कहने।

इसी प्रकार सनत्कुमार से सहस्रार देवलोक तक के विमानों के सम्बन्ध में तीन संख्यात तथा तीन असंख्यात के, इस प्रकार छः गमक कहने। लेकिन लेश्या में नानात्व कहना अर्थात् सनत्कुमार से ब्रह्मलोक तक पद्म तथा लांतक से सहस्रार तक शुक्ल लेश्या कहनी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[आणत-पाणएसु] एवं संखेज्जवित्थडेसु तिन्नि गमगा जहा सहस्सारे। असंखेज्जवित्थडेसु उववज्जंतेसु य चयंतेसु य एवं चेव 'संखेज्जा' भाणियव्वा। पन्नत्तेसु असंखेज्जा। × × × आरणच्चुएसु एवं चेव जहा आणयपाणएसु नाणत्तं विमाणेसु एवं गेवेज्जगा वि।

—भग० श० १३। उ २। सू ३४

आनत तथा प्राणत के जो संख्यात-योजन-विस्तारवाले विमान है उनमें सहस्रार देवलोक की तरह शुक्ल लेश्या को लेकर उत्पत्ति, च्यवन और अवस्थिति के तीन गमक कहने। जो असंख्यात-योजन-विस्तारवाले विमान है, उनमें एक समय में एक, दो अथवा तीन तथा उत्कृष्ट से संख्यात काययोगी उत्पन्न होते हैं, मनोयोगी-वचनयोगी उत्पन्न नहीं होते हैं। (गमक—१) एक समय में जघन्य से एक, दो अथवा तीन तथा उत्कृष्ट से संख्यात काययोगी च्यवन को प्राप्त होते हैं, मनोयोगी व वचनयोगी का च्यवन नहीं होता है (गमक—२) एक समय में असंख्यात अवस्थित रहते हैं (गमक—३)।

आरण तथा अच्युत विमानवासों में, जैसे आनत और प्राणत के विषय में कहा, वैसे ही छः छः गमक कहने।

इसी प्रकार ग्रैवेयक विमानों के सम्बन्ध में शुक्ललेश्या पर छः गमक आनत-की तरह कहने।

पंचसु णं भंते! अणुत्तरविमाणेसु संखेज्जवित्थडेसु विमाणे एगसमएणं × × × केवइया सुक्कलेस्सा उववज्जंति, पुच्छा तहेव। गोयमा! पंचसुणं अणुत्तरविमाणेसु संखेज्जवित्थडेसु अणुत्तरविमाणे एगसमएणं जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिन्नि वा उक्कोसेणं संखेज्जा अणुत्तरोववाइया देवा उववज्जंति, एवं जहा गेवेज्जविमाणेसु संखेज्जवित्थडेसु × × ×। असंखेज्जवित्थडेसु वि एए न भन्नंति नवरं अचरिमा अत्थि, सेसं जहा गेवेज्जएसु असंखेज्जवित्थडेसु।

—भग० श० १३। उ २। सू ३५

पंच अनुत्तर विमानों में जो चार (विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित) असंख्यात योजन विस्तारवाले हैं उनमें एक समय में मनोयोगी व वचनयोगी उत्पन्न नहीं होते हैं। जघन्य एक, दो अथवा तीन तथा उत्कृष्ट संख्यात काययोगी अनुत्तर विमानवाली देव उत्पन्न होते हैं। (गमक—१) मनोयोगी ब वचनयोगी च्यवन को प्राप्त नहीं होते हैं। जघन्य एक, दो अथवा तीन तथा उत्कृष्ट संख्यात काययोगी च्यवन को प्राप्त होते हैं। (गमक—२) तथा मनोयोगी-वचनयोगी व काययोगी चार अनुत्तरविमानवासी देव असंख्यात अवस्थित रहते हैं। (गमक—३)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वार्थसिद्ध अनुत्तर विमान जो संख्यात योजन विस्तारवाला है (एक लाख योजन) उसमें एक समय में मनोयोगी-वचनयोगी उत्पन्न नहीं होते हैं। जघन्य एक, दो अथवा तीन तथा उत्कृष्ट से संख्यात काययोगी अनुत्तर विमानवासी देव उत्पन्न होते हैं। (गमक—१) मनोयोगी-वचनयोगी च्यवन को प्राप्त नहीं होते हैं। जघन्य एक, दो अथवा तीन तथा उत्कृष्ट संख्यात काययोगी च्यवन को प्राप्त होते हैं। (गमक—२) तथा मनोयोगी-वचन-योगी-काययोगी अनुत्तर-विमानवासी देव संख्यात अवस्थित है।

नोट १—अनुत्तरविमान का सर्वार्थसिद्ध विमान एक लाख योजन विस्तारवाला है तथा बाकी चार अनुत्तरविमान असंख्यात योजन विस्तारवाले हैं। देखो—जीवा० प्रति ३। उ २। सू २१३ पृ० २३७ तथा ठाण० स्था ४। उ ३। सू ३२९। पृ० २४६।

नोट २—सौधर्म देवलोक से च्यवे हुओं में तीर्थंकर आदि अवधिज्ञान और अवधिदर्शन युक्त होते हैं अतएव च्यवन में अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी भी कहने चाहिए। सौधर्म-ईशान देवलोक तक ही स्त्रीवेदी जीव उत्पन्न होते हैं। इनसे आगे सनत्कुमारादि में स्त्रीवेदी जीव उत्पन्न नहीं होते हैं। वहाँ से चवे हुए स्त्रीवेदी हो सकते हैं।

सहस्रार देवलोक तक तिर्यंच भी उत्पन्न आदि होते हैं अतः तीनों आलापकों में 'असंख्यात' पद घटित हो सकता है।

आनतादि देवलोकों में असंख्यात-योजन-विस्तारवाले विमानों में उत्पाद और च्यवन में संख्यात और सत्ता में असंख्यात देव होते हैं। क्योंकि गर्भज मनुष्य ही मरकर आनतादि देवों में उत्पन्न होते हैं और वे देव वहाँ से च्यवनकर गर्भज मनुष्यों में ही उत्पन्न होते हैं और गर्भज मनुष्य संख्यात ही होते हैं अतः एक समय में संख्यात का ही उत्पाद और संख्यात का ही च्यवन हो सकता है।

विमानों की संख्या इस प्रकार हैं—

बत्तीसे अट्ठवीसा बारस अट्ठ चउरो य सयसहस्सा।
पण्णा चत्तालीसा, छच्च सहस्सा सहस्सारे॥
आणय पाणय कप्पे, चत्तारी सया आरणच्चुए तिण्णि।
सत्त विमाण सयाइं, चउसु वि एयसु कप्पेसु॥

—पण्ण० प० २। सू २२

अर्थात् सौधर्मादि देवलोक में क्रमशः विमान संख्या इस प्रकार है—

१—बत्तीस लाख, २—अट्ठाईस लाख, ३—बारह लाख, ४—आठ लाख, ५—चार लाख, ६—पचास हजार, ७—चालीस हजार ८—छह हजार, ९-१० चार सौ, ११-१२ तीन सौ-कुल मिला कर ८४९६७०० विमान है। ग्रैवेयक की पहली त्रिक में १११, दूसरी त्रिक में १०७ और तीसरी त्रिक में १०० विमान होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पांच अनुत्तर विमानवासी देवों के पांच विमान होते हैं। इस प्रकार वैमानिक देवों के कुल ८४९७०२३ विमान होते हैं।

·५१ तयोगी जीव और अल्पकर्मतर-बहुकर्मतर

सयोगी-मनोयोगी, वचनयोगी व काययोगी नारकी अल्पकर्मवाले भी होते हैं तथा बहु-कर्मवाले भी होते हैं। यह परस्पर नारकियों की तुलना की अपेक्षा कहा है। इसी प्रकार असुरकुमार यावत् वैमानिक देव तक सभी दंडक जानने चाहिए। जिसके जितने योग हो उतने योग कहना।—लेश्या कोश

नोट—कतिपय प्रत्येक शरीरी बादर वनस्पतिकाय, बादर पृथ्वीकाय, बादर अप्काय के जीव अनन्तर भव में (मनुष्य हो कर) मोक्ष प्राप्त कर अन्तक्रिया करते हैं। अतः वे तुलना में अल्प कर्मतरवाले हैं।

·५२ सयोगी जीव और अल्पऋद्धि-महाऋद्धि

अशुभयोगी जीव से शुभयोगी जीव महाऋद्धिवाला होता है। सबसे अल्पऋद्धिवाला अशुभयोगी जीव तथा सबसे महाऋद्धिवाला शुभयोगी जीव है।

दंडक के सभी जीवों के सम्बन्ध में ऐसा ही कहना जिसके जितने योग हो उतने योग कहना। नारकी से वैमानिक देव तक सभी दंडक कहना।—लेश्या कोश

केइ भणंति-चउवीसं दंडएण इड्ढी भाणियव्वा।

—पण्ण० प० १७। उ २। सू २५

कोई आचार्य कहते हैं कि ऋद्धि के आलापक चौबीसों ही दंडकों में कहना चाहिए।

.५३ सयोगी क्षुद्रयुग्म जीव

[युग्म शब्द से टीकाकार अभयदेव सूरि ने 'राशि' अर्थ लिया है युग्मशब्देन राशयो विवक्षिताः। राशि की समता-विषमता की अपेक्षा युग्म चार प्रकार का होता है, यथा—कृतयुग्म, त्र्योज, द्वापरयुग्म तथा कल्योज युग्म। जिस राशि में चार का भाग देने पर शेष चार बचे उसे राशि को कृतयुग्म कहते हैं। जिस राशि में चार का भाग देने पर तीन बचे उसको त्र्योजयुग्म कहते हैं। जिस राशि में चार का भाग देने पर दो बचे उसको द्वापरयुग्म कहते हैं। तथा जिस राशि में चार का भाग देने पर एक बचे उसको कल्योज (युग्म) कहते हैं।

अन्य अपेक्षा से भगवती सूत्र में तीन प्रकार के युग्मों का विवेचन है, यथा—क्षुद्र युग्म, (श ३१, ३२) महायुग्म (श ३५ से ४०) तथा राशियुग्म (श ४१)। सामान्यतः छोटी संख्यावाली राशि को क्षुद्रयुग्म कहा जा सकता है। इसमें एक से लेकर असंख्यात तक भी संख्या निहित है। महायुग्म वृहद् संख्यावाली राशि का द्योतक है तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें पांच से लेकर अनन्त तक संख्या निहित है तथा इसमें गणना के समय और संख्या दोनों के आधार पर राशि का निर्धारण होता है। राशियुग्म इन दोनों को सम्मिलित करती हुई संख्या होनी ही चाहिए तथा इसमें एक से लेकर अनन्त तक का संख्या निहित है।

क्षुद्र युग्म में केवल नारकी जीवों का अट्ठारह पदों से विवेचन है। महायुग्म में इन्द्रियों के आधार पर सर्व जीवों (एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय) का तैंतीस पदों का विवेचन है। राशियुग्म में जीवदंडक के क्रम से जीवों की तरह तेरह पदों से विवेचन है।]

क्षुद्र युग्म में केवल नारकी जीवों का नौ उपपात के तथा नौ उद्वर्तन (मरण) के पदों से विवेचन किया गया है। तथा विस्तृत विवेचन औधिक क्षुद्रकृतयुग्म नारकी के पद में है। अवशेष तीन युग्मों में इसकी भुलावण है तथा जहाँ भिन्नता है वहाँ भिन्नता बतलाई गई है। इसमें भगवती श २५। उ ८ की भी भुलावण है।

(१) कहाँ से उपपात, (२) एक समय में कितने का उपपात, (३) किस प्रकार से उपपात, (४) उपपात की गति की शीघ्रता, (५) परभव के आयु के बन्ध का कारण, (६) परभव गति का कारण, (७) आत्म-ऋद्धि या पर-ऋद्धि से उपपात, (८) आत्मकर्म या परकर्म से उपपात, (९) आत्मप्रयोग था परप्रयोग से उपपात।

इस प्रकार उद्वर्तन (मरण) के भी उपर्युक्त नौ अभिलाप समझने।

औधिक भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक, समदृष्टि, मिथ्यादृष्टि, सममिथ्यादृष्टि, कृष्ण-पाक्षिक, शुक्लपाक्षिक नारकी जीवों का चार क्षुद्रयुग्मों से तथा चार-चार उद्देशक से विवेचन किया गया है। हमने यहाँ पद 'योग' सम्बन्धित पाठों का संकलन किया हैं।

·५३·१ सयोगी क्षुद्रयुग्म नारको का उपपात—

(खुड्डागकडजुम्मेण नेरइया) आयप्पओगेणं उववज्जंति णो परप्पओगेणं उववज्जंति ॥४॥

एवं जाव ओहियणेरइयाणं वत्तव्वया सच्चेव रयणप्पभाए वि भाणियव्वा जाव णो परप्पओगेणं उववज्जंति। एवं सक्करप्पभाए वि जाव अहेसत्तमाए ॥५॥

ते णं भंते ! जीवा कहं परभवियाउयं पकरेंति। × × ×।

—भग० श० ३१ उ १। सू ४ से ६

क्षुद्रकृत-युग्म-राशि परिमाण नारकी आत्मप्रयोग (जोगरुप व्यापार) से उत्पन्न होते हैं, परप्रयोग से नहीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

औधिक नारकी की तरह रत्नप्रभा पृथ्वी के नारकी यावत् सप्तम पृथ्वी के नारकी आत्मप्रयोग से उत्पन्न होते हैं, परप्रयोग से उत्पन्न नहीं होते हैं।

वे जीव अपने अध्यवसाय रूप और जोग आदि के व्यापार से करणोपाय द्वारा परभव की आयु बांधते हैं।

·५३·२ (खुड्डागतेओगणेरइया) × × × सेसं जहा कडजुम्मस्स, एवं जहा अहेसत्तमाए।

—भग० श० ३१। उ १। सू ७

·५३·३ (खुड्डागदावरजुम्मणेरइया) सेसं तं चेव जाव अहेसत्तमाए।

—भग० श० ३१। उ १। सू ८

·५३·४ (खुड्डागकलिओगणेरइया) एवं जहेव खुड्डागकडजुम्मे। × × ×। सेसं तं चेव। एवं जाव अहेसत्तमाए।

—भग० श० ३१। उ १। सू ९

जैसा क्षुद्रकृतयुग्मराशि का उपपात, आयुष्यबंध, आदि के विषय में कहा वैसा ही क्षुद्रत्र्योज युग्मराशि, क्षुद्रद्वापर युग्मराशि तथा क्षुद्रकल्योज राशि के विषय में जानना (विषयांक ·५३·१)।

·५३·५ कृष्णलेशी क्षुद्रकृत युग्म प्रमाण राशि का योग रूप व्यापार से उपपात तथा परभव के आयुष्य का बंधन।

(कण्हलेस्स खुड्डागकडजुम्मणेरइया) एवं चेव जाव ओहियगमो जाव णो परप्पओगेण उववज्जंति। × × ×॥१॥

(धूमप्पभापुढविकण्हलेस्सखुड्डागकडजुम्मणेरइया) एवं चेव णिरवसेसं। एवं तमाए वि, अहेसत्तमाए।

—भग० श० ३१। उ २। सू १, २

क्षुद्रकृत राशि प्रमाण कृष्ण लेश्यावाले नारकी का उपपात तथा परभव के आयुष्य के बंधन के सम्बन्ध में जैसा औधिक गमक के विषय में कहा—वैसा ही कहना।

क्षुद्रकृत युग्म राशि प्रमाण कृष्ण लेश्यावाले धूमप्रभा नारकी, तमःप्रभा नारकी तथा अधःसप्तम नारकी के विषय में इसी प्रकार कहना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·५३ ६ क्षुद्रकृत्योज राशि प्रमाण कृष्ण लेशीवाले नारकी का उपपात व परभव का आयुष्य बंध।

(कण्हलेस्स खुडागतेओगरनेरइया) एवं चेव × × × सेसं तं चेव। एवं जाव अहेसत्तमाए।

भग० श० ३१। उ २। सू ३

क्षुद्रकृत्योज राशि प्रमाण कृष्णलेशी नारकी का उपपात तथा परभव के आयुष्य के बंध के विषय में इसी प्रकार कहना (·५३·५) धूमप्रभा से अधःसप्तम नारकी का इसी प्रकार विवेचन करना।

·५३·७ कृष्णलेशी क्षुद्रद्वापर-राशि प्रमाण नारकी का उपपात व परभव के आयुष्य का बंध

(कण्हलेस्स खुडागदावरजुम्मनेरइया) एवं चेव × × × सेसं तं चेव, धूमप्पभावि, जाव अहेसत्तमाए।

—भग० श० ३१। उ २ सू ४

कृष्णलेशी क्षुद्रद्वापर राशि नारकी तथा धूमप्रभा से अधःसप्तम नारकी के विषय में (उपपात व परभव के आयुष्य के बंध) इसी प्रकार कहना ·५३·५।

·५३·८ कृष्णलेशी क्षुद्रकल्योज राशि प्रमाण नारकी का उपपात तथा परभव के आयुष्य का बंधन।

(कण्हलेस्सखुडागकलिओग णेरइया) एवं चेव × × × सेसं तं चेव। एवं धूमप्पभाए वि, तमाए वि, अहेसत्तमाए वि।

—भग० श० ३१। उ २। सू ५

कृष्णलेशी क्षुद्रकल्योज राशि प्रमाण नारकी का उपपात व परभव का आयुष्य बंध इसी प्रकार कहना (·५३·५) इसी प्रकार धूमप्रभा, तमः प्रभा, अधःसप्तम पृथ्वी तक कहना।

नोट—कृष्णलेशी नारकी—इनमें असंज्ञी, परिसृप, पक्षी और सिंहादि। (सभी चतुष्पाद) उत्पन्न नहीं होते हैं।

·५३·९ नील लेशी नारकी का उपपात तथा परभव के आयुष्य का बंध आत्मप्रयोग (जोग रुप व्यापार) से होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(नीललेस्सखुड्डागकडजुम्मणेरइया) एवं जहेव कण्हलेस्सखुड्डाग कडजुम्मा। णवरं उववाओ जो वालुयप्पभाए, सेसं तं चेव। वालुयप्पभापुढविणील-लेस्सखुड्डागकडजुम्मणेरइया एवं चेव।

एवं पंकप्पभाए वि, एवं धूमप्पभाए वि, एवं चउसुवि जुम्मेसु × × ×।

—भग० श० ३१। उ ३। सू १

कृष्ण लेश्यावाले क्षुद्रकृतयुग्म नैरयिक के विषय में जैसा कहा, वैसा ही नीललेश्या वाले क्षुद्रकृत युग्म नारकी आत्म प्रयोग (जोग रुप व्यापार) से उत्पन्न होते हैं। और अध्यव-साय—जोग-करण से परभव के आयुष्य का बंध करते हैं। वालुकाप्रभा, पंकप्रभ व धूमप्रभा नारकी के विषय में भी चारों युग्म का कथन कहना चाहिए।

नोट—इसमें असंज्ञी व सरीसृप उत्पन्न नहीं होते हैं।

·५३·१० कापोतलेशी क्षुद्र कृत युग्म नारकी का उपपात-आत्म प्रयोग से तथा अध्यवसाय-जोग-करण से आयुबंध।

(काउलेस्सखुड्डागकडजुम्मणेरइया) एवं जहेव कण्हलेस्सखुड्डागकडजुम्म० णवरं उववाओ, सेसं तं चेव।

(रणप्पभापुढवि काउलेस्सखुड्डागकडजुम्मणेरइया) एवं चेव। एवं सक्करप्पभाए वि, एवं वालुयप्पभाए वि, एवं चउसु वि जुम्मेसु।

—भग० श० ३१। उ ४। सू १। २

कापोत लेशी क्षुद्रकृत युग्म राशि प्रमाण नारकी आत्मप्रयोग से उत्पन्न होते हैं। अध्यवसाय-जोग-करण से परभव का आयुष्य बाँधते हैं। इसी प्रकार रत्नप्रभा नारकी, शर्कराप्रभा नारकी तथा वालुकाप्रभा नारकी में चारों युग्म का निरुपण करना चाहिए।

·५३·११ क्षुद्रकृत युग्म राशि नारकी के योग से परभव का आयुष्य बंध

कल्योज	,,	नारकी	,,
द्वापर	,,	नारकी	,,
कल्योज	,,	नारकी	,,

भवसिद्धियखुद्दागकडनुम्मणेरइया णं भंते! कओ उववज्जंति? किं णेरइया? एवं जहेव ओहिओ गमओ तहेव णिरवसेसं जाव णो परप्पओगेणं उववज्जंति।

रयणप्पभापुढविभवसिद्धियखुड्डागकडजुम्मेणेरइया णं भंते०।

एवं चेव, णिरवसेसं, एवं जाव अहेसत्तमाए। एवं भवसिद्धियखुड्डागते-ओगणेरइया वि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं जाव कलिओगत्ति । णवरं परिमाणं जाणियव्वं, परिमाणं पुव्वभणियं जहा पढमुद्देसए ।

—भग० श० ३१ । उ ५

क्षुद्रकृत युग्म राशि प्रमाण भवसिद्धिक नारकी यावत् कल्योज भवसिद्धिक नारकी के विषय में औधिक गमक के अनुसार आयुष्य बंध के विषय में जानना चाहिए ।

(अज्झवसाणजोगणिव्वत्तिएणं करणोवाएणं × × × ।)

वे अपने अध्यवसाय रुप, योग के व्यापार से व करणोपाय द्वारा परभव का आयुष्य बांधते हैं ।

·५३·१२ कृष्णलेशी भवसिद्धिक क्षुद्रकृतयुग्म नारकी के योग से परभव का आयुष्य बंध

,,	त्र्योज	,,
,,	द्वापरयुग्म	,,
,,	कल्योज	,,

कण्हलेस्सभवसिद्धियखुड्डागकडजम्मणेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति ? एवं जहेव ओहिओ कण्हलेस्सउद्देसओ तहेव णिरवसेसं चउसु वि जुम्मेसु भाणियव्वो जाव—अहेसत्तमपुढविकाण्हलेस्सखुड्डागकलिओगणेरइयाणं भंते ! कओ उववज्जति । तहेव ।

—भग० श० ३१ । उ ६

कृष्णलेशी-भवसिद्धिक क्षुद्रकृत युग्म प्रमाण नारकी यावत् कल्योज नारकी-धूम प्रभा से अधःसप्तम नारकी योग आदि के द्वारा परभव का आयुष्य बांधते हैं ।

औधिक कृष्ण लेश्या के अनुसार चारों युग्म का कथन कहना ।

·५३·१३ क्षुद्रयुग्मराशिप्रमाणनीललेशी भवसिद्धिक नारकी का योग आदि से परभव का आयुष्य बंध

त्र्योज	,,	,,	,,	,,	,,
द्वापरयुग्म	,,	,,	,,	,,	,,
कल्योज	,,	,,	,,	,,	,,

णीललेस्सभवसिद्धिया चउसुवि जुम्मेसु तहेव भाणियव्वा जहा ओहिए णीललेस्सउद्देसए ।

—भग० श० ३१ । उ ७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नीललेश्यावाले भवसिद्धिक नारकी के चारों युग्म का कथन नीललेशी औधिक उद्देशक के अनुसार कहना।

·५३·१३ क्षुद्रयुग्म आदि कापोत लेशी भवसिद्धिक नारकी के योग आदि से परभव का आयुष्यबंध

काउलेस्सा भवसिद्धिया चउसुवि जुम्मेसु तहेव उववाएयव्वा जहेव ओहिए काउलेस्सउद्देसए।

—भग० श० ३१। उ ८

कापोत लेश्यावाले भवसिद्धिक नारकी के चारों युग्म का निरुपण औधिक कापोत लेशी उद्देशक के अनुसार कहना।

·५३·१४ अभवसिद्धिक कृतयुग्म आदि चार युग्म के आयुष्य-बंधन-योग आदि से

जहा भवसिद्धिएहिं चत्तारि उद्देसगा भणिया एवं अभवसिद्धिएहि वि चत्तारि उद्देसगा भाणियव्वा जाव काउलेस्सा उद्देसओ त्ति।

—भग० श० ३१। उ ९ से १२

·५३·१५ सम्यग्दृष्टि कृतयुग्म आदि चार युग्म और सयोगी-आयुष्य बंध

मिथ्यादृष्टि ,, ,,

एवं सम्मदिट्ठीहि वि लेस्सासंजुत्तेहिं चत्तारि उद्देसगा कायव्वा, णवरं सम्मदिट्ठी पढमबिइएसु वि दोसु वि उद्देसएसु अहेसत्तमापुढवीए ण उववाएयव्वो।

—भग० श० ३१। उ १३ से १६

मिच्छादिट्ठीहि वि चत्तारि उद्देसगा कायव्वा जहा भवसिद्धियाणं।

—भग० श० ३१। उ १७ से २०

·५३ १६ कृष्णपाक्षिक कृतयुग्म आदि के आयुष्य बंध योग आदि से

शुक्लपाक्षिक ,, ,,

एवं कण्हपक्खिएहि वि लेस्सासंजुत्तेहिं चत्तारि उद्देसगा कायव्वा जहेव भवसिद्धिएहिं।

—भग० श० ३१। उ २१ से २४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुक्कपक्खिएहिं एवं चेव चत्तारिउद्देसगा भाणियव्वा। जाव वालुयप्पभा-पुढविकाउलेस्ससुक्कपक्खियखुड्डागकलिओगणेरइया णं भंते! कओ उववज्जंति? तहेव जाव णो परप्पओगेणं उववज्जंति।

—भग० श० ३१। उ २४ से २८

जैसा भवसिद्धिक के चार उद्देशक कहे वैसे ही अभवसिद्धिक के चार उद्देशक (औधिक, कृष्णलेशी, नीललेशी, कापोतलेशी) जानने।

इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि के लेश्या संयोग से चार उद्देशक जानने। लेकिन सम्यग्-दृष्टि के प्रथम-द्वितीय उद्देशक में तमतमाप्रभा पृथ्वी में उपपात न कहना।

मिथ्यादृष्टि के भी लेश्या-संयोग से चार उद्देशक भवसिद्धिक की तरह जानने।

इसी प्रकार कृष्णपाक्षिक के लेश्या संयोग से चार उद्देशक भवसिद्धिक की तरह कहने।

इसी प्रकार शुक्लपाक्षिक के भी चार उद्देशक कहने। यावत् बालुकाप्रभा पृथ्वी के कापोत लेशी, शुक्लपाक्षिक क्षुद्रकल्योज नारकी कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं—यावत् परप्रयोग से उत्पन्न नहीं होते हैं—तक कहना।

·५३·१७ सयोगी क्षुद्रयुग्म नारकी का उद्वर्तन

(खुड्डागकडजुम्मनेरइया) ते णं भंते! से जहाणामए पवए० एवं तहेव। एवं सो चेव गमओ जाव आयप्पओगेणं उव्वट्टंति, णो परप्पओगेणं उव्वट्टंति।

रयणप्पभापुढविखुड्डागकड०? एवं रयणप्पभाए वि, एवं जाव अहेसत्तमाए। एवं खुड्डामतेओगखुड्डागदावरजुम्मखुड्डागकलिओगा। णवरं परिमाणं जाणियव्वं, सेसं तं चेव।

कण्हलेस्सकडजुम्मणेरइया—एवं एएणं कमेणं जहेव उववायसए अट्ठावीसं उद्देसगा भणिया तहेव उव्वट्टणासए वि अट्ठावीसं उद्देसगा भाणियव्वा णिरवसेसा। णवरं 'उव्वट्टंति' त्ति अभिलावो भाणियव्वो, सेसं तं चेव।

—भग० श० ३२। सू १ से ५

·५३·१ से ·५३-१६ में जैसे उपपात के २८ उद्देशक कहे उसी प्रकार उद्वर्तन के २८ उद्देशक कहने लेकिन उपपात के स्थान पर उद्वर्तन कहना।

अस्तु वे सब आत्म-प्रयोग से उद्वर्तते हैं, परप्रयोग से नहीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५४ सयोगी महायुग्म जीव

·५४·१ सयोगी महायुग्म एकेन्द्रिय जीव

(कडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया) जीवा × × × णो मणजोगी, णो वइजोगी, कायजोगी । × × ×। एवं एएसु सोलससु महाजुम्मेसु एक्को गमओ ।

—भग० श० ३५ । श० १ । उ १ । सू ९ । १९

कृतयुग्म-कृतयुग्म एकेन्द्रिय जीव मनोयोगी और वचनयोगी नहीं है, काययोगी होते हैं। इसी प्रकार सोलह महायुग्मों के जीव काययोगी होते हैं, मनोयोगी, वचनयोगी नहीं होते हैं।

एवं एए (णं कमेणं) एक्कारस उद्देसगा ।

—भग० श० ३५ । श० १ । उ ११ । सू ९

इसी क्रम से निम्नलिखित ग्यारह उद्देशक कहने। ग्यारह उद्देशक इस प्रकार है—इन ग्यारह उद्देशकों में प्रत्येक उद्देशक में सोलह महायुग्म होते हैं।

१—कृतयुग्म-कृतयुग्म
२—पढमसमय० कृतयुग्म०
३—अपढम समय० कृतयुग्म०
४—चरम समय० कृतयुग्म०
५—अचरम समय० कृतयुग्म०
६—प्रथमप्रथम समय० कृतयुग्म०
७—प्रथमअप्रथम समय० कृतयुग्म-कृतयुग्म
८—प्रथमचरम समय० ,,
९—प्रथमअचरम समय० ,,
१०—चरमचरम समय० ,,
११—तथा चरमअचरम समय० कृतयुग्म०

सयोगी महायुग्म एकेन्द्रिय जीव

(कण्हलेस्सकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया) । × × ×। एवं जहा ओहि-उद्देसए । × × ×। एवं सोलस वि जुम्मा भाणियव्वा ।

—भग० श० ३५ । श० २

कृष्णलेश्यावाले कृतयुग्म-कृतयुग्म राशि एकेन्द्रिय के जीव मनोयोगी व वचनयोगी नहीं होते हैं, काययोगी होते हैं। इस प्रकार सोलह महायुग्मों के जीव मनोयोगी, वचनयोगी नहीं होते हैं, काययोगी होते हैं।

(पढमसमयकण्हलेस्सकडजुम्मकडजुम्म-एगिंदिया) जहा पढमसमय-उद्देसओ । × × ×। एवं जहा ओहियसए एक्कारस उद्देसगा भणिया तहा कण्हलेस्ससए वि एक्कारस उद्देसगा भाणियव्वा । × × ×।

—भग० श० ३५ । श० २

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम समय के कृष्णलेश्यावाले कृतयुग्म-कृतयुग्म एकेन्द्रिय जीव मनोयोगी व वचनयोगी नहीं होते हैं, काययोगी होते हैं।

औधिकशतक के ग्यारह उद्देशक के समान कृष्णलेश्यावाले शतक के भी ग्यारह उद्देशक कहने। सब एकेन्द्रिय जीव काययोगी होते हैं।

एवं नीललेस्सेहि वि सयं कण्हलेस्ससयसरिसं। एक्कारस उद्देसगा तहेव।

एवं काउलेस्सेहि वि सयं कण्हलेस्ससयसरिसं।

—भग० श० ३५। श० ३। ४

नीललेशी एकेन्द्रिय महायुग्मशतक के कृष्णलेशी एकेन्द्रिय महायुग्मशतक के समान ग्यारह उद्देशक कहने, सिर्फ काययोगी होते हैं।

कापोतलेशी एकेन्द्रिय महायुग्मशतक के कृष्णलेशी एकेन्द्रिय महायुग्म के समान ग्यारह उद्देशक कहने, वे सब काययोगी होते हैं।

(भवसिद्धियकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया) जहा ओहियसयं तहेव। णवरं एक्कारससु वि उद्देसएसु। × × ×। सेसं तहेव।

—भग० श० ३५। शतक ५

भवसिद्धिक कृतयुग्म-कृतयुग्म एकेन्द्रिय जीव औधिकशतक के अनुसार कहना। इनके ग्यारह उद्देशकों में काययोगी कहना, मनोयोगी व वचनयोगी नहीं कहना।

कण्हलेस्सभवसिद्धिय-कडजुम्मकडजुम्म-एगिंदिया) एवं कण्हलेस्स भवसिद्धियएगिंदियएहि वि सयं बिइयसयकण्हलेस्ससरिसं भाणियव्वं।

एवं णीललेस्सभवसिद्धियएगिंदियएहि वि सयं।

एवं काउलेस्सभवसिद्धियएगिंदिएहि वि तहेव एकारस-उद्देसग-संजुत्तं × × ×।

—भग० श० ३५। श० ६। ७। ८

कृष्णलेशी भवसिद्धिक कृतयुग्म-कृतयुग्म एकेन्द्रिय के विषय में कृष्णलेश्या के दूसरे शतक के समान यह शतक भी कहना चाहिए। सोलह महायुग्म सहित इग्यारह उद्देशक के जीव काययोगी होते हैं।

इसी प्रकार नीललेश्या वाले भवसिद्धिक एकेन्द्रिय का शतक कहना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार कापोतलेश्यावाले भवसिद्धिक एकेन्द्रिय जीवों के भी ग्यारह उद्देशक सहित यह शतक है। सब काययोगी होते हैं।

जहा भवसिद्धिएहिं चत्तारि सयाइं भणियाइं एवं अभवसिद्धिएहि वि चत्तारि सयाणि लेस्सासंजुत्ताणि भाणियव्वाणि × × ×।

—भग० श० ३५। श० ९ से १२

जैसे भवसिद्धिक के चार शतक कहे वैसे ही अभवसिद्धिक के भी चार शतक लेश्या सहित कहते।

सब काययोगी होते हैं।

·५४·२ सयोगी महायुग्म द्वीन्द्रिय जीव

(कडजुम्मकडजुम्मबेइंदिया णं भंते!) × × ×। णो मणजोगी वयजोगी वा कायजोगी वा। × × × एवं सोलससुवि जुम्मेसु।

—भग० श० ३६। श० १। उ १। सू १, २

कृतयुग्म-कृतयुग्म द्वीन्द्रिय के जीव मनोयोगी नहीं होते हैं, किन्तु वचनयोगी और काययोगी होते हैं।

इसी प्रकार सोलह युग्मों में कहना।

(पढमसमयकडजुम्मकडजुम्म-बेइंदिया) णो मणजोगी णो वयजोगी, कायजोगी। × × ×। एवं एए वि जहा एगिंदियमहाजुम्मेसु एक्कारस उद्देसगा तहेव भाणियव्वा। × × ×।

—भग० श० ३६। श० १। उ २ से ११। सू १

दूसरे, तीसरे, चौथे, पांचवें, छट्ठे, सातवें, आठवें, नववें, दसवें, ग्यारहवें उद्देशकों में मनोयोग नहीं होता है, वचनयोग और काययोग होता है।

प्रथम समयोत्पन्न कृतयुग्म-कृतयुग्म राशि द्वीन्द्रिय के जीव मनोयोगी और वचनयोगी नहीं होते हैं, परन्तु काययोगी होते हैं।

सोलह महायुग्मों का इसी प्रकार जानना चाहिए।

(कण्हलेस्सकडजुम्मकडजुम्मबेइंदिया) कण्हलेस्सेसु वि एक्कारस-उद्देसगसंजुत्तं सयं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं णीललेस्सेहि वि सयं।
एवं काउलेस्सेहि वि॥

भवसिद्धिय-कडजुम्मकडजुम्म-बेइंदिया णं भंते! एवं भवसिद्धियसया वि चत्तारि तेणेव पुव्वगमएणं णेयव्वा, णवरं सव्वे पाणा० ? णो इणट्ठे समट्ठे। सेसं तहेव ओहियसयाणि चत्तारि।

जहा भणसिद्धियसयाणि चत्तारि एवं अभवसिद्धियसयाणि चत्तारि भाणियव्वाणि। णवरं सम्मत्त-णाणाणि णत्थि, सेसं तं चेव।

—भग० श० ३६। श० २ से १२

कृष्णलेशी कृतयुग्म-कृतयुग्म द्वीन्द्रिय जीवों के योग के सम्बन्ध में कृतयुग्म-कृतयुग्म औधिक द्वीन्द्रिय शतक की तरह ग्यारह उद्देशक सहित महायुग्म शतक कहना। लेकिन लेश्या, कायस्थिति तथा आयुस्थिति एकेन्द्रिय कृष्णलेशी शतक की तरह कहने। इसी प्रकार सोलह महायुग्म शतक कहने।

इसी प्रकार नीललेशी तथा कापोतलेशी शतक भी कहने।

भवसिद्धिक कृतयुग्म-कृतयुग्म द्वीन्द्रिय के सम्बन्ध में भी पूर्व गमक की तरह चार शतक कहते। विशेष में सर्वप्राण-भूत-जीव-सत्त्व यावत् अनंतवार उत्पन्न हुए हैं ऐसा नहीं है।

जिस प्रकार भवसिद्धिक बेइन्द्रिय जीवों के चार शतक कहे, उसी प्रकार अभव-सिद्धिक बेइन्द्रियों के भी चार शतक कहते। इनमें सम्यक्त्व और ज्ञान नहीं होता है।

५४.३ सयोगी महायुग्म त्रीन्द्रिय जीव

कडजुम्मकडजुम्मतेइंदिया णं भंते! कओ उववज्जंति ? एवं तेइंदिएसु वि बारससया कायव्वा बेइंदियसयसरिसा। णवरं ओगाहणा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं। ठिई जइण्णेण एक्कं समयं, उक्कोसेणं एकूणवण्ण राइंदियाइं, सेसं तहेव।

—भग० श० ३७। सू १

महायुग्म द्वीन्द्रिय शतक की तरह महायुग्म द्वीन्द्रिय जीवों के विषय में—योग के विषय में कहना। बारह शतक कहना।

अस्तु—द्वितीय शतक में—प्रथम समयोत्पन्न कृतयुग्म-कृतयुग्म राशि त्रीन्द्रिय मनोयोगी व वचनयोगी नहीं होते हैं परन्तु काययोगी होते हैं। बाकी ग्यारह शतक में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वचनयोगी व काययोगी होते हैं परन्तु मनोयोगी नहीं होते हैं। सोलह महायुग्म का इस प्रकार ही कहना।

·५४·४ सयोगी महायुग्म चतुरिन्द्रिय जीव

चउरिंदिएहि वि एवं चेव बारस सया कायव्वा, णवरं ओगाहणा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं चत्तारि गाउयाइं। ठिई जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं छम्मासा। सेसं जहा बेइंदियाणं।

—भग० श० ३८। सू १

इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय के भी बारह शतक सोलह महायुग्म के साथ कहने चाहिए। द्वितीय शतक में काययोगी होते हैं, परन्तु मनोयोगी व वचनयोगी नहीं होते हैं। ग्यारह शतकों में वचनयोगी व काययोगी होते हैं, परन्तु मनोयोगी नहीं होते हैं।

·५४·५ सयोगी असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव

(कडजुम्मकडजुम्मअसण्णिपंचिंदिया) जहा बेइंदियाणं तहेव असण्णिसु वि बारस सया कायव्वा।

—भग० श० उ ३९। सू १

कृतयुग्म-कृतयुग्मराशि असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के भी (बेइन्द्रिय शतक के समान) बारह शतक कहते। प्रथम समय कृतयुग्म-कृतयुग्म असंज्ञी पंचेन्द्रिय में काययोग होता है, परन्तु वचनयोग-मनोयोग नहीं होते हैं। बाकी ग्यारह शतक में वचनयोगी-काययोगी होते हैं, परन्तु मनोयोगी नहीं होते हैं। सोलह महायुग्म कहने—बारह शतक सहित।

नोट—असंज्ञी मनुष्य व असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय इन दोनों का असंज्ञी पंचेन्द्रिय में आविर्भाव है।

·५४·६ सयोगी महायुग्म संज्ञी पंचेन्द्रिय

कडजुम्मकडजुम्मसण्णिपंचिंदिया णं भंते ! × × × मणजोगी, वयजोगी, कायजोगी × × × एवं सोलसु वि जुम्मेसु भाणियव्वं।

पढमसमयकडजुम्मकडजुम्मसन्निपंचिंदिया णं भंते ! × × × सेसं जहा बेइंदियाणं पढमसमइयाणं जाव अणंतक्खुत्तो × × ×। (णो मणजोगी, णो वयजोगी, कायजोगी) × × × एवं सोलसु वि जुम्मेसु भाणियव्वं।

एवं एत्थवि एक्कारस उद्देसगा तहेव।

—भग० श० ४०। श० १ सू २, ५, ६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृतयुग्म-कृतयुग्म संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में सोलह महायुग्मों के जीव मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी होते हैं। इस प्रकार सोलह महायुग्मों के जीवों के विषय में जानना चाहिए।

प्रथम समय कृतयुग्म-कृतयुग्म संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के सोलह महायुग्मों के जीव काययोगी होते हैं, मनोयोगी, वचनयोगी नहीं होते हैं।

यहाँ भी ग्यारह उद्देशक है बाकी सब उद्देशक के जीव मनोयोगी-वचनयोगी व काययोगी होते हैं।

कण्हलेस्सकडजुम्मकडजुम्म-सण्णिपंचिंदिया णं भंते ! × × × सेसं जहा एएसिं चेव पढमे उद्देसए जाव अणंतक्खुत्तो। (मणजोगी, वयजोगी, कायजोगी) एवं सोलसु वि जुम्मेसु।

पढमसमयकण्हलेस्सकडजुम्मकडजुम्मसण्णिपंचिंदिया णं भंते ! × × × जहा सण्णिपंचिंदियपढम समयउद्देसए तहेव णिरवसेसं × × × एवं सोलसु वि जुम्मेसु।

एवं एए वि एक्कारस वि उद्देसगा कण्हलेस्ससए।

—भग० श० ४० । श० २ । सू १, २

कृष्णलेशी वाले कृतयुग्म-कृतयुग्मराशि संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी होते हैं।

प्रथम समय के कृष्णलेशी कृतयुग्म-कृतयुग्मराशि संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव काययोगी होते हैं, मनोयोगी, वचनयोगी नहीं होते हैं। इस प्रकार सोलह महायुग्मों के विषय में जानना।

यहाँ भी ग्यारह उद्देशक है। बाकी सब उद्देशक के जीव मनोयोगी, वचनयोगी व काययोगी होते हैं।

एवं णीललेस्सेसु वि सयं।

—भग० श० ४० । श० ३

इसी प्रकार नीललेश्यावाले जीवों के विषय में जानना चाहिए।

एवं काउलेस्ससयं वि।

—भग० श० ४० । श० ४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार कापोतलेश्या के विषय में भी शतक है।

एवं तेउलेस्सेसु वि सयं।

—भग० श० ४० । श० ५

इसी प्रकार तेजोलेश्या में भी शतक हैं।

जहा तेउलेस्सासयं तहा पम्हलेस्सासयं वि।

भग० श० ४० । श० ६

तेजोलेश्या शतक के समान पद्मलेश्या का शतक है।

सुक्कलेस्ससयं जहा ओहियसयं।

—भग० श० ४० । श० ७

शुक्ललेश्या के शतक भी औधिक शतक के समान है।

भवसिद्धियकडजुम्मकडजुम्मसण्णिपंचिंदिया × × × जहा पढमं सण्णिसयं तहा णेयव्वं भवसिद्धियाभिलावेणं। × × ×।

—भग० श० ४० । श० ८

प्रथम संज्ञी शतक के अनुसार भवसिद्धिक कृतयुग्म-कृतयुग्म संज्ञी पंचेन्द्रिय के विषय में जानना। सोलह महायुग्मों के विषय में जानना चाहिए। सभी जीव मनोयोगी, वचनयोगी व काययोगी होते हैं। लेकिन प्रथम समय के सभी महायुग्मों के जीव केवल काययोगी होते है।

(कण्हलेस्सभवसिद्धियकडजुम्मकडजुम्मसण्णिपंचिंदिया) एवं एएणं अभिलावेणं जहा ओहियकण्हलेस्ससयं।

एवं णीललेस्सभवसिद्धिए वि सयं।

एवं जहा ओहियाणि सण्णिपंचिंदियाणं सत्त सयाणि भणियाणि, एवं भवसिद्धिएहि वि सत्त सयाणि कायव्वाणि।

—भग० श० ४० । श० ९ से १४

कृष्णलेशी-भवसिद्धिक-कृतयुग्म-कृतयुग्मराशि-संज्ञी-पंचेन्द्रिय जीव के विषय में कृष्णलेश्या वाले औधिक शतक के अनुसार कहना।

नीललेश्या वाले भवसिद्धिक शतक भी इसी प्रकार है।

अस्तु—संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के सात औधिक शतक कहे हैं उसी प्रकार भवसिद्धिक जीवों के भी सात शतक कहने चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्तु—उनमें प्रथम समय के सोलह महायुग्मों के जीव केवल काययोगी होते हैं, बाकी सब मनोयोगी, वचनयोगी व काययोगी होते हैं।

अभवसिद्धियकडजुम्मकडजुम्मसण्णिपंचिंदिया णं भंते! कओ उववज्जंति ?

उववाओ तहेव अणुत्तरविमाणवज्जो। × × × जहा कण्हलेस्ससए। × × ×। एवं सोलससु वि जुम्मेसु।

—भग० श० ४०। श० १५। सू १

अभवसिद्धिक-कृतयुग्म-कृतयुग्म-संज्ञीपंचेन्द्रिय जीव के विषय में कृष्णलेशी शतक के अनुसार जानना। वे मनोयोगी, वचनयोगी व काययोगी होते हैं। इस प्रकार सोलह महायुग्म को जानना।

पढमसमयअभवसिद्धियकडजुम्मकडजुम्मसण्णिपंचिंदिया णं भंते! कओ उववज्जंति ? जहा सण्णिणं एकसमयउद्देसए तहेव। × × ×। एवं एत्थ वि एक्कारस उद्देसगा कायव्वा × × ×।

भग० श ४०। श० १५। सू २

प्रथम समय के अभवसिद्धिक कृतयुग्म-कृतयुग्म राशि संज्ञी पंचेन्द्रिय के विषय में प्रथम समय के संज्ञी उद्देशक के समान कहना। अस्तु वे मनोयोगी व वचनयोगी नहीं होते हैं परन्तु काययोगी होते हैं। यहाँ भी ग्यारह उद्देशक है। बाकी सबके उद्देशक में तीनो योग होते हैं।

कण्हलेस्सअभवसिद्धिय-कडजुम्मकडजुम्मसण्णि-पंचिंदिया णं भंते! कओ उववज्जंति ?

जहा एएसिं चेव ओहियसयं तहा कण्हलेस्ससयं वि × × ×।

—भग० ४०। श० १६

कृष्णलेशीअभवसिद्धिककृतयुग्म-कृतयुग्म राशि संज्ञी पंचेन्द्रिय के विषय में औधिक शतक की तरह कहना। प्रथम समय के काययोगी होते हैं, मनोयोगी वचनयोगी नहीं होते हैं। बाकी सब तीनो योगवाले होते हैं।

एवं छहि वि लेस्साहिं छ सया कायव्वा जहा कण्हलेस्ससयं × × ×।

—भग० श० ४०। श० १७-२१

जिस प्रकार कृष्णलेश्या का शतक कहा उसी प्रकार छओं लेश्या का शतक कहना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·५५ सयोगी राशियुग्म जीव

.५५·१ योग और कृतयुग्म-राशि

(राशिजुम्मकडजुम्मणेरइया) ते णं भंते ! जीवा कहिं उववज्जंति। गोयमा ! से जहाणामए पवए पवमाणे—एवं जहा उववायसए जाव णो परप्पओगेणं उववज्जंति।

—भग० श० ४१ । उ १ । सू ८

कृतयुग्मराशि नारकी—जिस प्रकार कोई पुरुष कूदता हुआ अध्यवसाय निर्वर्तित क्रिया-साधन द्वारा उस स्थान को छोड़ कर भविष्यत् काल में अगले स्थान को प्राप्त होता है उसी प्रकार नारकी आत्मप्रयोग से उत्पन्न होते हैं, परप्रयोग से नहीं।

(राशिजुम्मकडजुम्मअसुरकुमारा) जहेव णेरइया तहेव णिरवसेसं। एवं जहा पंचिंदियतिरिक्खजोणिया। × × × मणुसा वि एवं चेव × × ×।

वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा णेरइया।

—भग० श० ४१ । उ १ सू १४, २३

कृतयुग्म राशि असुरकुमार के विषय में नारकी के समान जानना चाहिए। यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक के विषय में ऐसा ही जानना चाहिए।

वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकदेव का कथन भी नारकी के समान जानना चाहिए।

·५५·२ सयोगी राशि युग्म जीव

(रासीजुम्मतेओयणेरइया) सेसं तं चेव जाव वेमाणिया। णवरं उववाओ सव्वेसिं जहा वक्कंतीए।

—भग० श० ४१ । उ २

(रासीजुम्मदावरजुम्मणेरइया) सेसं जहा पढमुद्देसए जाव वेमाणिया।

—भग० श० ४१ । उ ३

(रासीजुम्मकलिओगणेरइया) सेसं जहा पढमुद्देसए जाव वेमाणिया।

—भग० श० ४१ । उ ४

राशियुग्म में त्र्योज राशि नारकी यावत् वैमानिक देव प्रथम उद्देशक की तरह आत्मप्रयोग से उत्पन्न होते हैं परन्तु परप्रयोग से नहीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राशियुग्म में द्वापर युग्म राशि नारकी यावत् वैमानिक देव प्रथम उद्देशक के अनुसार आत्मप्रयोग से उत्पन्न होते हैं, परप्रयोग से नहीं।

राशियुग्म में कल्पोज राशि नारकी यावत् वैमानिक देव प्रथम उद्देशक के अनुसार आत्मप्रयोग से उत्पन्न होते हैं, परप्रयोग से नहीं।

(कण्हलेस्सरासीजुम्मकडजुम्मणेरइया) कओ उववज्जंति ?

उववाओ जहा धूमप्पभाए, सेसं जहा पढमुद्देसए। असुरकुमाराणं तहेव, एवं जाव वाणमंतराणं।

—भग० श० ४१। उ ५

कृष्णलेशी राशि युग्म कृतयुग्म नारकी यावत् वाणव्यंतरदेव आत्मप्रयोग से उत्पन्न होते हैं, परप्रयोग से नहीं।

कण्हलेस्सतेओएहि वि एवं चेव उद्देगओ।
कण्हलेस्सदावरजुम्मेहिं एवं चेव उद्देसओ।
कण्हलेस्सकलिओएहि वि एवं चेव उद्देसओ।

—भग० श ४१ श० ६, ७, ८

कृष्णलेशी राशि युग्म में त्र्योजराशि, कृष्णलेशी राशि युग्म में द्वापर युग्म तथा कृष्णलेशी राशि युग्म में कल्योज राशि दंडक के जीवों के (ज्योतिषी-वैमानिक को छोड़कर) विषय में प्रथम उद्देशक की तरह आत्मप्रयोग से उत्पन्न होते हैं, परप्रयोग से नहीं।

जहा कण्हलेस्सेहिं एवं नीललेस्सेहि वि चत्तारि उद्देसगा भाणियव्वा णिरवसेसा। णवरं णेरइयाणं उववाओ जहा वालुयप्पभाए, सेसं तं चेव।

—भग० श ४१ श० ९ से १२

कृष्णलेश्यावाले जीवों के अनुसार नीललेश्यावाले जीवों के भी चार उद्देशक सम्पूर्ण कहना चाहिए। अस्तु नारकी यावत् वाणव्यंतरदेव आत्मप्रयोग से उत्पन्न होते हैं, परप्रयोग से नहीं।

काउलेस्सेहि वि एवं चेव चत्तारि उद्देसगा कायव्वा। णवरं णेरइयाणं उववाओ जहा रयणप्पभाए, सेसं तं चेव।

—भग० श ४१ श० १३ से १६

कापोत लेश्या के भी इसी प्रकार चार उद्देशक कहना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेउलेस्सरासिजुम्मकडजुम्मअसुरकुमाराणं भंते ! कओ उववज्जंति ?

एवं चेव णवरं जेसु तेउलेस्सा अत्थि तेसु भाणियव्वं ।

एवं एए वि कण्हलेस्सासरिसाचत्तारि उद्देसगा कायव्वा ।

—भग० श० ४१ । श० १७ से २०

राशियुग्म में कृतयुग्म राशि तेजोलेश्यावाले असुरकुमार का कथन पूर्ववत् है। किन्तु जिनमें तेजो लेश्या पाई जाती हो, उन्हीं के कहना।

इस प्रकार कृष्णलेश्या के समान चार उद्देशक कहना।

एवं पम्हलेस्साए वि चत्तारि उद्देसगा कायव्वा। पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं मणुस्साणं वेमाणियाण य एएसि पम्हलेस्सा, सेसाणं णत्थि ।

—भग० श० ४१ । श० २१ से २४

इसी प्रकार पद्मलेश्या के भी चार उद्देशक जानो। पंचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य और वैमानिकदेव में पद्मलेश्या होती है, शेष में नहीं होती है।

जहा पम्हलेस्साए एवं सुक्कलेस्साए वि चत्तारि उद्देसगा कायव्वा। णवरं मणुस्साणं गमओ जहा ओहिउद्देसएसु, सेसं तं चेव ।

—भग० श० ४१ । श० २५ से २८

पद्मलेश्या के अनुसार शुक्ललेश्या के भी चार उद्देशक कहना चाहिए। परन्तु मनुष्य के लिए औधिक उद्देशक के अनुसार है। शेष पूर्ववत्। अस्तु शुक्ललेशी राशि युग्म में कृतयुग्म राशि आदि चारों राशि के जीव (मनुष्य-तिर्यंच-पंचेन्द्रिय-वैमानिकदेव) आत्मप्रयोग से उत्पन्न होते हैं, परप्रयोग से नहीं।

भवसिद्धियरासीजुम्मकडजुम्मणेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति ! जहा ओहिया पढमगा चत्तारि उद्देसगा तहेव णिरवसेसं एए, चत्तारि उद्देसगा ।

—भग० श० ४१ । श० २९ से ३२

भवसिद्धिक राशि युग्म में कृतयुग्म राशि नारकी आदि के विषय में पहले चार उद्देशक के अनुसार यहाँ भी चार उद्देशक सम्पूर्ण कहना चाहिए।

कण्हलेस्सभवसिद्धियरासीजुम्मकडजुम्मणेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

जहा कण्हलेस्साए चत्तारि उद्देसगा भवंति तहा इमे वि भवसिद्धियकण्हलेस्सेहि वि चत्तारि उद्देसगा कायव्वा ।

—भग० व० ४१ । श० ३३ से ३६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राशि युग्म में कृतयुग्म राशि कृष्णलेशी भवसिद्धिक नारकी आदि के विषय में कृष्ण लेश्या के चार उद्देशक के समान भवसिद्धिक कृष्णलेशी जीवों के चार उद्देशक कहना चाहिए।

एवं णीललेस्सभवसिद्धिएहि वि चत्तारि उद्देसगा कायव्वा।

—भग० श० ४१। श० ३७ से ४०

एवं काउलेस्सेहि वि चत्तारि उद्देसगा।
तेउलेस्सेहि वि चत्तारि उद्देसगा ओहियसरिसा।
पम्हलेस्सेहि वि चत्तारि उद्देसगा।

सुक्कलेस्सेहि वि चत्तारि उद्देसगा ओहियसरिसा।

—भग० श० ४१। श० ४१ से ५६

इसी प्रकार नीललेश्यावाले भवसिद्धिक जीवों के भी चार उद्देशक जानना चाहिए।

इसी प्रकार कापोतलेश्यावाले भवसिद्धिक जीवों के भी चार उद्देशक जानना चाहिए।

इसी प्रकार तेजोलेश्यावाले भवसिद्धिक जीवों के भी ओधिक के समान चार उद्देशक हैं।

इसी प्रकार पद्मलेश्यावाले भवसिद्धिक जीवों के भी चार उद्देशक हैं।

शुक्ललेश्यावाले भवसिद्धिक जीवों के भी औधिक के समान चार उद्देशक जानो।

१—अभवसिद्धिय-रासीजुम्मकडजुम्मणेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

जहा पढमोउद्देसगो। णवरं मणुस्सा णेरइया य सरिसा भाणियव्वा। सेसं तहेव। सेवं भंते ! एवं चउसु वि जुम्मेसु चत्तारि उद्देसगा।

—भग० श० ४१। श० ५७ से ६०

कृतयुग्म राशि अभवसिद्धिक नारकी आदि का प्रथम उद्देशक के अनुसार जानना चाहिए। लेकिन मनुष्य और नारकी का कथन समान जानो।

२—कण्हलेस्स—अभवसिद्धिय-रासीजुम्मकडजुम्मणेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

एवं चेव चत्तारि उद्देसगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३—एवं णीललेस्स-अभवसिद्धिय-रासीजुम्मकडजुम्मणेरइयाणं चत्तारि उद्देसगा।

४—काउलेस्सेहि वि चत्तारि उद्देसगा।

५—तेउलेस्सेहि वि चत्तारि उद्देसगा।

६—पम्हलेस्सेहि वि चत्तारि उद्देसगा।

७—सुक्कलेस्सअभवसिद्धिए वि चत्तारि उद्देसगा।

राशियुग्म में कृतयुग्मराशि कृष्णलेशी अभवसिद्धिक नारकी आदि का प्रथम उद्देशक के अनुसार जानना चाहिए।

इसी प्रकार नीललेश्यावाले कृतयुग्म राशि अभवसिद्धिक जीव के चार उद्देशक जानो।

इसी प्रकार कापोतलेशी अभवसिद्धिक जीवों के भी चार उद्देशक है।

तेजोलेशी अभवसिद्धिक जीवों के भी ऐसे ही चार उद्देशक जानो।

पद्मलेशी अभवसिद्धिक जीवों के भी चार उद्देशक हैं। शुक्ललेशी अभवसिद्धिक जीवों के भी चार उद्देशक है।

सम्मदिट्ठीरासीजुम्मकडजुम्मणेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

एवं जहा पढमो उद्देसओ। एवं चउसु वि जुम्मेसु चत्तारि उद्देसगा भवसिद्धियसरिसा कायव्वा।

—भग० श० ४१। श० ८५ से ८८

राशियुग्म में कृतयुग्म राशि सम्यग्दृष्टि नारकी आदि प्रथम उद्देशक के समान यह उद्देशक भी है। ऐसे ही चारों युग्म में भवसिद्धिक के समान चार उद्देशक कहना।

कण्हलेस्ससम्मदिट्ठीरासीजुम्मकडजुम्मणेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

एए वि कण्हलेस्ससरिसा चत्तारि वि उद्देसगा कायव्वा।

एवं सम्मदिट्ठीसु वि भवसिद्धिय सरिसा अट्ठावीस उद्देसगा कायव्वा।

—भग० श० ४१। श० ८९ से ११२

राशियुग्म में कृतयुग्म राशि कृष्णलेशी सम्यग्दृष्टि नारकी आदि कृष्णलेश्यावाले के समान चार उद्देशक जानना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार सम्यग्दृष्टि जीवों के भी भवसिद्धिक जीवों के समान अट्ठाईस उद्देशक कहना।

मिच्छादिट्ठीरासीजुम्मकडजुम्मणेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

एवं एत्थ वि मिच्छादिट्ठीअभिलावेण अभवसिद्धियसरिसा अट्ठावीसं उद्देसगा कायव्वा।

—भग० श० ४१। श० ११३ से १४०

राशियुग्म में कृतयुग्मराशि मिथ्यादृष्टि नारकी आदि के विषय में अभवसिद्धिक जीवों के समस्त अट्ठावीस उद्देशक जानना चाहिए।

कण्हपक्खियरासीजुम्मकडजुम्मणेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति ? एवं एत्थ वि अभवसिद्धियसरिसा अट्ठावीसं उद्देसगा कायव्वा।

—भग० श० ४१। श० १४१ से १६८

सुक्कपक्खियरासीजुम्मकडजुम्मणेरइया णं भंते। कओ उववज्जंति ?

एवं एत्थ वि भवसिद्धियसरिसा अट्ठावीसं उद्देसगा भवंति। एवं एए सव्वे वि छण्णउत्तं उद्देसगसयं भवंति रासीजुम्मसयं। जाव सुक्कलेस्सा सुक्कपक्खिय रासीजुम्मकलिओगवेमाणिया जाव जइ सकिरिया तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झंति जाव अंतं करेंति ? णो इणट्ठे समट्ठे।

—भग० श० ४१। श० १८९ से १९६

कृष्णपाक्षिक राशिजुग्म कृतयुग्म नारकी आदि के विषय में अभवसिद्धिक के समान अट्ठाबीस उद्देशक जानना।

राशियुग्म में कृतयुग्मराशि शुक्लपाक्षिक नारकी आदि के विषय में भवसिद्धिक के समान अट्ठावीस उद्देशक जानना चाहिए।

५६ सयोगी जीव और पापकर्म आदि का करना

जीवे णं भंते ! पावं कम्मं किं करिसु करेति करेस्सति ? करेसु करेति न करिस्सति ? करिसु न करेति करेस्सति ? करिसु न करेति न करेस्सति ?

गोयमा ! अत्थेगतिए करिसु करेति करेस्सति, अत्थेगतिए करिसु करेति न करेस्सति, अत्थेगतिए करिसु न करेति करेस्सति, अत्थेगतिए करिसु न करेति न करेस्सति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·५६ १ सयोगी जीव और पापकर्म आदि का करना

सलेस्से णं भंते ! जीवे पावं कम्मं एएणं अभिलावेणं जच्चेव बंधिसए वत्तव्वया सच्चेव णिरवसेसा भाणियव्वा, तहेव णवदंडगसंगहिया एक्कारस उद्देसगा भाणियव्वा।

—भग० श० २७ । उ १ से ११

पाप-कर्म बंधन की तरह सयोगी जीवों में चार भंग कहना। मनोयोगी-वचनयोगी और काययोगी जीवों में चार भंग पाये जाते हैं। अयोगी जीवों में अन्तिम एक भंग पाया जाता है। सयोगी जीव ने पाप-कर्म तथा अष्ट कर्म किया है इत्यादि उसी प्रकार कहने जैसे कर्म बंध (·६३) नव दंडक सहित ग्यारह उद्देशक कहे हैं।

नोट—चार भंग १—किसी जीव ने पाप-कर्म किया था, करता है और करेगा।

२—किसी जीव ने पाप-कर्म किया था, करता है और नहीं करेगा।

३—किसी जीव ने पापकर्म किया था, नहीं करता है और करेगा।

४—किसी जीव ने पापकर्म किया था, नहीं करता है और नहीं करेगा।

छव्वीसवें शतक में बंध का, सताइसवें शतक में 'करण' का कथन किया। यद्यपि बंध और करण में कोई अन्तर नहीं है। तथापि यहाँ जो पृथक् कथन किया है इसका कारण यह बताया है कि जीव की जो कर्मबंध क्रिया है वह जीव कृत ही है।

अथवा बंध का अर्थ है—सामान्य रूप में कर्म को बांधना और करण का अर्थ है—कर्मों को निधत्तादि रूप में बांधना, जिससे विपाकादि रूप से उसका फल अवश्य भोगना पड़े।

·५७ सयोगी जीव और पाप कर्मों का समर्जन-समाचरण

सयोगी जीव और ज्ञानावरणीय आदि अंतराय कर्म का समर्जन-समाचरण

·१ सलेस्सा णं भंते ! जीवा पावं कम्मं कहिं समज्जिणिंसु कहिं समायरिंसु।

एवं चेव (गोयमा ! १—सव्वेवि ताव तिरिक्खजोणिएसु होज्जा। २—अहवा तिरिक्खजोणिएसु य णेरइएसु य होज्जा। ३—अहवा तिरिक्खजोणिएसु य मणुस्सेसु य होज्जा। ४—अहवा तिरिक्खजोणिएसु य देवेसु य होज्जा। ५—अहवा तिरिक्खजोणिएसु य णेरइएसु य मणुस्सेसु य होज्जा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६—अहवा तिरिक्खजोणिएसु य णेरइएसु य देवेसु य होज्जा। ७—अहवा तिरिक्खजोणिएसु य मणुस्सेसु य देवेसु य होज्जा। ८—अहवा तिरिक्खजोणिएसु य णेरइएसु य मणुस्सेसु य देवेसु होज्जा)।× × ×एवं जाव अणागारो वउत्ता।

—भग० श० २८। उ १। सू २

सयोगी, मनोयोगी-वचनयोगी और काययोगी जीव ने किस गति में पाप कर्मों का समर्जन (ग्रहण) किया था और किस गति में आचरण किया था ?

हे गौतम ! (१) सभी सयोगी जीव यावत् काययोगी जीव तिर्यंच गति में थे। (२) अथवा सभी सयोगी जीव तिर्यंच-योनि और नरक-योनि में थे। (३) अथवा सभी सयोगी जीव तिर्यंच योनि और मनुष्य योनि में थे। (४) अथवा सभी सयोगी जीव तिर्यंच योनि और देव में थे। (५) अथवा सभी सयोगी जीव तिर्यंच योनि, नैरयिक और मनुष्य में थे। (६) अथवा सभी सयोगी जीव तिर्यंच योनि और नैरयिक और देव थे। (७) अथवा सभी सयोगी जीव तिर्यंच योनि, मनुष्य और देव थे। (८) अथवा सभी सयोगी जीव तिर्यंच योनि, नैरयिक, मनुष्य और देव थे। उस-उस गति में सयोगी यावत् काययोगी जीवों ने पाप-कर्म का समर्जन और समाचरण किया था।

नोट—पाप कर्मों का समर्जन और समाचरण अर्थात् पाप-कर्म का हेतु भूत पाप-क्रिया का आचरण। जीव ने पाप-कर्म के समाचरण से पाप-कर्म का उपार्जन किया था। अथवा समर्जन और समाचरण शब्द पर्यायवाची है। अथवा दोनों शब्द एक ही अर्थ के द्योतक हैं।

·५७·१ सयोगी नारकी आदि के दंडक के जीव और पाप कर्मों का समर्जन-समाचरण

णेरइया णं भंते ! पावं कम्मं कहिं समज्जिणिंसु, कहिं समायरिंसु।

गोयमा ! सव्वे वि ताव तिरिक्खजोणिएसु होज्ज त्ति—एवं चेव अट्ठ भंगा भाणियव्वा। एवं सव्वत्थ अट्ठ भंगा, एवं जाव अणागारोवउत्ता वि।

एवं जाव वैमाणियाणं।

—भग० श० २८। उ १। सू ३

सभी सयोगी नारकी तिर्यंच योनिक थे इत्यादि पूर्ववत् आठ भंग। (पाप कर्म का समर्जन-समाचरण की अपेक्षा) यावत् वैमानिक देवों तक कहना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·५७·२ सयोगी जीव और ज्ञानावरणीय कर्म आदि अष्ट कर्म का समर्जन-समाचरण

× × × एवं णाणावरणिज्जेण वि दंडओ। एवं जाव अंतराइएणं। एवं एए जीवादीया वेमाणियपज्जवसाणा णव दंडगा भवंति।

—भग० श० २८। उ १। सू ३

इसी प्रकार सयोगी नारकी में ज्ञानावरणीय कर्म के समर्जन-समाचरण की अपेक्षा आठ भंग कहना।

सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी-काययोगी-अयोगी जीवों ने ज्ञानावरणीय कर्म यावत् अंतराय कर्म—अष्ट कर्मों का समर्जन तथा समाचरण आठ विकल्पों में किया था। इसी प्रकार नारकी यावत् वैमानिक जीवों ने पाप कर्म तथा अष्ट कर्मों का समर्जन-समाचरण आठ विकल्पों में किया था। पाप कर्म तथा अष्ट कर्म के अलग-अलग नौ दंडक कहने।

·५७·३ सयोगी अनंतरोपपन्नक नारकी और पापकर्म का समर्जन-समाचरण

अणंतरोववण्णगा णं भंते। णेरइया पावं कम्मं कहिं समज्जिणिंसु कहिं समायरिंसु ?

गोयमा! सव्वे वि ताव तिरिक्खजोणिएसु होज्जा। एवं एत्थ वि अट्ठ भंगा। एवं अणंतरोववण्णगाणं णेरइयाईणं जस्सं जं अत्थि लेस्साईयं अणागारोवओगपज्जवसाणं तं सव्वं एयाए भयणाए भाणियव्वं जाव वेमाणियाणं। णवरं अणंतरेसु जे परिहरियव्वा ते जहा बंधिसए तहा इहंपि।

—भग० श० २८। उ २। सू १

सयोगी-काययोगी अनंतरोपपन्नक नारकी सभी तिर्यंचयोनिक थे इत्यादि पूर्वोक्त आठ भंग यहाँ भी कहना चाहिए। मनोयोग-वचनयोग नहीं होता है। यावत् सयोगी अनंतरोपपन्नक वैमानिक देवों तक जानना।

·३ सयोगी अनंतरोपपन्नक नारकी और ज्ञानावरणीय कर्म का बंध
सयोगी अनंतरोपपन्नक नारकी और दर्शनावरणीय से अंतराय कर्म का बंध

एवं णाणावरणिज्जेण वि दंडओ, एवं जाव अंतराइएणं णिरवसेसं। एसो वि णवदंडगसंगहिओ उद्देसओ भाणियव्वो।

—भग० श० २८। उ २। सू १

सयोगी और काययोगी अनंतरोपपन्नक नारकी ज्ञानावरणीय कर्म का आठ स्थानों से पापकर्मों का समाचरण किया था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार दर्शनावरणीय यावत् अंतराय कर्म के सम्बन्ध में जानना चाहिए।

इसी प्रकार यावत् वैमानिक देव तक जानना।

नोट—मनोयोग-वचनयोग का प्रश्न नहीं करना चाहिए।

·५७·४ सयोगी परंपरोपपन्नक नारकी और पापकर्म का समर्जन-समाचरण

,, ,, ज्ञानावणीयसे अंतरायकर्म का ,,

एवं एएणं कमेणं जहेव बंधिसए उद्देसगाणं परिवाडी तहेव इहंपि अट्ठसु भंगेसु णेयव्वा। णवरं जाणियव्वं जं जस्स अत्थि तं तस्स भाणियव्वं जाव अचरिमुद्देसो। सव्वे वि एए एक्कारस उद्देसगा।

—भग० श० २८। उ ३ से ११

सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी-काययोगी परंपरोपपन्नक नारकी आठ भंग से पापकर्म का समर्जन और समाचरण किया था। यावत् वैमानिक तक जानना।

इसी प्रकार क्रम से सयोगी परंपरोपपन्नक यावत् सयोगी अचरम जीवों के नव उद्देशक (नोट ११ उद्देशक) कहने। जिस जीव में जितने योग हो उतने पद कहते।

·५८ सयोगी जीव और कर्म प्रकृति की सत्ता-बंधन-उदय

सयोगी मिथ्यादृष्टि यावत् उपशांत मोह गुणस्थान में आठ कर्मों की सत्ता है। सयोगी क्षीण-मोह गुणस्थान में सात कर्म (मोहनीय कर्म को बाद) की सत्ता है। सयोगी केवली तथा अयोगी केवली गुणस्थान में चार अघातिक कर्म (वेदनीय-नाम-गोत्र-अंतराय) की सत्ता है। सिद्ध अयोगी होते हैं लेकिन सत्ता किसी भी कर्म की नहीं है क्योंकि वे कर्म युक्त होते हैं।

सयोगी मिथ्यादृष्टि यावत् अप्रमत्त गुणस्थानवाले (सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान को छोड़ कर) सात अथवा आठ कर्म का बंधन करते हैं। सयोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि, निवृत्ति बादर गुणस्थान व अनिवृत्ति बादर गुणस्थानवाले सात कर्म (आयुष्यकर्म बाद देकर) का बंधन करते हैं। सयोगी सूक्ष्म संपराय गुणस्थान में छः कर्म (मोहनीय-आयुष्य बाद देकर) का बंध करते हैं। सयोगी उपशांत मोह, सयोगी क्षीण मोह गुणस्थान व सयोगी केवली एक साता वेदनीय कर्म का बंध करते हैं। अयोगी केवली के किसी भी प्रकार का बंध नहीं होता है। —झीणी चर्चा

सयोगी मिथ्यादृष्टि यावत् सयोगी सूक्ष्म संपराय गुणस्थान में आठ कर्म का उदय है। सयोगी उपशांत मोह तथा क्षीण मोहनीय गुणस्थान में सात कर्मों का उदय है। (मोहनीय कर्म को बाद) सयोगी केवली व अयोगी केवली के चार अघातिक कर्म का उदय है। —झीणी चर्चा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

•५९ जीव दंडक और समपद

दो भंते ! णेरइया पढमसमयोववण्णगा किं समजोगी, किं विसमजोगी ?

गोयमा ! सिय समजोगी, सिय विसमजोगी ? से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-सिय समजोगी, सिय विसमजोगी ?

गोयमा ! आहारयाओ वा से अणाहारए, अणाहारयाओ वा से आहारए सिय हीण, सिय तुल्ले, सिय अब्भहिए। जइ हीणे असंखेज्जइभागहीणे वा, संखेज्जइभागहीणे वा असंखेज्जइभागहीणे वा, सखेज्जगुणहीणे वा। अह अब्भहिए असंखेज्जइभागमब्भहिए वा, संखेज्जइभागमब्भहिए वा, संखेज्जगुण-मब्भहिए वा, असखेज्जगुणमब्भहिए वा, से तेणट्ठेणं जाव सिय विसमजोगी। एवं जाव वेमाणियाणं।

—भग० श० २५। उ १। सू ४

प्रथम समय उत्पन्न दो नारकी कदाचित् समयोगी और कदाचित् विषमयोगी होते हैं। क्योंकि आहारक नारकी से अनाहारक नारकी और अनाहारक से आहारक नारकी कदाचित् हीनयोगी, कदाचित् तुल्य-योगी और कदाचित् अधिक-योगी होता है। यदि वह हीनयोगी होता है तो असंख्यातवें भागहीन, संख्यातवें भागहीन, संख्यातगुणहीन या असंख्यातगुणहीन होता है। यदि अधिक योगी होता है तो असंख्यातवें भाग अधिक, संख्यातवें भाग अधिक संख्यात गुण अधिक या असंख्यातगुण अधिक होता है। इस कारण कहा गया है कि कदाचित् समयोगी और कदाचित् विषययोगी होता है।

प्रकार यावत् वैमानिक तक जानना चाहिए।

विवेचन—प्रथम क्षेत्र में प्रथम समय में उत्पन्न नैरयिक 'प्रथम समयोत्पन्नक' कहाता है। इस प्रकार के दो नैरयिक जीव जिनकी उत्पत्ति विग्रह गति से अथवा ऋजुगति से आकर अथवा एक की विग्रह गति से और दूसरे की ऋजुगति से आकर हुई है, वे 'प्रथम समयोत्पन्नक' कहाते हैं। जिन दोनों के योग समान हो, वे समयोगी कहाते हैं और जिनके विषम हो वे विषमयोगी कहाते हैं।

आहारक नारकी की अपेक्षा अनाहारक नारकीहीन योगवाला होता है, क्योंकि जो नारकी ऋजु गति से आकर आहारक रूप में उत्पन्न होता है, वह निरन्तर आहारक होने के कारण पुद्गालों से उपचित होता है (बढा हुआ) होता है। इसलिये वह अधिक योग वाला होता है। जो नारकी विग्रहगति से आकर अनाहारकपने उत्पन्न होता है, वह अनाहारक होने से पुद्गलों से अनुपचित होता है अतः हीन योगवाला होता है। जो समान समय की विग्रह गति से आकर अनाहारकपने उत्पन्न होते हैं वे दोनों एक-दूसरे की अपेक्षा समान योगवाले होते हैं। जो ऋजुगति से आकर आहारक उत्पन्न हुआ है और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूसरा विग्रहगति से आकर अनाहारक उत्पन्न हुआ है। यह उसकी अपेक्षा उपचित होने से अत्यधिक विषम योगी होता है।

·६० प्रयोग कर्म

जं तं पओअकम्मं णाम। १५

तं तिविहं—मण पओअकम्मं, वचिपओअकम्मं, कायपओअकम्मं। १६

जीवस्य मनसा सह प्रयोगः, वचसा सह प्रयोगः, कायेन सह प्रयोगश्चेति एवं पओओ तिविहो होदि। सो वि कमेण होदि, ण अक्कमेण, विरोहादो। तत्थ मणपओओ चउव्विहो सच्चासच्च-उहयाणुहयमणपओअभेएण। तहा वचिप-ओओ वि चउव्विहो सच्चासच्च-उहयाणुहयवचिपओअभेएण। कायपओओ सत्तविहो ओरालियादिकायपओअभेएण। एदेसिं पओआणं सामिभूदजीव-परूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि।

तं संसारावत्थाणं वा जीवाणं सजोगिकेवलीणं वा। १७

तं तिविहं पओअकम्मं संसारावत्थाणं जीवाणं होदि त्ति उत्ते मिच्छाइ-ट्ठिप्पहुडिखीणकसायंताणं सजोगत्तं सिद्धं, उवरिमाणं संसारावत्थत्ताभावादो। कुदो? संसरंति अनेन घातिकर्म्मकलापेन चतसृषु गतिष्विति घातिकर्म्म-कलापः संसारः। तस्मिन् तिष्ठन्तीति संसारस्थाः छद्मस्थाः भवन्ति। एवं संते सजोगिकेवलीणं जोगाभावे पत्ते सजोगीणं च तिण्णि वि जोगा होंति त्ति जाणावणट्ठं पुध सजोगिगहणं कदं।

तं सव्वं पओअकम्मं णाम। १८

संसारत्थाणं बहूणं जीवाणं कधं तमिदि एयवयणणिद्देसो? ण, पओअकम्मसण्णिदजीवाणं जादिदुवारेण एयत्तं दट्ठूण एयवयणणिद्देसोववत्तीदो। कधंजीवाणं पओअकम्मववएसो? ण, पओअं करेदि त्ति पओअकम्मसद्द-णिप्पत्तीए कत्तारकारए कीरमाणाए जीवाणं पि पओअकम्मत्त सिद्धीदो।

—षट्० खण्ड० ५। ४। सू १५-१८। पु० १३। पृष्ठ० ४३-४५

कर्म निक्षेप दस प्रकार का है—नामकर्म, स्थापनाकर्म, द्रव्यकर्म, प्रयोगकर्म, समवदानकर्म, अधःकर्म, ईर्यापथकर्म, तपः कर्म, क्रियाकर्म और भावकर्म।

प्रयोगकर्म तीन प्रकार का है—मनः प्रयोगकर्म, वचन प्रयोगकर्म और काय प्रयोगकर्म।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीव का मन के साथ प्रयोग, वचन के साथ प्रयोग और काय के साथ प्रयोग—इस प्रकार प्रयोग तीन प्रकार का है। उसमें भी वह क्रम से ही होता है, अक्रम से नहीं ; क्योंकि ऐसा मानने पर विरोध आता है।

उसमें सत्य, असत्य, उभय और अनुभय मनः प्रयोग के भेद से मनः प्रयोग चार प्रकार का है।

उसी प्रकार सत्य, असत्य, उभय और अनुभय के भेद से वचन-प्रयोग भी चार प्रकार का है।

काय प्रयोग औदारिक आदि काय प्रयोग के भेद से सात प्रकार का है। (औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिकमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र तथा कार्मण काय प्रयोग)।

प्रश्न—इन प्रयोगों में कौन जीव स्वामी होते हैं ?

उत्तर—वह संसार अवस्था में स्थित और सयोगी-केवलियों के होता है।

अस्तु—तीन प्रकार का प्रयोग कर्म संसार अवस्था में स्थित जीवों के होता है, इस कथन से मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तक के जीव सयोगी सिद्ध होते हैं। क्योंकि आगे के जीवों के संसार अवस्था नहीं पाई जाती। कारण कि जिस घाति-कर्म-समूह के कारण जीव चारों गतियों में संसरण करते हैं वह घाति-कर्म-समूह संसार है। और इसमें रहने वाले जीव संसारथ अर्थात् छद्मस्थ है। ऐसी अवस्था में सयोगि-केवलियों के योगों का अभाव प्राप्त होता है। अतः सयोगियों के भी तीनों ही योग होते हैं, इस बात का ज्ञान कराने के लिए 'सयोगी' पद को अलग से ग्रहण किया है।

वह सब प्रयोग कर्म है।

शंका—संसार में स्थित जीव बहुत है। ऐसी अवस्था में 'तं' इस प्रकार एक वचन का निर्देश कैसे किया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि प्रयोग कर्म संज्ञावाले जितने भी जीव हैं, उन सब को जाति की अपेक्षा एक मानकर एक वचन का निर्देश बन जाता है।

प्रश्न—जीवों को प्रयोग कर्म संज्ञा कैसे प्राप्त होती है ?

उत्तर—नहीं, क्योंकि 'प्रयोग को करता है' इस व्युत्पत्ति के आधार से प्रयोग-कर्म शब्द भी सिद्धि कर्त्ता कारक में करने पर जीवों के भी प्रयोग कर्म संज्ञा बन जाती हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नोट—संसारी जीवों के और सयोगि-केवलियों के मन, वचन और काय के आलम्बन से प्रति समय आत्मप्रदेश-परिस्पन्द होता रहता है। आगम में इस प्रकार के प्रदेश-परिस्पन्दन को योग कहा जाता है। प्रकृत में इसे ही प्रयोग कर्म शब्द द्वारा सम्बोधित किया गया है। किन्तु वीरसेन स्वामी के अभिप्रायानुसार इतनी विशेषता है कि यहाँ जिन जीवों के यह योग होता है वे प्रयोग कर्म शब्द द्वारा ग्रहण किये गये हैं।

·१ योग और समवदानकर्म

समयाविरोधेन समवदीयते खंड्यत इति समवदानम्, समवदानमेव समवदानता। कम्मइयपोग्गलाणं मिच्छत्तासंजम-जोग-कसाएहि अट्ठकम्मसरूवेण सत्तकम्मसरुवेण छकम्मसरुवेण वा भेदो समुदाणद त्ति वुत्तं होदि।

—षट्० खण्ड० ५, ४। सू २०। टीका। पु १३

जो यथा विधि विभाजित किया जाता है वह समवदान कहलाता है। और समवदान ही समवदानता कहलाती है। कार्मणपुद्गलों का मिथ्यात्व, असंयम, योग और कषाय के निमित्त से आठ कर्मरूप, सात कर्मरूप या छह कर्मरूप भेद करना समवदानता है। यह उक्त कथन का तात्पर्य है।

·२ योग और ईर्यापथकर्म

ईर्या योगः सःपन्था मार्गः हेतुः यस्य कर्म्मणः तदीर्यापथकर्म्म। जोग-णिमित्तेणेव जं बज्झइ तमीरियावहकम्मंति भणिदं होदि।

—षट्० खण्ड० ५, ४। सू २३। टीका। पु १३

ईर्या का अर्थ योग है। वह जिस कार्मण शरीर का पथ, मार्ग हेतु है वह ईर्यापथ-कर्म कहलाता है। योग मात्र के कारण जो कर्म बंधता है वह ईर्यापथकर्म है।

नोट—वह छद्मस्थवीतरागों के और सयोगि केवलियों के होता है। वह सब ईर्यापथ कर्म है।

·३ अनाहारक जीवों के प्रयोगकर्म काल

अणाहारएसु पओअकम्मं केवचिरं कालादो होदि? णाणा जीवं पडुच्च सव्वद्धा। एग जीवं पडुच्च जहण्णेणं एगसमओ। उक्कस्सेण तिण्णि समया।

—षट्० खण्ड० ५, ४। सू ३१। टीका। पु १३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनाहारक जीवों के प्रयोग कर्म का काल-नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल है। एक जीव की अपेक्षा जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट तीन समय काल है।

नाम, स्थापना, और द्रव्य ये तीन द्रव्यार्थिक नय के निक्षेप है, किन्तु भाव पर्यायार्थिक नय का निक्षेप है। यह परमार्थ से सत्य है। तैजस और कार्मण—इन दोनों शरीरों की अयोगिकेवली के परिशातनकृति होती है, कारण कि उनके योगों का अभाव हो जाने से बंध का भी अभाव हो चुका है। अयोगिकेवली को छोड़कर शेष सभी संसारी जीवों के इन दोनों शरीरों की एक संघातन-परिशातनकृति ही है क्योंकि, सर्वत्र उनके पुद्गल-स्कन्धों का आगमन और निर्जरा-दोनों ही पाये जाते हैं। कहा है—

जं च कामसुहं लोए, जंच दिव्वं महासुहं।
वीयरायसुहस्सेइं णंतचागं ण आघदे॥

—मूला० १२, १०३

अर्थात् लोक में जो कामसुख है और दिव्य महासुख है वह वीतराग सुख के अनन्तवें भाग के योग्य भी नहीं है।

जो कषाय का अभाव होने से स्थिति बंध के योग्य है, कर्मरूप से परिणत होने के दूसरे समय में ही अकर्म को प्राप्त हो जाता है, और स्थिति बंध न होने से मात्र एक समय तक विद्यमान रहता है ; ऐसे योग के निमित्त से आते हुए पुद्गल स्कन्ध के काल निमित्तक अल्पत्व देखा जाता है अतः ईर्यापथकर्म अल्प है।

देव और मनुष्यों के सुख से अधिक सुख का उत्पादक है अतः ईर्यापथ-कर्म का अत्यधिक सातरूप कहा गया है। प्रयोग कर्म का नाना जीव और एक जीव दोनों की अपेक्षा अन्तरकाल नहीं होता है, क्योंकि संघादस्थ जीव के कोई न कोई योग निरन्तर पाया जाता है। यद्यपि अयोगि-केवली गुणस्थान में योग का अभाव हो जाता है पर वह जीव पुनः सयोगी नहीं होता, अतः अन्तरकाल के प्रकरण में इसका ग्रहण नहीं होता।

·६१ सयोगी जीव और कर्म-बंधन

जीवा य लेस्स पक्खिय दिट्ठि अण्णाण णाण सण्णाओ।

वेय कसाए उवओग जोग एक्कारस वि ठाणा।

—भग० श० २६। उ १

इस बंधी शतक में ग्यारह उद्देशक हैं। उनका विषय क्रमशः इस प्रकार है।

१—जीव	४—दृष्टि	७—संज्ञा	१०—योग
२—लेश्या	५—अज्ञान	८—वेद	११—उपयोग
३—पाक्षिक	६—ज्ञान	९—कषाय	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हमने यहाँ योग को ग्रहण किया है। उपरोक्त सूत्र में जीव-लेश्या-योग आदि ग्यारह स्थानों में बंध का कथन किया गया है।

·१ सयोगी जीव और कर्म बंधन

(जीवे णं भंते !) १ पावकम्मं × × × अत्थेगइए बंधी बंधइ बंधिस्सइ २ अत्थेगइए बंधी बंधइ ण बंधिस्सइ ३ अत्थेगइए बंधी ण बंधइ बंधिस्सइ ४ अत्थेगइए बंधी ण बंधइ ण बंधिस्सइ।

—भग० श० २६। उ १। सू १

सजोगिस्स चउभंगो, एवं मणजोगिस्स वि वयजोगिस्स वि कायजोगिस्स वि। अजोगिस्स चरिमो × × ×।

—भग० श० २६। उ १। सू १३

सयोगी जीव में बन्ध के चार भंग होते हैं। मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी इनमें से प्रत्येक के चार-चार भंग होते हैं, यथा—

१—बाँधा था, बाँधता है और बाँधेगा। (यह प्रथम भंग अभव्य जीव की अपेक्षा से है)।

२—बाँधा था, बाँधता है और नहीं बाँधेगा। (यह दूसरा भंग क्षपक-अवस्था को प्राप्त करनेवाले भव्य जीव की अपेक्षा से है)।

३—बाँधा था, नहीं बाँधता है और बाँधेगा (यह तीसरा भंग मोहनीय कर्म का उपशम कर, उपशान्त अवस्था को प्राप्त भव्य जीव की अपेक्षा से है)।

४—बाँधा था, नहीं बाँधता है और नहीं बाँधेगा। (यह चतुर्थ भंग क्षीण-मोहनीय अवस्था को प्राप्त जीव की अपेक्षा से है)।

अयोगी जीवों में अन्तिम भंग पाया जाता है।

सयोगी में अभव्य, भव्य विशेष, उपशमक और क्षपक की अपेक्षा क्रमशः चारों भंग पाये जाते हैं। अयोगी को पाप-कर्म का बंध नहीं होता है और भविष्य में भी नहीं होगा, इसलिए एक चौथा भंग ही पाया जाता है।

·२ सयोगी नारकी और कर्म-बंधन

·३ सयोगी असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार देव और कर्म-बंधन

सलेस्से णं भंते ! णेरइए पावकम्मं० ? एवं चेव (अत्थेगइए बंधी० पढम-बिइया भंगा × × ×। एवं × × × सजोगी, मणजोगी, वयजोगी, कायजोगी × × × एएसु सव्वेसु पएसु पढम-बिइया भंगा भाणियव्वा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं असुरकुमारस्स वि वत्तव्वया भाणियव्वा × × × सेसं जं चेव, सव्वत्थ पढम-बिइया भंगा।

एवं थणियकुमारस्स।

—भग० श० २६। उ १। सू १४

सयोगी, मनोयोगी-वचनयोगी-काययोगी नारकी में पहला और दूसरा भंग पाया जाता है, यथा—

१—पापकर्म बाँधा था, बाँधता है और बाँधेगा। (यह प्रथम भंग अभव्य जीव की अपेक्षा है)।

२—पापकर्म बाँधा था, बाँधता है और नहीं बाँधेगा। (यह दूसरा भंग क्षपक अवस्था को प्राप्त होनेवाले भव्य जीव की अपेक्षा है)।

इसी प्रकार सयोगी असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार तक प्रथम और द्वितीय दो भंग मिलते हैं।

·४ सयोगी पृथ्वीकायिक, सयोगी अप्कायिक, सयोगी अग्नि कायिक और कर्म-बंधन

·५ सयोगी वायुकायिक, सयोगी वनस्पतिकायिक ,,

·६ सयोगी द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय व सयोगी चतुरिन्द्रिय ,,

·७ सयोगी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय योनिक और कर्म बंधन

एवं पुढविक्काइयस्स वि, आउकाइयस्स वि जाव पंचिंदियतिरिक्ख-जोणियस्स वि सव्वत्थ वि पढम-बिइया भंगा, णवरं जस्स जा लेस्सा। × × × जोगो य अत्थि तं तस्स भाणियव्वं, सेसं तहेव।

—भग० श० २६। उ १। सू १५

सयोगी पृथ्वीकायिक, सयोगी अप्कायिक यावत् सयोगी पंचेन्द्रिय-तिर्यंचयोनिक तक सभी के इसी प्रकार पहला-दूसरा भंग है।

जिस जीव में जो योग हो वही योग कहना चाहिए।

·८ सयोगी मनुष्य और कर्म-बंधन

·९ सयोगी वाणव्यंतरदेव और कर्म-बंधन

·१० सयोगी ज्योतिषीदेव और कर्म-बंधन

·११ सयोगी वैमानिक देव और कर्म-बंधन

मणूस्सस्स जच्चेव जीवपए वत्तव्वया सच्चेव णिरवसेसा भाणियव्वा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाणमंतरस्स जहा असुरकुमारस्स ।

जोइसियस्स वेमाणियस्स एवं चेव । णवरं लेस्साओ जाणियव्वाओ, सेसं तहेव भाणियव्वं ।

—भग० श० २६ । उ १ सू १५

सयोगी मनुष्य के लिए जीव पद की वक्तव्यता के अनुसार कहना चाहिए । चारों भंग मिलते हैं । अयोगी मनुष्य में सिर्फ चतुर्थ भंग मिलता है ।

सयोगी वाणव्यंतरदेव, सयोगी ज्योतिषीदेव और सयोगी वैमानिकदेव में प्रथम और और द्वितीय दो भंग है ।

·१२ सयोगी जीव और ज्ञानावरणीय कर्म का बंध

·१३ सयोगी जीव और दर्शनावरणीय कर्म का बंध

जीवे णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं किं बंधी बंधइ बंधिस्सइ ?

एवं जहेव पावम्मस्स वत्तव्वया तहेव णाणावणिज्जस्स वि भाणियव्वा, णवरं जीवपए मणुस्सपए य सकसायी जाव लोभकसाइंमि य पढम-बिइया भंगा, अवसेसं तं चेव जाव वेमाणिया ।

एवं दरिसणावरणिज्जेण वि दंडगो भाणियव्वो णिरवसेसो ।

—भग० श० २६ । उ १ । सू १६

पापकर्म की वक्तव्यता की तरह ज्ञानावरणीय कर्म के विषय में जानना चाहिए । नारकी से वैमानिक पर्यंत कहना ।

सयोगी में चार भंग । इसी प्रकार मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी में चार भंग पाये जाते हैं । अयोगी में एक चतुर्थ भंग पाया जाता है । देखो ·६१)

नारकी से वैमानिक तक (मनुष्य को छोड़कर) प्रथम और द्वितीय दो भंग और मनुष्य में चार भंग मिलते हैं ।

इसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्म के सम्बन्ध में जानना चाहिए ।

नोट—जिस दंडक में जो-जो योग हो वह-वह कहना ।

·१४ सयोगी जीव और वेदनीयकर्म का बंध

जीवेणं भंते ! वेयणिज्जं कम्मं किं बंधी-पुच्छा ।= × × गोयमा × × × अजोगिम्मि य चरिमो, सेसेसु पढम-बिइया ।

—भग० श० २६ । उ १ । सू १७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी-काययोगी जीव में वेदनीयकर्म बांधा था ? पहला और दूसरा भंग होता है।

अयोगी में एक चौथा भंग होता है।

सयोगी नारकी जीव यावत् वैमानिकदेव के वेदनीय कर्म-बंधन

णेरइए णं भंते ! वेयणिज्जं कम्मं बंधी बंधइ ?

एवं णेरइय जाव वेमाणिया त्ति। जस्स जं अत्थि सव्वत्थ वि पढम बिइया-णवरं मणुस्से जहा जीवे।

—भग० श० २६। उ १। सू १८

नैरयिक जीव ने वेदनीयकर्म बांधा ? पहला और दूसरा भंग होता हैं। इसी प्रकार असुरकुमार से वैमानिक तक (मनुष्य बाद देकर) पहला-दूसरा भंग होता है।

मनुष्य में सामान्य जीव की तरह तीन भंग होते हैं (तृतीय भंग को बाद देकर) अयोगी में चतुर्थ भंग होता है।

अस्तु सयोगी नारकी यावत् वैमानिक देव तथा मनुष्य भी कोई प्रथम विकल्प से, कोई द्वितीय विकल्प से वेदनीयकर्म का बंधन करता है। जिसके जितने योग हो उतने पद करने। अस्तु सयोगी मनुष्य जीव पद की तरह द्वितीय व प्रथम विकल्प से वेदनीयकर्म का बंधन करता है।

नोट—वेदनीयकर्म के बंधक में पहला भंग अभव्य जीव की अपेक्षा से है। जो भव्य जीव मोक्ष जाने वाला है उनकी अपेक्षा दूसरा भंग है। चौथा भंग अयोगी केवली की अपेक्षा से है।

·१५ सयोगी जीव और मोहनीय कर्म का बंध

जीवेणं भंते ! मोहणिज्जं कम्मं किं बंधी बंधइ० ?

जहेव पावकम्मं तहेव मोहणिज्जं पि णिरवसेसं जाव वेमाणिए।

—भग० श० २६। उ १। सू १९

पापकर्म के समान मोहनीयकर्म भी है। इस प्रकार नारकी से यावत् वैमानिक तक कहना चाहिए।

·१६ सयोगी जीव और आयुष्य कर्म का बंध

जीवे णं भंते ! आउयं कम्मं किं बंधी-बंधइ-पुच्छा ? गोयमा ! अत्थेगइए बंधी-चउभंगो। सलेस्से जाव सुक्कलेस्से चत्तारि भंगा। अलेस्से चरिमो भंगो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनोगिम्मि चरिमो, सेसेसु पएसु चत्तारिभंगा जाव अणागारोवउत्ते।

—भग० श० २६ । उ १ । सू २०, २३

सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी-काययोगी जीव ने आयुष्यकर्म बांधा था ? चारों भंग होते हैं। अयोगी में चतुर्थ भंग होता है।

·१७ सयोगी नारकी और आयुष्य कर्म का बंध
सयोगी असुरकुमार यावत् स्तनितकुमारदेव और आयुष्य कर्म का बंध
सयोगी पृथ्वीकायिक और आयुष्य बंध

णेरइए णं भंते ! आउयं कम्मं किं बंधी-पुच्छा।

गोयमा ! अत्थेगइए चत्तारि भंगा, एवं सव्वत्थ वि णेरइयाणं चत्तारि भंगा × × ×।

असुरकुमारे एवं चेव × × ×।

एवं जाव थणियकुमाराणं।

पुढविक्काइयाणं चत्तारि भंगा × × ×। सेसेसु सव्वत्थ चत्तारि भंगा।

—भग० श० २६ । उ १ । सू २४, २५

सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी-काययोगी में चारों भंग होते। नारकी से असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार, पृथ्वीकायिक जीव में चारों भंग होते हैं। लेकिन वे सयोगी व काययोगी होते हैं।

नोट—तेजोलेशी पृथ्वीकायिक जीव के आयुष्य का बंध नहीं होता है। (वर्तमान-काल की अपेक्षा)।

·१८ सयोगी जीव और अप्कायिक जीवों के आयुष्य बंध
सयोगी जीव और वनस्पतिकायिक जीवों के आयुष्य बंध

(आउयं कम्मं किं बंधी-पुच्छा) एवं आउक्काइय—वणस्सइकाइ-याणं वि णिरवसेसं।

—भग० श० २६ । उ १ । सू २५

इसी प्रकार यहं अप्कायिक व वनस्पतिकायिक जीवों में चार भंग कहने। (आयु-ष्यबंध की अपेक्षा)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नोट—तेजोलेशी अप्कायिक व वनस्पतिकायिक जीव आयुष्य का बंध नहीं करता। (वर्तमानकाल की अपेक्षा)।

सयोगी जीव और अग्निकायिक व वायुकायिक जीवों के आयुष्य बंध

तेउकाइय-वाउक्काइयाणं सव्वत्थ वि पढम-तइया भंगा।

—भग० श० २६। उ १। सू २५

सयोगी, काययोगी तेउकायिक व वायुकायिक जीव में आयुष्य की अपेक्षा प्रथम-तृतीय भंग से बंध होता है।

·१९ सयोगी द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय व चतुरिन्द्रिय जीव, तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय और मनुष्य और आयुष्य बंध

बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाणं वि सव्वत्थ पि पढम-तइया भंगा। णवरं सम्मत्ते णाणे, आभिणिबोहियणाणे, सुयणाणे तइओ भंगो। पंचिंदिय-तिरिक्खजोणियाणं × × × सेसेसु चत्तारि भंगा। × × × मणुस्साणं जहा जीवाणं।

—भग० श० २६। उ १। सू २५

सयोगी-वचनयोगी-काययोगी द्वीन्द्रिय में प्रथम-तृतीय दो भंग होते हैं।

नोट—सम्यक्त्व, ज्ञान, आभिनिबोधिकज्ञान और श्रुतज्ञान-इनमें केवल तीसरा भंग ही पाया जाता है। क्योंकि उनमें सम्यक्त्व आदि सास्वादान भाव से अपर्याप्त अवस्था में ही होते हैं। इनके चले जाने पर आयुष्य का बंध होता है। पंचेन्द्रिय तिर्यंच पंचेन्द्रिय व मनुष्य चारों भंग से आयुष्य कर्म बांधते हैं।

सयोगी वाणव्यंतर-ज्योतिषी व वैमानिकदेव और आयुष्य-बंध

वाणमंतर-जोइसिय वेमाणिय जहा असुरकुमारा।

—भग० श० २६। उ १ सू २५

सयोगी, मनोयोगी-वचनयोगी-काययोगी वाणव्यंतर में ज्योतिषी-वैमानिकदेव चारों भंग होते हैं।

·२० सयोगी औधिक जीव दंडक और नाम कर्म का बंधन

·२१ सयोगी औधिक जीव दंडक और-गोत्रकर्म-अंतरायकर्म का बंधन

णामं गोयं अंतरायं च एयाणि जहा णाणावरणिज्जं।

—भग० श० २६। उ १ सू २५

सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी-काययोगी जीव नामकर्म-गोत्रकर्म-अंतरायकर्म का चार भंग की वक्तव्यता ज्ञानावरणीय कर्म के बंधन की वक्तव्यता की तरह कहना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·२२ सयोगी अनन्तरोपपन्नक नारकी और कर्म-बंध

सलेस्से णं भंते ! अणंतरोववण्णए णेरइए पावं कम्मं किं बंधी—पुच्छा।

गोयमा ! पढम-बिइया भंगा। एवं खलु सव्वत्थ-पढम-बिइया भंगा, णवरं सम्मामिच्छत्तं मणजोगो वइजोगो य ण पुच्छिज्जइ एवं जाव थणिय-कुमाराणं।

—भग० श० २६। उ २। सू २

अनंतरोपपन्नक सयोगी-काययोगी नारकी प्रथम द्वितीय भंग से पापकर्म का बंध करता है। इस अवस्था में सम्यग्मिथ्यात्व मनोयोग-वचनयोग नहीं होता है।

इसी प्रकार असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार पर्यन्त जानना।

नोट—जिसकी उत्पत्ति का प्रथम समय है उसे अनन्तरोपपन्नक कहते हैं।

·२३ सयोगी अनंतरोपपन्नक पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रिय जीव और पापकर्म का बंध

एगिंदियाणं सव्वत्थ पढम-बिइया भंगा।

—भग० श० २६। उ २। सू २

सयोगी-काययोगी अनंरोपपनक एकेन्द्रिय-पृथ्वीकायिक आदि प्रथम-द्वितीय विकल्प से पापकर्म का बंध करते हैं।

·२४ सयोगी अनंतरोपपन्नक द्वीन्द्रिय जीव आदि तथा पाप कर्म का बंध

बेइंदिय-तेइंदिए-चउरिंदियाणं वयजोगो ण भण्णइ।

—भग० श० २६। उ २। सू २

सयोगी-काययोगी अनंतरोपपन्नक द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय जीव प्रथय-द्वितीय भंग से पाप कर्म का बंध करता है इसका अवस्था में द्वीन्द्रिय के वचन योग नहीं होता है।

·२५ सयोगी अनंतरोपपन्नक पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिक जीव तथा पापकर्म बंध

पंचिंदिय-तिरिक्ख-जोणियाणं पि सम्मामिच्छत्तं, ओहिणाणं, विभंगणाणं, मणजोगो-वयजोगो-एयाणि पंच पयाणि ण भण्णंति।

—भग० श० २६। उ २। सू २

सयोगी-काययोगी अनंतरोपपन्नक तिर्यंच पंचेन्द्रिय योनिक प्रथम-द्वितीय भंग से पाप-कर्म बांधता है। मनोयोग-वचनयोगी इस अवस्था में नयीं होता है अतः इनकी पृच्छा नहीं करनी चाहिए।

नोट—अनंतरोपपन्नक तिर्यंच पंचेन्द्रिय में सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अवधिज्ञान, विचंगज्ञान-मनोयोग व वचनयोग नहीं होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·२६ सयोगी अनंतरोपपन्नक मनुष्य तथा पापकर्म का बंध

मणुस्साणं अलेस्स-सम्मामिच्छत्त-मणपज्जवणाण-केवलणाण-विभंगणाण-णोसण्णोवउत्त-अवेयग-अकसायी-मणजोग-वयजोग-अजोगी-एयाणि एक्कारस पयाणि ण भण्णंति ।

—भग० श० २६ । उ २ । सू २

सयोगी, काययोगी अनंतरोपपन्नक मनुष्य पापकर्म का प्रथम-द्वितीय भंग से बंध करते हैं। मनोयोग-वचनयोग-अयोग अवस्था उस अवस्था में नहीं होती है। अतः ये पद नहीं कहने चाहिए।

नोट—अनंतरोपपन्नक मनुष्य में अलेशीपन, सम्यग्मिथ्यात्व, मनःपर्यवज्ञान, केवलज्ञान, विभंगज्ञान, नोसंज्ञोपयुक्त, अवेदक, अकषायी, मनोयोग, वचनयोग, अयोगीपन—ये ग्यारह पद नहीं कहने चाहिए।

अलेस्स सम्मामिच्छत्त-मणपज्जवणाण केवलणाण विभंगणाण-णोसण्णोवउत्त-अवेयग-अकसायी मणजोगवयजोग-अजोगी-एयाणि (अलेशी-सम्यग्मिथ्यात्व मनःपर्यवज्ञान केवलज्ञान-विभंगज्ञान-नोसंज्ञोपयुक्त-अवेदक-अकषायी-मनोयोग-वचनयोग-अयोगीपन।)

(अणंतरोववण्णए) मणुस्साणं अलेस्स × × × एयाणि एक्कारस पयाणि-ण भण्णंति।

—भग० २६ उ २ । सू २

अनंतरोपपन्नक मनुष्य में अलेशीपन × × × और अयोगीपन—ये ग्यारह पद नहीं कहने चाहिए।

·२७ सयोगी अनंतरोपपन्नक वाणव्यंतर-ज्योतिषी-वैमानिक देव तथा पापकर्म का बंध

वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियाणं जहा णेरइयाणं तहेव ते तिण्णि ण भण्णंति। सव्वेसिं जाणि सेसाणि ठाणाणि सव्वत्थ पढम-बिइया भंगा।

भग० श० २६ । उ २ । सू २

सयोगी-काययोगी अनंतरोपपन्नक वाणव्यंतर ज्योतिषी और वैमानिक प्रथम-द्वितीय विकल्प से बंध करते हैं। पूर्वोक्त तीन पद-सम्यग्मिथ्यात्व मनोयोग-वचनयोग नहीं कहना चाहिए।

·२८ सयोगी अनन्तरोपपन्नक जीव दंडक और ज्ञानावरणीय आदि सात कर्म-बंधन (आयुष्य छोड़कर)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जहा पावे एवं णाणावरणिज्जेण वि दंडओ, एवं आउयवज्जेसु जाव अंतराइए दंडओ।

—भग० श० २६ । उ २ । सू ३

आयु को छोड़कर बाकी ज्ञानावरणीयादि सात कर्मों के संबंध में पापकर्म-बंधन की तरह ही सब अनंतरोपपन्नक सयोगी-काययोगी दंडकों का विवेचन करना।

नोट—पहले उद्देशक में औधिक जीव नारकादि पच्चीस दंडक कहे हैं किन्तु इस उद्देशक में नैरयिकादि चौबीस दंडक ही कहने चाहिए। क्योंकि औधिक जीव के साथ अनंतरोपपन्नकादि विशेषण नहीं लगाये जा सकते। परम्परोपपन्नक इत्यादि विशेषण भी नहीं लगते।

२९ सयोगी अनंतरोपपन्नक जीव दंडक और आयुष्य कर्म का बंधन

अणंतरोववन्नए णं भंते ! नेरइए आउयं कम्मं किं बंधी० पुच्छा ? गोयमा बंधी, न बंधइ बंधिस्सइ। × × × एवं चेव तइओ भंगो एवं जाव अणागारोवउत्ते। सव्वत्थ वि तइओ भंगो। एवं मणुस्सवज्जं जाव वेमाणियाणं। मणुस्साणं सव्वत्थ तइय-चउत्था भंगा, नवरं कण्हपक्खिएसु तइओ भंगो, सव्वेसिं नाणत्ताइं ताइं चेव।

—भग० श० २६ । उ ३ । सू ३-४

अनंतरोपपन्नक सयोगी नारकी तीसरे भंग से (कोई एक बांधा है, नहीं बांधता है, बांधेगा) आयुष्य कर्म का बंधन करता है। मनुष्य को छोड़ कर दंडक में वैमानिक देव तक ऐसा ही कहना। मनुष्य कोई तीसरे तथा कोई चौथे भंग से आयुष्य कर्म को बांधता है।

नोट—आयु कर्म के विषय में अनंतरोपपन्नक मनुष्य में तीसरा-चौथा भंग पाया जाता है। यदि वह चरम शरीरी है तो आयु कर्म नहीं बांधता है, नहीं बांधेगा। इस प्रकार चौथा भंग घटित होता है।

३० सयोगी परंपरोपपन्नक नारकी आदि दंडक और पापकर्म का बंध

सयोगी परंपरोपपन्नक नारकी आदि दंडक और ज्ञानावरणीय यावत् अंतराय कर्मबंध

परंपरोववण्णए णं भंते ! णेरइए पावं कम्मं किं बंधी-पुच्छा।

गोयमा ! अत्थेगइए पढम-बिइया। एवं जहेव पढमो उद्देसओ तहेव परंपरोववणहि वि उद्देसओ भाणियव्वो णेरइयाइओ तहेव णवदंडगसहिओ।

अट्ठण्ह वि कम्मप्पगडीणं जा जस्स कम्मस्स वत्तव्वया सा तस्स अहीणमइरित्ता णेयव्वा जाव वेमाणिया अणागारोवउत्ता।

—भग० श २६ उ ३ । सू १

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी-काययोगी परंपरोपपन्नक नारकी पापकर्म का बंध प्रथम-द्वितीय भंग से करता है।

इसी प्रकार ज्ञानावरणीय यावत् अंतराय कर्म का प्रथम-द्वितीय भंग से बंध करता है।

परंपरोपपन्नक सयोगी जीव दंडक के संबंध में वैसे ही कहना जैसा बिना परंपरोपपन्नक विशेषणबाले सयोगी जीव दंडक के संबंध में पाप कर्म तथा अष्ट कर्म के बंधन के विषय में कहा है।

·३१ सयोगी अनंतरावगाढ़ नारकी आदि दंडक और पापकर्म का बंध

सयोगी अनंतरावगाढ़ ,, ज्ञानावरणीय यावत् अंतराय कर्म का बंध

अणंतरोगाढए णं भंते ! णेरइए पावं कम्मं किं बंधी-पुच्छा।

गोयमा ! अत्थेगइए एवं जहेव अणंतरोववण्णएहिं णवदंडगसंगहिओ उद्देसो भणिओ तहेव अणंतरोगाढएहि वि अहोणमइरित्तो भाणियव्वो णेरइयाईए जाव वेमाणिए।

—भग० श० २६। उ ४। सू १

सयोगी काययोगी अनन्तरावगाढ नारकी आदि के विषय में जैसा अनन्तरोपपन्नक नारकी आदि के विषय में नौ दंडक कहे हैं वैसा कहना।

नोट—उत्पत्ति के द्वितीय समयवर्ती अनन्तरावगाढ और उत्पत्ति के तृतीयादि समयवर्ती परम्परावगाढ़ कहलाता है।

टीकाकार के अनुसार अनन्तरोपपन्नक तथा अनंतरावगाढ़ में एक समय का अन्तर होता है। उत्पत्ति के एक समय बाद फिर एक ही समय के अन्तर बिना उत्पत्ति स्थान की अपेक्षा करके जो रहता है वह अनंतरावगाढ़ कहा जाता है।

·३२ सयोगी परंपरावगाढ़ नारकी आदि और पापकर्म का बंध

सयोगी परंपरावगाढ़ नारकी आदि और ज्ञानावरणीय यावत् अंतराय कर्म का बंध

परंपरोगाढ़ए णं भंते ! णेरइए पावं कम्मं किं बंधी० ?

जहेव परंपरोववण्णएहिं उद्देसो सो चेव णिरवसेसो भाणियव्वो।

—भग० श० २६। उ ५

जिस प्रकार सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी-काययोगी परंपरोपपन्नक नारकी आदि के विषय में कहा उसी प्रकार सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी-काययोगी परंपरावगाढ़ नारकी आदि के विषय में नौ दंडक कहना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सयोगी परंपरावगाढ़ जीव दंडक के संबंध में वैसा ही कहना, जैसा परंपरोपपन्नक विशेषणवाले सयोगी जीव दंडक के संबंध में पाप कर्म तथा अष्ट कर्म बंध के विषय में कहा।

·३३ सयोगी अनन्तराहारक नारकी आदि दंडक और पापकर्म का बंध
सयोगी ,, ,, ज्ञानावरणीय कर्म यावत् अंतराय कर्म का बंध

अणंतराहारए णं भंते ! णेरइए पावं कम्मं किं बंधी-पुच्छा ?
एवं जहेव अणंतरोवबण्णएहिं उद्देसो तहेव णिरवसंसे।

नोट—आहारकत्व के प्रथम समयवर्ती को अनन्तराहारक कहते हैं।

सयोगी अनंतराहारक जीव दंडक के संबंध में वैसा ही कहना, जैसा अनंतरोपपन्नक विशेषणवाले सयोगी-काययोगी जीव दडक के संबंध में पाप कर्म तथा अष्ट कर्म-बंधन के विषय में कहा है।

·३४ सयोगी परंपराहारक नारकी आदि और पापकर्म का बंध
सयोगी ,, ज्ञानावरणीय यावत् अंतराय कर्म का बंध

परंपराहारए णं भंते ! णेरइए पावं कम्मं किं बंधी-पुच्छा।
गोयमा ! जहेव परंपरोववण्णएहिं उद्देसो तहेव णिरवसेसो भाणियव्वो।

—भग० श० २६। उ ७

परंपरोपपन्नक की तरह परम्पराहारक के विषय में सभी दंडको का विवेचन जानना।

नोट—आहारकत्व के द्वितीयादि समयवर्ती को परंपराहारक कहते हैं।

नोट—सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी-काययोगी परम्पराहारक होते हैं।

·३५ सयोगी अनन्तर पर्याप्तक नारकी आदि दंडक और पापकर्म का बंध
सयोगी ,, ज्ञानावरणीय यावत् अंतराय कर्म का बंध
अणंतरपज्जतए णं भंते ! नेरइए पावकम्मं किं बंधी-कुच्छा ? गोयमा ! जहेव अणंतरोववन्नएहिं उद्देसो तहेव निरवसेसं।

—भग० श० २६। उ ८। सू १

सयोगी-काययोगी, सयोगी अनन्तर पर्याप्तक नारकी के विषय में नौ दंडक सहित सयोगी-काययोगी-अनंतरोपपन्नक की तरह जानना चाहिए। मनोयोग-वचनयोग न कहना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नोट—पर्याप्तकत्व के प्रथम समयवर्ती को अनंतर पर्याप्तक कहते हैं।

सयोगी अनंतरपर्याप्त जीव दंडक के संबंध में वैसा ही कहना जैसा अनंतरोपपन्नक विशेषण वाले जीव दंडक के सम्बन्ध में पाप कर्म तथा अष्ट कर्म बंधन के विषय में कहा है।

३६ सयोगी परम्पर पर्याप्तक नारकी आदि और पापकर्म का बंध

सयोगी ,, ज्ञानावरणीय यावत् अंतराय कर्म-बंध

परंपरपज्जत्तए णं भंते ! णेरइए पावं कम्मं किं बंधी-पुच्छा। गोयमा ! एवं जहेव परंपरोववण्णएहिं उद्देसो तहेव णिरवसेसो भाणियव्वो।

—भग० श० २६। उ ९

सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी-काययोगी परम्पर पर्याप्तक नारकी आदि का विवेचन परंपरोपपन्नक नारकी आदि की तरह जानना चाहिए।

सयोगी परंपरोपपन्नक जीव दंडक के संबंध में वैसा ही कहना जैसा परंपरोपपन्नक विशेषणवाले सयोगी जीव दंडक के सम्बन्ध में पाप कर्म तथा अष्ट कर्म बंधन के विषय में कहा है।

३७ सयोगी चरम नारकी आदि तथा पापकर्म का बंध

सयोगी चरम नारकी आदि तथा ज्ञानावरणीय यावत् अंतराय कर्म का बंध

चरिमे णं भंते ! णेरइए पावं कम्मं किं बंधी-पुच्छा। गोयमा ! एवं जहेव परंपरोववण्णएहिं उद्देसो तहेव चरमेहिं णिरवसेसो।

—भग० श० २६। उ १०

सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी-काययोगी नारकी आदि का विवेचन सयोगी-मनोयोगी वचनयोगी काययोगी परंपरोपपन्नक नारकी आदि की तरह जानना चाहिए।

सयोगी चरम दंडक के सम्बन्ध में वैसा ही कहना, जैसा परंपरोपपन्नक विशेषणवाले सयोगी जीव दंडक के सम्बन्ध में पाप कर्म तथा अष्ट कर्म बंधन के विषय में कहा है।

टीकाकार के अनुसार सयोगी चरम मनुष्य के आयुकर्म का बंधन की अपेक्षा से केवल चतुर्थ भंग ही घट सकता है, क्योंकि जो सयोगी चरम मनुष्य हैं उसके पूर्व में आयु बांधा है लेकिन वर्तमान में नहीं बांधता है तथा भविष्यत् काल में नहीं बांधेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३८ सयोगी अचरम नारकी आदि और पापकर्म का बंध

(क) अचरिमे णं भंते ! णेरइए पावकम्मं किं बंधी-पुच्छा।

गोयमा ! अत्थेगइए एवं जहेव पढमोद्देसए, पढमबिइया भंगा भाणियव्वा सव्वत्थ जाव पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं।

—भग० श० २६ । उ ११ । सू १

सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी-काययोगी नारकी में पापकर्म-बंध की अपेक्षा प्रथम-द्वितीय-दो भंग होते हैं।

इसी प्रकार असुरकुमार यावत् तिर्यंच पंचेन्द्रय जीवों तक के जीव पाप कर्म का बंधन प्रथम-द्वितीय भंग से करते हैं।

सयोगी अचरम मनुष्य और पापकर्म-बंध

(ख) अचरिमे णं भंते ! मणुस्से पावं कम्मं किं बंधी-पुच्छा।

गोयमा। अत्थेगइए बंधी बंधइ बंधिस्सइ, अत्थेगइए बंधी बंधइ ण बंधिस्सइ, अत्थेगइए बंधी ण बंधइ बंधिस्सइ।

× × × एवं जहेव पढमुद्देसे। णवरं जेसु तत्थ वीससु चत्तारि भंगा तेसु इह आदिल्ला तिण्णि भंगा भाणियव्वा चरिमभंगवज्जा। अलेस्से केवलणाणी य अजोगी य एए तिण्णि वि ण पुच्छिज्जंति, सेसं तहेव।

—भग० श० २६ । उ ११ । सू २, ३

सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी-काययोगी (बीस पदों में है) मनुष्य के पापकर्म बंध में तीन भंग (चतुर्थ भंग बाद देकर) मिलते हैं।

अयोगी अचरम नहीं है अतः अयोगी अचरम मनुष्य का प्रश्न नहीं करना चाहिए।

(ग) सयोगी अचरम वाणव्यंतर देव तथा पापकर्म का बंध

वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिए जहा णेरइए।

—भग० श० २६ । उ ११ । सू ३

सयोगी अचरम मनोयोगी-वचनयोगी-काययोगी अचरम वाणव्यंतर प्रथम दो भंग से पापकर्म का बंध करते हैं।

(घ) सयोगी अचरम ज्योतिषी तथा पापकर्म-बंध

(च) सयोगी अचरम वैमानिक तथा पापकर्म-बंध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अचरम सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी-काययोगी ज्योतिषी तथा वैमानिकदेव प्रथम दो भंग से पापकर्म बांधते हैं।

३९ सयोगी अचरम नारकी यावत् वैमानिकदेव (मनुष्य बाद देकर) तथा ज्ञानावरणीय कर्म का बंध
सयोगी अचरम नारकी यावत् वैमानिकदेव तथा दर्शनावरणीय कर्म का बंध
सयोगी अचरम नारकी यावत् वैमानिकदेव तथा वेदनीय कर्म का बंध

अचरिमे णं भंते ! णेरइए णाणावरणिज्जं कम्मं किं बंधी-पुच्छा।

गोयमा ! एवं जहेव पावं० × × ×।

दरिसणावरणिज्जं पि एवं चेव णिरवसेसं।

वेयणिज्जे सव्वत्थ वि पढम-बिइया भंगा जाव वेमाणियाणं।

—भग० श० २६। उ ११। सू ३

अचरम सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी-काययोगी नारकी आदि ज्ञानावरणीय कर्म का बंध पापकर्म बंध की तरह प्रथम-द्वितीय भंग से बंध करता है। मनुष्य को छोड़कर यावत् वैमानिक देवों तक इस प्रकार जानना चाहिए।

इसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्म तथा वेदनीय कर्म के सम्बन्ध में जानना चाहिए। मनुष्य को बाद देकर सब दंडक कहना।

सयोगी अचरम मनुष्य तथा ज्ञानावरणीय कर्म-बंध
,, ,, दर्शनावरणीय ,,
,, ,, वेदनीय ,,

अचरिमे णं भंते ! णेरइए णाणावरणिज्जं कम्मं किं बंधी-पुच्छा।

गोयमा ! एवं जहेव पावं०। णवरं मणुस्सेसु सकसायीसु लोभकसायीसु य पढम-बिइया भंगा, सेसा अट्ठारस चरमविहूणा, सेसं तहेव जाव वेमाणियाणं।

दरिसणावरणिज्जं पि एवं चेव णिरवसेसं।

वेयणिज्जे सव्वत्थ वि पढम-बिइया भंगा जाव वेमाणिया, णवरं मणुस्सेसु अलेस्से, केवली अजोगी य णत्थि।

—भग० श० २६। उ ११। सू ३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी-काययोगी अचरम मनुष्य (अठारह पदों में) ज्ञानावरणीय कर्म बंध की अपेक्षा अन्तिम भंग के अतिरिक्त शेष तीन भंग कहना चाहिए।

इसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्म के विषय में जानना चाहिए।

इसी प्रकार वेदनीय कर्म के विषय में दो भंग (पहला दूसरा भंग) कहना चाहिए। किन्तु अचरम मनुष्य में अयोगी नहीं होता है।

·४० सयोगी अचरम नारकी आदि और मोहनीय कर्म का बंध

अचरिमे णं भंते ! णेरइए मोहणिज्जं कम्मं किं बंधी-पुच्छा—

गोयमा ! जहेव पावं तहेव णिरवसेसं जाव वेमाणिए।

—भग० श० २६ । उ ११ । सू ५

जिस प्रकार सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी-काययोगी अचरम नारकी के विषय में पाप कर्म बंध का कहा उसी प्रकार सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी-काययोगी अचरम नारकी मोहनीय कर्म प्रथम-द्वितीय-दो भंग से बंध करता है।

बाकी अचरम दंडक जैसा पापकर्म बंधन के सम्बन्ध में कहा—वैसा ही निरवशेष कहना।

·४१ सयोगी अचरम नारकी व आयुष्य कर्म-बंधन

अचरिमे णं भंते ! णेरइए आउयं कम्मं किं बंधी—पुच्छा।

गोयमा ! पढम-तइया भंगा। एवं सव्वपएसु वि। णेरइयाणं पढम-तइया भंगा, णवरं सम्मामिच्छत्ते तइओ भंगो, एवं जाव थणियकुमाराणं।

—भग० श० २६ । उ ११ । सू ६

सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी-काययोगी अचरम नारकी में आयुष्य कर्म के बंध की अपेक्षा पहला और तीसरा भंग कहना चाहिए। नारकियों में बहुवचन की अपेक्षा पहला-तीसरा भंग कहना चाहिए।

सयोगी भवनपतिदेव व आयुष्य बंध

सयोगी असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार भवनपतिदेव व आयुष्य बंध

प्रथम-तृतीय भंग से आयुष्य कर्म का बंधन करता है।

सयोगी-काययोगी अचरम पृथ्वीकायिक और आयुष्य बंध

पुढविक्काइय-आउक्काइय-वणस्सइकाइयाणं, तेउलेस्साए तइओ भंगो, सेसेसु पएसु सव्वत्थ पढम-तइया भंगा।

—भग० श० २६ । उ ११ । सू ६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सयोगी-काययोगी अचरम पृथ्वीकायिक आयुष्य कर्म का बंध प्रथम-तृतीय भंग से करता है।

सयोगी-काययोगी अचरम अप्कायिक और आयुष्य बंध

,, ,, वनस्पतिकायिक ,,

सयोगी-काययोगी अचरम अप्कायिक तथा वनस्पतिकायिक आयुष्य कर्म का बंध प्रथम-तृतीय भंग से करते हैं।

सयोगी अचरम अग्निकायिक और आयुष्य बंध

,, वायुकायिक ,,

अचरिमे × × × आउयं कम्मं किं बंधी-पुच्छा × × ×।

तेउकाइय वाउक्काइयाणं सव्वत्थ पढम-तइया भंगा।

—भग० श० २६। उ ११। सू ६

सयोगी-काययोगी अचरम अग्निकायिक तथा वायुकायिक आयुष्य कर्म का प्रथम-तृतीय भंग से बंध करता है।

सयोगी अचरम द्वीन्द्रिय यावत् चतुरिन्द्रिय और आयुष्य बंध

बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाणं एवं चेव।

—भग० श० २६। उ ११। सू ६

सयोगी-काययोगी अचरम द्वीन्द्रिय जीव यावत् चतुरिन्द्रिय जीव आयुष्य कर्म को प्रथम-तृतीय भंग से बांधता है।

सयोगी अचरम तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय और आयुष्य बंध

पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं सम्मामिच्छत्ते तइओ भंगो, सेसेसु पएसु सव्वत्थ पढम-तइया भंगा।

—भग० श० २६। उ ११। सू ६

सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी-काययोगी अचरम पंचेन्द्रिय तिर्यंच-आयुष्य कर्म-बंध—प्रथम-तृतीय भंग से करता है।

सयोगी अचरम मनुष्य और आयुष्य बंध

मणुस्साणं सम्मामिच्छत्ते अवेयए, अकसायम्मि य तइयो भंगो, अलेस्स-केवलणाण-अजोगी य ण पुच्छिज्जंति। सेसपएसु सव्वत्थ पढम तइया भंगा।

—भग० श० २६। उ ११। सू ६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अयोगी मनुष्य अचरम नहीं होता है अतः इसकी पुच्छा नहीं करनी चाहिए। सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी-काययोगी मनुष्य प्रथम-तृतीय-दो भंग से आयुष्य बाँधता है।

सयोगी अचरम वाणव्यंतर देव व आयुष्य बंध

वाणमंतर जोइसिय-वेमाणिया जहा णेरइया।

सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी-काययोगी वाणव्यन्तर देव प्रथम-तृतीय भंग से आयुष्य बांधता है।

सयोगी अचरम ज्योतिषी व वैमानिक देव और आयुष्य बंध

सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी-काययोगी ज्योतिषी व वैमानिकदेव प्रथम-तृतीय भंग से आयुष्य बांधता है।

·४२ सयोगी अचरम नारकी तथा नाम कर्म

·४३ ,, ,, गोत्रकर्म

·४४ ,, ,, अंतराय कर्म

णामं गोयं अंतराइयं च जहेव णाणावरणिज्जं तहेव णिरवसेसं।

—भग० श० २६। उ ११। सू ६

ज्ञानावरणीय कर्म बंध की तरह अचरम सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी-काययोगी-नारकी पहले-दूसरे भंग से नाम-गोत्र-अंतराय कर्म का बंधन करता है।

सयोगी अचरम असुरकुमार यावत् वैमानिक देव और नाम कर्म-गोत्र-अंतराय कर्म का बंध

नाम, गोत्र व अन्तराय सम्बन्धी पद ज्ञानावरणीय कर्म की वक्तव्यत्ता की तरह जानना।

·४५ कार्मण काययोगी जीव आयुष्य नहीं बांधता है

कार्मणकाययोगिनां औदारिकमिश्रकाययोगिवद् भवति। तत्रापि विग्रहगता वायुर्बंधो नेति।

—गोक० गा० ११९। टीका

कार्मण काययोगी जीव आयु का बंधन नहीं करता है।

·४६ आहारकमिश्रकाययोगी जीव आयुष्य नहीं बांधता

(आहारककाय) तन्मिश्रकाययोगिनां × × × तम्मिस्सेणत्थि देवाऊ। इति वचनात् अबन्धः।

—गोक० गा० ११८। टीका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आहारकमिश्रकाययोगी जीव देवायु का बंध नहीं करता है।

नोट—नारकादि तीन आयु का भी बंध नहीं होता है।

योग और कर्म बंध

औदारिकमिश्रकाययोग और कर्म-बंध

औदारिकमिश्रकाययोगिषु औदारिककाययोगिवद् बन्धप्रकृतयो व्युच्छित्त्यादयश्च ज्ञातव्याः। औदारिकमिश्रकाययोगिनोहि लब्ध्यपर्याप्ताः निवृत्त्यपर्याप्ताश्च तेन देवनारकायुषी आहारकद्वयं नरकद्वयं च तत्र बन्धयोग्यं नेति चतुर्दशोत्तरशतम्। तथापि सुरचतुष्कं तीर्थं च मिथ्यादृष्टिसासादनयोर्न बध्नाति। अविरते च बध्नाति।

—गोक० गा० ११५। टीका

औदारिकमिश्रकाययोगियों में औदारिककाययोगियों की तरह बन्ध प्रकृतियाँ और व्युच्छित्ति आदि जानना। औदारिकमिश्र काययोगी लब्ध्यपर्याप्त और निवृत्यपर्याप्त होते हैं, अतः उनके देवायु, नरकायु, आहारकद्विक और नरकद्विक-बंध योग्य नहीं है। इसमें ११४ बंधयोग्य है। उनमें से भी सुरचतुष्क और तीर्थङ्कर, मिथ्यादृष्टि और सासादन में नहीं बंधती है। असंयत सम्यग्दृष्टि में बंधती है। मोहनीय कर्म में रति-अरति प्रतिपक्षी है, हास्य-शोक प्रतिपक्षी है, तीनों वेद परस्पर प्रतिपक्षी है। साता-असातावेदनीय प्रतिपक्षी है।

नोट—प्रकृति बंध और प्रदेश बंध का कारण योगस्थान है।

वैक्रियमिश्रकाययोगी जीव आयुष्य नहीं बांधया

वैक्रियिकमिश्रकाययोगिनां बन्धप्रकृतयः तत्र नरतिर्यगायुषो बन्धो नास्तीति।

—गोक० गा० ११८। टीका

वैक्रियमिश्रकाययोगी जीव आयुष्य का बंधन नहीं करता है। मनुष्यायु व तिर्यंच आयुष्य को नहीं बांधता है।

नोट—गोम्मटसार के अनुसार वैक्रियकाययोग व वैक्रियमिश्र काययोग—देव व नारकी के होता है। मनुष्य-तिर्यंच में नहीं होता है।

योग और बंध

४७ कार्मणशरीरनामकर्मोदयापादितजीवप्रदेशपरिस्पन्दलक्षणयोगहेतुना कार्मणवर्गणायातपुद्गलस्कन्धाः मूलोत्तरोत्तरोत्तरप्रकृतिरूपेणआत्मप्रदेशेषु अन्योन्यप्रवेशानुप्रवेशलक्षणबंध रूपेणावस्थिताः × × ×।

—गोक० गा० १२५। टीका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कार्मण शरीरनामक नामकर्म के उदय से और जीव के प्रदेशों की चंचलता रूप योग के निमित्त से कार्मण वर्गणारूप से आये पुद्गलस्कन्ध मूल प्रकृति और उत्तर प्रकृति रूप होकर आत्मा के प्रदेशों में परस्पर प्रवेश करते हैं उसी को बंध कहते हैं।

४८ वेदनीय कर्म का बंधन तथा योग-लेश्या

जीवेणं भंते ! वेयणिज्जं कम्मं किं बंधी० पुच्छा ? गोयमा ! अत्थेगइए बंधी बंधइ बंधिस्सइ १, अत्थेगइए बंधी बंधइ न बंधिस्सइ २, अत्थेगइए बंधी न बंधइ न बंधिस्सइ ४, सलेस्से वि एवं चेव तइयविहूणा भंगा। कण्हलेस्से जाव पम्हलेस्से पढम-बिइया भंगा, सुक्कलेस्से तइयविहुणा भंगा, अलेस्से चरिमो भंगो। कण्हपक्खिए पढमबिइया। सुक्कपक्खिया तइयविहुणा। एवं सम्मदिट्ठिस्स वि, य मिच्छादिट्ठिस्स सम्मामिच्छादिट्ठिस्स य पढमबिइया। णाणिस्स तइयविहुणा, आभिणिबोहिय जाव मणपज्जवणाणी पढम-बिइया, केवलणाणी तइयविहूणा। एवं नोसन्नोवउत्ते, अवेदए, अकसायी। सागारोवउत्ते अणागारोवउत्ते एएसु तइयविहुणा। अजोगम्मि य चरिमो, सेसेसु पढमबिइया।

—भग० श० २६। उ १। सू १७

वेदनीय कर्म ही एक ऐसा कर्म है जो अकेला भी बंध सकता है। यह स्थिति ग्यारवें, बारहवें व तेरहवें गुणस्थान के जीवों में होती है। इन गुणस्थानों में वेदनीय कर्म के अतिरिक्त अन्य कर्मों का बंधन नहीं होता है। इनमें से ग्यारहवें, बारहवें गुणस्थान में चतुर्थ भंग लागू नहीं हो सकता है। चौदहवें गुणस्थान के जीव के निर्विवाद चतुर्थ भंग लागू होता है। उपरोक्त पाठ से यह ज्ञात होता है कि सलेशी-शुक्ललेशी जीवों में कोई एक जीव ऐसा होता है जिसके चतुर्थ भंग से वेदनीय कर्म का बंधन होता है अर्थात् वह शुक्ललेशी जीव वर्तमान में न तो वेदनीय कर्म का बंधन करता है और न भविष्यत् में करेगा। चौदहवें गुणस्थान का जीव लेशी-शुक्ललेशी हो नहीं सकता है। अतः उपरोक्त शुक्ललेशी जीव तेरहवें गुणस्थान वाला ही होना चाहिए। लेकिन तेरहवें गुणस्थान के जीव के साता वेदनीय कर्म का बंधन ईर्यापथिक रूप में होता रहता है। तेरहवें गुणस्थान का जीव वेदनीय कर्म का अबंधक नहीं होता है।

टीकाकार का कहना है—"सलेशी जीव पूर्वोक्त हेतु से तीसरे भंग को बाद देकर अन्य भंगों से वेदनीय कर्म का बंधन करता है लेकिन उसमें चतुर्थ भंग नहीं घट सकता क्योंकि चतुर्थ भंग लेश्या रहित अयोगी को ही घट सकता है। लेश्या तेरहवें गुणस्थान तक होती है तथा वहाँ तक वेदनीय कर्म का बंधन होता रहता है। कई आचार्य इसका इस प्रकार समाधान करते हैं कि इस सूत्र के वचन से अयोगीत्व के प्रथम समय में घण्टा-लालान्याय से परम शुक्ललेश्या संभव है तथा इसी अपेक्षा से सलेशी-शुक्ललेशी जीव के चतुर्थ भंग घट सकता है। तत्त्व बहुश्रुतगम्य है।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नोट—हमारे विचार में इसका एक यह समाधान भी हो सकता है कि लेश्या परिणामों की अपेक्षा अलग से वेदनीय कर्म का बंधन होता है तथा योग की अपेक्षा अलग से वेदनीय कर्म का बंधन होता। तब तेरहवें गुणस्थान में कोई एक जीव ऐसा हो सकता है जिसके लेश्या की अपेक्षा वेदनीय कर्म का बंधन रूक जाता है लेकिन योग की अपेक्षा चालू रहता है।

·४९ योग और लेश्या

लेसा तिन्नि पमत्त, तेऊपम्हा उ अप्पमत्तंता।
सुक्का जाव सजोगी, निरुद्धलेसो अजोगित्ति॥

—जिनवल्लभीय षडशीति गा ७३

योग रहित जीव अलेशी है, सयोगी गुणस्थान में केवल शुक्ल लेश्या है।

छसु सव्वा तेउतिगं, इगि छसु सुक्का अजोगिअलेस्सा।

—चतुर्थ कर्म० गा ५०। पूर्वार्ध

अहक्खाय सुहुम केवलदुगि सुक्का छावि सेसठाणेसु।

—चतुर्थ कर्म० गा ३७। पूर्वार्ध

टीका—यथाख्यातसंयमे सूक्ष्मसंपरायसंयमे च 'केवलद्विके' केवलज्ञान-केवलदर्शनरूपे शुक्ललेश्यैव न शेषलेश्याः, यथाख्यातसंयमादौ एकांतविशुद्धपरिणामभावात् तस्य च शुक्ललेश्याऽविनाभूतत्वात्। 'शेषस्थानेषु' सुरगतौ × × × पंचेन्द्रियत्रसकाययोगत्रयवेदत्रय × × × शेषमार्गणास्थानकेषु-षडपिलेश्याः।

तीन योग—मन, वचन काययोग में कृष्णादि छओं लेश्या होती है।

·५० योगस्थान और प्रकृति बंध और प्रदेश बंध

प्रकृतिप्रदेशबन्धनिबन्धनयोगस्थानानां चतसृपि × × ×।

—गोक० गा० १२६। टीका

प्रकृति बंध और प्रदेश बंध का कारण योगस्थान है।

·५१ योग और बंधक-अबंधक

जोगाणुवादेण मणजोगि-वचिजोगि-कायजोगिणो बंधा॥१४॥

टीका—एदं पि सुगमं।

अजोगी अबंधा॥१५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टीका—जोगो णाम किं ? मण-वयण-कायपोग्गलालंबणेण जीवपदेसाणं परिप्फंदो। जदि एवं तो णत्थि अजोगिणो, सरीरयस्स जीवदव्वस्स अकिरियत्त-विरोहादो। ण एस दोसो।

—षट्० २, १, १४, १५। पु० ७। पृ० १७

योग मार्गणानुसार मनयोगी, वचनयोगी और काययोगी बंधक है।

अयोगी जीव अबंधक है।

मन, वचन और काय संबंधी पुद्गलों के आलम्बन से जो जीव प्रदेशों का परिस्पन्दन होता है वही योग है।

अध्ययन, गाथा, सूत्र आदि की संकेत सूची

अ	अध्ययन, अध्याय	प्रा	प्राभृत
अधि	अधिकार	प्रपा	प्रतिप्राभृत
उ	उद्देश, उद्देशक	भा	भाष्य
गा	गाथा	भाग	भाग
च	चरण	ला	लाइन
चू	चूर्णी	व	वर्ग
चूलि	चूलिका	वा	वार्तिक
टी	टीका	वृ	वृत्ति
द	दशा	श	शतक
द्वा	द्वार	शीलांका	शीलांकाचार्य
नि	निर्युक्ति	श्रु	श्रुतस्कन्ध
प	पद	श्लो	श्लोक
पं	पंक्ति	सम	समवाय
पृ०	पृष्ठ	सू	सूत्र
पै	पैरा	स्था	स्थान
प्र	प्रश्न	सिद्ध	सिद्धसेन
प्रकी०	प्रकीर्णक	हा	हारीभद्रीय
प्रति	प्रतिपत्ति	संधि	संधि

संकलन सम्पादन अनुसंधान में प्रमुख ग्रन्थों की सूची

१ से ४ अंगसुत्ताणि

आयारो-सूयगडो-ठाणं-समवाओ

वाचना प्रमुख—आचार्य (वर्तमान नाम-गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी) संपादक—मुनि नथमल (वर्तमान नाम-आचार्य श्री महाप्रज्ञ)। प्रकाशक—जैन विश्वभारती, लाडणूं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५ अंगसूत्ताणि

भगवई-संकेत—भग०

वाचना प्रमुख—आचार्य तुलसी, संपादक—मुनि नथमल (वर्तमान नाम—आचार्य श्री महाप्रज्ञ) प्रकाशक—जैन विश्वभारती, लाडणूं ।

६ से ११ अंगसूत्ताणि

णायाधम्मकहाओ - उवासगदसाओ-अंतगडदसाओ-अणुत्तरोववाइदसाओ-पण्हावागरणं-विवागसूयं ।

वाचना प्रमुख—आचार्य तुलसी, संपादक—मुनि नथमल (वर्तमान नाम—आचार्य श्री महाप्रज्ञ) प्रकाशक—जैन विश्वभारती, लाडणूं ।

१२ से १४ उवसगसूत्ताणि (खंड १)

ओवाइयं-रायपसेणियं-जीवाजीवाभिगमे

वाचना प्रमुख—आचार्य तुलसी, संपादक—आचार्य श्री महाप्रज्ञ । प्रकाशक—जैन विश्वभारती लाडणूं ।

१५ से २३ उवसगसूत्ताणि (खंड २)

पण्णवणा जंबुदीवपण्णत्ती-चंदपण्णत्ती-सूरपण्णत्ती-निरयावलियाओ-कप्पवडिंसियाओ-पुप्फियाओ-पुप्फचूलियाओ-वण्हिदसाओ ।

वाचना प्रमुख—आचार्य तुलसी, संपादक—आचार्य श्री महाप्रज्ञ, प्रकाशक—जैन विश्वभारती लाडणूं

२४ से ३२ आवस्सयं - दसवेआलिय - उत्तरज्झयाणी - नंदी—अणुओगदाराइं दसाओ-कप्पो-ववहारो-निसीहज्झयण ।

वाचना प्रमुख—आचार्य तुलसी, संपादक—आचार्य श्री महाप्रज्ञ, प्रकाशक—जैन विश्वभारती, लाडणूं ।

३३ कप्पसुत्तं-संकेत-कप्पसु०

प्रकाशक—साराभाई मणिलाल, अहमदाबाद ।

३४ सभाष्यतत्त्वार्थ सूत्र-संकेत-तत्त्व०

प्रकाशक—परमश्रुत प्रभावक मंडल, खाराकुआ, बम्बई-२

३५ तत्त्वार्थ सर्वार्थसिद्धि-संकेत तत्त्वसर्व०

प्रकाशक—भारतीय ज्ञान पीठ, वाराणसी ।

३६ तत्त्वार्थवार्तिक (राजवार्तिक) संकेत-तत्त्वराज०

प्रकाशक—भारतीय ज्ञान पीठ, वाराणसी, भाग-२ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३७ **तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकालंकार-संकेत-तत्त्वश्लो०**

प्रकाशक—रामचन्द्र नाथारंग, बम्बई ।

३८ **तत्त्वार्थसिद्धसेन टीका संकेत-तत्त्वसिद्ध० भाग—२**

प्रकाशक—जीवचन्द साकेरचंद जवेरी, बम्बई ।

३९ **कर्मग्रन्थ-संकेत-कर्म० भाग-६**

प्रकाशक—श्री जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर ।

४० **गोम्मटसार (जीवकाण्ड) संकेत-गोजी०**

प्रकाशक—परमश्रुत प्रभावक मंडल, बम्बई ।

४१ **गोम्मटसार (कर्मकाण्ड) संकेत-गोक०**

प्रकाशक—परमश्रुत प्रभावक मंडल, बम्बई ।

४२ **अभिधान राजेन्द्र कोश-संकेत-अभिधा०**

प्रकाशक—श्री सौधर्म बृहत्तपागच्छीय, जैन श्वेताम्बर समस्त संघ, रतलाम ।

४३ **पाइअसद्दमहण्णवो-संकेत-पाइअ०**

प्रकाशक—हरगोविन्दलाल-त्री० सेठ, कलकत्ता ।

४४ **महाभारत-संकेत-महा०**

प्रकाशक—गीता प्रेस, गोरखपुर, टीका बेंकटेश्वर, बम्बई ।

४५ **पातञ्जल योगदर्शन-संकेत-पायोग०**

४६ **अंगुत्तरनिकाय-संकेत-अंगु**

प्रकाशक—बिहार राज्यपालि प्रकाशन मंडल, नालंदा, पटना ।

४७ समयसार-सम्पादक—प्रा० ए० चक्रवर्ती, प्रकाशक—भारतीय ज्ञान पीठ, काशी १९५० ।

४८ ज्ञानसार—भाग १ से २ सम्पादन—मुनि श्री भद्रगुप्त विजय, प्रकाशन—श्री विश्व कल्याण, प्रकाशन—हारीज, उत्तर गुजरात, १९६७ ।

लेश्या कोश पर विद्वानों की सम्मति

लेश्या कोश-सम्पादक श्री मोहनलाल बांठिया, श्री श्रीचंद् चोरडिया, प्रकाशक मोहनलाल बांठिया, १६/सी, डोवर लेन, कलकत्ता-७०० ०२९ प्रथम वर्ष १९६६ । मूल्य १०) रुपये ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस कोश का संपादन करने में ४६ ग्रन्थों व सूत्रों का सहारा लिया गया है। संपादक द्वय का परिश्रम सराहनीय है। जैन दर्शन गहन है। सब विषयों पर कोश तैयार होना बहुत कठिन है परन्तु यदि ऐसे कुछ खास विषयों के कोश तैयार हो सके तो उन जैन स्कालरों को बड़ी सुविधा हो जाय।

इस प्रकार का लेश्या कोश प्रथम बार ही प्रगट हुआ है। संपादकों ने बहुत परिश्रम करके जनता के हितार्थ यह पुस्तक लिखी और प्रकाशित की है। इसमें लेश्या शब्द के अर्थ, पर्यायवाची शब्द, परिभाषा के उपयोगी पाठ, लेश्या के भेद, लेश्या पर विवेचन गाथा, लेश्या संबंधी फुटकर पाठ विद्वानों को पढ़ने और समझने योग्य है। सारांश यह है कि लेश्या परिणामों का विस्तृत विवेचन जानना हो तो यह ग्रन्थ बहुत उपयोगी है।

—श्वेताम्बर जैन—जनवरी १९६९

Prof. Dr. K. L. Janert, Director, Institut fur Indologie Der Universitat zu Koln.

"I have received your book Lesya Kosa, I also owe you a valuable addition to my Library. It is always a matter of great satisfaction to me to see a scholar not recoil from the arduous task of compiling dictionaries, indexes etc—even that great English Critic and Lexicographer, Dr. Samuel Johnson, called it drudgery some two hundred years ago. And it is of course only diligent collection and comparison of all relevent material that genuine advance in knowledge is based on. So we shall have to thank you for having made work easier for those who come after you.

Prof. Padamanath S. Jain Dept. of Buddhist Studies, University of California, Berkiley, U. S. A.

"Please forgive me for the delay in acknowledging the receipt of your excellent gift of the **Lesya-Kosa.** This is an extraordinary work and you deserve our gratitude for publishing it. You have opened a new field of research and have established a new model for all future Jain studies. The subject is fascinating not only for its antiquity but also for its value in the study of Indian Psychology."

क्रिया-कोश पर प्राप्त समीक्षा

Pranjnachakshu Pandit Sukhlal D. Litt., Ahmedabad.

After **Lesya-Kosa,** I have received your Kriya-Kosa. Thanks. I have heard the Editorial, Fore word, Preface in full and certain portions

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

thereafter. I am surprised to find such dilligence, such concentration and such devotion to learning. Particularly so, because such person is rarely found in business community who dedicates himself to learning like a **BRAHMIN.**

Dr. Adinath Neminath Upadhye D. Litt. Shivaji University, Kolhapur.

I am in receipt of the copy of the 'Kriya-Kosa', so kindly sent by you. It is a remarkable source book which brings in one place so systematically, the references and extracts which shed abundant light on the usage of the term Kriya in Jainism. The Kosas that are being brought out by you will prove of substantial help to the future compliation of an Encyclopaedia on Jainism. I shall eagerly look forth to the publication of your **DHYAN KOSA.**

With felicitations on your scholarly achievements.

Dr. P. L. Vaidya, D. Litt. Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona-4.

I am very grateful to you for your sending me a copy of your Cyclopaedia of Kriya. I have read a few pages already and find it as useful as your Lesya-Kosa. Please do bring out similar volumes on different topics of Jain Philosophy, of course, this may not bring you any material wealth, but I am sure students of Jain Literature will surely bless you for having offered them a real help in their study.

Prof. Hiralal Rasikdas Kapadiya, Surat, Bombay.

This work (Kriya Kosa) will be very useful to scholars interested in Jainology. The learned editors deserve hearty congratulations for having undertaken such a laborious and tedious task.

मिथ्यात्वी का आध्यात्मिक विकास पर अभिमत

[लेखक श्रीचन्द चोरड़िया, न्यायतीर्थ, प्रकाशक जैन दर्शन समिति १९७७ मूल्य १५) रुपये]

मिथ्यात्वी के आध्यात्मिक विकास पर श्रीचन्द चोरड़िया ने अति परिश्रम से बहुत सुन्दर विवेचन किया है। अनेक उद्धरणों से सिद्ध किया है कि मिथ्यात्वी का आध्यात्मिक विकास हो सकता है। इस विषय में चोरड़िया की पूरी जानकारी है।

—मुनिश्री राजकरण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Golory of India, दिल्ली

'मिथ्यात्वी का आध्यात्मिक विकास' यह पुस्तक अनेक विशिष्टताओं से युक्त हैं। एक मिथ्यात्वी भी सद्-अनुष्ठानिक क्रिया से अपना आध्यात्मिक विकास कर सकता है। साम्प्रदायिक मतभेदों की बातें या तो आई ही नहीं है अथवा भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों का समभाव से उल्लेख कर दिया गया है।

श्री चोरड़ियाजी ने विषय का प्रतिपादन बहुत ही सुन्दर और तत्तस्पर्शी ढंग से किया है विद्वज्जन इसका मूल्यांकन करें। निःसन्देह दार्शनिक जगत के लिए चोरड़ियाजी की यह एक अप्रतिम देन है।

मुनिश्री जशकरण, सुजानगढ़

अनुमानतः लेखक ने इस ग्रन्थ को लिखने के लिए अनेकानेक ग्रन्थों का अवलोकन किया हैं। टीका, भाष्यों के सुन्दर संदर्भो से पुस्तक अतीव आकर्षक बनी है।

डॉ० भागचन्द्र जैन, नागपुर

विद्वान् लेखक ने यह स्पष्ट करने का साधार प्रयत्न किया है कि मिथ्यात्वी का कब और किस प्रकार विकास हो सकता है। लेखक और प्रकाशक इतने सुन्दर ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए बधाई के पात्र हैं।

डॉ० दामोदर शास्त्री

लेखक ने अपने इस ग्रन्थ में शोधसार समाविष्ट कर शोधार्थी विद्वज्जनों के लिए मार्ग प्रशस्त किया है। यत्र-तत्र पेचीदे प्रश्नों को उठाकर उसका सोदाहरण व शास्त्र सम्मत समाधान भी किया गया है।

मुनिश्री राकेशकुमार, कलकत्ता

श्रीचन्द चोरड़िया के विशिष्ट ग्रन्थ 'मिथ्यात्वी का आध्यात्मिक विकास' में शास्त्रीय दार्शनिक दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण प्रतिपादन हुआ है। जैन धर्म के तात्विक चिन्तन में रूचि रखनेवालों के लिए तो यह पुस्तक ज्ञानवर्द्धक और रसप्रद है ही, किन्तु साम्प्रदायिक अनाग्रह और वैचारिक उदारता के इस युग में हर बौद्धिक और चिन्तनशील व्यक्ति के लिए इसका स्वाध्याय उपयोगी भी है।

भँवरलाल जैन न्यायतीर्थ, जयपुर

पुस्तक में नौ अध्याय है—विभिन्न दृष्टिकोणों से मिथ्यात्वी अपना आत्म विकास किस रूप में किस प्रकार कर सकता है—यह दर्शाया है। जैन सिद्धान्त के प्रमाणों के आधार पर इस विषय को स्पष्टतया पाठकों के समक्ष लेखक ने सरल सुबोध भाषा में रखा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। जिसके लिए वे बधाई के पात्र हैं। शास्त्रीय चर्चा को अभिनय रूप में प्रस्तुत करने में लेखक सफल हुए हैं। (वीर वाणी)।

रामसूरी (डेलावाला), कलकत्ता

'मिथ्यात्वी का आध्यात्मिक विकास' पुस्तक में आलेखित पदार्थों के दर्शन से जैन दर्शन व जैनागमों की अजैनों की तरफ उदात्त भावना और आदरशीलता प्रकट होती है। एवं जैन धर्म को अप्राप्त आत्माओं में कितने प्रमाण में आध्यात्मिक विकास हो सकता है— इत्यादिक विषयों का आलेखन बहुत सुन्दरता से जैनागमों के सूत्रपाठों से दिखाया गया हैं। इसलिए विद्वान् श्रीचन्द चोरड़िया का प्रयास बहुत प्रशंसनीय है और यह ग्रन्थ दर्शनीय है।

डॉ० नरेन्द्र भणावत, जयपुर

लेखक की यह कृति पाठकों का ध्यान एक नई दिशा की ओर खींचती हैं। शास्त्र मर्मज्ञ विद्वानों को विविध विषयों पर गहराई से चिन्तन करने की ओर प्रवृत्ति करने में यह पुस्तक सहायक बनेगी।

डॉ० ज्योति प्रसाद जन, लखनऊ

प्रायः यह समझा जाता है कि मिथ्यात्वी व्यक्ति धर्माचरण का अधिकारी नहीं है और उसका आध्यात्मिक विकास नहीं हो सकता। भ्रान्ति का निरसन विद्वान लेखक ने सरल-सुबोध किन्तु विवेचनात्मक शैली में और अनेक शास्त्रीय प्रमाणों की पुष्ठिपूर्वक किया है।

जमनालाल जैन, वाराणसी

यह अपने विषय की अपूर्वकृति है। मनीषी लेखक ने लगभग दो सौ ग्रन्थों का गम्भीर परायण एवं आलोडन करके शास्त्रीय रूप में अपने विषय को प्राप्त किया है। परिभाषाओं और विशिष्ट शब्दों में आबद्ध तात्त्विक प्ररूपणाओं एवं परम्पराओं को उन्मुक्त भाव से समझने के लिए यह कृति अतीव मूल्यवान है। (श्रमण पत्रिका)

भँवरलाल नाहटा, कलकत्ता

शास्त्र प्रमाणों से परिपूर्ण इस ग्रन्थों में विद्वान लेखक ने नौ अध्यायों में प्रस्तुत बिषय पर अच्छा प्रकाश डाला है।

पं० चन्द्रभूषणमणि त्रिपाठी, राजगृह

लेखक ने काफी विस्तार के साथ उस चर्चा को पुनः चिन्तन का आयाम दिया है। पुस्तक एक अच्छी चिन्तन सामग्री उपस्थित करती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्धमान जीवनकोश, प्रथम खण्ड पर प्राप्त समीक्षा

वर्धमान जीवन कोश (प्रथम खण्ड) : सम्पादक—मोहनलाल बांठिया श्रीचन्द चोरड़िया, प्रकाशक—जैन दर्शन समिति, १६/सी डोवर लेन, कलकत्ता-७०० ०२९। पृष्ठ ५१+५८४, मूल्य ५०) रुपये।

प्रस्तुत ग्रन्थ में चौवीसवें तीर्थङ्कर भगवान महावीर के जीवन से सम्बन्धित च्यवन से परिनिर्वाण तक की शास्त्रीय सामग्री संकलित की गई है। इस सामग्री चयन के लिए मूल श्वेताम्बर जैन आगमों, उनकी टीकाओं, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णी, कसायपाहुड़ और दिगम्बर पुराणों, ग्रन्थों तथा संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश में लिखे महावीर चरित्रों आदि का सहारा लिया गया है। यह ग्रन्थ जैन आगम तथा आगमेतर साहित्य पर शोध कर रहे छात्रों के लिए विशेष उपयोगी होगा।

—श्रमण, जुलाई १९८१

इसमें भगवान महावीर के च्यवन से परिनिर्वाण तक विवेचन बहुत सुन्दर ढंग से हुआ है। जैन दशमलव प्रणाली से विवेचन अतिगम्भीरता से किया है।

—मुनिश्री राजकरण

वर्धमान जीवनकोश, द्वितीय खण्ड पर प्राप्त समीक्षा

डा० ज्योतिप्रसाद जैन, लखनऊ

यह युग विधिवद्ध खोज व शोध का है। अन्वेषक कार्य को सहज और सुगम करने के लिए ही विभिन्न प्रकार के संदर्भ ग्रन्थों की बड़ी उपयोगिता है। इन संदर्भ ग्रन्थों से भी अधिक उपयोगिता है वर्गीकृत कोषों की। वर्गीकृत कोश ग्रन्थ जैसा कि —

वर्धमान जीवन कोश द्वितीय खण्ड, पूर्व प्रकाशित सभी ग्रन्थों से भिन्न है।

इस कार्य के लिए आगम ग्रन्थ उनकी टीकायें, श्वेताम्बर व दिगम्बर आगमेतर ग्रन्थ, कुछ बौद्ध एवं ब्राह्मण्य ग्रन्थ एवं परवर्तीकालीन कोश, अभिधान आदि का भी उपयोग किया है। इस खण्ड में उनके ३३ या २७ भवों का विवरण जो कि श्वेताम्बर व दिगम्बर परम्परा से लिया गया है। इससे तुलनात्मक अध्ययन सुगम ही हो जाता है इसके अतिरिक्त इसमें भगवान् महावीर के पाँचों कल्याणक, नाम एवं उपनाम, उनकी स्तुतियाँ, समवसरण, दिव्यध्वनि, संघविवरण, इन्द्रभूति आदि ग्यारह गणधरों का पृथक् विवरण आदि संकलित है। आर्या चन्दना का भी विवरण प्रस्तुत ग्रन्थ में दिया गया है।

इस भाग में संकलित अनेक विषय बहुधा प्रथम भाग में संकलित विषयों के परिपूरक है। विषयों को इसमें अंतर्जातीय दशमलव के रूप में विभाजित व संकलित किया गया है जैसा कि सम्पादकों ने उपरोक्त वर्गीकृत कोश ग्रन्थों में किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विद्वानों व अन्वेषकों के लिए तीर्थङ्कर भगवान् महावीर के इस भाँति के वर्गीकृत कोष ग्रन्थों की उपादेयता के विषय में कोई दो मत नहीं हो सकता। परिश्रम साध्य व समय सापेक्ष इस कार्य को इतने सुचारु रूप से संपादन करने के लिए हम विद्वान पण्डित श्रीचन्द चोरड़िया का आन्तरिक भाव से अभिनन्दन करते हैं। साथ ही जैन दर्शन समिति और उनके कार्यकर्त्ताओं को भी इसके प्रकाशन के लिए धन्यवाद देते हैं।

मुनिश्री जसकरण, सुजान, बोरावड़ (सुजानगढ़ वाले) ता० ९-५-८७

वर्धमान जीवन कोश (द्वितीय खण्ड) में भगवान् महावीर के जीवन सम्बन्धित अनेक भवों की विचित्र एवं महत्वपूर्ण उपलब्धि है। यह कार्य अति उत्तम एवं प्रशंसनीय है।

इसके लेखक मोहनलालजी बांठिया तथा श्रीचन्दजी चोरड़िया के श्रम का ही सुफल है। यह ग्रन्थ इतना सुन्दर एवं सुरम्य बन सका है। शोधकर्त्ताओं के लिए यह ग्रन्थ काफी उपयोगी होगा—ऐसा विश्वास है। रिसर्च करने वालों को भगवान् वर्धमान के सम्बन्ध में सारी सामग्री इस ग्रन्थ में उपलब्ध हो सकेगी।

वर्धमान जीवन कोश (द्वितीय खण्ड)—संपादक मोहनलाल बांठिया, श्रीचन्द चोरड़िया, प्रकाशक जैन दर्शन समिति, १६/सी, डोवर लेन, कलकत्ता-७०० ०२९ पृष्ठ ४६ + ३४४ = ३९० मूल्य ६५) रुपये।

प्रस्तुत ग्रन्थ उपलब्ध जैन वाङ्मय से भगवान् महावीर की जीवनी से सम्बन्धित मूल पाठ एवं अनुवाद प्रकाशित कर शोधार्थियों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण सामग्री का यह दूसरा भाग है। ऐसे ग्रंथों के संपादन में बहुश्रुतत्व और धैर्यपूर्वक सम्पन्न करने में विद्वान् संपादक अवश्य ही सफल हुए हैं।

—कुशल निर्देश मार्च १९९२

वर्धमान जीवनकोश तृतीय खण्ड पर प्राप्त समीक्षा

वर्धमान जीवन कोश, तृतीय खण्ड।—संपादक मोहनलाल बांठिया, श्रीचंद चोरड़िया, १६/सी, डोवर लेन, कलकत्ता-७०० ०२९। पृष्ठ ८० + ४४८। मूल्य ७५) रुपये।

यह सब आपके परिश्रम का परिणाम है। हर पुस्तक का अलग-अलग विवरण दिया है। मैं आपको धन्यवाद देता हूँ।

—जबरमल भंडारी, जोधपुर

प्रस्तुत ग्रन्थ जैनागमों व ग्रन्थों के मंथन द्वारा संकलित भगवान् महावीर के जीवन सामग्री को सानुवाद संग्रह करने का भगीरथ प्रयत्न है। जैन धर्म से सम्बन्धित शोध करने वालों के लिए यह बहुत ही सहायक और वर्षों से निष्ठापूर्वक किये गये परिश्रम का सुखद परिणाम है। संपादक महोदय ने कृत पूर्व दो खण्डों में एतद् विषयक सामग्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुस्तक करने के अतिरिक्त लेश्या कोश, क्रिया कोश और मिथ्यात्वी का आध्यात्मिक विकास संस्था द्वारा प्रकाशित कर जैन समाज का ही नहीं अनुसंधेत्सु छात्रों-विद्वानों का भी बड़ा उपकार किया है।

—भँवरलाल नाहटा

इस कोश में भगवान महावीर के चतुर्विध संघ के प्रमाण का निरूपण, भगवान महावीर के शासन में पार्श्वनाथ की परंपरा, सर्वज्ञ अवस्था के विहार स्थल आदि का सांगोपांग विवेचन है।

—डा० ज्योतिप्रसाद जैन

'योगकोश' प्रथम खण्ड पर प्राप्त समीक्षा

योग कोश (प्रथम खण्ड)—सम्पादक श्रीचन्द चोरड़िया, न्याय तीर्थ। प्रकाशक जैन दर्शन समिति, १६/सी, डोवर लेन, कलकत्ता-७०० ०२९। सजिल्द मूल्य १००)।

आज से अड़तीस वर्ष पूर्व आचार्य श्री तुलसी ने आगम संपादन के कार्य करने की घोषणा की थी। संपादन का एक अंग कोश है। तत्त्वज्ञ श्रावक श्री मोहनलालजी बांठिया ने इस कार्य को अपने ढंग से करना शुरु किया। कोश का निर्माण दृढ़ और स्थिर अध्यवसाय से ही होता है। वे मनोयोग से लगे। उन्हें सहयोगी मिले श्री श्रीचन्द चोरड़िया (न्यायतीर्थ) अस्वस्थ रहते हुए श्री बांठियाजी इस कार्य को करते रहे।

उनके देहान्त (२३-९-१९७६) होने के बाद उनके अधुरे कार्य को पूरा करने में लगे हुए हैं—श्री श्रीचन्द चोरड़िया। सीमित साधन सामग्री में वे जो कुछ कर पा रहे हैं, वह उनके दृढ़ संकल्प का ही परिणाम है। क्रिया कोश, लेश्या कोश, मिथ्यात्वी का आध्यात्मिक विकास, वर्धमान जीवन कोश (खण्ड १, २, ३) के पश्चात् अब योग कोश को सम्पन्न किया है। स्तुत्य है। आगमों के इन अन्वेषणीय विषयों पर कोई भी चले अनुमोदनीय है, अनुकरणीय है।

फिर भी जैन दर्शन समिति का यह प्रकाशन विशेष संग्रहणीय बन पड़ा है। श्रम का उपयोग कितना होता है—यह तो शोधकर्त्ताओं पर निर्भर करता है।

कोश की शृंखला विराम न ले, चोरड़िया में स्वाध्याय व सृजन दोनों की वृद्धि हो—इसी शुभाशंषा के साथ।

कलकत्ता-माघ शुक्ला ५, २०५० मुनि सुमेर (लाडणूं)

प्रस्तुत पुस्तक स्व० मोहनलाल जी बांठिया द्वारा प्रारंभित जिनागम समुद्र अवगाहन कर विभिन्न जीवन आदि विषयों की शृंखला का दशमलव वर्गीकरण द्वारा पुष्प ग्रन्थ रत्न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। शोध छात्रों व वाङ्मय रसिकों के लिए बड़ा उपयोगी है। ऐसे ग्रन्थों का अध्ययन अध्येता के लिए बहुश्रुतत्व में वृद्धि करता है। फिर भी संशोधनादि में पर्याप्त सतर्कता आवश्यक है। इसका प्रकाशन कर उच्चस्तरीय जैन साहित्य में अवश्य ही विद्वान संपादक ने बड़ा उपकार किया है। सहायक ग्रन्थ सूची में अधिकांश लाडणूं में प्रकाशित ग्रन्थ है जबकि कई दिगम्बर व जैनेतर ग्रन्थों का भी उपयोग किया है पर जैन साहित्य अति विशाल है। जितना इस प्रथम खण्ड में आया है, अवशिष्ट द्वितीय खण्ड में अपेक्षित है। शोध और स्वाध्याय रुचि वालों के लिए यह संदर्भ ग्रन्थ अवश्य पठनीय है।

—कुशल निर्देश १९९४

"योग कोश पर प्राप्त समीक्षा"

Srichandra Chorariya (ed)—**Cyclopaedia of Yoga (Yoga-Kosa)**, Jain Darsan Samiti, 16-C, Dover Lane, Calcutta, 1993, p.p. 90+336. Price Rs. 100.00.

It is a great pleasure in introducing the first part of the **Cyclopaedia of Yoga (Yoga-Kosa)** by Srichand Chorariya who has been known to the scholarly world for his contributions to the different Cyclopaedias of Jainism. Sri Chorariya in his own scholastic way has divided the text into several divisions as followed normally in the library science. As this is a Cyclopaedia it contains all the references found in the Jain literature. The most important aspect of his collection is that he has given all the references from the Jain texts and not from his own fanciful mind. He has made this book an authentic one. Those who are familiar with his works on Cyclopaedias know that his method is very scientific and lofty. This book will also give us a hint of how to do research on a particular topic of Jainism. R. L. William's **Jaina Yoga** (London, 1962) is a book of Jaina Yoga, but Chorariya's book is a Cyclopaedia on the Jaina Yoga. And naturally the latter will be more exhaustive than the former one.

This **Yoga-Kosa** is well-printed and carefully hard bound. There are exceptionally few printing mistakes which the author himself has pointed out separately. It has elaborate introduction containing about 75 pages. I hope, in future, we will get similar other works from him.

Sri Chorariya is a good scholar on Jainism and an outstanding laborious researcher for the cause of Jainism. I hope this book will be received well by the scholars of the world.

—Satya Ranjan Banerjee

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org